CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

।। श्री ।।

भगवत्पादपतञ्जलिप्रणीतं

व्याकरणमहाभाष्यम्

'ज्योत्सना' समुद्भासितम्

अष्टमोऽध्यायः

टीकाकारः सम्पादकश्च

डॉ० हरिनारायणतिवारी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्या. ९५८०
८३ R

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

०पा. ९५८० ८३ R. R.८९

।। श्रीः ।।

विद्याभवन प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला
१६८

भगवत्पादपतञ्जलिप्रणीतं

व्याकरणमहाभाष्यम्

'ज्योत्स्ना'समुद्भासितम्

(अष्टमोऽध्यायः)

टीकाकारः सम्पादकश्च

डॉ० हरिनारायणतिवारी

चौखम्बा विद्याभवन

वाराणसी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकाशक

चौखम्बा विद्याभवन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)

पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001

दूरभाष : 2420404

ई-मेल : cvbhawan@yahoo.co.in

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

संस्करण 2009 ई०

मूल्य : 300.00

1 - 9 भाग : Rs. 3000.00

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)

गली नं. 21-ए, अंसारी रोड

दरियागंज, नई दिल्ली 110002

दूरभाष : 32996391

Acc. 394806
3/4/06

❖

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर

पो. बा. नं. 2113

दिल्ली 110007

दूरभाष : 23856391

❖

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन

पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001

दूरभाष : 2335263

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्या. १५८०

पादानुक्रमाष्टमाऽध्यायस्याह्निकानुक्रमणी

आह्निकम्	पृष्ठाङ्काः
प्रथमः पादः	
प्रथममाह्निकम्	१-६२
द्वितीयमाह्निकम्	६३-९१
द्वितीयः पादः	
प्रथममाह्निकम्	९२-१५८
द्वितीयमाह्निकम्	१५९-२१३
तृतीयः पादः	
प्रथममाह्निकम्	२१४-२५७
द्वितीयमाह्निकम्	२५८-२९६
चतुर्थः पादः	
प्रथममाह्निकम्	२९७-३३९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्या. १५८०

॥ श्रीः ॥

भगवत्पादपतञ्जलिप्रणीतं

व्याकरणमहाभाष्यम्

'ज्योत्स्ना'समुद्भासितम्

अष्टमोऽध्यायः

❀ प्रथमे पादे प्रथममाह्निकम् ❀

मङ्गलाचरणम्

शेषविभूषणमीडे शेषाशेषार्थलाभाय ।
दातुं सकलमभीष्टं फलमिष्टे यत्कृपादृष्टिः ।।

सर्वस्य द्वे ८.१.१

'सर्वस्य द्वे'—यह अधिकार सूत्र है। 'सर्वस्य' षष्ठ्यन्त उद्देश्यवचन तथा 'द्वे' प्रथमान्त विधेयवचन है। यह दो पदों का सूत्र है। यहाँ सर्व शब्द से अर्थ का ग्रहण है, स्वरूप का नहीं। इस विषय में आचार्यों का व्याख्यान प्रमाण है। सर्व शब्द का तीन अर्थ—द्रव्यकार्त्स्न्य, प्रकारकार्त्स्न्य व अवयवकार्त्स्न्य, जैसे द्रव्यकार्त्स्न्य—'सर्वस्वं ददाति'। प्रकारकार्त्स्न्य जैसे—'सर्वान्नं भक्षयति' इस वाक्य से 'सर्वप्रकारमन्नं भुङ्क्ते' ऐसा अर्थ जाना जाता है। अवयवकार्त्स्न्य, जैसे—'सर्वः पटो दग्धः'। परन्तु यहाँ पर द्रव्यकार्त्स्न्य तथा प्रकारकार्त्स्न्य अर्थ का वाचक सर्व शब्द का ग्रहण असम्भव है, अतः अवयवकार्त्स्न्य का वाचक सर्व शब्द लिया गया है।

सर्ववचनं किमर्थम्? * सर्ववचनमलोन्त्यनिवृत्त्यर्थम् * सर्वग्रहणं क्रियते। किं प्रयोजनम्? 'अलोऽन्त्यनिवृत्त्यर्थम्'। 'अलोऽन्त्यस्य विधयो भवन्ती'-त्यन्त्यस्य द्विर्वचनं मा भूदिति। क्व पुनरलोन्त्यनिवृत्त्यर्थेनाऽर्थः सर्वग्रहणेन?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'नित्यवीप्सयो'रिति। 'नित्यवीप्सयो'रित्युच्यते, न चाऽन्त्यस्य द्विर्वचनेन नित्यता वीप्सा वा गम्यते। इह तर्हि—'परेर्वर्जने' इत्यन्त्यस्याऽपि द्विर्वचनेन वर्ज्यमानता गम्येत * षष्ठीनिर्देशार्थञ्च * **षष्ठीनिर्देशार्थञ्च सर्वग्रहणं कर्तव्यम्। षष्ठीनिर्देशो यथा प्रकल्पेत।**

चाहे सम्पूर्ण के स्थान में द्विःप्रयोगरूप द्विर्वचन करें या सम्पूर्ण का आदेशरूप द्वित्वप्रयोग करें, इसमें कोई फलभेद नहीं हैं, फिर तो सर्ववचन क्यों किया है?

सूत्र में सर्वग्रहण किया गया, उसका प्रयोजन क्या है? अलोऽन्त्यस्य, १.१.५२ सूत्र की निवृत्ति ही सर्वग्रहण का फल है। अलोऽन्त्यस्य १.१.५२ यह अन्त्य अल् को विधि करता है। अन्त्य अल् को द्विर्वचन न हो, सम्पूर्ण के स्थान में द्विर्वचन हो, यही सर्वग्रहण का प्रयोजन है।

सर्वग्रहण से 'अलोऽन्त्यस्य' की निवृत्ति कहाँ होती है? उत्तर देते हैं—**नित्यवीप्सयोरिति**। नित्य और वीप्सा अर्थ गम्य होने पर द्वित्व हो। अन्त्य वर्ण को द्वित्व करने से नित्य व वीप्सा अर्थ का बोध नहीं हो पा रहा है, अतः नित्य और वीप्सा अर्थ का बोध कराने के लिए सम्पूर्ण के स्थान में द्वित्व आदेश करने के लिए सर्वग्रहण का प्रयोजन है। तब तो 'परेर्वर्जने' ८.१.५ इस सूत्र से अन्त्य के स्थान में द्विर्वचन कर देने से भी वर्ज्यमान अर्थ का ज्ञान हो रहा है तथा समुदाय के भी द्विर्वचन से वर्ज्यमान अर्थ का बोध हो रहा है। इस षष्ठीनिर्देश के लिए सर्वग्रहण करना चाहिये। अर्थात् षष्ठी विभक्ति का निर्देश हो सके! उसके लिए सर्व पद का ग्रहण करना चाहिए।

* अनिर्देशे हि षष्ठ्यर्थाऽप्रसिद्धिः * **अक्रियमाणे हि सर्वग्रहणे षष्ठ्यर्थस्याऽप्रसिद्धिः स्यात्। कस्य? स्थानेयोगत्वस्य। क्व पुनरिह षष्ठीनिर्देशाऽर्थेनार्थः सर्वग्रहणेन यावता सर्वत्रैव षष्ठ्युच्चार्यते—'परेर्वर्जने' 'प्रसमुपोदः पादपूरणे' 'उपर्यध्यधसः सामीप्ये' 'वाक्यादेरामन्त्रितस्येति। इह न काचित् षष्ठी—'नित्यवीप्सयो'रिति? ननु चैषैव षष्ठी। नैषा षष्ठी। किं तर्हि? अर्थनिर्देश एषः—नित्ये चार्थे वीप्सायां चेति।**

यदि सर्वग्रहण नहीं किया जाता तो षष्ठ्यर्थ की अप्रसिद्धि होती। सर्व पद के ग्रहण से 'षष्ठी स्थानेयोगा' १.१.४९ का ग्रहण होता है। यदि सूत्र में सर्व पद न होता तो सूत्र 'द्वे' मात्र ही सूत्र होता। आगे के सूत्रों में इसका अनुवर्तन होता है। जैसे—'परेर्वर्जने' ५.१.५ सूत्र में वर्ज गम्य होने पर परि को द्वित्व हो, यहाँ पर सन्देह होगा—परि के अनन्तर द्वित्व हो या परि के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्थान में द्वित्व हो? षष्ठ्यन्त उच्चारण करने से सभी सन्देह निवृत्त हो जाते हैं—परि के स्थान में द्वित्व हो वर्जन गम्यमान होने पर। अब पुनः शङ्का करते हैं कि सर्वत्र ही षष्ठी का उच्चारण है। जैसे—'परेर्वर्जने', ८.१.५ 'प्रसमुपोदः पादपुरणे' ८.१.६, 'उपर्यध्यधसः सामिप्ये' ८.१.७, 'वाक्यादेरामन्त्रितस्य-' ८.१.८। फिर जब सर्वत्र षष्ठी का ही उच्चारण है तब प्रकृत सूत्र में षष्ठी का उच्चारण के लिए जो सर्व शब्द ग्रहण किया है, उसका प्रयोजन क्या है?!

प्रयोजन बताते हैं—'नित्यवीप्सयोः' ८.१.४ सूत्र में षष्ठी का उच्चारण नहीं है, इसके लिए षष्ठी आवश्यक है, तदर्थ सर्वग्रहण करना चाहिए। यदि 'नित्यश्च वीप्सा च नित्यवीप्से तयोः नित्यवीप्सयोः' इसको षष्ठी ही मान लिया जाये तो इसका खण्डन करते हैं—यह षष्ठी नहीं है। यदि षष्ठी नहीं है तो यह क्या है? यहाँ अर्थनिर्देश होने से सप्तमी है—'नित्य तथा वीप्सा अर्थ में द्वित्व हो'।

अलोऽन्त्यनिवृत्त्यर्थेन तावन्नार्थः सर्वग्रहणेन। इदं तावदयं प्रष्टव्यः 'नित्यवीप्सयोर्द्वे भवत' इत्युच्यते, द्विशब्द आदेशः कस्मान्न भवति? आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति—'न द्विशब्द आदेशो भवती'ति यदयं—'तस्य परमाम्रेडितम्' 'अनुदात्तं चे'त्याह। कथं कृत्वा ज्ञापकम्? द्विशब्दोऽयमेकाच्, तस्यैकाच्त्वात् 'तस्य परमाम्रेडितम्' 'अनुदात्तं चे'त्येतन्नास्ति। पश्यति त्वाचार्यो न द्विशब्द आदेशो भवतीति, तत'स्तस्य परमाम्रेडितम्' 'अनुदात्तां चे'त्याह।

सर्वग्रहण का प्रयोजन 'अलोऽन्त्यस्य' १.१.५२ सूत्र की निवृत्ति करना नहीं है। यहाँ यह पूछना चाहिए कि नित्य और वीप्सा अर्थ में द्वित्व कहते हैं। स्थानी के स्थान पर द्वि शब्द आदेश ही क्यों नहीं होता है? तो इसका उत्तर देते हैं—**आचार्यप्रवृत्तिरिति**। आचार्य का आचरण बताता है कि नित्य और वीप्सा अर्थ में द्वि शब्द आदेश नहीं होता है। वह इस तरह कि आचार्य ने 'तस्य परमाम्रेडितम्' ८.१.३ तथा 'अनुदात्तां च' ८.१.३ यह दो सूत्र पढा है। इससे आचार्य ने ज्ञापित किया है कि नित्य और वीप्सा अर्थ में द्वि शब्द आदेश नहीं होता है। ये दोनों सूत्र उक्त विषय का ज्ञापन कैसे करेंगे? द्वि शब्द एक अच् वाला है। द्विरुक्त के पर रूप की आम्रेडित संज्ञा तथा पररूप को ही आचार्य ने अनुदात्त कहा है। यदि द्वि शब्द आदेश करेंगे तो उसका पररूप नहीं मिलेगा जिसकी आप आम्रेडितसंज्ञा तथा अनुदात्त स्वर कर सकेंगे अतः द्वि शब्द आदेश न करके स्थानी के स्थान में द्वित्व आदेश करना चाहिए

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इससे पूर्वोक्त दोनों सूत्र सार्थक हो जायेंगे। इस तरह आचार्य ने ज्ञापन किया है कि द्वि शब्द आदेश न होकर स्थानी के स्थान में द्वित्व ही होता है।

यदि तर्हि न द्विशब्द आदेशो भवति के तर्हीदानीं द्वे भवतः? द्विशब्देन यदुच्यते। किं पुनस्तत्? द्विशब्दोऽयं संख्यापदं, संख्यायाश्च सङ्ख्येयमर्थः। सङ्ख्येये द्वे भविष्यतः। के पुनस्ते? पदे वाक्ये मात्रे वा।

यदि द्वि शब्द आदेश नहीं होगा तो द्वित्व किसका होगा? जो द्वि शब्द से कहा जा रहा है, वह द्वित्व होगा। द्वि शब्द से कौन कहा जा रहा है? द्वि शब्द संख्यावाचक पद है। 'आदशभ्यः संख्याः संख्येये वर्तते तत उत्तरं संख्याने संख्येये च' अर्थात् आदश=अष्टादशपर्यन्त संख्या मात्र संख्येयः=संख्यातुं योग्यः संख्येयः अभिधेय अर्थ में है तथा उससे आगे एकोनविंशति से लेकर यावत्पर्यन्त संख्येय और संख्यान दोनों में है। इस तरह द्वि शब्द संख्या पद होने से संख्येय= अभिधेयपरकमात्र है, अतः **संख्येयः**=अभिधेय द्वित्व का अनुभव करेगा। वह संख्येय अर्थ कौन-सा है? उत्तर देते हैं—पद, वाक्य और मात्रा।

तद्यदा तावत्पदे वाक्ये वा तदाऽनेकाल्त्वात् सर्वादेशः सिद्धः। यदा तावन्मात्रे अपि तदा'ऽनेकाल्शित्सर्वस्ये' ति सर्वादेशो भवति।

तब तो यदि संख्येय पद और वाक्य लेंगे तो उसके स्थान में आदेश अनेकाल् होंने से सम्पूर्ण के स्थान में होगा—'अनेकाल्शित्सर्वस्य' १.१.५५। जब मात्रा लेंगे तब भी 'अनेकाल् शित्सर्वस्य' १.१.५५ सूत्र से अनेकाल् होने के कारण सम्पूर्ण के स्थान में द्वित्व होगा।

यदा तर्ह्यर्द्धमात्रे तदा सर्वादेशो न सिध्यति। नैष दोषः। तदापि सिद्धः। न चार्द्धमात्रे द्विरुच्येते। किं कारणम्? इह व्याकरणे यत्सर्वाऽल्पीयान् स्वरव्यवहारः स मात्रया भवति। नाऽर्द्धमात्रया व्यवहारोऽस्ति, तेनाऽर्द्धमात्रे न भविष्यतः। एवमपि कुत एतत्—'पदे द्वे भविष्यत' इति, न पुनर्वाक्ये स्यातां मात्रे वा? 'नित्यवीप्सयोर्द्वे भवत' इत्युच्यते न च वाक्यद्विर्वचनेन मात्राद्विर्वचनेन वा नित्यता वीप्सा वा गम्यते।

यदि 'परेर्वजने' ८.१.५, सूत्रघटक 'परि' में इकार की दो अर्धमात्रा होगी। अल्ग्रहण से अर्धमात्रा इकार का ग्रहण नहीं होगा, अतः अनेकाल् नहीं होने से सर्वादिश नहीं होगा। यदि कोई दोष नहीं है। यहाँ पर तदापि=मात्रापद वर्ण का उपलक्षण है, अतः कोई दोष नहीं होगा। अर्धमात्रा को द्वित्व नहीं कहा है। अर्धमात्रा को द्वित्व नहीं कहने का कारण क्या है? इस व्याकरण शास्त्र

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में सबसे छोटा स्वर व्यवहार है। वह मात्रा से होता है। विशिष्ट अर्धमात्राद्वय का उच्चारण अशक्य है, अतः इस व्याकरण शास्त्र में अर्धमात्रा का व्यवहार नहीं है, अतः अर्धमात्रा को द्वित्व नही हो सकेगा। यदि 'तस्यादित उदात्तमर्ध-ह्रस्वम्' १.२.३२ सूत्र से अर्धमात्रा का होना कहें तो ठीक नहीं है, क्योंकि वहाँ अर्धपद से अर्धमात्रा न बताकर अर्धमात्रा का गुण बताया गया है, अतः इस व्याकरणशास्त्र में अर्धमात्रा स्वर का सर्वथा अभाव होने से उसमें द्वित्व की प्राप्ति नहीं हो सकेगी।

जब संख्येय पद, वाक्य और मात्रा तीनों हैं, तो पद को ही द्वित्व क्यों होता है? मात्रा और वाक्य को द्वित्व क्यों नहीं होता है? इसका उत्तर देते हैं—नित्य और वीप्सा अर्थ में पद को द्वित्व होता है। वाक्यद्विर्वचन से तथा मात्राद्विर्वचन से नित्यता और वीप्सा अर्थ का बोध सम्भव नहीं है, अपितु पद के द्वित्व होने पर ही नित्य और वीप्सा अर्थ का ज्ञान होता है, अतः पद को द्वित्व होता है, वाक्य और मात्रा को नहीं।

षष्ठीनिर्देशार्थमेव तर्हि सर्वग्रहणं कर्त्तव्यम् * न वा पदाधिकारात् * न वा वक्तव्यम्। किं कारणम्? 'पदाधिकारात्। पदस्येति प्रकृत्य द्विर्वचनं वक्ष्यामि * तच्च समासतद्धितवाक्यनिवृत्त्यर्थम् * तच्चावश्यं पदग्रहणं कर्त्तव्यम्। किं कारणम्? 'समासतद्धितवाक्यनिवृत्त्यर्थम्'। समासनिवृत्त्यर्थं तद्धितनिवृत्त्यर्थं वाक्यनिवृत्त्यर्थञ्च। समासनिवृत्त्यर्थं तावत्—सप्तपर्णः। अष्टापदम्। तद्धितनिवृत्त्यर्थं—द्विपदिका त्रिपदिका। माषशः कार्षापणशः। वाक्यनिवृत्त्यर्थं—ग्रामे ग्रामे पानीयम्। माषं माषं देहीति।

तो षष्ठीनिर्देश के लिए ही सर्व पद का ग्रहण करना चाहिए? षष्ठीनिर्देश के लिए सर्व पद का ग्रहण नहीं करना चाहिए। इसका क्या कारण है? "पदस्य" ऐसा षष्ठ्यन्त पद का उच्चारण करके द्विर्वचन का विधान करेंगे। समास, तद्धित और वाक्य को द्विर्वचन न हो, इसके लिए 'पदस्य' ऐसा षष्ठ्यन्त पद अवश्य करना चाहिए। ऐसा षष्ठ्यन्त 'पदस्य' कहने का क्या प्रयोजन है? समास, तद्धित और वाक्य की निवृत्ति 'पदस्य' का प्रयोजन है। समास को द्विर्वचन न हो, तद्धित को द्विर्वचन न हो, एवं वाक्य को भी द्विर्वचन न हो, इसके लिए 'पदस्य' पढना चाहिए। जैसे—**समासनिवृत्त्यर्थ**—'सप्तपर्णः, अष्टापदम्। सप्त सप्त संख्याकानि पर्णानि यस्य असौ सप्तपर्णः, अष्टौ अष्टौ पदानि यस्मिन् वाक्ये तद् अष्टापदम्'। यहाँ उभयत्र वीप्सा है। **व्याप्तुम्**='कात्स्न्र्ये सम्बद्धुम् इच्छा वीप्सा'। यहाँ पर सप्तसंख्याक पर्ण की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वीप्सा है, तद्वान् वृक्ष की नहीं। इस तरह वीप्सा में एकत्व का अर्न्तभाव नहीं होने से विभक्ति की उत्पत्ति से पूर्व द्विर्वचन प्राप्त है 'सप्तपर्ण-सप्तपर्ण' ऐसा। एवम् 'अष्टापदम्' स्थल में भी अष्टापद की वीप्सा है तद्वान् वस्तु की नहीं। यहाँ पर भी वीप्सा में एकत्व का अन्तर्भाव नहीं होने से विभक्ति-उत्पत्ति से पूर्व ही 'अष्टापदम् अष्टापदम्' ऐसा द्विर्वचन प्राप्त है। पदग्रहण से समास की निवृत्ति हो जाने से यह दोष नहीं आता है।

तद्धितनिवृत्त्यर्थ—'द्विपदिका, त्रिपदिका'। इस स्थल में भी द्वित्वसंख्यायुक्त तथा त्रित्वसंख्यायुक्त पदार्थ की वीप्सा है। वीप्सा में स्त्रीत्वलक्षण लिङ्ग तथा एकत्वलक्षण संख्या का अन्तर्भाव नहीं होने से तद्धितोत्पत्ति से पूर्व ही समास होता है। समास होने से पद नहीं होने से उक्त स्थलीय द्वि शब्द तथा त्रि शब्द को द्वित्व नहीं होता है। मूल में 'माषशः, कार्षापणशः' यह अपपाठ है। वह इसलिए की पदग्रहण का फल तद्धित की निवृत्ति है, वह उक्त प्रयोग में नहीं बन रहा है। यहाँ पर शसन्त भी पद है, अतः पदग्रहण से उसकी निवृत्ति सम्भव नहीं है। समर्थ सुबन्त से तद्धित की उत्पत्ति होती है। तद्धित की उत्पत्ति होने से पूर्व भी पूर्वभाग पद है एवं तद्धित की उत्पत्ति के अनन्तर तद्धितान्त प्रातिपादिक से सुबुत्पत्ति करके 'माषशः कार्षापणशः' भी पद हो गया; अतः तद्धितनिवृत्त्यर्थ ये दोनों प्रयोजन ठीक नहीं हैं।

वाक्यनिवृत्त्यर्थ—वाक्यनिवृत्त्यर्थ पद ग्रहण का प्रयोजन है; जैसे—'ग्रामे ग्रामे पानीयम्। माषं माषं देहि'। यहाँ पर वाक्य की पदसंज्ञा नहीं होती है, अतः पदत्व नहीं होने से वाक्य को द्वित्व नहीं है, अपितु पद को द्वित्व है। वाक्य को द्वित्व होने पर 'ग्रामे पानीयम्, ग्रामे पानीयम्', ऐसा रूप होता जो इष्ट नहीं है।

अथ क्रियमाणेऽपि वै पदग्रहणे 'समासनिवृत्त्यर्थ'मिति कथमिदं विज्ञायते—समासस्य निवृत्त्यर्थं समासनिवृत्त्यर्थमाहो स्वित्समासे निवृत्त्यर्थं समासनिवृत्त्यर्थमिति? किं चातः? यदि विज्ञायते—समासस्य निवृत्त्यर्थं समासनिवृत्त्यर्थमिति, सिद्धं—सप्तपर्णः सप्तपर्णौ सप्तपर्णा इति। सप्तपर्णाभ्यां सप्तपर्णेभ्य इत्यत्र प्राप्नोति। अथ विज्ञायते—समासे निवृत्त्यर्थं समासनिवृत्त्यर्थमिति, सप्तपर्णः सप्तपर्णौ सप्तपर्णा इत्यत्रापि प्राप्नोति।

अब शङ्का होती है कि पदग्रहण करने पर भी यह कैसे जाना जाये कि समासनिवृत्त्यर्थम् यहाँ पर षष्ठीतत्पुरुष है अथवा सप्तमीतत्पुरुष है? इस तरह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की शङ्का क्यों हुई? उत्तर देते हैं—यदि यहाँ पर षष्ठीतत्पुरुष मानेंगे तो 'समुदाय वीप्सायुक्त हो' यह अर्थ होगा। इस तरह समुदाय को प्राप्त द्विर्वचन की निवृत्ति पदाधिकार कर देगा। यदि सप्तमीतत्पुरुष मानेंगे तो 'समास में विद्यमान अवयव को वीप्सा में द्वित्व हो' यह अर्थ होगा। फिर तो संख्यावाची सप्त पद तथा पर्ण पद दोनों को द्वित्व प्राप्त होगा जिसकी निवृत्ति पदाधिकार से करेंगे।

तथा—'तद्धितनिवृत्त्यर्थ'मिति, कथमिदं विज्ञायते—तद्धितस्य निवृत्त्यर्थं तद्धितनिवृत्त्यर्थमिति, आहोस्वित्तद्धिते निवृत्त्यर्थं तद्धितनिवृत्त्यर्थमिति? किं चातः? यदि विज्ञायते तद्धितस्य निवृत्त्यर्थं तद्धितनिवृत्त्यर्थमिति, सिद्धं द्विपदिका त्रिपदिका इति, द्विपदिकाभ्यां त्रिपदिकाभ्यां माषशः कार्षापणश इत्यत्र प्राप्नोति। अथ विज्ञायते—तद्धिते निवृत्त्यर्थं तद्धितनिवृत्त्यर्थमिति, द्विपदिकाः त्रिपदिका इत्यत्रापि प्राप्नोति। तथा 'वाक्यनिवृत्त्यर्थ'मिति, कथमिदं विज्ञायते वाक्यस्य निवृत्त्यर्थं वाक्यनिवृत्त्यर्थमिति। आहोस्विद् वाक्ये निवृत्त्यर्थं वाक्यनिवृत्त्यर्थमिति?

इसी तरह 'तद्धितनिवृत्त्यर्थम्' में 'तद्धितस्य निवृत्त्यर्थं तद्धितनिवृत्त्यर्थम्' ऐसा षष्ठीतत्पुरुष समास मानकर समुदाय की वीप्सा इष्ट है, अथवा 'तद्धिते निवृत्त्यर्थं तद्धितनिवृत्त्यर्थम्' ऐसा सप्तमीतत्पुरुष मानते हुए अवयव की वीप्सा मानेंगे? यदि षष्ठीतत्पुरुष मानेंगे तो 'द्विपदिका त्रिपदिका' ये तद्धितान्त होने से द्वित्व निवृत्त हो जायेंगे, अर्थात् वीप्सा होने पर भी तद्धितान्त समुदाय को द्वित्व नहीं होगा, जो इष्ट है। षष्ठीतत्पुरुष में 'द्विपदिकाभ्यां त्रिपदिकाभ्यां माषशः कार्षापणशः' स्थल में अवयव द्वि, त्रि पद, माष व कार्षापण को वीप्सा में द्वित्व प्राप्त होगा जो दोष है। 'माषशः कार्षापणशः' यहाँ पर माष व कार्षापण "प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्" १.१.६२ सूत्र से पदसंज्ञक हैं, अतः पदत्व होने से इनका द्वित्व प्राप्त हो गया जो इष्ट नहीं है। यदि 'तद्धिते निवृत्त्यर्थं तद्धितनिवृत्त्यर्थम्' ऐसा सप्तमीसमास मानेंगे तो अवयवार्थ को वीप्सा प्राप्त होगी। द्विपदिका, त्रिपदिका एवम् अपि='द्विपदिकाभ्याम्, त्रिपदिकाभ्याम्' इत्यादि स्थलीय तद्धितान्त में अवयव को प्राप्त द्विर्वचन पदाधिकार से निवृत्त हो' ऐसा अर्थ आयेगा।

किं चातः? यदि विज्ञायते—वाक्यस्य निवृत्त्यर्थं वाक्यनिवृत्त्यर्थमिति, यद्धि वाक्यं वीप्सायुक्तं; भवितव्यमेव द्विर्वचनेन। अथाऽप्यवयवः, भवत्येव।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तदेतत्क्रियमाणेऽपि पदग्रहणे आलूनविशीर्णं भवति, किं चित्सङ्गृहीतं किंचिदसङ्गृहीतं च * सगतिग्रहणं च * सगतिग्रहणञ्च कर्त्तव्यम्। प्रपचति-प्रपचति, प्रकरोति-प्रकरोतीति।

तब इसी तरह "वाक्यनिवृत्त्यर्थम्" यहाँ पर भी शङ्का है। यहाँ कैसे जाना जाये कि "वाक्यस्य निवृत्त्यर्थं वाक्यनिवृत्त्यर्थम्" ऐसा षष्ठीतत्पुरुष मान कर वाक्य की वीप्सा का निषेध है, अथवा 'वाक्ये निवृत्त्यर्थं वाक्यनिवृत्त्यर्थम्' ऐसा सप्तमीतत्पुरुष मानकर वाक्य के अवयव की वीप्सा का निषेध है? इस तरह के सन्देह में हेतु क्या है? यदि 'वाक्यस्य निवृत्त्यर्थं वाक्यनिवृत्त्यर्थम्' ऐसा मानेंगे तो वाक्य की वीप्सा[1] होगी; एवं वाक्य को द्वित्व होगा। यदि 'वाक्ये निवृत्त्यर्थं वाक्यनिवृत्त्यर्थम्' ऐसा मानेंगे तो वाक्यघटक अवयव की वीप्सा का निषेध होगा जो इष्ट नहीं है। अपितु वाक्य का अवयव पद की वीप्सा होती है—'ग्रामे पानीयम्', इस वाक्य में यदि 'ग्रामे' की वीप्सा होगी तो ग्रामपद का द्विर्वचन होगा—'ग्रामे ग्रामे पानीयम्', यदि 'पानीयम्' पद की वीप्सा होगी तो 'पानीयम्' पद को द्विर्वचन होगा—'ग्रामे पानीयं पानीयम्'। इस तरह पदाधिकार करने पर भी दोष बना हुआ है। अर्थात् किसी भी तरह अतिव्याप्ति नहीं हटा पा रहे हैं। कहीं पर अलक्ष्य का संग्रह तो कहीं पर लक्ष्य का असंग्रह, हो रहा है, इस तरह अतिव्याप्ति दूर नहीं हो सकी। 'भक्षितेऽपि लसुने न व्याधिशान्तिः जातिरपि नष्टा' की स्थिति हो गयी। अथ च पदाधिकार करने पर सगतिग्रहण अधिक करना होगा। पदसंज्ञा सगति की नहीं होती है। सुबन्त एवं तिङन्त पद है। धातु से तिङ् आया है। क्रियावाचकत्व होकर भ्वादिगणपठित की ही धातुसंज्ञा होती है। प्रपचति, प्रकरोति में डुपचष् पाके तथा डुकृञ् करणे ही धातु है; अतः पचति, करोति यहि पद होगा 'प्रपचति, प्रकरोति' नहीं; अतः इसकी वीप्सा के लिए सगतिग्रहण अलग से करना होगा जो गौरव है। सगतिग्रहण करने पर वीप्सा में 'प्रपचति' को द्वित्व होकर 'प्रपचति-प्रपचति' तथा प्रकरोति को द्वित्व होकर 'प्रकरोति-प्रकरोति' ऐसा इष्ट रूप बनता है।

किं पुनः कारणं न सिद्ध्यति? न हि सगतिकं पदं भवति। समासनिवृत्त्यर्थेन तावन्नार्थः पदग्रहणेन। समासेनोक्तत्वाद् वीप्साया द्विर्वचनं

---

1. वाक्य की वीप्सा नहीं होती है, अतः मूल में वीप्सा पद उपलक्षणविधया द्विर्वचन का बोध कराता है। इसलिए नित्यता में वाक्य का द्विर्वचन होता ही है—प्रपचति-प्रपचति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न भविष्यति। किं च भोः 'समासो वीप्सायाम्' इत्युच्यते?

तो क्या कारण है कि पदाधिकार से प्रपचति, व प्रकरोति की वीप्सा सिद्ध नहीं हो पा रही है? वह इसलिए कि सगति पद नहीं होता है।

पदाधिकार का प्रयोजन जो समासनिवृत्त्यर्थ दिया था, वह उचित नहीं है। समास के द्वारा वीप्सा उक्त है; अतः 'उक्तार्थानामप्रयोगः' इस न्याय से उसी वीप्सा को कहने के लिए पुनः द्विर्वचन नहीं होगा। 'सप्तपर्णः' यह रूढि शब्द परिगृहीत अवयवार्थविशेष वृक्षविशेष में है। तो क्या 'वीप्सा में समास हो', ऐसा कहेंगे? वीप्सा में समास नहीं कहेंगे, परन्तु 'वीप्सा में समास होता है', इस अर्थ की उपस्थिति स्वयं हो जायेगी? वचनमात्र से शब्द अर्थ को नहीं कहता है, अपितु अपने सामर्थ्य से अर्थ को कहता है। 'सप्तपर्णः' का विगृहीत वाक्य का अर्थ 'सप्त सप्त पर्णानि अस्य' ऐसा है। इस वाक्य में द्विर्वचन वीप्सा को कहता है, परन्तु समस्त पद 'सप्तपर्णः' में वीप्सा नहीं है, अतः समस्त पद में वीप्सा अर्थ का बोध कराने के लिए द्विर्वचन की प्राप्ति हो गयी। इसका विरोध करने के लिए 'नित्यवीप्सयोरसमासे' ऐसा वाक्य पढना होगा। हम ऐसा नहीं कहते कि 'वीप्सा में समास हो'। परन्तु जो रूढि शब्द है, उससे वीप्सा अर्थ का शब्दसामर्थ्य से आक्षेप हो जायेगा। जैसे देववाचक शब्द है—'त्रिदशाः'। यहाँ पर आक्षेप से सुजर्थ का लाभ रूढिशब्दमहिम्ना ही हो जा रहा है, पुनः उसी अर्थ को कहने के लिए यहाँ पर सुच् प्रत्यय नहीं होता है।

न खलु वीप्सायामित्युच्यते गम्यते तु सोऽर्थः। ततः किम्? उक्तः समासेनेति कृत्वा द्विर्वचनं न भविष्यति। यत्र च समासेनाऽनुक्ता वीप्सा भवति तत्र द्विर्वचनम्। तद्यथा—एकैकविचिताः अन्योऽन्यसहाया इति।

पूर्वोक्त कथन से प्रकृत में क्या आया? पूर्वोक्त कथन से प्रकृत में यह आया कि जहाँ समास से वीप्सा उक्त है उसी को बताने के लिए पुनः द्विर्वचन नहीं होगा। जैसे—'सप्तपर्णः'। च=परन्तु जहाँ पर समास में वीप्सा वाच्य नहीं है वहाँ पर वीप्सा अर्थ को बताने के लिए द्विर्वचन होगा। जैसे—'एकैकविचिताः, अन्योऽन्यसहायाः'। यहाँ पर समास से वीप्सा वाच्य नहीं है, अतः वीप्सा अर्थ को बताने के लिए एकैक, अन्योऽन्य द्विर्वचन किया है।

अथवा यदत्र वीप्सायुक्तं नादः प्रयुज्यते। किं पुनस्तत्? पर्वणि पर्वणि सप्त पर्णान्यस्य, पङ्क्तौ पङ्क्तावष्टौ पदान्यस्येति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथवा प्रकृत में जो वीप्सायुक्त है, उसका प्रयोग नहीं हो रहा है। यहाँ वीप्सायुक्त क्या है? यहाँ वीप्सा युक्त 'पर्वणि पर्वणि सप्त पर्णान्यस्य' तथा 'पङ्क्तौ पङ्क्तावष्टौ पदान्यस्य' है। उसका प्रयोग नहीं किया जा रहा है। इससे प्रकृत में यह आया कि वाक्य में 'सप्त सप्त पर्णान्यस्य' इस द्विर्वचन से वीप्सा गम्य है। परन्तु 'सप्तपर्णः' इस समास से वीप्सा गम्य नहीं होने के कारण समास में द्विर्वचन की प्राप्ति नहीं होने से 'समासनिवृत्त्यर्थं पदग्रहणम्' ऐसा जो कहा था, वह उचित नहीं है।

तद्धितनिवृत्त्यर्थेन चाऽपि नार्थः पदग्रहणेन। तद्धितेनोक्तत्वाद् वीप्साया द्विर्वचनं न भविष्यति। तद्धितः खल्वपि 'वीप्सायाम्' इत्युच्यते। यत्र च तद्धितेनाऽनुक्ता वीप्सा भवति तत्र द्विर्वचनम्। तद्यथा—एकैकशो ददातीति।

पदग्रहण से तद्धित की निवृत्ति भी प्रयोजन नहीं है। तद्धित से जब वीप्सा उक्त होगी तो पुनः उसी वीप्सा को कहने के लिए द्विर्वचन नहीं होगा। वीप्सा अर्थ में भी तद्धित प्रत्यय होता है। जहाँ तद्धित से वीप्सा उक्त नहीं है, वहाँ द्विर्वचन होगा। जैसे—एकैकशो ददाति। यहाँ तद्धित से वीप्सा उक्त नहीं है, अतः वीप्सा अर्थ में एक को द्वित्व किया गया है। अल्पार्थक एक शब्द को वीप्सा में द्वित्व है तथा उससे 'बह्वल्पार्थाच्छस् वक्तव्यम्' वा. ५.४.४२ से शस् प्रत्यय है।

वाक्यनिवृत्त्यर्थेन चापि नार्थः पदग्रहणेन। पदद्विर्वचनेनोक्तत्वाद् वीप्साया वाक्यद्विर्वचनं न भविष्यति। यत्र च पदद्विर्वचनेनाऽनुक्ता वीप्सा भवति तत्र द्विर्वचनम्। तद्यथा—प्रपचति-प्रपचति, प्रकरोति-प्रकरोति।

पदग्रहण से वाक्य की वीप्सा की निवृत्ति भी प्रयोजन नहीं है। पदद्विर्वचन से वीप्सा उक्त हो गयी, अतः वाक्य को द्विर्वचन नहीं होगा। जैसे—'ग्रामे-ग्रामे पानीयम्, ग्रामे पानीयं पानीयम्' इत्यादि। अब यहाँ शङ्का होती है कि जहाँ आधार वीप्सा का द्विर्वचन हुआ वहाँ आधेय की वीप्सा क्यों नहीं है? अर्थात् 'ग्रामे ग्रामे पानीयं पानीयम्' ऐसा क्यों न हो? तो यहाँ यह कहा जायेगा कि आधार वीप्सा से आधेय वीप्सा का आक्षेप होगा, अतः जहाँ आधार वीप्सा है वहाँ आधेयवाची पद का द्विर्वचन नहीं होगा। एवं जहाँ आधेयवीप्सा में द्विर्वचन है वहाँ आधेयवाचक पद से आधारवीप्सा का आक्षेप हो जायेगा, अतः आधेयवीप्सा स्थल में आधारवाचक पद का द्विर्वचन नहीं होता है। जहाँ पर पदद्विर्वचन से वीप्सा अनुक्त है, वहाँ द्विर्वचन होता है। जैसे—'प्रपचति-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रपचति, प्रपठति-प्रपठति'। अट् आदि की व्यवस्था के लिए धातु तथा उपसर्ग की पृथक् कल्पना की गयी है। वस्तुतः यहाँ पर उपसर्गसहित धातु क्रियाविशेष का वाचक है, अतः नित्यताप्रतिपादन करने के लिए पदसमुदाय का द्विर्वचन किया गया है। इस तरह पदग्रहण का जो तीन प्रयोजन बताया था उन सबका सिद्धान्ती ने खण्डन कर दिया।

*** उत्तरार्थन्तु * उत्तरार्थं तर्हि पदग्रहणं कर्तव्यम्। 'तस्य परमामेडितम्' 'अनुदात्तं चे'ति—वक्ष्यति। तत्र पदद्विर्वचने यथा स्याद् वाक्यद्विर्वचने मा भूद्—मह्यं ग्रहीष्यति-मह्यं ग्रहीष्यति, मामभिव्याहरिष्यतिमामभिव्याहरिष्यतीति।**

तब तो उत्तरसूत्रों में अनुवर्तन के लिए पदाधिकार करना चाहिए। आचार्य आगे 'तस्य परमाम्रेडितम्' ८.१.२ तथा 'अनुदात्तं च' ८.१.३ ऐसा सूत्र पढेंगे। वहाँ 'पदस्य' का अनुवर्तन होगा। अर्थ होगा—'द्विरुक्त के पर पद की आम्रेडित संज्ञा हो, तथा द्विरुक्त में पर पद का अनुदात्त स्वर हो'। इस तरह उत्तर के सूत्रों में पदाधिकार करने से पद को द्विर्वचन हो तथा उसी द्विर्वचन में उत्तरपद की आम्रेडित संज्ञा तथा उत्तरपद को अनुदात्त स्वर हो।

जहाँ वाक्य को द्विवर्चन है वहाँ उत्तरपद वाक्य की आम्रेडित संज्ञा नहीं हो तथा द्विर्वचनस्थलीय उत्तर वाक्य का अनुदात्त स्वर नहीं हो। जैसे—'मह्यं ग्रहीष्यति-मह्यं ग्रहीष्यति, मामभिव्याहरिष्यतिमामभिव्याहरिष्यति'। यहाँ पर वाक्य वीप्सा है तथा वीप्सा में वाक्य का द्विर्वचन है। यहाँ उत्तरभाग की आम्रेडित संज्ञा नहीं है तथा अनुदात्त स्वर भी उत्तरभाग को नहीं होता है। यहाँ पर 'आबोधे च' ८.१.१० सूत्र से वाक्य का द्विर्वचन है।

कथं चाऽत्र द्विर्वचनम्? छान्दसत्वात्। स्वरोऽपि तर्हि छान्दसत्वादेव न भविष्यति। उत्तरार्थमेव तर्हि पदग्रहणं कर्तव्यं, 'पदस्य' 'पदा'दिति वक्ष्यति' तत्र पदग्रहणं न कर्तव्यं भवति।

अत्र='मह्यं ग्रहीष्यति-मह्यं ग्रहीष्यतिं', एवं 'मामभिव्याहरिष्यतिमामभिव्याहरिष्यति' स्थल में वाक्य का द्विर्वचन कैसे हुआ है? उत्तर देते हैं—**छान्दसत्वादिति**। अर्थात् यह छान्दस प्रयोग है। छन्दः में जैसा दृष्ट है वैसी ही विधि होगी। वहाँ लक्षण के अनुसार प्रयोग नहीं होता है; अपितु प्रयोग के अनुसार लक्षण होता है।

यदि उपर्युक्त स्थल में छान्दसत्वात् द्विर्वचन है तो उत्तरभाग को 'अनुदात्तं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

च' ८.१.३ सूत्र से अनुदात्त स्वर के अभाव में छान्दसत्वात् ही प्रकृतिस्वर भी कर लेंगे। इस तरह प्रकृत में पदग्रहण का कोई प्रयोजन नहीं होने से उत्तरार्थक ही पद ग्रहण करना चाहिए। अर्थात् 'सर्वस्य' इस षष्ठ्यन्त पद को हटा कर उसके स्थान में 'पदस्य' ऐसा पढेंगे। इस पदाधिकार से लाभ यह होगा कि मण्डूकप्लुतिन्याय से द्विर्वचनप्रकरण का उल्लङ्घन कर आगे के सूत्रों में पदग्रहण उपस्थित होगा। इससे 'पदस्य' ८.१.१६ व 'पदात्' ८.१.१७ सूत्र में पदग्रहण नहीं करना पडेगा जिससे लाघव है। 'उत्तरार्थमेव' में एवकार से इस सूत्र में पदग्रहण का प्रयोजन व्यावर्त्त्य है।

सर्वग्रहणमपि तर्ह्युत्तरार्थम्। 'अनुदात्तं सर्वमपदादा'विति वक्ष्यति। तत् सर्वग्रहणं न कर्त्तव्यं भवति। उभयं क्रियते तत्रैव।

तब तो 'सर्वस्य द्वे' सूत्र में सर्वग्रहण को भी उत्तरार्थक ही मानना चाहिए। आगे आचार्य 'अनुदात्तं सर्वमपदादौ' यह सूत्र पढेंगे। 'सर्वस्य द्वे' सूत्र में 'सर्वस्य' इस षष्ठ्यन्त पद का अनुवर्तन करके उसका प्रथमान्त 'सर्वम्' विपरिणाम कर लेंगे, इससे 'अनुदात्तं सर्वमपदादौ' ८.१.१८ सूत्र में सर्वग्रहण नहीं करना पडेगा।

इहार्थमेव तर्हि षष्ठीनिर्देशार्थमन्यतरत् कर्त्तव्यं, षष्ठीनिर्दिष्टस्य स्थाने द्विर्वचनं यथा स्याद् द्विःप्रयोगो मा भूदिति।

यदि उत्तरार्थक सर्वग्रहण है तो 'सर्वस्य द्वे' इन दोनों पदों को 'अनुदात्तं सर्वमपदादौ' ८.१.१८ के देश में ही पढना चाहिए। इससे युष्मद् अस्मद् इत्युभय के सम्पूर्ण को अनुदात्त स्वर हो जायेगा तथा पृथक् एक सूत्र 'सर्वस्य द्वे' बनाने का गौरव भी नहीं होगा। इससे उत्तरार्थ भी सर्वग्रहण का होना खण्डित हो गया।

षष्ठी का निर्देश हो, इसके लिए यहीं पर सर्वग्रहण अथवा पदग्रहण जो मरजी हो कर लेना चाहिए। षष्ठीनिर्देश का फल यह है कि 'सर्वस्य' अथवा 'पदस्य' इस षष्ठीनिर्देश से 'षष्ठी स्थानेयोगा' १.१.४९ यह सूत्र उपस्थित होगा। इससे षष्ठीनिर्दिष्ट के ही स्थान में द्विर्वचन हो, दो बार प्रयोग न हो, यह अर्थ लब्ध होने से 'षष्ठ्यन्तनिर्दिष्ट के स्थान पर द्विर्वचन आदेश हो, एक ही पद की दो वार आवृत्ति न हो' यह आया।

किञ्च स्यात्? आम्पचसि पचंसि देवदत्ता३। 'आम एकान्तर-मामन्त्रितमनन्तिक' इत्येकान्तरता न स्यात्। इह च 'पौनःपुन्यं' 'पौनःपुनिक,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इति—अप्रातिपदिकत्वात् तद्धितोत्पत्तिर्न स्यात्।

यदि पद की द्विरावृत्ति होगी तो उससे क्या हानि होगी? उससे हानि यह होगी कि 'आम्पचसि पचंसि देवदत्ता3' यहाँ पर एकान्तरता नहीं हो सकेगी। 'आम् से पर में एक पद का व्यवधानं होने पर आमन्त्रित को अनुदात्त न हो' यह 'आम एकान्तरमामन्त्रितमनन्तिके' ८.१.५५ इस सूत्र का अर्थ है। 'आम्पचसि पचंसि देवदत्ता3!' इस स्थल में एक पचसि पद के स्थान पर द्विर्वचन आदेश 'पचसिपचसि' ऐसा है। अब इसको 'स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ' १.१.५६ सूत्र में स्थानिवद्भाव कर देंगे। इस तरह द्विर्वचन आदेश का स्थानी पचसि मिल जायेगा तथा आम् से पर में एक ही पद पचसि का व्यवधान होकर आमन्त्रित देवदत्ता3 पद मिल रहा है। इससे **एकान्तरता**='एकम्=पदम्, अन्तरम्=व्यवधायकं यस्य तद् एकान्तरम्' अर्थात् एकपद का व्यवधान होने से आमन्त्रितसंज्ञक देवदत्ता3 को अनुदात्त का निषेध होता है। यहाँ पर आम् पद निपात होने से आद्युदात्त है। पूर्व पचसि पद का 'तिङ्ङतिङः' ८.१.२८ से निघात है। द्वितीय आमन्त्रितसंज्ञक पचसि पद को 'अनुदात्तं च' ८.२.३ सूत्र से निघात प्राप्त होने पर उसका निषेध हो गया तथा उसकी 'आमन्त्रितस्य च' ८.१.१९, इस सूत्र से आद्युदात्त हो गया। एवं प्लुत को भी आद्युदात्त हो गया।

'पौनःपुन्यम्' यहाँ पर 'पुनःपुनः भविता' अर्थ में विद्यमान पुनःपुनः शब्द से भाव अर्थ में आकृतिगण मानकर 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्य कर्मणि च' ५.१.१२४ सूत्र से ष्यञ् प्रत्यय हुआ है। यहाँ पर पुनः शब्द के स्थान पर द्विर्वचन आदेश हुआ है। उसको स्थानिवद्भाव करके स्थानिवृत्ति प्रातिपदिक को आदेश में लाकर प्रातिपदिक से तद्धित प्रत्यय होता है। अन्यथा द्विरावृत्ति करने से तद्धितोत्पत्ति संभव नहीं थी। इसी तरह 'पुनःपुनः भवः' इस अर्थ में 'कालाट्ठञ् ४.३.११ सूत्र से प्रातिपदिक से ही ठञ् प्रत्यय आता है। स्थानिवृत्ति प्रतिपादिक को आदेश 'पुनःपुनः' में लाकर तद्धितोत्पत्ति होती है। यदि पुनः शब्द को आदेश न करके आवृत्ति करते तो प्रातिपदिक नहीं होने से ठञ् प्रत्यय नहीं हो सकेगा। यहाँ तद्धित ठञ् हो सके, इसके लिए द्विर्वचन आदेश करना चाहिए।

यदि तर्हि स्थाने द्विर्वचनं राजा-राजा, वाग्वाक्,-पदेस्येति नलोपादीनि न सिद्धयन्ति। इदमिह सम्प्रधार्य—द्विर्वचनं क्रियतां नलोपादीनीति, किमत्र कर्त्तव्यम्? परत्वान्नलोपादीनि। पूर्वत्राऽसिद्धे नलोपादीनि। सिद्धाऽसिद्धयोश्च

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नास्ति सम्प्रधारणा। एवं तर्हि—'पूर्वत्राऽसिद्धीयमद्विर्वचन' इति वक्ष्यामि। तच्चावश्यं वक्तव्यम्। किं प्रयोजनम्? विभाषिताः प्रयोजयन्ति द्रोग्धा-द्रोग्धा। द्रोढा-द्रोढेति। इह तर्हि बिसंबिसं मुसलंमुसलम्, 'आदेशप्रत्यययो'रिति षत्वं प्राप्नोति। 'आदेशो यः सकारः' 'प्रत्ययो यः सकार' इत्येवमेतद्विज्ञायते।

यदि सम्पूर्ण के स्थान में द्विर्वचन आदेश मानेंगे तो 'राजा-राजा' इस द्विर्वचन आदेश में पूर्व राजन्घटक न्कार का लोप नहीं होगा। स्थानिवृत्ति पदान्तत्व स्थानिवद्भाव के द्वारा उत्तर राजन्घटक न्कार में ही होगा। इस तरह पूर्व राजन्-घटक न्कार के पदान्तत्व नहीं होने से उसका लोप नहीं हो सकेगा जिससे राजा-राजा यह इष्ट रूप सिद्ध नहीं हो सकेगा। एवम् इस पक्ष में वाग्वाक् इस द्विर्वचन आदेशस्थलीय पूर्व वाक्घटक ककार को पदान्त जश्त्व नहीं हो सकेगा। वह इस तरह की स्थानिवद्भाव के द्वारा वाग्-वृत्ति पदान्तत्व आदिष्ट उत्तर वाक् में जायेगा। पूर्व वाक् में पदान्तत्व नहीं होने से वाग्वृत्ति ककार को जश्त्व आदेश होकर 'वाग्वाक्' यह इष्ट रूप सिद्ध नहीं हो सकेगा।

अच्छा तो यहाँ यह विचारणीय है कि नलोप करके राजा इस पद को द्वित्व कर राजा-राजा यह इष्टरूप समझ लें, अथवा द्विर्वचन करके तब नलोप करें? इसी तरह जश्त्वविधान कर 'वाग्' इस पद को द्वित्व करें अथवा 'वाक्' पद को द्वित्व आदेश कर पूर्व वाक्पदघटक क्कार को जश्त्व करें? यहाँ क्या करना चाहिए?

उत्तर देते हैं—**परत्वान्नलोपः**। राजन् स्थल में द्विर्वचन की अपेक्षा नलोप पर है, अतः परत्वात् नलोप द्विर्वचन को बाध लेगा। इस तरह नलोप होने पर राजा पद को द्विर्वचन होगा। एवं वाक् पद में द्विर्वचन की अपेक्षा पदान्त जश्त्व पर है; अतः परत्वात् पदान्त जश्त्व द्विर्वचन को बाध लेगा। 'वाग्' ऐसा जश्त्व होकर वाग् पद को द्विर्वचन होगा। इस तरह उक्त दोष नहीं है। यदि कहा जाये कि 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' ८.२.७ तथा 'झलां जशोऽन्ते' ८.२.३९ त्रिपादी है तथा द्वित्वप्रकरण सपादसप्ताध्यायी है। सपादसप्ताध्यायी की दृष्टि में त्रिपादी अप्रसिद्ध रहेगा; अतः द्विर्वचन ही पहले होगा। पुनः उक्त स्थलीय नलोप व जश्त्व की समस्या तद्वत् विद्यमान है तो यह प्रसङ्ग होने पर 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' ८.२.१ सूत्र प्रवृत्त नहीं होता है। इस तरह द्विर्वचन की अपेक्षा परत्वात् नलोप और जश्त्व को अन्तरङ्ग होने से बलवान् माना जाये तो भाष्यकार ने इस उदाहरण में 'असिद्धं बहिरमिन्तरङ्गे' (परि. ५०) न्याय का आश्रयण नहीं किया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तो क्या हम द्विर्वचन से भिन्न प्रकरण में 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' ८.२.१ को कहेंगे? जी हाँ, द्विर्वचनप्रकरण से भिन्न में ही 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' प्रवृत्त होता है यह अवश्य कहना चाहिए। 'पूर्वत्राऽसिद्धीयमद्विर्वचने' ऐसा पढने का क्या प्रयोजन है? प्रयोजन यह है कि सम्पूर्ण प्रयोग एक ही जैसे नहीं है। कुछ नित्य हैं तो कुछ विकल्प। जैसे—'द्रोग्धा-द्रोग्धा। द्रोढा-द्रोढा'। यहाँ पर 'दादेर्धातोर्घः' ८.२.३२ सूत्र से द्रुह् धातु के हकार को घत्व विकल्प से है। उक्त सूत्र त्रिपादी है। परत्वात् घत्व होकर द्विर्वचन होने से 'द्रोग्धा-द्रोग्धा' रूप बनता है। एवं 'हो ढः' ८.२.३१ सूत्र से ढत्वविधान भी त्रिपादी है। परत्वात् ढत्व होकर द्विर्वचन होने से 'द्रोढा-द्रोढा' यह इष्ट रूप बनता है। अन्यथा यहाँ पर यदि त्रिपादी को असिद्ध करके पहले द्वित्व करेंगे तो धातु को ही द्वित्व होगा, घत्वविशिष्ट तथा ढत्वविशिष्ट को नहीं, अतः इसकी सिद्धि के लिए 'पूर्वत्रासिद्धीयमद्विर्वचने' ऐसा अवश्य पढना चाहिए।

परन्तु 'पूर्वत्राऽसिद्धीयमद्विर्वचन' इस पक्ष में दोष भी है। जैसे—बिसंबिसम्। मुसलंमुसलम्। यहाँ बिसम् को द्विर्वचन बिसंबिसम् तथा मुसलम् को द्विर्वचन 'मुसलंमुसलम्' है। यदि द्विर्वचन के विषय में 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' ८.२.१ को नहीं मानेंगे तो उक्त स्थल में आदेश के सकार को 'आदेशप्रत्यययोः' ८.३.५९ सूत्र से मूर्धन्यादेश होने लगेगा। उक्त सूत्र की प्रवृत्ति इण् और कवर्ग से पर में 'आदेश जो सकार' तथा 'प्रत्यय जो सकार'[1] उसी में होती है। इस तरह 'बिसंबिसम् मुसलमुसलम्' स्थल में आदेश सकार इण् से परे में है, उसको मूर्धन्यादेश प्राप्त होगा।

इह तर्हि नृभिर्नृभिः 'रषाभ्यां नो णः समानपद' इति णत्वं प्राप्नोति। 'समानपद' इत्युच्यते, समानपदमेव यन्नित्यं, न चैतन्नित्यं समानपदमेव। किं वक्तव्यमेतत्? न हि। कथमनुच्यमानं गंस्यते? समानग्रहणसामर्थ्यात्? यदि हि यत् समानं-चाऽसमानं च तत्र स्यात् समानग्रहणमनर्थकं स्यात्।

एवम् एक नृभिः पद के स्थान में जहाँ द्विर्वचन आदेश 'नृभिर्नृभिः' ऐसा होगा वहाँ आदेश में स्थानिवद्भाव करके समुदाय में समानपदत्व=एकपदत्व होने से 'रषाभ्यां नो णः समानपदे' ८.४.१ सूत्र से णत्व प्राप्त होगा। इस

---

१. यहाँ पर भगवान् भाष्यकार ने 'प्रत्ययो यः सकारः' ऐसा आदेश के अनुरोध से कहा है। वस्तुतः 'आदेशप्रत्यययोः' यह सूत्र प्रत्यय का अवयव सकार में ही प्रवृत्त होता है, जिसको आगे बताया जायेगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दोष का निराकरण करते हैं—**समानपदेति**। उक्त सूत्र समान पद में णत्व करता है। जो नित्य ही समान पद है, वहीं पर रेफ और षकार से पर में नकार को णत्व होगा। जैसे—जीर्णम्, यूष्णः। यहाँ पर नित्य **समानपदत्व**= एकपदत्व नहीं है, अतः 'नृभिर्नृभिः' यहाँ पर णत्व नहीं हुआ।

दूसरी बात यह भी है कि यहाँ पर स्थानिवद्भाव से आदेश में स्थानिवृत्ति धर्म समानपदत्व का अतिदेश किया जा रहा है, जबकि आदेश में भिन्नपदत्व स्वाश्रयसिद्ध है। उस स्वाश्रयसिद्ध भिन्नपदत्व को लेकर णत्व का निषेध हो जायेगा। तो क्या 'रषाभ्यां नो णः समानपदे' ८.४.१ इस सूत्र में नित्यग्रहण करना चाहिए? नहीं, उक्त सूत्र को 'रषाभ्यां नो णः पदे' ८.४.१ ऐसा ही पढना चाहिए। ऐसा सूत्र करने पर अपदस्थ निमित्त और निमित्ती का होना असम्भव है तथा गुण में संख्या विवक्षित होगी, इस तरह 'पदे' ऐसा कहने से ही संख्या विविक्षित होने से एकपदस्थ अर्थ का लाभ हो गया। फिर एकपदत्व अर्थ का लाभ हो जाने से सूत्र में समानग्रहण व्यर्थ पडा, वह व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा—'यन्नित्यं समानपदमेव न कदाचिद् असमानपदं तत्रैव रषाभ्यां परस्य नस्य णत्वं स्यात्'। 'नृभिर्नृभिः' यहाँ पर द्विर्वचन आदेश हो जाने से असमानपदत्व हो गया, अतः उक्त सूत्र से णत्व की प्रवृत्ति नहीं है। यदि उक्त सूत्र समान असमान उभय में प्रवृत्त होगा तो समानग्रहण व्यर्थ होने लगेगा।

अथवा पुनरस्तु द्विःप्रयोगो द्विर्वचनम्। ननु चोक्तम्—'आम् पचसि पचसि देवदेत्ता3। आम एकान्तरमामन्त्रितमन्तिक इत्येकान्तरता न प्राप्नोती'ति। नैष दोषः—सुप्तिङ्भ्यां पदं विशेषयिष्यामः। 'सुप्तिङन्तं पदम्'। 'यस्मात् सुप्तिङ्विधिस्तदादि सुप्तिङन्तं च पदम्। ननु चैकैकस्मादेवात्र सुप्तिङ्विधिः। समुदाये या वाक्यपरिसमाप्तिस्तया पदसंज्ञा। कुत एतत्? * शास्त्राऽहानेः * एवं हि शास्त्रमहीनं भवति।

अथवा द्विर्वचन आदेश न मान कर द्विःप्रयोग द्विर्वचन ही मानिये। 'द्विःप्रयोगो द्विर्वचनम्' इस पक्ष में जो दोष दिया था कि 'आम्पचसि पचसि देवदत्त3!' यहाँ पर 'आम् एकान्तरमामन्त्रितमनन्तिके' ८.१.५५ सूत्र से स्वर होने में **एकान्तरता**=एकपदत्व वाञ्छित है, वह नहीं हो सकेगा, यह कोई दोष नहीं है। इस दोष की निवृत्ति के लिए तिङ् से पद को विशेषित करेंगे। अर्थरूप सामान्य होने से वही पच् धातु जो पूर्व पचसि में है, पर पचसि में भी है; एवं वही तिङ् जो पूर्व पचसि में है, वह पर पचसि में भी है। जो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्व में विहित तिङ् है, वही पर से भी विहित है। पूर्व सूत्र से तदादिग्रहण अनुवर्तन करेंगे। इससे 'पचसि पचसि' यहाँ पर समुदाय पच् शब्दादिपदसंज्ञक होगा। इस तरह एकान्तरत्व सिद्ध हो गया। यदि आप यह कहें कि 'आम् पचसि पचसि देवदत्ता3!' यहाँ पर प्रत्येक से तिङ् विधि है। 'सुप्तिङन्तं पदम्' १.४.१४ से प्रत्येक की पदसंज्ञा होगी। इस तरह 'पचसि-पचसि' यहाँ पर **एकान्तरता**=एकपदत्व नहीं होने से उक्त स्थल में वाञ्छित स्वर सिद्ध नहीं हो सकेगा, तो इस का उत्तर देते हैं—**समुदायेति**। समुदाय में वाक्यपरिसमाप्ति देखी जाती है। जैसे 'पपाच' यहाँ पर 'पच् लिट्' इस अवस्था में 'एकाचो द्वे प्रथमस्य' ६.१.१ सूत्र से प्रथम एकाच् को द्वित्व प्राप्त है। यहाँ पर समुदाय भी एकाच्क है तथा अवयव भी एकाच्क है। एकाच्क अवयव को भी द्वित्व हो सकता था परन्तु वाक्यापरिसमाप्तिन्याय से समुदाय एकाच्क को ही द्वित्व होता है, अवयव एकाच्क को नहीं। इसी तरह 'पचसि पचसि' यहाँ पर यद्यपि प्रत्येक अवयव में पदत्व है तथा समुदाय को भी पदसंज्ञा प्राप्त है। परन्तु वाक्यापरिसमाप्तिन्याय से समुदाय को ही एकपदत्व होगा, अवयव को पृथक् पदत्व नहीं।

'वाक्यापरिसमाप्तिन्याय से समुदाय को एकपदत्व होगा' यह बात कहाँ से आयी? यदि वाक्यापरिसमाप्तिन्याय से समुदाय की पदसंज्ञा न मान कर समुदाय में अवयव की पदसंज्ञा करेंगे तो इस स्थिति में समुदाय की पदसंज्ञा का त्याग हो जाने से समुदाय की पदसंज्ञा बताने वाले शास्त्र व्यर्थ हो जायेंगे। दूसरा दोष यह भी होगा कि 'सुप्तिङन्तं पदम्' १.४.१४ सूत्र में पूर्वसूत्र 'यस्मात् प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम्' १.४.१३ से 'तदादि विधिः' का अनुवर्तन होता है। सूत्रार्थ है—'सुबन्त तदादि तथा तिङन्त तदादि पदसंज्ञक हों'। समुदाय की पदसंज्ञा का त्याग कर देने से तदादिग्रहण की अनुवृत्ति व्यर्थ हो जायेगी, अतः वाक्यापरिसमाप्तिन्याय से 'पचसि पचसि' स्थल में समुदाय को एकपदत्व ही माननी चाहिए, पृथक् पदत्व नहीं।

यदप्युच्यते—'इह पौनःपुन्यं पौनःपुनिकमिति, अप्रातिपदिकत्वात् तद्धितोत्पत्तिर्न प्राप्नोती'ति। मा भूदेवं 'समर्थादि'त्येवं भविष्यति। अथवाऽऽचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति—'भवत्येवंजातीयकेभ्यस्तद्धितोत्पत्ति'रिति, यदयं कस्कादिषु कौतस्कुतशब्दं पठति। {सर्वस्य द्वे}।

एवं जो आप ने द्विर्वचन आदेश न होने पर अन्य दोष दिया था 'पौनःपुन्यं, पौनःपुनिकम्' में प्रातिपदिक न होने से तद्धितोत्पत्ति नहीं हो सकेगी'।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसका भी समाधान है। इस स्थल में द्विर्वचन आदेश न करके द्विरुक्ति ही कीजिए। तद्धितोत्पत्ति समर्थसुबन्त से होगी। सूत्र है—'समर्थानां प्रथमाद्वा' ४.१.८२। समर्थसुबन्त से ही तद्धितोत्पत्ति होती है। कृतसन्धिकार्यत्व को समर्थ कहते हैं। अथवा इसको यों कहेंगे—'अप्रवृत्तिनित्यविध्युद्देश्यतावच्छेदकाऽनाक्रान्तत्वं समर्थत्वम्'। जो अप्रवृत्त नित्यविधि=नित्यशास्त्र का उद्देश्यतावच्छेदक से अनाक्रान्त हो, अर्थात् कोई भी नित्यविधि लगने में शेष न हो, उसे समर्थ कहते हैं। उससे तद्धितोत्पत्ति होती है। द्विरुक्ति होने पर पुनःपुनः भी वाक्यापरिसमाप्तिन्याय से पुनः ही है। उसकी प्रातिपदिक[1] संज्ञा तथा सुबुत्पत्ति होगी। समर्थ सुबन्त से तद्धितोत्पत्ति दो तरह की होती है—विभक्त्यन्त से तथा विभक्त्यन्त का अवयव प्रातिपदिक से। परन्तु विभक्त्यन्त से तद्धितोत्पत्तिपक्ष का आश्रयण ही भगवान् भाष्यकार करते हैं तथा इस पक्ष में कहते हैं—**समर्थादिति**। परन्तु वाक्यापरिसमाप्तिन्याय से पुनःपुनः यह समुदाय विभक्त्यन्त है तथा विभक्त्यन्त से यहाँ तद्धितोत्पत्ति होगी।

अथवा जैसे विभक्त्यन्त से तद्धितोत्पत्ति होती है वैसे द्विरुक्त, अप्रातिपदिक से भी ज्ञापक द्वारा तद्धितोत्पत्ति होगी। यहाँ ज्ञापक यह है कि 'कस्कादिषु च' ८.३.४८ सूत्र में आचार्य पाणिनि ने 'कौतस्कुतः' शब्द का पाठ किया है। 'कुतःकुत आगतः' इस अर्थ में 'कौतस्कुतः' है। कुतःकुतः शब्द के निपातन होने से अव्ययलक्षण त्यप् ('अव्ययात्तयप् ४.२.१०४) नहीं हो सकता है; अतः 'तत आगतः' ४.३.७४ सूत्र से अण् प्रत्यय हुआ है। यह अण् प्रत्यय प्रातिपदिक से ही है। {**सर्वस्य द्वे**}।

नित्यवीप्सयोः ८.१.४

इह कस्मान्न भवति—हिमवान्, वाडवः, पारियात्रः, समुद्र इति। 'नित्ये द्वे भवत' इति प्राप्नोति। नैष दोषः—अयं नित्यशब्दोऽस्त्येव कूटस्थेष्वविचालिषु भावेषु वर्त्तते। तद्यथा—नित्या द्यौः, नित्या पृथिवी, नित्यमाकाशमिति। अस्त्याभीक्ष्ण्ये वर्तते। तद्यथा नित्यप्रहसितो नित्यप्रजल्पित इति। तद्य आभीक्ष्ण्ये वर्तते तस्येदं ग्रहणम्।

---

१. यहाँ वाक्यापरिसमाप्तिन्याय से पुनःपुनः भी आनुपूर्वी समान होने से पुनः ही है, अतः द्विरुक्तिपक्ष में इसका प्रातिपदिकत्व भी प्राप्त है जिससे प्रातिपदिक मान कर भी तद्धित किया जा सकता है, यह भाष्य का आशय समझना चाहिए। इस तरह उभयथा तद्धितोत्पत्ति भाष्यकार का मत है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भाष्यकार यहाँ पर नित्य शब्द को कूटस्थ न मानकर प्रश्न कर रहे हैं। अनाश्रितप्रवृत्तिनिमित्त विशेष नित्य शब्द लेंगे, अथवा अङ्गीकृतसामान्यप्रवृत्तिनिमित्त? इन में चाहे नित्य शब्द का वाच्य अर्थ जो भी लीजिए—'हिमवान्, वाडवः पारियात्रः, समुद्रः' यहाँ पर नित्य अर्थ वाच्य होने पर द्वित्व प्राप्त है। निमित्त-विशेष अर्थ स्वीकार करने पर भी आभीक्ष्ण्य अर्थ ही स्वीकार किया जायेगा कूटस्थत्व नहीं, इसमें कोई प्रमाण नहीं है, ऐसा मानकर प्रश्न करते हैं—**इह कस्मान्नेति**। अथवा विना किसी अन्य पद की अपेक्षा किये ही नित्य शब्द कूटस्थ अर्थ को कहता है जो मुख्य है। परन्तु नित्य शब्द का आभीक्ष्ण्य अर्थ क्रिया पद के प्रयोग से ही होता है अतः यह गौण है। इस तरह 'गौणमुख्ययोः मुख्ये कार्यसम्प्रत्ययः' इस न्याय से प्रकृत में नित्य शब्द का मुख्य अर्थ कूटस्थत्व ही लिया जायेगा।

प्रयोक्ता को जिसमें उत्पाद व विनाश प्राप्त नहीं होता है उसे नित्य कहते हैं। यहाँ पर नित्य शब्द तथा उसका पर्याय 'नित्यं कौटिल्ये गतौ', ३.१.२३ 'ध्रुवमपायेऽपादानम्' १.४.२४ इत्यादि में द्विर्वचन को निपातन से समझा जा सकता है, अतः विशेष शब्दों को उद्धृत करते हैं—**हिमवानिति**। 'नित्य अर्थ में द्वित्व होता है' अतः उक्त को भी द्वित्व प्राप्त हो गया। हिमवान् आदि शब्दों के उच्चारणमात्र से ही किसी शब्द की अपेक्षा किये विना नित्य अर्थ की उपस्थिति होती है—नित्य हिमवान् इत्यादि, यहाँ द्वित्व होना चाहिए। यह कोई दोष नहीं है; क्योंकि नित्य शब्द का अर्थ मात्र कूटस्थत्व ही नहीं है अपितु कूटस्थ अविचालिभाव में भी नित्य शब्द है। 'कूटस्थेषु अविचालिषु' इन दोनों पक्षों के देने से नित्य अर्थ की अभिव्यक्ति हो रही है। यदि मात्र 'कूटस्थेषु' इतना ही पद देते तो जिसका व्यय नहीं किया जाता है उस राशि को भी नित्यत्व प्राप्त होता जो यहाँ इष्ट नहीं हैं जैसा कि 'तथा कूटस्थं राशिं कुरु, नाऽस्माद् व्ययः कर्तव्यः' ऐसा कहा जाता है। इसी तरह यदि 'अविचालिषु' केवल यही पद रखेंगे तो जब द्रव्य क्रियारहित होगा तब उसको नित्यत्व प्राप्त हों जायेगा जो इष्ट नहीं है। दोनों पदों के देने से 'येऽर्था उत्पादविनाशरहितास्ते नित्याः' जिस अर्थ की न तो उत्पत्ति होती है न तो विनाश होता है, वही नित्य है, ऐसा अर्थ प्राप्त होता है। नित्य शब्द अविचालि कूटस्थ में है। जैसे—'नित्या द्यौः नित्यमाकाशम्'।

पृथिवी में क्रिया होती है तब उसे अविचालि कूटस्थ कैसे कहा गया? तो इसका उत्तर है कि पार्थिव अवयवों के विचालित्व होने पर भी अवयविनी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पृथिवी अपने स्वरूप से अविचल है, अतः 'नित्या पृथिवी' ऐसा व्यवहार होता है। नित्य शब्द का दो अर्थ बता दिया गया।

अब शङ्का होती है कि प्रकृत में कौन-सा अर्थ लिया जाये, दोनों या अन्यतर? इस शङ्का का समाधान करते हैं—**अस्त्याभीक्ष्ण्ये इति**। प्रकृत सूत्र में नित्य पद से **आभीक्ष्ण्य**=पौनःपुन्य अर्थ का ही ग्रहण करना चाहिए। इस पक्ष में उदाहरण भी है, जैसे—**नित्यंप्रहसितः**=बार-बार या बहुत अधिक हसने वाला। इस तरह आभीक्ष्ण्य अर्थ में जो नित्य शब्द है, प्रकृत सूत्र में उसी का ग्रहण है।

अथ किमिदं वीप्सेति? आप्नोतेरेयं विपूर्वादिच्छायामर्थे सन् विधीयते। यद्येवं—चिकीर्षति जिहिर्षतीत्यत्रापि प्राप्नोति। नैष दोषः—नैवं विज्ञायते 'वीप्सायामभिधेयाया'मिति? कथं तर्हि? कर्तृविशेषणमेतत्। वीप्सतीति वीप्सः। वीप्सश्चेत् कर्त्ता भवतीति।

नित्य शब्द का अन्वाख्यान करके वीप्सा शब्द के विषय में पूछते हैं—**अथ किमिदमिति**। वीप्सा क्या है? व्युत्पत्तिप्रदर्शन द्वारा वीप्सा शब्द को क्रिया विशेष में योगरूढि दिखाते हैं—**आप्नोतेरयमिति**। वि उपसर्गपूर्वक आप्लृ व्याप्तौ धा.पा.१२६१ इस धातु से इच्छा अर्थ में 'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा', ३.१.७ सूत्र से सन् प्रत्यय का विधान है। इस तरह क्रियाविशेष में वीप्सा शब्द है। इतर का रूढत्व न समझकर पूर्वपक्ष करते हैं—**यद्येवमिति**। यदि विपूर्वक आप्लृ धातु से इच्छार्थक सन् प्रत्यय होने पर द्वित्व हो रहा है तो 'कर्तुमिच्छति-चिकिर्षति', डुकृञ् करणे धा.पा.१४७३ से सन् तथा 'हर्तुमिच्छति-जिहीर्षति' में हञ् हरणे धा.पा.८९९ धातु से भी सन् है। यहाँ पर 'करोति, हरति' के साथ घट आदि कर्म की जो व्याप्तीच्छा है, तद्वाची 'चिकीर्षति' व 'जिहीर्षति' को द्वित्व प्राप्त हो गया।

इस पक्ष का खण्डन करते हैं—**नैष दोष इति**। यह कोई दोष नही है। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि वीप्सा गम्य होने पर द्वित्व हो। तब आप क्या कह रहे हैं?

उत्तर देते हैं—**कर्तृविशेषणेति**। सूत्र में वीप्स शब्द कर्ता में विशेषण है—'वीप्सतीति-वीप्सः', यहाँ 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' ३.१.३४ सूत्र से कर्ता अर्थ में अच् प्रत्यय होकर वीप्स शब्द हुआ है। अर्थात् वीप्स यदि कर्ता होगा तभी द्वित्व होगा। जहाँ वीप्सा पद क्रियाविशेष में रूढ होगा, वहाँ द्वित्व नहीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होगा। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि वीप्सा अर्थ में चिकीर्षति व जिहीर्षति को द्वित्व नहीं होगा, परन्तु आभीक्ष्ण्य अर्थ गम्य होने पर 'चिकीर्षति-चिकीर्षति, जिहीर्षति-जिहीर्षति' ऐसा द्वित्व हो जायेगा; अतः प्रकृत सूत्र में 'वीप्सावाचिनो द्वे भवतः' ऐसा वीप्सा अभिधेय नहीं है; अपितु प्रयोक्तृधर्म अभिधेय है। जैसे 'आबाधः'। यहाँ पर गत्यर्थक धातु से कर्ता अर्थ में क्त प्रत्यय है। 'गतगतः' ऐसा वीप्सा में द्वित्व होगा। प्रिय के चिरकाल से प्रेषित होने पर वियोग से पीडित व्यक्ति 'गतगतः' ऐसा वाक्यप्रयोग करता है। यहाँ पर वीप्सा है।

कः पुनर्वीप्सार्थः? * अनवयवाभिधानं वीप्सार्थः * **अनवयवेन द्रव्याणामभिधानमेव वीप्सार्थः** * अनवयवाभिधानं वीप्सार्थ इति चेज्जात्याख्यायां द्विर्वचनप्रसङ्गः * **अनवयवाभिधानं वीप्सार्थ इति चेज्जात्याख्यायां द्विर्वचनं प्राप्नोति—व्रीहिर्यव इति।**

अब तक आपने जो इस तरह से वीप्सा शब्द का अर्थ किया है उसका क्या प्रयोजन है? वार्तिकरूप से उत्तर देते हैं—**अनवयवाभिधानमिति**। सम्पूर्ण रूप से द्रव्यों का क्रिया गुण सम्बन्ध प्रतिपादन ही वीप्सा का फल है।

आक्षेपक—**जात्याख्यायां द्विर्वचन इति**। सम्पूर्ण रूप से द्रव्यों का क्रिया गुण सम्बन्ध प्रतिपादन हो सके, इसके लिए आप ने 'वीप्सतीति वीप्सः' ऐसा वीप्सापदार्थ माना है, परन्तु इस तरह की वीप्सा से द्रव्यों का साकल्येन ग्रहण नहीं होता है, अपितु 'जातिः पदार्थः' मानने पर ही द्रव्यों का सम्पूर्ण रूप से बोध होता है। जैसे 'ब्राह्मणो न हन्तव्यः' ऐसा कहने से ब्राह्मणत्व जाति का ग्रहण करने से ही सर्वब्राह्मणों का ग्रहण होगा तथा सर्व ब्राह्मणहनन का निषेध हो सकेगा। इस तरह जाति पदार्थ भी आपके अनुसार वीप्सार्थ हो गया, अतः जाति वाच्य होने पर भी द्विर्वचन की आपत्ति होगी। इससे जाति वाच्य होने पर व्रीहित्वावच्छिन्न व्रीहि का तथा यवत्वावच्छिन्न यव का बोध यहाँ पर जातिमहिम्ना हो रहा है, अतः व्रीहि व यव को द्विर्वचन प्राप्त हुआ जो दोष है।

* न वैकार्थत्वाज्जातेः * **न वैष दोषः। किं कारणम्? एकार्थत्वाज्जातेः। एकार्थो हि जातिः। एकमर्थं प्रत्याययिष्यामीति जातिशब्दः प्रयुज्यते।**

इसका खण्डन करते हैं—**न वैकार्थेति**। यह कोई दोष नहीं है। क्यों?

उत्तर देते हैं—**एकार्थत्वादिति**। जाति एक अर्थ को बताने के लिए है। एक अर्थ का बोध कराया जा सके इसलिए जातिशब्द का प्रयोग किया जाता है।

* अनेकार्थाश्रयत्वाच्च वीप्सायाः * **अनेकार्थाश्रया च पुनर्वीप्सा। 'अनेक-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मर्थं संप्रत्याययिष्यामी'ति वीप्सा प्रयुज्यते। एकार्थत्वाज्जातेरनेकार्थाश्रयत्वाच्च वीप्साया जात्याख्यायां द्विर्वचनं न भविष्यति।

जबकि वीप्सा अनेक अर्थों का आश्रय लेती है। अनेक अर्थों का बोध हो सके, इसलिए वीप्सा का प्रयोग होता है। जाति एकार्थ है तथा वीप्सा अनेक अर्थों का आश्रय लेती है; अतः जाति वाच्य होने पर द्विर्वचन नहीं होगा।

* निवर्तकत्वाद्वा * **अथवा नाऽनेन द्विर्वचनं निर्वर्त्यते। किं तर्हि? अद्विर्वचनमनेन निवर्त्यते। यावन्तस्तेऽर्थास्तावतां शब्दानां प्रयोगः प्राप्नोति, तत्राऽनेन निवृत्तिः क्रियते—'नित्यवीप्सयोरर्थयोर्द्वे एव शब्दरूपे प्रयोक्तव्ये नातिबहु प्रयोक्तव्य'मिति।**

अथवा 'नित्यवीप्सयोः' यह सूत्र द्विर्वचन का **निर्वर्तक**=विधायक नहीं है।

प्रश्नभाष्य—**किमिति**। यदि यह द्विर्वचन का विधान नहीं करता है तो क्या करता है?

उत्तर देते हैं—**अद्विर्वचनमिति**। यह अद्विर्वचन की **निवर्तन**=व्यावृत्ति कराता है। इस सूत्र से द्विर्वचन का विधान नहीं होने से जाति शब्दों को द्वित्व प्राप्त नहीं हुआ। परन्तु 'द्रव्य शब्दों के जितने अर्थ हैं उतने शब्दों का प्रयोग होता है' इस नियम का यह सूत्र विधायक है। नियम निवृत्ति के लिए किया जाता है, अतः इस नियम से जो निवर्त्य है उसको बताते हैं—'नित्य और वीप्सा अर्थ में दो शब्दों का ही प्रयोग करना चाहिए, अधिक शब्दों का नहीं'।

* सर्वपदसगतिग्रहणानर्थक्यं चार्थाभिधाने द्विर्वचनविधानात् * **सर्वग्रहणं चानर्थकम्। किं कारणम्? अर्थाभिधाने द्विर्वचनविधानात्। सर्वस्यैव हि द्विर्वचनेनार्थो गम्यते नाऽवयवस्य। 'पदग्रहणं चानर्थकम्'। पदस्यैव हि द्विर्वचनेनाऽर्थो गम्यते नाऽपदस्य। 'सगतिग्रहणं चानर्थकम्'। सगतिकस्यैव हि द्विर्वचनेनाऽर्थो गम्यते नाऽगतिकस्य।**

किं पुनरिदं वीप्सायां सर्वमभिधीयते आहोस्विदेकम्? कश्चात्र विशेषः?

यदि अर्थ वाच्य होने पर ही द्विर्वचन होता है तो पूर्वसूत्र में जो सर्व पद तथा सगति ग्रहण किया वह व्यर्थ है। अर्थाभिधान होने से द्वित्व का विधान है, अतः सर्व पद व्यर्थ है। सम्पूर्ण के द्विर्वचन होने पर ही अर्थ गम्य होता है, अवयव द्विर्वचन से नहीं। एवम् अर्थाभिधान होने से द्वित्व का विधान

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होता है, इसलिए पदग्रहण भी अनर्थक है। सम्पूर्ण पद के द्विर्वचन होने पर ही अर्थबोध होता है, पद का अवयव को द्विर्वचन करने से नहीं। इसी तरह पूर्व सूत्र में जो सगतिग्रहण किया वह भी व्यर्थ है; क्योंकि गतिसंज्ञकसहित द्विर्वचन करने पर ही अर्थ बोध होता है, अगतिक द्विर्वचन से नहीं।

इससे पूर्व में 'अनवयवाभिधानं वीप्सा' ऐसा कहा है। जो उचित नहीं है, ऐसा मानकर प्रश्न करते हैं—**किं पुनरिति**। क्या वीप्सा में सम्पूर्ण अभिधेय है, अथवा एक ही अभिधेय है। जैसे 'ग्रामो ग्रामः' ऐसा पद सुना जाता है, परन्तु इसके अर्थ बहुत से हैं, यहाँ शङ्का होती है कि जैसे एकशेष स्थल में द्वित्व तथा बहुत्व अर्थ का बोध होता है, वैसे—श्रुतिप्रामाण्य से वीप्सा का एकत्व अर्थ समझा जाये अथवा अर्थवशात् वीप्सा शब्द को बह्वर्थ माना जाये?

* वीप्सायां सर्वाभिधाने वचनाऽप्रसिद्धिः * **वीप्सायां सर्वाभिधाने वचनं न सिद्ध्यति—ग्रामो ग्रामः। जनपदो जनपद इति। बहवस्तेऽर्थास्तत्र 'बहुषु बहुवचन'मिति बहुवचनं प्राप्नोति। अस्तु तर्ह्येकम्।**

वीप्सा में चाहे आप एकाभिधान करें अथवा सर्वाभिधान करें, इसमें विशेष क्या है? अर्थात् एकाभिधान में या सर्वाभिधान में विशेष क्या है? यदि वीप्सा में बहुत्व अर्थ का बोध करेंगे तो इष्ट एकवचन नहीं हो सकेगा; जैसे—'ग्रामो ग्रामः, जनपदो-जनपदः'। यहाँ एकवचन इष्ट है जो सिद्ध नहीं हो सकेगा, यह सर्वाभिधान में दोष है। सर्वाभिधान होने पर अर्थ बहुत होंगे, अतः बहुत्व अर्थ का वाचक बहुवचन विभक्ति आयेगी—'बहुषु बहुवचनम्', १.४.२१ सूत्र प्राप्त होगा।

यदि सर्वाभिधान में दोष है तो जिसे दोष न हो वह एकवचन ही वीप्सा वाचक पद के अनन्तर मानिये।

* एकाभिधानेऽसर्वद्रव्यगतिः * **एकाभिधाने सर्वद्रव्यगतिर्न सिद्ध्यति। अस्तु तर्हि सर्वाभिधानम्। ननु चोक्तं—'वीप्सायां सर्वाभिधाने वचनाऽप्रसिद्धि'रिति।**

यदि वीप्सा वाचक पद से **एकाभिधाने**=एकत्व संख्या का बोध मानेंगे तो सर्वद्रव्य की गति नहीं होगी। अर्थात् एकाभिधान एक ही अर्थ को कहेगा। वह कहीं एकस्थलीय एकत्व में चरितार्थ हो जायेगा। अन्यत्र उसकी गति न होने से द्वित्व बहुत स्थलों में द्विर्वचन नहीं हो सकेगा। यदि ऐसा है तो वीप्सावाचक पद से सर्वाभिधान ही मानिये। इससे पूर्व वीप्सा वाच्य होने पर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सर्वाभिधान में जो वचन का अप्रसिद्धिदोष दिया था, वह सर्वाभिधान में प्राप्त नहीं होगा।

***न वा पदार्थत्वात्* न वैष दोषः। किं कारणम्? 'पदार्थत्वात्'। पदस्यार्थो वीप्सा, सुबन्त च पदं, ङ्याप्प्रातिपदिकाच्चैकत्वादिष्वर्थेषु स्वादयो विधीयन्ते, न चैतत् प्रातिपदिकम्। यत्तर्हि प्रातिपदिकं दृषद्-दृषत् समित्समिदिति। एतदपि प्रत्ययलक्षणेन सुबन्तं न प्रातिपदिकम्। अपर आह—**

'वीप्सायां सर्वाभिधाने वचनाऽप्रसिद्धिः' यह दोष वीप्सा के सर्वाभिधान पक्ष में नहीं है। यह दोष क्यों नहीं है? इस दोष के न होने में हेतु देते हैं— **न वा पदार्थत्वादिति**। पद का अर्थ वीप्सा है। सुबन्त की पद संज्ञा होती है। ङी, आप् और प्रातिपदिक के अनन्तर एकत्व, द्वित्व और बहुत्व अर्थों में सु, औ, जस् आदि विभक्तियों का विधान है। वीप्सा प्रातिपदिक नहीं है, अतः वीप्सा से सर्वाभिधान होने पर भी वचन की अप्रसिद्धि नहीं होगी। यदि आप सुबन्त को पद मानते हैं तो जो प्रातिपदिक मात्र हैं, जैसे—'दृषद्-दृषत्, समित् समिद्', इसको सर्वाभिधान पक्ष में द्वित्व कैसे होगा? तो उत्तर देते हैं—**एतदपीति**। 'दृषद्-दृषत् समित्-समित्' यह 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' १.१.६२ इससे प्रत्ययलक्षण के द्वारा सुबन्त ही है। यहाँ जो सुप् आया था उसका हल् से पर में होने से लोप हो गया है। उसको प्रत्ययलक्षण के द्वारा ला देंगे। जिससे 'दृषद्-दृषत्, समित्-समित्' यह भी सुबन्त होने से पदसंज्ञक हो जायेगा, प्रातिपदिक मात्र नहीं रहेगा। दूसरे आचार्य कहते हैं—

***न वा पदार्थत्वात्* न वैष दोषः। किं कारणम्? 'पदार्थत्वात्'। पदस्यार्थो वीप्सा। सुबन्तं च पदम्। ङ्याप्प्रातिपदिकाच्चैकत्वादिष्वर्थेषु स्वादयो विधीयन्ते न चैतत् प्रातिपदिकम्। यत्तर्हि प्रातिपदिकं दृषद्-दृषत् समित्समिदिति। एतदपि प्रत्ययलक्षणेन सुबन्तं न प्रातिपदिकमिति।**

'वीप्सायां सर्वाभिधाने वचनाऽप्रसिद्धिः' यह दोष नहीं है। यह दोष क्यों नहीं है? क्योंकि पदार्थ वीप्सा होता है। सुबन्त को पद कहते हैं, जैसे—ग्रामः। ङी, आप् और प्रातिपदिक से एकत्व आदि अर्थों में स्वादि प्रत्यय ही विहित है। वीप्सा प्रातिपदिक नहीं है। यदि वीप्सा प्रातिपदिक नहीं है तो जो प्राति-पदिकलक्षण के द्वारा 'दृषद्-दृषत्, समित्-समित्' को भी हम सुबन्त बना लेंगे। इससे वह प्रातिपदिकमात्र नहीं रह जायेगा, अपितु सुबन्त हो जायेगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथेह कथं भवितव्यं—पचति पचतितरां तिष्ठति, आहोस्वित् पचतितरां पचतितरां तिष्ठतीति? पचतिपचितितरां तिष्ठतीति भवितव्यम्। कथम्? द्विर्वचनं क्रियतामातिशायिक इति द्विर्वचनं भविष्यति विप्रतिषेधेन। इहापि तर्ह्यातिशायिकाद् द्विर्वचनं स्याद्—'आढ्यतरमाढ्यतरमानये'ति।

क्या 'पचति पचतितरां तिष्ठति' ऐसा वाक्य होगा? अर्थात् यहाँ पर पहले तिङन्त 'पचति' को द्वित्व करेंगे तथा पश्चात् तिङन्त से 'द्विर्वचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ' ५.३.५७ से अतिशय अर्थ में तरप् प्रत्यय करेंगे। अथवा अतिशयार्थ तरप् प्रत्यय को तिङन्त से लाकर 'पचतितराम्' इस पद को द्वित्व करके 'पचतितरां पचतितरां तिष्ठति' ऐसा समझेंगे? यहाँ पर कौन सा रूप होना चाहिए? 'पचतिपचतितराम्' यही वाक्य होना चाहिए। अर्थात् द्वित्व करने के बाद तरप् प्रत्यय करना चाहिए। 'तिष्ठति' यह शत्रन्त सप्तम्येकवचन सति सप्तमी है। वाक्यार्थ है—'तिष्ठति चैत्रे मैत्रः पक्त्रन्तराऽपेक्षया पचतिपचतितराम्'। 'पचतिपचतितरां तिष्ठति' यही वाक्य क्यों होगा? इस बात को पूछते हैं—**कथमिति**।

उत्तर देते हैं—**द्विर्वचनमिति**। 'पचति' इस दशा में द्विर्वचन भी प्राप्त है तथा तरप् भी प्राप्त है। परन्तु तुल्यबलविरोध होने पर परत्वात् द्विर्वचन ही होगा। यदि ऐसी बात है तो 'आढ्यमरमाढ्यतरमानय' यहाँ पर भी परत्वात् पहले द्विर्वचन होना चाहिए तथा बाद में तरप्। इस तरह 'आढ्याढ्यतरमानय' ऐसा अनिष्ट रूप प्राप्त होने लगेगा।

अस्त्यत्र विशेषः—अन्तरङ्ग आतिशायिकः। काऽन्तरङ्गता? ङ्याप्प्रातिपदिकाद् आतिशायिकः, पदस्य द्विर्वचनम्। आतिशायिकोऽपि नाऽन्तरङ्गः। कथम्? समर्थात् तद्धितोऽसावुत्पद्यते, सामर्थ्यं च सुबन्तेन। अथवा स्पर्धायाम् आतिशायिको विधीयते न चान्तरेण प्रतियोगिनं स्पर्धा गम्यते।

इसका उत्तर देते हैं—**अस्त्यत्र विशेष इति**। द्वित्व की अपेक्षा आतिशायिक प्रत्यय अन्तरङ्ग है, तदपेक्षया द्वित्व बहिरङ्ग है; अतः अन्तरङ्ग आतिशायिक प्रत्यय की कर्तव्यता में बहिरङ्ग द्वित्व के असिद्ध हो जाने से पहले आतिशायिक तरप् प्रत्यय होगा, तत्पश्चात् द्विर्वचन होकर 'आढ्यतरमाढ्यरमानय' यही रूप बनेगा। अब प्रश्न करते हैं कि यहाँ पर अन्तरङ्गता क्या है?

अन्तरङ्गता स्पष्ट करते हैं—**ङ्याप्प्रातिपदिकादिति**। आतिशायिक प्रत्यय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ङ्यन्त, आबन्त और प्रातिपदिक से विहित है, जब कि पद को द्वित्व विहित है। सुबन्त पद होता है तत्पश्चात् द्वित्व होकर 'आढ्यतरमाढ्यतरमानय' यही इष्ट रूप बनेगा। अब इस पक्ष का खण्डन करते हैं—**आतिशायिक इति।** आतिशायिक भी अन्तरङ्ग नहीं है। यह बात कैसे मानी जाये? इसलिए कि तद्धित की उत्पत्ति समर्थ से होती है तथा सामर्थ्य सुबन्त से ही लिया जाता है। इस तरह आतिशायिक को अन्तरङ्ग नहीं कह सकते हैं। अथवा आतिशायिक प्रत्यय का विधान स्पर्धा में होता है। प्रतियोगी के अभाव में स्पर्धा गम्य नहीं है। इस तरह आतिशायिक अन्तरङ्ग नहीं है।

एवं तर्हीह द्वावर्थौ वक्तव्यौ नित्यवीप्से चाऽतिशयश्च, न चैकस्य प्रयोक्तुरनेकमर्थं युगपद् वक्तुं सम्भवोऽस्ति। तदेतत् प्रयोक्तर्यधीनं भवति, एतस्मिँश्च प्रयोक्तर्यधीने क्वचित् काचित् प्रसृततरा गतिर्भवति।

यदि ऐसी बात है तो **इह**=प्रकृत में दो अर्थ वाच्य हैं—नित्य, वीप्सा तथा अतिशय।[1] तिङन्त में नित्य और अतिशय ये दो अर्थ होंगे तथा सुबन्त में वीप्सा और अतिशय ये दो अर्थ होंगे। एक काल में एक ही वक्ता द्वारा अनेक अर्थों का कथन सम्भव नहीं है। यद्यपि 'वृक्षाः' ऐसा बहुवचनान्त प्रयोग से एक ही वक्ता एक काल में अनेक अर्थों को कह सकता है, तथापि 'अनेकमर्थं युगपद् वक्तुं सम्भवो नास्ति' यह कथन नित्य, वीप्सा और अतिशय की अपेक्षा से कहा गया है। अर्थात् एक वक्ता एककालावच्छेदेन उपर्युक्त तीनों अर्थों को कहने में समर्थ नहीं है। निमित्त के भिन्न-भिन्न होने से नित्य और अतिशय तथा वीप्सा और अतिशय इन अर्थों का युगपत् कथन सम्भव नहीं है। ये अर्थ वक्ता के अधीन[2] होते हैं। वक्ता के अधीन उन अर्थों में कहीं पर किसी अर्थ विशेष की जिसकी विवक्षा है, उसकी वहाँ **प्रसृततरा**=द्रुत गति होगी। तिङन्त में द्वित्व करने पर आतिशायिक प्रत्यय होता है। इस पक्ष में उदाहरण देते हैं

१. यद्यपि यहाँ पर नित्य, वीप्सा तथा अतिशय ये तीन अर्थ होते हैं तथापि प्रयोगभेद को मानकर दो अर्थ कहा है। सूत्रप्रतिपाद्य नित्य अथवा वीप्सा और अतिशय। इस तरह दो सम्भव हो सकेगा।

२. अधि उत्तरपद होने पर ही 'अध्युत्तरपदात् खः' से ख प्रत्यय करके सूत्र से अधीन शब्द बनता है। यहाँ केवल अधि से ख प्रत्यय कैसे हुआ? तो इस का उत्तर यहाँ पर यह समझना चाहिए कि यह अधीन शब्द अव्युत्पन्न प्रातिपदिक है, ख प्रत्ययान्त नहीं। अथवा इन शब्द के साथ अधि का अव्ययीभाव समास परायत्ता प्रतिपादनपरक है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इह तावत्—पचति-पचतितरां तिष्ठतीत्येषा प्रसृततरा गतिर्यन्नित्यम् उक्त्वाऽतिशय उच्यते। इहेदानीमाढ्यतरमाढ्यतरमानयेत्येषा प्रसृततरा गतिर्यदतिशयमुक्त्वा वीप्साद्विर्वचनमुच्यते। {नित्यवीत्सयोः}।

इह तावदिति। इह=तिङन्त स्थल में अर्थ में 'पचति' को द्वित्व करके 'पचति-पचति' से आतिशायिक प्रत्यय तरप् होता है। परन्तु सुबन्त स्थल में आतिशायिक प्रत्यय होने के बाद ही नित्य अर्थ में द्वित्व होता है। उस स्थल में पहले उदाहरण दे चुके हैं—'आढ्यतरमाढ्यतरमानय' इति। यहाँ पर प्रकर्ष युक्त आढ्य का आनयन क्रिया में योग होने से लब्धप्रकर्ष की वीप्सा है। यदि द्वित्व होने के पश्चात् तरप् प्रत्यय करेंगे तो वाक्य 'आढ्यतरमाढ्यतरमानय' ऐसा होगा। परन्तु इस वाक्य से प्रकर्ष अर्थ का बोध होगा, वीप्सा का नहीं। इसलिए पहले प्रकर्ष के अर्थ में तरप् करना चाहिए तथा तरप् हो जाने पर तरबन्त को द्वित्व करना चाहिए यही उचित है। {**नित्यवीप्सयोः**}।

परेर्वर्जने ८.१.५

* परेरसमासे * **परेरसमासे इति वक्तव्यम्। इह मा भूत्—परित्रिगर्तं वृष्टो देवः। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। परेर्वर्जन इत्येव सिद्धम्। परेर्वजन इत्युच्यते न चात्र परिर्वजने वर्तते। कस्तर्हि? समासः।**

वर्जन अर्थ में विद्यमान परि को द्वित्व हो। जैसे **परि**-परि बङ्गेभ्यो वृष्टो देवः'। यहाँ परि का वर्जन अर्थ है, अतः उसको द्वित्व हुआ। यहाँ पर 'अपपरी वर्जने' १.४.८८ सूत्र में 'परि' की कर्मप्रवचनीय संज्ञा है तथा 'पञ्चम्यपाङ्परिभिः' २.३.१० सूत्र से कर्मप्रवचनीयसंज्ञक परि के योग में 'बङ्गेभ्यः' यह पञ्चमी है।

'परेरसमासे' ऐसा कहना चाहिए। अर्थात् समासभिन्न जो वर्जन अर्थ में विद्यमान परि उसको द्वित्व हो, समास में न हो। जैसे—'परित्रिगर्तं वृष्टो देवः'। यहाँ पर 'त्रिगर्तान् विहाय वृष्टो देवः' ऐसा अर्थ है तथा 'परित्रिगर्तम्' यह समस्त पद है। यहाँ पर वर्षत्रिगर्त का सम्बन्ध वर्जनक्रियाकृत होने से वाक्य के समान ही समास में भी द्विर्वचन प्राप्त हुआ जो इष्ट नहीं है, अतः उसका निषेध वचन 'परेरसमासे' कहना चाहिए। तो क्या 'परेरसमासे' यह कहना आवश्यक है? नहीं। 'परेर्वजने' इसी से उक्त में निषेध भी सिद्ध हो जायेगा। सूत्र में 'परेर्वजने' ऐसा कहा है। 'परित्रिगर्तं वृष्टो देवः' इस स्थल में 'परि' शब्द वर्जन अर्थ में नहीं है। यदि 'परि' शब्द वर्जन अर्थ में नही है तो कौन शब्द वर्जन अर्थ में है? समास से वर्जन अर्थ गम्य है। यदि वाक्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होता तो 'परि परि त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देवः' ऐसा होता। इस वाक्य में वर्जन अर्थ का बोध परि से हो रहा है, अतः परि को द्वित्व हुआ। परन्तु 'परित्रिगर्तम्' स्थल में वर्जन अर्थ का बोध परि से न होकर समास से है। यहाँ पर एकार्थीभावमहिम्ना समास से ही वर्जन अर्थ का बोध होगा न कि समास का एकदेश परि से। 'समुदायो हि अर्थवान् तदेकदेशोऽनर्थकः' यह न्याय भी इस पक्ष में है तथा जहत्स्वार्था वृत्ति से समासैकदेश 'परि' समास में स्वार्थ का परित्याग कर देगा जिससे समास में 'परि' को द्वित्व प्राप्त नहीं है। वर्जन का अर्थ है—सम्बन्धाभाव। इस तरह उक्त समस्त वाक्य से 'त्रिगर्तनिष्ठाऽभाव प्रतियोगिसम्बन्धवद्वृष्टिकर्ता' यह बोध होगा। मूल में 'न चाऽत्र 'परिर्वर्जने' वर्तते' ऐसा कहा है। इसका अभिप्राय यह समझना चाहिए कि उक्त समस्त स्थल में शुद्धवर्जन अर्थ में परि नहीं है; अपितु समास में 'परि' का अन्य अर्थ है; जबकि वाक्य में 'परि' शब्द शुद्ध रूप से वर्जन अर्थ को कह रहा है।

* परेर्वजने वावचनम् * **परेर्वजने वावचनङ्कर्त्तव्यम्। परेर्वर्जने वेति वक्तव्यम्। परि त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देवः। परि-परि त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देवः। {परेर्वजने}।**

वर्जन अर्थ में परि को विकल्प से द्वित्व कहना चाहिए। जैसे—'परि त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देवः' यहाँ वर्जन अर्थ में परि को द्वित्व नहीं है तथा 'परि परि त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देवः' यहाँ पर वर्जन अर्थ में परि को द्वित्व है। {परेर्वजने}।

वाक्यादेरामन्त्रितस्याऽसूयासम्मतिकोप-कुत्सनभर्त्सनेषु ८.१.८

* असूयाकुत्सनयोः कोपभर्त्सनयोश्चैकार्थत्वात् पृथक्त्वनिर्देशाऽऽनर्थक्यम् * **असूया कुत्सनमित्येकोऽर्थः। कोपो भर्त्सनमित्येकोऽर्थः। असूयाकुत्सनयोः कोपभर्त्सनयोश्चैकार्थत्वात् पृथक्त्वनिर्देशोऽनर्थकः। न ह्यनसूयन् कुत्सयति, न चाऽप्यकुपितो भर्त्सयते। ननु च भो अकुपिता अपि दृश्यन्ते दारकान् भर्त्सयमानाः। अन्ततस्ते तां शरीराकृतिं कुर्वन्ति या कुपितस्य भवति।**

सम्बोधन में प्रथमा एकवचनान्त की आमन्त्रित संज्ञा होती है—'सामन्त्रितम्' २.३.४८। यदि वह आमन्त्रित वाक्य का आद्यवयव हो तो उसको असूया, सम्मति, कोप, कुत्सन तथा भर्त्सन गम्य होने पर द्वित्व हो, यह सूत्रार्थ है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

असूया=पर गुण को सहन न करना, सम्मति=तथ्य स्वीकार करना, कोप=क्रोध, कुत्सन=निन्दा करना, तथा भर्त्सन=डाँटना, इन अर्थों के गम्य होने पर वाक्य का आद्यवयव आमन्त्रित को द्वित्व होता है। इनके उदाहरण इस प्रकार हैं—असूया—'सुन्दर सुन्दर वृथा ते सौन्दर्यम्'। किसी का सौन्दर्य न सहने वाले का यह वाक्य है। सम्मति-'देव देव वन्द्योऽसि'। कोप—'दुर्विनीत दुर्विनीत इदानीं ज्ञास्यसि'। यह अतिशय क्रुद्ध का वाक्य है। अर्थात् दुर्विनय का फल पावोगे। कुत्सन—'धानुष्क धानुष्क वृथा ते धनुः'। युद्ध में असमर्थ के प्रति यह वाक्य है। भर्त्सन—'चोर चोर घातयिष्यामि त्वाम्'। यहाँ चोर को डाँटा जा रहा है।

असूया तथा कुत्सन एवं कोप तथा भर्त्सन ये शब्द एक ही अर्थ के वाचक हैं, अतः अन्यतर का पृथक् निर्देश व्यर्थ है, यह पूर्वपक्षी का भाष्य है। यद्यपि असूया, कुत्सन, कोप तथा भर्त्सन ये भिन्नार्थक हैं समानार्थक नहीं, तथापि कार्य-कारणभावरूप से इन दोनों को भाष्यकार ने समानार्थक कहा है।

यहाँ कार्यकारणभाव स्पष्ट करते हैं—**न ह्यनसूयन्निति**। कुत्सन कार्य के प्रति असूया कारण है। विना कारण के कार्य नहीं होता है, परन्तु कार्य के विना भी कारण रहता है। परगुण का सहन करने वाला निन्दा नहीं करता है। **भर्त्सन**=शब्दों से भय उत्पन्न करना यह कार्य है, इस कार्य के प्रति कोप कारण है। जब तक कोई कुपित नहीं होगा तब तक कोप कारण के अभाव में भर्त्सन रूप कार्य भी नहीं होगा। इसीलिए असूया तथा कुत्सन समानार्थक हुए तथा कोप और भर्त्सन भी समानार्थक हुए, अतः कुत्सन और भर्त्सन का पृथक् निर्देश व्यर्थ है यह भाष्य का आशय है।

यदि यह कहा जाये कि कोप के विना भी भर्त्सन होता है, अकुपित व्यक्ति भी पत्नी को शब्दों से डाँट-डाँट कर भय उत्पन्न करता है, अतः कोप और भर्त्सन का एकार्थक न होने से पृथक् द्विर्वचनविधान उचित है। इसका उत्तर देते हैं—अन्ततः पत्नी को भर्त्सन करने वाले पति के शरीर की वही आकृति होती जो कुपित की शरीराकृति होती है, अतः वहाँ भी कोपरूप कारण होने से समानार्थक ही है। यदि पति विना क्रोध किये पत्नी का भर्त्सन करेगा तो उससे पत्नी में भय उत्पन्न नहीं हो सकेगा, अतः कोप दिखाता हुआ डाँटता है, अतः भर्त्सन कार्य के प्रति कोप कारण बैठा है। इस तरह एकार्थक होने से भर्त्सनग्रहण व्यर्थ हो गया अर्थात् उसका पृथक् ग्रहण नहीं करना चाहिए।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एवं तर्ह्याह—

सामृतैः पाणिभिर्घ्नन्ति गुरवो न विषोक्षितैः।
लालनाश्रयिणो दोषास्ताडनाश्रयिणो गुणाः।। १।।

अब उत्तरभाष्य से कुत्सन और भर्त्सन ग्रहण का औचित्य प्रतिपादन करते हैं—**एवं तर्हीति**। गुरु लोग शिष्य के हितषी होते हैं, अतः विना क्रोध के भी भर्त्सन करते हैं। यहाँ कोप के विना भर्त्सन न होने से दोनों का कार्य-कारणभाव नहीं हुआ, अतः भर्त्सनग्रहण उचित है। इसी तरह गुरु लोग शिष्य के गुणों को सहन करने पर भी शिष्य के उत्कर्षातिशय के लिए उसकी **कुत्सन**=निन्दा करते हैं, अतः असूया के अभाव में भी कुत्सन के होने से असूया और कुत्सन का कार्यकारण भाव नहीं है, अतः कुत्सन का ग्रहण करना भी उचित ही है। {**वाक्यादेरामन्त्रितस्याऽ-**}।

एकं बहुव्रीहिवत् ८.१.९

'द्विर्वचन को प्राप्त एक शब्द बहुव्रीहिवद् होता है' यह सूत्रार्थ है। बहुव्रीहिवद्भाव होने से समास मानकर प्रातिपदिकसंज्ञा तथा पुंवद्भाव होगा। समास से प्रातिपदिकसंज्ञा का फल सुप् का लुक् है। जैसे—'एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्' यहाँ पर 'एकैकम्' यह वीप्सा में द्वित्व है। इसको बहु-व्रीहिवत् होने से समास मानकर प्रातिपदिकसंज्ञा तथा 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' २.४.७१ से सुब्लुक् हुआ है तथा एकैक इस समुदाय से पुनः सुबुत्पत्ति होती है। पुंवद्भाव का उदाहरण—'एकैकया आहुत्या'। 'एकया एकया आहुत्या' यहाँ पर 'एकया' इस तृतीयान्त पद को वीप्सा में द्वित्व है। समासवृत्ति होने से ('सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः') से पूर्व एकया पद का पुंवद्भाव हुआ है। वृद्धि होकर समुदाय से एक विभक्ति आती है। 'एकैकया' रूप होता है। यद्यपि यहाँ पूर्वपद को पुंवद्भाव नहीं होने पर भी वृद्धि रूप एकादेश से पूर्व पद एकाघटक टाप् का अपहार होकर 'एकैकया' यही रूप होगा; परन्तु पुंवद्भाव नही होने की दशा में अवग्रह में विशेष स्पष्ट दिखार्यी देगा-एका+एकया ऐसा। जबकि पुंवद्भाव होने पर अवग्रह में एक+एकया ऐसा विशेष होगा।

इह कस्माद् बहुव्रीहिवद्भावो न भवति—'एक' इति? एकस्य द्विर्वचनसम्बन्धेन बहुव्रीहिवद्भाव उच्यते न चाऽत्र द्विर्वचनं पश्यामः * एकस्य द्विर्वचनसम्बन्धेनेति चेदर्थनिर्देशः * **एकस्य द्विर्वचनसम्बन्धेनेति चेदर्थनिर्देशः कर्तव्यः। द्विर्वचनमपि ह्यत्र कस्मान्न भवति तस्माद् वाच्यम्—**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'अस्मिन्नर्थे द्वे भवतो बहुव्रीहिवच्चे'ति।

'एक शब्द को बहुव्रीहिवद्भाव हो' यह मानकर प्रश्न कर रहे हैं—एक पद को बहुव्रीहिवद्भाव क्यों नहीं होता है? इसका उत्तर देते हैं—एक शब्द को द्विर्वचनसम्बन्ध से बहुव्रीहिवद्भाव कहा है। जहाँ मात्र 'एक' पद है अर्थात् द्विर्वचन नहीं है वहाँ बहुव्रीहिवद्भाव भी नहीं होगा।

यदि द्विर्वचनसम्बन्ध से एक पद को द्वित्व कहते हैं, अर्थात् 'सर्वस्य द्वे' ८.१.१। इस अधिकार में 'एकं बहुव्रीहिवत्' पढा गया है तो आप को अर्थ-निर्देश भी करना होगा। अर्थात् स्पष्ट रूप से पढना होगा कि अमुक अर्थ में एक पद को द्वित्व हो तथा उसको बहुव्रीहिवद्भाव हो।

* न वा वीप्साधिकारात् * **न वा वक्तव्यम्। किं कारणम्? 'वीप्साधिकारात्'। 'नित्यवीप्सयो'रिति वर्तते। अथ बहुव्रीहिवत्त्वे किं प्रयोजनम्?** * बहुव्रीहिवत्त्वे प्रयोजनं सुब्लोपपुंवद्भावौ * **बहुव्रीहिवत्त्वे सुब्लोपपुंवद्भावौ प्रयोजनम्। सुब्लोपः—एकैकम्। पुंवद्भावः—गतगता।**

'एकस्य द्विर्वचनसम्बन्धेनेति चेदर्थनिर्देशः' यह वार्तिक पढने की आवश्यकता नहीं है। इसका क्या कारण है? इसका कारण यह है कि आचार्य ने 'नित्य-वीप्सयोः' ८.१.४ ऐसा सूत्र पढा है। वहाँ से वीप्सा का अधिकार चलता है। उक्त सूत्र से प्रकृत सूत्र में वीप्सा का अनुवर्तन होगा।

सूत्रार्थ—'वीप्सा में द्विरुक्त एकशब्द को बहुव्रीहिवद्भाव हो'। इस तरह वीप्सा में द्विरुक्त एक शब्द का बहुव्रीहिवद्भाव होने से केवल एक शब्द बहु-व्रीहिवद् नहीं हुआ।

अब प्रश्न उठता है कि बहुव्रीहिवद्भाव का प्रयोजन क्या है? इसका उत्तर देते हैं—**बहुव्रीहिवत्त्वे इति**। बहुव्रीहिवद्भाव का प्रयोजन सुप् का लोप तथा पूर्वपद को पुंवद्भाव करना है। सुब्लोप का उदाहरण—**एकैकम्**। यहाँ वीप्सा में एक शब्द का द्वित्व होकर सुब्लोप तथा समुदाय से पुनः सुप्रत्यय आया है। पुंवद्भाव का उदाहरण—**गतगता**। यहाँ पर जिज्ञासु को शङ्का हो सकती है कि यहाँ भाष्यकार ने 'एकं बहुव्रीहिवद्' सूत्र का पुंवद्भाव सम्बन्धी उदाहरण न देकर उत्तरसूत्र 'आबाधे च' ८.१.१० का उदाहरण क्यों दिया है? तो इसका उत्तर यह है कि द्विर्वचनप्रकरण में संहिता नित्य नहीं है, अतः अवग्रह में 'एकैकया' यहाँ पर 'एक+एकया' ऐसा भी विशेष होने लगेगा, अतः उत्तर सूत्र का उदाहरण दिया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयोः ।
नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते ।।

यहाँ पर समासग्रहणसामर्थ्य से संहिता अखण्ड पद में ही प्रवृत्त होती है, सखण्ड पद से नहीं।

यद्यवेम्—

* सर्वनामस्वरसमासान्तेषु दोषः * **सर्वनामस्वरसमासान्तेषु दोषो भवति।** सर्वनाम—**सर्वनामविधौ दोषो भवति—एकैकस्मै। 'न बहुव्रीहावि'ति प्रतिषेधः प्राप्नोति।** सर्वनाम। स्वर—**नन सुसु। 'नञ्सुभ्याम्' इत्येष स्वरः प्राप्नोति।** स्वरः। समासान्त—**ऋगृक्। पूःपूः। 'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे' इति समासान्तः प्राप्नोति।**

यदि 'एकं बहुव्रीहिवत्' ऐसा सूत्र पढेंगे तो सर्वनाम, स्वर और समासान्तविधि में दोष होगा। जैसे सर्वनामविधि—**एकैकस्मै**। यहाँ पर वीप्सा में एक पद को द्वित्व हुआ। इसका बहुव्रीहिवद्भाव हो जाने से 'न बहुव्रीहौ' १.१.२९ सूत्र से बहुव्रीहि में सर्वनाम का निषेध हो जाने से 'सर्वनाम्नः स्मै' ७.१.१४ प्रवृत्त नहीं होगा। इसी तरह स्वरविधि में भी दोष है—**नन सुसु**। यहाँ पर भगवान् भाष्यकार ने 'नन करोति, 'सुसु करोति' इत्यादि वाक्यैकदेश 'नन' तथा 'सुसु' का उदाहरण दिया है। इस स्थल में 'आबाधे च' ८.१.१० सूत्र से द्विर्वचन है। इसका बहुव्रीहिवद्भाव हो जाने पर 'नञ्सुभ्याम्' ६.२.१७२ सूत्र से बहुव्रीहि के उत्तरपद को अन्तोदात्त प्राप्त होता है, जो दोष है।

यदि यहाँ पर उक्त सूत्र से अन्तोदात्त नही होगा तो ऐसी स्थिति में यहाँ पर चार स्वर प्राप्त होते हैं—१.'नञ्सुभ्याम्' ६.२.१७२ सूत्र से अन्तोदात्त, २.'बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्' ६.२.१ सूत्र से पूर्वपदप्रकृतिस्वर, ३.'समासस्य' ६.१.२२३ सूत्र से समासान्तोदात्त तथा ४.'अनुदात्तं च' ८.१.३ सूत्र से आम्रेडितानुदात्त। परन्तु यहाँ यह विचारणीय है कि 'एकं बहुव्रीहिवत्' ८.१.९ सूत्रघटक वत् प्रत्यय के सामर्थ्य से अतिदेश करेंगे। वह कार्यातिदेश होगा या शास्त्रातिदेश? यदि कार्यातिदेश मानेंगे तो 'अनुदात्तं च' ८.१.३ सूत्र से आम्रेडितानुदात्त प्राप्त है तथा 'एकं बहुव्रीहिवद्' सूत्र से बहुव्रीहिवद्भाव। बहुव्रीहिवद्भाव परत्वात् आम्रेडितानुदात्तत्व को बाध लेगा। यदि शास्त्रातिदेश मानेंगे तो एक ही आश्रय में आम्रेडितानुदात्तत्व तथा बहुव्रीहिवद्भाव प्राप्त है। अतिदेश के द्वारा विरुद्ध आम्रेडितानुदात्तत्व का बाध हो जायेगा। इसी तरह 'नञ्सुभ्याम्'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

६.२.१७२ सूत्र में 'वनं समासे' ६.२.१७८ से 'समासे' का अपकर्षण करके बहुव्रीहि समास में नञ् और सु से उत्तरपद को अन्तोदात्त का विधान करने से बहुव्रीहिवद्भाव होने से उक्त सूत्र की प्रवृत्ति उक्त स्थल में हो रही है, वैसे 'समासे' पद के अपकर्षण से 'बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्' ६.२.१ की भी प्रवृत्ति हो रही है। ऐसी स्थिति में क्या करना चाहिए? तो इसका उत्तर इस प्रकार है—सिंहावलोकनन्याय से 'नञ्सुभ्याम्' ६.२.१७२ सूत्र में ही 'समासे' ग्रहण का अपकर्षण होगा, 'बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्' ६.२.१ सूत्र में नहीं। इस तरह पूर्वपदप्रकृतिस्वर अतिदेश के द्वारा समासान्तोदात्त को बाध लेता है; अतः पूर्वपदप्रकृतिस्वर होता है, अन्तोदात्त नहीं। परन्तु बहुव्रीहिवद्भाव होने पर भाष्यकार ने पूर्वपक्ष के रूप में अन्तोदात्त स्वर होना दोष बताया है।

बहुव्रीहिवद्भाव पक्ष में समासान्त दोष होगा। 'ऋक्पूरब्धूः-' ५.४.७४ सूत्र से समासान्त प्रत्यय 'अ' विहित है। बहुव्रीहिवद्भाव होने से ऋगृक्, पूःपूः से भी वह समासान्त 'अ' प्रत्यय प्राप्त होगा जो इष्ट नहीं है।

सर्वनामविधौ तावन्नदोषः। उक्तं तत्र बहुव्रीहिग्रहणस्य प्रयोजनम्—बहुव्रीहिरेव यो बहुव्रीहिस्तत्र प्रतिषेधो यथा स्याद् बहुव्रीहिवद्भावेन यो बहुव्रीहिस्तत्र मा भूदिति।

उक्त दोषों का निराकरण करते हैं—**सर्वनामविधाविति**। पूर्व में जो तीन दोष दिया था उसमें से सर्वनामविधि में दोष नहीं है। 'विभाषा दिक्समासे बहुव्रीहौ' १.१.२८ सूत्र से बहुव्रीहिग्रहण का अनुर्वतन 'न बहुव्रीहौ' १.१.२९ सूत्र में हो जाता। इस तरह 'बहुव्रीहौ' इस सप्तम्यन्त पद का लाभ हो जाने पर भी 'न बहुव्रीहौ' १.१.२९ सूत्र में 'बहुव्रीहौ' ग्रहण व्यर्थ होकर नियम करेगा। बहुव्रीहिसमास जो बहुव्रीहि, वही पर सर्वनामसंज्ञा का निषेध होगा, बहुव्रीहिवद्भाव से प्राप्त जो बहुव्रीहि वहाँ सर्वनामसंज्ञा का निषेध नहीं होगा। इस तरह 'एकैकस्मै' यहाँ पर बहुव्रीहिवद्भाव से बहुव्रीहि है अतः 'न बहुव्रीहौ' १.१.२९ इस निषेधशास्त्र के प्रवृत्त नहीं होने से इष्ट रूप सिद्ध हो गया।

स्वरसमासान्तयोरपि—प्रकृतं समासग्रहणमनुवर्तते, तेन बहुव्रीहिं विशेषयिष्यामः—'समासो यो बहुवीहि'रिति।

स्वर और समासान्त का जो दोष दिया है वह भी नहीं रहेगा। वह इस तरह की 'वनं समासे' ६.२.१७८ सूत्र से सिंहावलोकनन्यायात् 'समासे' ग्रहण का अपकर्षण 'नञ्सुभ्याम्' सूत्र में करेंगे, 'बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्' ६.२.१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस सूत्र में नहीं। इससे उक्त स्थल में समास नहीं होने से 'नञ्सुभ्याम्' सूत्र प्रवृत्त नही होगा। 'बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्' ६.२.१ सूत्र में 'समासे' का अनुवर्तन नहीं है, अतः बहुव्रीहिवद्भाव में भी पूर्व पद को प्रकृतिस्वर हो जायेगा। इससे स्वरपक्ष में दोष भी नहीं रहेगा—'समासाच्च तद्विषयात्' ५.३.१०६ सूत्र से 'समासान्ताः' ५.४.१६८ सूत्र में समासग्रहण की अनुवृत्ति करेंगे। इससे 'समास जो बहुव्रीहि' ऐसा अर्थ होने से मुख्य समास का ग्रहण होगा, अतः बहुव्रीहिवद्भाव से प्राप्त जो बहुव्रीहि वहाँ पर समासान्त दोष निरस्त हो गया। {**एकं बहुव्रीहिवत्**}।

कर्मधारयवदुत्तरेषु ८.१.११

कर्मधारयवत्त्वे कानि प्रयोजनानि? * कर्मधारयवत्त्वे प्रयोजनं सुब्लोपपुंवद्भावान्तोदात्तत्वानि * **कर्मधारयवत्त्वे प्रयोजनं सुब्लोपपुंवद्भावाऽन्तोदात्तत्वानि प्रयोजनम्**। सुब्लोपः—**पटुपटुः**। सुब्लोपः। पुंवद्भावः—**पटुपट्वी**। पुंवद्भावः। अन्तोदात्तत्वम्—**पटुपटुः**। {कर्मधारयवदुत्तरेषु}

'उत्तर द्विर्वचन पर रहते पूर्व द्विर्वचन को कर्मधारयवत् कार्य हो' यह सूत्रार्थ है। अब यहाँ शङ्का होती है कि 'उत्तरेषु' इतना ही सूत्र पढते। पूर्व सूत्र में 'बहुव्रीहिवत्' इस पद की अनुवृत्ति हो जाती। इससे भी कार्य हो सकता था। पुनः प्रकृत सूत्र में 'कर्मधारयवत्' पढने की आवश्यकता क्या है? तो इसका उत्तर यह है कि काली पद से स्वार्थ में क प्रत्यय करके 'केऽणः' ७.४.१३ सूत्र से ङीप् को ह्रस्व होकर टाप् प्रत्यय हुआ। रूप हुआ कालिका। इसको द्वित्व करने पर कालिका-कालिका होकर कर्मधारयवद्भाव होने से पूर्वपद को पुंवद्भाव होकर कालककालिका रूप बनता है। बहुव्रीहिवद्भाव होने से पूर्व को पुंवद्भाव नहीं हो सकता था; अतः 'कर्मधारयवत्' पाठ चरितार्थ है। बहुव्रीहिवद्भाव होने पर 'न कोपधायाः' ६.३.३७ यह प्रतिषेध शास्त्र प्रवृत्त होगा, अतः बहुव्रीहिवद्भाव पक्ष में पुंवद् नहीं होगा। अथ च इस पक्ष में यह दोष भी होगा कि 'बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्' ६.२.१ सूत्र से प्रकृत में पूर्वपदप्रकृतिस्वर होगा जो इष्ट नहीं है; अतः आचार्य ने कर्मधारयवद्भाव किया है।

अब पूछते हैं कि कर्मधारयवद्भाव का प्रयोजन क्या है? उत्तर देते हैं—**कर्मधारयवत्त्वे इति**। कर्मधारयवद्भाव का प्रयोजन सुब्लोप, पुंवद्भाव तथा अन्तोदात्त है। 'प्रयोजनानि' इस बहुवचनान्त पद से प्रश्न करके 'प्रयोजनम्' इस एकवचनान्त पद से उत्तर दिया है। इसका आशय यह है कि एकवचन के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अभिप्राय से 'प्रयोजनम्' यह पद प्रत्येक के साथ अन्वित होता है। सुब्लुक् का उदाहरण—'पटुपटुः'। यहाँ कर्मधारयवद्भाव होने से समास मानकर प्रातिपदिकसंज्ञा तथा 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' २.४.७१ सूत्र से सुब्लुक् होता है। पुनः समुदाय से सुबुत्पत्ति होकर 'पटुपटुः' रूपसिद्धि है। इसी तरह पुंवद्भाव का प्रयोजन—पटुपट्वी है। पट्वी पद को द्वित्व करके पूर्वपद को पुंवद् है। अन्तोदात्त का प्रयोजन पटुपटुः है। कर्मधारयवद्भाव होने से प्रकृत स्थल में 'समासस्य' ६.१.२२३ सूत्र से अन्तोदात्त स्वर हुआ है। अब यदि यहाँ पर शङ्का की जाये कि 'अनुदात्तं च' ८.२.३ सूत्र से अन्त्य को आम्रेडितानुदात्तत्व क्यों नहीं होता है? तो इसका उत्तर यह देंगे कि 'कर्मधारयवद्' यह अतिदेश होने से अन्तोदात्त प्राप्त है तथा उसी अन्त को 'अनुदात्तं च' ८.१.३ सूत्र से अनुदात्त है। इस तरह समान आश्रय में दोनों सूत्र प्रवृत्त हुए। यहाँ पर अतिदेश अपने ही आश्रय में अपने से विरुद्ध 'अनुदात्तं च' ८.१.३ सूत्र को निवृत्त करा देगा, अतः अन्तोदात्त होगा, अनुदात्त नहीं। {**कर्मधारयवंदुत्तारेषु**}।

प्रकारे गुणवचनस्य ८.१.१२

गुणवचनस्येति किमर्थम्? अग्निर्माणवकः। गौर्वाहीकः।

इस सूत्र में पूर्वसूत्र से 'कर्मधारयवत्' इस पद का अनुवर्तन होता है। पूर्व सूत्र में 'कर्मधारयवत्' यह स्वरितत्वविशिष्ट होने से अधिकार है। सूत्र का अर्थ हुआ—'सादृश्य द्योत्य होने पर गुणवचन को द्वित्व हो तथा वह कर्मधारयवद् हो'। इससे पूर्व भाग को पुंवद्भाव तथा उत्तरभाग को 'समासस्य' ६.१.२२३ सूत्र से अन्तोदात्त होगा। सूत्र में प्रकार शब्द सादृश्यार्थक है। यहाँ गुणवचन शब्द से 'आ कडारादेका संज्ञा' १.४.१ सूत्र पर परिगणित लिए गये हैं।

अब शङ्का करते हैं कि सूत्र में 'गुणवचनस्य' ऐसा क्यों कहा है? सादृश्य में विद्यमान होने पर सभी गुणवचन ही होते हैं। इस तरह गुणवचनग्रहण करने पर भी अनिष्टप्रसङ्ग है; तब गुणवचनग्रहण क्यों है? इसका उत्तर देते हैं—'अग्निर्माणवकः। गौर्वाहीकः'। अग्नि शब्द वह्नि अर्थ में शक्त है तथा माणवक अर्थ में बताया जा रहा है। यहाँ पर अग्नि शब्द पूर्व में द्रव्यवचन है, सादृश्यवचन होने पर भी द्रव्यवचन ही रहा, अर्थात् द्रव्यवचन से अग्नि शब्द द्रव्यवचन में ही आया, गुणवचन नहीं हुआ; अतः प्रकृत में अग्नि ९ को द्वित्व नहीं होता है। इसी तरह 'गौर्वाहिकः' स्थल में गोशब्द सास्न द्रव्य में शक्त होकर भी अभेदोपचारात् वाहीक अर्थ में भी द्रव्यवच कह रहा है, गुणवचन को नहीं, अतः प्रकृत में 'गौः' शब्द को द्वित्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यदि सूत्र में 'गुणवचनस्य' ऐसा पाठ नहीं करते तो द्रव्यवचन को भी द्वित्व होने लगता जो इष्ट नहीं है, अतः आचार्य ने 'गुणवचनस्य' ऐसा पाठ किया है।

*** प्रकारे सर्वेषां गुणवचनत्वात् सर्वप्रसङ्गः * प्रकारे सर्वेषां गुणवचनत्वात् सर्वप्रसङ्गः। सर्वे हि शब्दाः प्रकारे वर्तमाना गुणवचनाः सम्पद्यन्ते। तेनेहापि प्राप्नोति—अग्निर्माणवकः। गौर्वाहीक इति।**

प्रकार अर्थ में सभी शब्द गुणवचन ही होते हैं; अतः अग्निर्माणवकः—अग्निसदृशः माणवकः, एवं गौर्वाहिकः—गोसदृशः वाहीकः यहाँ पर भी अग्नि शब्द तथा गोशब्द को द्वित्व होना चाहिए। यहाँ पर अग्निशब्द से अग्निगत तैक्ष्ण्य का प्रतिपादक माणंवक में तथा गोपद से गोगत जाड्यमान्द्यादि गुण का प्रतिपादन वाहीक में किया जा रहा है। गुण और गुणी का नित्य अभेदोपचार होने से अग्निपद तथा गोपद से भेदनिबन्धना षष्ठी नहीं है।

*** सिद्धन्तु प्रकृत्यर्थविशेषणत्वात् * सिद्धमेतत्। कथम्? 'प्रकृत्यर्थ-विशेषणत्वात्'। प्रकृत्यर्थो विशेष्यते। नैवं विज्ञायते—'प्रकारे वर्तमानस्य गुणवचनस्ये'ति। कथं तर्हि? 'गुणवचनस्य शब्दस्य द्वे भवतः प्रकारे वर्तमानस्ये'ति। अथवा 'प्रकारे गुणवचनस्ये'त्युच्यते, सर्वश्च शब्दः प्रकारे वर्तमानो गुणवचनः सम्पद्यते। तत्र प्रकर्षगतिर्विज्ञास्यते—'साधीयो यो गुणवचन' इति। कश्च साधीयः? यः प्रकारे च प्राक्च प्रकारात्। अथवा 'प्रकारे गुणवचनस्ये'त्युच्यते, सर्वश्च शब्दः प्रकारे वर्तमानो गुणवचनः सम्पद्यते त एवं विज्ञास्यामः—'प्राक्प्रकाराद् यो गुणवचन' इति।**

'प्रत्यासत्तिन्याय से द्विर्वचन की प्रकृति स्थानी को लिया जाये', ऐसा प्रकृत्यर्थ को विशेषित करेंगे, प्रकार को नहीं। इस तरह 'सादृश्य द्योत्य होने पर द्वित्व हो' ऐसा कहने से गुणवचन, द्रव्यवचन तथा क्रियावचन सभी को द्वित्व प्राप्त हो गया, जो इष्ट नहीं है; अतः प्रकारग्रहण किया गया। इससे प्रकार में वर्तमान सभी गुणवचन शब्द ही लिये जायेंगे, द्रव्यवचनादि नहीं। 'तादृश प्रकार में विद्यमान गुणवचन शब्द को सादृश्य द्योत्य होने पर द्वित्व हो'—ऐसा सूत्रार्थ होगा। भाष्यकार इस बात का उपपादन आगे भी करेंगे। 'प्रकार में वर्तमान गुणवचन को द्वित्व हो'—ऐसा अर्थ नहीं कहेंगे। तब कैसा अर्थ करेंगे? 'प्रकार में विद्यमान गुणवचन शब्द को द्वित्व हो'—ऐसा अर्थ करेंगे? अथवा 'प्रकारे गुणवचनस्य'—ऐसा सूत्र पढा है। सभी शब्द प्रकार में विद्यमान होने पर गुणवचन ही होते है। इस प्रकारग्रहणसामर्थ्य से ही गुणवचन अर्थ का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लाभ हो जाने से सूत्र में गुणवचनग्रहण व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा—प्रकर्ष जो गुणवचन अर्थात् प्रकार अर्थ का द्योतन करने से पूर्व भी जो गुणवचन हो, उसी को द्वित्व हो, अन्य को नहीं। इस तरह 'अग्निर्माणवकः, गौर्वाहिकः' स्थल में द्वित्व की आपत्ति निरस्त हो गयी। 'जो शब्द सादृश्य अर्थ में हो तथा सादृश्य अर्थ में वृत्त होने से पूर्व भी सादृश्य अर्थ को ही कहता हो'— ऐसा अर्थ करेंगे। अथवा 'प्रकारे गुणवचनस्य' ऐसा सूत्रपाठ है। सभी शब्द प्रकार में विद्यमान होने से गुणवचन हो जाते हैं। वहीं से अर्थ समझेंगे— प्रकार में विद्यमान होने से पूर्व जो गुणवचन हो, उससे सादृश्य द्योत्य होने पर उस शब्द को द्वित्व हो। यहाँ पर सादृश्य से प्रकार अर्थ लिया गया है, भेद नहीं। 'पटुपटुः' ऐसा कहने पर 'पटुसदृशः' ऐसा अर्थबोध होगा।

*** आनुपूर्व्ये द्वे भवतः * आनुपूर्व्ये द्वे भवत इति वक्तव्यम्। मूलेमूले स्थूलाः। अग्रेऽग्रे सूक्ष्माः।**

'आनुपूर्व्य द्योत्य होने पर द्वित्व कहना चाहिए' यह वार्तिकार्थ है। उदाहरण— 'मूले मूले स्थूलाः। अग्रेऽग्रे सूक्ष्माः'। अब यहाँ पर शङ्का होती है कि वीप्सा में ही द्वित्व क्यों न मान लिया जाये? तो इसका उत्तर यह है कि 'व्याप्तुमिच्छा वीप्सा' अर्थात् कार्त्स्न्येन सम्बन्ध वीप्सा है। अग्र, मध्य और मूल तीन भाग है। अग्र की अपेक्षा मूल के स्थूल होने तथा मूल की अपेक्षा अग्र को सूक्ष्म होने से यहाँ वीप्सा नहीं है; अतः वीप्सा में द्वित्व नहीं होने से आनुपूर्व्य अर्थ द्योत्य होने पर द्वित्व चरितार्थ है।

'आनुपूर्व्ये द्वे भवतः' इस वार्तिक में 'कर्मधारयवत्' का अनुवर्तन नहीं है। इसमें भाष्यप्रयोग ही प्रमाण है। यदि इसमें कर्मधारयवत् का सम्बन्ध होता तो 'मूले मूले स्थूलाः' इस उदाहरण में सुब्लोप भी होता है।

*** स्वार्थेऽवधार्यमाणेऽनेकस्मिन् द्वे भवतः * स्वार्थेऽवधार्यमाणेऽनेकस्मिन् द्वे भवत इति वक्तव्यम्। अस्मात् कार्षापणादिह भवद्भ्यां माषं माषं देहि। अवधार्यमाण इति किमर्थम्? अस्मात् कार्षापणादिह भवद्भ्यां माषं देहि द्वौ देहि त्रीन् देहि। अनेकस्मिन्निति किमर्थम्? अस्मात् कार्षापणादिह भवद्भ्यां माषं देहि। माषमेव देहि। किं पुनः कारणं न सिद्ध्यति? अनवयवाभिधानं वीप्सार्थ इत्युच्यते, अवयवाभिधानं चात्र गम्यते। आतश्चावयवाभिधानं, यो ह्युच्यते—'अस्मात् कार्षापणादिह भवद्भ्यां माषं माषं देही'ति। माषं माषमसौ दत्वा पुनः शेषं पृच्छति—**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'किमनेन क्रियता'मिति'? यः पुनरुच्यते—'इमं कार्षापणमिह भवद्भ्यां माषं माषं देही'ति माषं माषमसौ दत्त्वा तूष्णीमास्ते।

स्वार्थ का **अवधारण**=निश्चय होने पर अनेक अर्थ में द्वित्व होता है ऐसा कहना चाहिए। यहाँ स्वार्थ पद से अन्य अर्थ का अभाव बताया गया है। अनेक माषसमुदाय का नाम कार्षापण है। यहाँ पर सभी माष का योग दानक्रिया के साथ नहीं है, अपितु दो माष का योग ही दानक्रिया के साथ है, अतः वीप्सा नहीं होने से यह वार्तिक पढा गया है। एवं भिन्न-भिन्न अर्थ होने से 'माषं माषं देहि' में एक शेष भी प्राप्त नहीं है। 'इह भवद्भ्यां माषं देहि' ऐसा कहने पर 'एकैकं देहि' इस अर्थ की प्रतीति नहीं होती है, परन्तु 'माषं माषं देहि' ऐसा कहने पर एक-एक के दान की प्रतीति हो रही है। वार्तिक में अवधार्यमाण ग्रहण का प्रयोजन यह है कि 'अस्मात् कार्षापणादिह भवद्भ्यां माषं देहि द्वौ देहि त्रीन् देहि' इस उदाहरण में 'यथेच्छं देहि एकं वा द्वौ वा त्रीन् वा' इस अर्थ का बोध होने से अवधारण=निश्चय का अभाव है; अतः माष शब्द को द्वित्व नहीं हुआ। 'अनेकस्मिन्' पद का प्रयोजन यह है कि अनेकार्थ गम्य होने पर ही द्वित्व हो। जहाँ एकार्थ गम्य है वहाँ द्वित्व न हो। जैसे—'अस्मात् कार्षापणादिह भवद्भ्यां माषं देहि' इस वाक्य से 'माषमेव देहि' अर्थात् एक माष का ही दान बोध्य है, अनेक का नहीं, अतः माष पद को द्वित्व नहीं हुआ। तो क्या कारण है कि यहाँ पर माष पद को द्वित्व नहीं होता है? **अनवयवाभिधान**=सम्पूर्ण अर्थ का बोध वीप्सार्थ है, जब कि प्रकृत में अवयव का बोध हो रहा है, अतः माष पद को द्वित्व नहीं हुआ। परन्तु जहाँ अनवयवाभिधान है जैसे—'अस्मात् कार्षापणादिह भवद्भ्यां माषं माषं देहि' यहाँ पर दाता माष-माष देकर शेष के विषय में पुनः पूछता है कि इसका क्या करूँ? परन्तु जहाँ पर 'इमं कार्षाणमिह भवद्भ्यां माषं माषं देहि' ऐसा कहा जा रहा है वहाँ 'माषं माषम्' यह वीप्सा में द्विर्वचन है; अतः सम्पूर्ण कार्षापण का दान करके दाता विना कोई प्रश्न किये ही चुप रह जाता है।

* चापले द्वे भवतः * **चापले द्वे भवत इति वक्तव्यम्। अहिरहिर्बुध्यस्व बुध्यस्व। न चावश्यं द्वे एव, यावद्भिः शब्दैः सोऽर्थो गम्यते तावन्तः प्रयोक्तव्याः। अहिरहिरहिः बुध्यस्व बुध्यस्व बुध्यस्वेति।**

चापल=आशु प्रतिपादन अर्थ गम्य होने पर द्वित्व कहना चाहिए। जैसे—'अहिः अहिः बुध्यस्व बुध्यस्व'। यह कोई आवश्यक नही है कि चापल अर्थगम्य होने पर द्विर्वचन ही हो, अपितु जितने शब्दों से चाञ्चल्य गम्य हो, उतने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। जैसे—'अहिः अहिः अहिः बुध्यस्व बुध्यस्व बुध्यस्व'। यहाँ पर शब्द का तीन बार प्रयोग है। उससे भी अधिक शब्दों का प्रयोग होने पर यदि चापल अर्थगम्य है तो उसका प्रयोग किया जा सकता है।

क्रियासमभिहारे द्वे भवतः **क्रियासमभिहारे द्वे भवत इति वक्तव्यम्। स भवाल्लुनीहि लुनीहीत्येवायं लुनाति। पुनीहि पुनीहीत्येवायं पुनाति।**

क्रियासमभिहार गम्य होने पर द्वित्व कहना चाहिए—'स भवाँल्लुनीहि लुनीहीत्येवायं लुनाति। पुनीहि पुनीहीत्येवायं पुनाति'। यहाँ पर ध्येय है कि भगवान् भाष्यकार ने लोडन्त द्विर्वचन का उदाहरण दिया है। यह द्वित्व लोडन्त या यङ्लुगन्त को नहीं। क्योंकि यङ् प्रत्यय स्वयं क्रियासमभिहार अर्थ को कहता है।

आभीक्ष्ण्ये द्वे भवतः **आभीक्ष्ण्ये द्वे भवत इति वक्तव्यम्। भुक्त्वा भुक्त्वा व्रजति। भोजं भोजं व्रजति।**

आभीक्ष्ण्य=क्रिया की पौनःपुन्य उत्पत्ति गम्य होने पर द्वित्व कहना चाहिए। जैसे—'भुक्त्वा भुक्त्वा व्रजति, भोजं भोजं व्रजति'। यहाँ पर 'पुनः पुनः भुङ्क्ते पुनः पुनः व्रजति' ऐसा क्रिया की आवृत्ति ज्ञात हो रही है, अतः 'भुक्त्वा भुक्त्वा, भोजं भोजम्' द्वित्व हुआ। अब यहाँ शङ्का होती है कि इस स्थल में 'क्रियासमभिहारे द्वे भवतः' इस वार्तिक से ही द्वित्व हो जायेगा। पुनः 'आभीक्ष्ण्ये द्वे भवतः' यह वार्तिक क्यों पढा गया है? तो इस पर आचार्यो का अनेक उत्तर है—'भुक्त्वा भुक्त्वा व्रजति' इत्यादि स्थलों में क्त्वाप्रत्ययान्त तथा णमुलन्त को भी द्वित्व प्राप्त है तथा तिङन्त को भी। वहाँ आभीक्ष्ण्य शब्द से विहित को ही द्वित्व हो, तिङन्त को नहीं, यह ज्ञापन के लिए 'आभीक्ष्ण्ये द्वे भवतः' यह वार्तिक है। दूसरे यह कहते हैं—आभीक्ष्ण्य अर्थ का प्रत्यय से द्योतन हो रहा है, अतः क्रिया का द्विर्वचन प्राप्त नहीं होने से द्विर्वचन का विधान किया गया है। तीसरे यह कहते हैं कि क्रियासमभिहार पद से जिसको द्वित्व कहा गया है उसी को द्वित्वविधान हो, ऐसी उलटी बुद्धि किसी को न हो, यह बताने के लिए पृथक् वार्तिक पढा है। वस्तुतः तृतीय उत्तर ही उचित है। पूर्व वार्तिक लोट् लकार में ही प्रवृत्त होता है, यह मैं पहले कह आया हूँ, अतः 'भुक्त्वा भुक्त्वा भोजं भोजम्' में द्वित्वविधान के लिए वार्तिक विध्यर्थ है, नियमार्थक नहीं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

डाचि च द्वे भवतः **डाचि च द्वे भवत इति वक्तव्यम्। पटपटायति। घटघटायति। शरशरायति।**

'डाच् प्रत्यय पर रहते प्रकृति को द्वित्व होता है' ऐसा कहना चाहिए। 'डाचि' यह विषय सप्तमी है। अर्थ होगा—'डाच् प्रत्यय की विषयता में द्वित्व हो'। डाच् प्रत्यय उत्पन्न होने से पूर्व ही अव्यक्त अनुकरण पटत् को द्वित्व करेंगे—पटत् पटत्; पुनः कृ भू अस एतदन्यतम के योग में 'अव्यक्तानुकरणाद् द्व्यजवरार्धाद् अनितौ डाच्' ५.४.५७ सूत्र में डाच् प्रत्यय करके 'नित्यमाम्रेडिते डाचीति वक्तव्यम्' (वा.3638) से अभ्यास से पूर्व तकार तथा अभ्यासोत्तरपदघटक पकार के स्थान में पररूप एकादेश पकार होगा तथा डित्त्वसामर्थ्य से 'अत्' इस टि का लोप करके 'पटपटायति' ऐसा रूप होगा। यहाँ 'तत्करोति तदाचष्टे' ग.सू.२०४ से णिच् का विधान करके यह रूप है। इसी तरह 'घटघटायति, शरशरायति' स्थल में भी घटत् एवं शरत् इस अव्युत्पन्न प्रातिपदिक को डाच् की कर्तव्यता में द्वित्व करके पररूप एवं टिलोप करना चाहिए तथा बाद में णिजन्त रूप 'घटघटायति, शरशरायति' ऐसा समझना चाहिए।

पूर्वप्रथमयोरर्थातिशयविवक्षायां द्वे भवतः **पूर्वप्रथमयोरर्थातिशयविवक्षायां द्वे भवत इति वक्तव्यम्। पूर्वं पूर्वं पुष्यन्ति। प्रथमं प्रथमं पच्यन्ते।**

अर्थातिशयविवक्षा में पूर्व और प्रथम शब्द को द्वित्व होता है। जैसे—'पूर्व-पूर्वं पुष्यन्ति'। यहाँ पर 'अन्य पुष्पित होने वालों से अधिक पुष्पित होता है'—ऐसा अर्थ है। एवम् इसी तरह 'प्रथमं प्रथमं पच्यन्ते' स्थल में भी अन्य पाक की अपेक्षा पाकातिशय द्योत्य होने से प्रथम पद को द्वित्व हुआ है।

यहाँ पर कोई वार्तिककार 'अर्थातिशयविवक्षायाम्' की जगह पर 'आद्यादिविवक्षायाम्' ऐसा पढते हैं। इस पक्ष में उक्त वार्तिक आदि आदि विवक्षा में पूर्व और प्रथम पद को द्वित्व करेगा। 'पूर्वं पूर्वं पुष्यन्ति' इस वाक्य से 'अन्य पुष्पित होने वालों से पूर्व पुष्पित होता है', 'प्रथमं प्रथमं पच्यन्ते' स्थल में अन्य पाक से पूर्व पाक होता है', ऐसा अर्थ होगा।

डतरडतमयोः समसम्प्रधारणायां स्त्रीनिगदभावे द्वे भवतः **डतरडतमयोः समसम्प्रधारणायां स्त्रीनिगदभावे द्वे भवत इति वक्तव्यम्। उभाविमावाढ्यौ। कतराकतराऽनयोराढ्यता। सर्व इमे आढ्याः, कतमाकतमैषामाढ्यतेति।**

डतर और डतम प्रत्यय है। प्रत्यय के ग्रहण में तदन्त का ग्रहण होता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Funding: MIDF

है। गद व्यक्तायां वाचि धा.पा.५२ से 'निगद्यते इति निगदः, स्त्रिया निगदः स्त्रीनिगदः' 'नौ गदनदपठस्वनः' ३.३.६४ सूत्र से अप् प्रत्यय कर्म से है। यहाँ स्त्री शब्द से स्त्रीलिङ्ग शब्द लिया जायेगा। कर्ता में षष्ठी करके उसके साथ निगद का समास है। इस तरह 'निगदकर्मीभूतः' ऐसा अर्थ आया। वार्तिक का अर्थ होगा—'आढ्यत्व आदि तुल्य गुण के द्वारा सम्प्रधारणा वाच्य होने पर स्त्रीलिङ्ग शब्दाभिधेय भाव में विद्यमान डतर व डतम प्रत्यायान्त को द्वित्व कहना चाहिए'। यहाँ वार्तिक में भावपद से सामान्यतया कृत् और तद्धित का भी ग्रहण है, अतः 'भूतिः, ऋद्धिः, सम्पत्, आढ्यता' इत्यादि शब्दों को भी उक्तार्थ वाच्य होने पर द्वित्व होगा। जैसे 'उभाविमावाढ्यौ' ऐसा कहने पर श्रोता को सन्देह हो रहा है कि इन दोनों का आढ्यत्व किस किससे है? इस सन्देह से पूछते हैं—कतराकतराऽनयोराढ्यता? इसी तरह 'सर्व इमे आढ्याः' ऐसा सुनने पर श्रोता को सन्देह हो रहा है कि—कतमाकतमैषामाढ्यतेति? यहाँ सम्प्रधारणा वाच्य होने पर स्त्रीलिङ्ग में विद्यमान डतरान्त तथा डतमान्त को द्वित्व हुआ है।

* कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे भवतः, समासवच्च बहुलं, यदा न समासवत् प्रथमैकवचनं तदा पूर्वपदस्य * **कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे भवत इति वक्तव्यम्। 'समासवच्च बहुलं, यदा न समासवत् प्रथमैकवचनं भवति तदा पूर्वपदस्य'। अन्योऽन्यमिमे ब्राह्मणा भोजयन्ति। अन्योऽन्यस्य भोजयन्ति। इतरेतरं भोजयन्ति। इतरेतरस्य भोजयन्ति।**

यहाँ कर्मपद क्रिया अर्थ का वाचक है। **कर्मव्यतिहार**=क्रियाविनिमय गम्य होने पर सर्वनामसंज्ञकपद को नित्य द्वित्व होता है, परन्तु उसको समासवद्भाव बहुल होता है। समासवद्भाव होने से समाससंज्ञा प्रयुक्त सुब्लुक् आदि होगा। परन्तु यदि समासवत् नहीं होगा तो पूर्वपद प्रथमैकवचनान्त ही रहेगा। 'यदा न समासवत्' यहाँ पर 'यदा' पद यत्र अर्थ में है। **यदा**=यत्र समासवद्भाव नहीं है **तदा**=तत्र पूर्वपद प्रथमैकवचनान्त ही होता है। 'अन्योऽन्यम्' स्थल में समासवद्भाव नहीं होने से सुब्लुक् तथा समासान्तोदात्त नही है। अपितु आम्रेडितानुदात्तत्व है। 'अन्योऽन्यस्य' स्थल में समासवद्भाव नहीं होने से पूर्वपद प्रथमैकवचनान्त है। 'अन्योऽन्यम्' स्थल में समासवद्भाव नहीं होने से सुब्लुक् तथा समासान्तोदात्तत्व नहीं है। अपितु आम्रेडितानुदात्तत्व है। 'अन्योऽन्यस्य' स्थल में समासवद्भाव नहीं होने से पूर्वपद प्रथमैकवचनान्त है। 'इतेरतरम्'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व 'इतरेतरस्य' स्थल में नित्य समासवद्भाव होने से सुब्लुक् तथा समासस्वर होता है।

*** स्त्रीनपुंसकयोरुत्तरपदस्य वाऽम्भावः * स्त्रीनपुंसकयोरुत्तरपदस्य वाऽम्भावो वक्तव्यः। अन्योऽन्यमिमे ब्राह्मण्यौ भोजयतः। अन्योऽन्यां च भोजयतः। इतरेतरम् इमे ब्राह्मण्यौ भोजयतः। इतरेतरां भोजयतः। अन्योऽन्यमिमे ब्राह्मणकुले भोजयतः। अन्योऽन्यां भोजयतः। इतरेतरमिमे ब्राह्मणकुले भोजयतः। इतरेतरां भोजयतः। {प्रकारे गुणवचनस्य}।**

स्त्रीनपुंसकयोः—इस वार्तिक में 'कर्मधारयवत्' का सम्बन्ध नहीं होने से यहाँ सुब्लुक् आदि नहीं होता है। 'सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः' इस वार्तिक से स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग को पुंवद्भाव हो जाने पर विकल्प से उत्तरपद की विभक्ति को अम्भाव का विधान किया गया है, अन्यथा अनेकाल् होने से 'अनेकाल् शित् सर्वस्य' १.१.५५ सूत्र से सम्पूर्ण उत्तरपद को अम् होता। 'अन्योऽन्यम् इमे ब्राह्मण्यौ भोजयतः' यहाँ पर तथा इससे आगे के उदाहरणों में सर्वत्र पुंवद्भाव होने पर 'कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे भवतः' इस वार्तिक से द्वित्व है। जब उत्तरपद की विभक्ति को विकल्प से अम् आदेश होता है तब 'अन्योऽन्यां भोजयतः इतरेतरां भोजयतः' आदि रूप होते हैं। परन्तु विकल्प से आम्विधान होने के कारण जिस पक्ष में आम्भाव नहीं है उस में 'अन्योऽन्यं भोजयतः, इतरेतरं भोजयतः, यही रूप रहता है। **{प्रकारे गुणवचनस्य}**।

द्वन्द्वं रहस्यमर्यादावचनव्युत्क्रमणयज्ञ-पात्रप्रयोगाऽभिव्यक्तिषु ८.१.१५

*** अत्यन्तसहचरिते लोकविज्ञाते द्वन्द्वमित्युपसंख्यानम् * अत्यन्तसहचरिते लोकविज्ञाते द्वन्द्वमित्युपसंख्यानं कर्तव्यम्। द्वन्द्वं—स्कन्दविशाखौ। द्वन्द्वं—नारदपर्वतौ। अत्यन्तसहचरित इति किमर्थम्? द्वौ युधिष्ठिरार्जुनौ। लोकविज्ञात इति किमर्थम्? द्वौ देवदत्तयज्ञदत्तौ।**

रहस्य, मर्यादा, वचन, व्युत्क्रमण, यज्ञ-पात्र, प्रयोग और अभिव्यक्ति इन अर्थो में द्वन्द्व यह निपातन होता है। द्वि शब्द को द्विर्वचन होने पर द्वौ द्वौ इस द्वित्व स्थल में कर्मधारयवत् होने से सुब्लुक् होंने पर समुदाय से पुनः पुनः सुप् लाकर 'द्वि द्वि सु' इस स्थिति में पूर्वपदस्थ इकार को मकारान्त अम्भाव तथा उत्तरपद द्विघटक इकार को अत्व तथा नपुंसकत्व विधान कर 'द्वन्द्वम्' रूप निपातन से हुआ। संज्ञा होने से उत्तरपदस्थ इकार में 'त्यदादीनामः'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Funding: MIDF

७.२.१०२ से अत्व नहीं हुआ। रहस्य वाच्य होने पर जैसे—द्वन्द्वं=रहस्यं मन्त्रयते। मर्यादा=स्थिति का अतिक्रमण नहीं करना। व्युत्क्रमण=पृथक् अवस्थान।

लोकप्रसिद्ध उत्यन्तसहचरित अर्थ में भी 'द्वन्द्वम्' यह निपातनात् कहना चाहिए। जैसे—'द्वन्द्वं स्कन्दविशाखौ, द्वन्द्वं नारदपर्वतौ', यहाँ पर अत्यन्त सहचरित लोक़विश्रुत अर्थ को कहने के लिए 'द्वन्द्वम्' यह निपातन किया है। प्रक्रिया पूर्ववत् है। अत्यन्त सहचरित अर्थ गम्य होने पर ही द्वन्द्वम् यह निपातन हो, यह कहने का फल यह है कि जहाँ अत्यन्त सहचरित न हो वहाँ निपातन से 'द्वन्द्वम्' यह रूप भी नहीं होगा, अपितु 'द्वौ युधिष्ठिरार्जुनौ'। यहाँ पर 'द्वौ' यही रूप रह जायेगा। लोकविज्ञाते का फल है कि जो लोकप्रसिद्ध नहीं है उसके गम्य होने पर भी 'द्वन्द्वम्' यह रूप नहीं होगा, अपितु द्वौ यही रूप रहेगा। जैसे—'द्वौ देवदत्तयज्ञदत्तौ।'

अथ 'द्वन्द्व'मिति किं निपात्यते * 'द्वन्द्व'मिति पूर्वपदस्य चाऽम्भाव उत्तरपदस्य चाऽत्वं नपुंसकत्वं च * **द्वन्द्वमिति पूर्वपदस्य चाऽम्भावो निपात्यते उत्तरपदस्य चाऽत्वं नपुंसकत्वं च** * उक्तं वा * **उक्तं वा। किमुक्तम्? 'लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्ये'ति, तत्र नपुंसकत्वम् अनिपात्यम्।** {द्वन्द्वं रहस्यमर्यादावचनव्युत्क्रमणयज्ञपात्र}।

आप 'द्वन्द्वम्' यह क्या निपात कर रहे हैं? 'द्वन्द्वम्' यह द्वि शब्द को द्वित्व करके पूर्वपद के इकार को अम् तथा उत्तरपद के इकार को 'अ' तथा नपुंसकलिङ्ग का निपातन कर रहा हूँ।

नपुंसक लिङ्ग निपातन करने के बारे में मैं पहले ही कह चुका हूँ—'लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्य' लिङ्गप्रकरण नहीं पढना चाहिए, क्योंकि लिङ्ग लोकाश्रयी (यहाँ लोक पद से पाणिनि आदि ऋषि ही अपेक्षित हैं, अन्य नहीं) होता है, अतः उपर्युक्त वार्तिक में नपुंसकत्व का निपातन नहीं करना चाहिए। {द्वन्द्वं रहस्यमर्यादावचनव्यु-}।

पदस्य ८.१.१६

पदात् ८.१.१७

आ कुतः पदाधिकारः? * पदाधिकारः प्रागपदान्ताधिकारात् * **'अपदान्तस्य मूर्धन्य' इत्यतः प्राक् पदाधिकारः।**

'पदस्य' ८.१.१६ और 'पदात्' ८.१.१७ ये दोनों अधिकार सूत्र हैं। अब

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूछते हैं कि 'पदस्य' इस सूत्र का अधिकार कहाँ तक चलेगा? उत्तर देते हैं— 'पदस्य' का अधिकार 'अपदान्तस्य मूर्धन्यः' ८.३.५५ इस सूत्र से पूर्व सूत्र तक चलेगा।

अथ 'पदा'दित्यधिकार आ कुतः? * पदात् प्राक् सुपि कुत्सनात् * **पदादित्यधिकारः प्राक् सुपि कुत्सनात्। 'कुत्सने च सुप्यगोत्रादा'विति वक्ष्यति प्रागेतस्मात्** * यणेकादेशस्वरस्तूर्ध्वं पदाधिकारात् * **यणेकादेशस्वरस्तूर्ध्वं पदाधिकारात् कर्तव्यः।**

'पदात्' ८.१.१७ यह भी अधिकार किया है। इसका कहाँ तक अधिकार है? उत्तर देते हैं—'कुत्सने च सुप्यगोत्रादौः', ८.१.६९ इत्येतत् सूत्र से पूर्व तक 'पदात्' सूत्र का अधिकार चलेगा।

यण् को आश्रय मान कर होने वाला स्वर तथा एकादेशाश्रयस्वर पदाधिकार के बाद पढना चाहिये। 'पदस्य' यह अधिकार 'अपदान्तस्य मूर्धन्य' ८.३.५५ से पूर्व 'इडाया वा' ८.३.५४ तक चलता है। 'उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य' ८.२.४ इस यण्णााश्रय स्वर को तथा 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' ८.२.५ इस एकादेशस्वर को 'इडाया वा' ८.३.५४ सूत्र से उर्ध्व में करना चाहिए।

* इह वचने ह्यपदान्तस्याऽप्राप्तिः * **इह क्रियमाणेऽपदान्तस्याऽप्राप्तिः स्यात्। 'उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्ये'ति। इहैव स्यात्—कुमार्यौ किशौर्यौ। इह न स्यात्—कुमार्यः किशोर्यः। 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' इहैव स्यात्—वृक्षौ प्लक्षौ। इह न स्यात्—वृक्षाः प्लक्षाः।**

'पदस्य' यह स्थान षष्ठी है; अतः 'उदात्त और स्वरित को जो यणादेश, उस यणादेश से पर में जो अनुदात्त, तदन्त पद के अन्त्य अल् को स्वरित आदेश हो' यह वाक्यार्थ है। इसी तरह उदात्त और अनुदात्त के स्थान में जो एकादेश, तदन्त पद के अन्त्य अल् को उदात्त आदेश हो' यह दूसरा वाक्य 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' का अर्थ है। यह दोनों अर्थ तभी सम्भव हैं जब 'उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य' ८.२.४ तथा 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः ८. १.५ इन दोनों सूत्रों को 'इडाया वा' ८.३.५४ सूत्र के अनन्तर पढा जाये। इस तरह 'अपदान्तस्य मूर्धन्यः' ८.१.५५ सूत्र से पूर्व 'पदस्य' सूत्र का अधि-कार होने से उक्त दोनों सूत्रों में 'पदस्य' उपस्थित होगा तथा उपर्युक्त अर्थ सम्भव हो सकेगा। यदि पाठ यथावत् रखते हैं, अर्थात् 'उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य' ८.२.४ तथा 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' -८.२.५ को वहीं पाठ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Funding: MIDF

रखेंगे जहाँ पढा गया है, तो अपदान्त को प्राप्त नहीं हो सकेगा। 'कुमार्यौ= कुमारी औ' यहाँ पर ङीप् 'अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः' ८.१.१६१ सूत्र से उदात्त है तथा 'औ' सुप् होने से अनुदात्त है। उदात्त ङीप् के स्थान में यण् होने पर उससे पर में 'औ' अनुदात्त को स्वरित आदेश हो जायेगा। इसी तरह 'किशोर्यौ' में भी समझेंगे। पदान्त को स्वर प्राप्त होने से 'कुमार्यौ किशोर्यौ' में पदान्त 'औ' को स्वर हो जाने पर भी 'कुमार्यः किशोर्यः' में पदान्त को स्वर नहीं हो सकेगा; क्योंकि यहाँ पदान्त विसर्ग होने से हल् है जिसको स्वर प्राप्त नहीं है। इसी तरह 'वृक्षौ प्लक्षौ' एकादेश स्थल में पदान्त-स्वरसिद्ध हो जाने पर भी 'वृक्षाः प्लक्षाः' इस एकादेश स्थल में पदान्त विसर्ग के हल् होने से अन्त्य उदात्त प्राप्त नहीं हो सकेगा।

* न वा पदाधिकारस्य विशेषणत्वात् * **न वोर्ध्वं पदाधिकारात् कर्तव्यो यणेकादेशस्वरः। किं कारणम्? 'पदाधिकारस्य विशेषणत्वात्'। 'पदस्ये'ति नैषा स्थानषष्ठी। का तर्हि? विशेषणषष्ठी। किं वक्तव्यमेतत्? न हि। कथमनुच्यमानं गंस्यते? प्रत्याख्यायते स्थानषष्ठी।**

'इडाया वा' ८.३.५४ सूत्र के अनन्तर यण्णाश्रयस्वर तथा एकादेशाश्रयस्वर करके दोनों स्वरों को पदाधिकारीय मानना आवश्यक नहीं है। इसका क्या कारण है? इसका कारण यह है कि पदाधिकार विशेषण है। 'पदस्य' यह स्थान षष्ठी नहीं है। यदि 'पदस्य' स्थान षष्ठी नहीं है तो 'पदस्य' यह विशेष-णषष्ठी है। आप ने इसको विशेषणषष्ठी कैसे कह दिया? 'षष्ठी स्थानेयोगा' १.१.४६ इस सूत्र से तो विशेषणषष्ठी अर्थ नहीं आता है? इससे स्थानषष्ठी ही आता है, फिर 'पदस्य' को विशेषणषष्ठी कह रहे हैं? तो क्या इस पक्ष में विशेषणषष्ठी को बताने के लिए कोई अतिरिक्त सूत्र पढना पडेगा? नहीं, इसके लिए कोई अतिरिक्त सूत्र पढने की आवश्यकता नहीं है। तो विना अतिरिक्त सूत्र पढे विशेषणषष्ठी अर्थ का लाभ कैसे होगा? 'षष्ठी स्थानेयोगा' १.१.४६ सूत्र का हम प्रत्याख्यान कर देंगे। इस सूत्र के प्रत्याख्यान हो जाने पर जहाँ पर जो सम्बन्ध है, वहाँ वह स्वयम् उपस्थित हो जायेगा। षष्ठी के अनेक सम्बन्ध वाच्य व द्योत्य होते हैं। जहाँ जो सम्बन्ध होगा वहाँ उपस्थित हो जायेगा। 'षष्ठी स्थानेयोगा' १.१.४६ सूत्र पर भाष्यकार ने 'शब्दस्य तु शब्देन कोऽन्यः सम्बन्धोऽन्यदतः स्थानात्' ऐसा भी कहा है।

* अन्तग्रहणाद् वा नलोपे * **अथवा यदयं 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्ये'-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्यन्तग्रहणं करोति तज्ज्ञापयत्याचार्योविशेषणषष्ठ्येषा न स्थानषष्ठी'ति। {पदस्य पदात्}।

'षष्ठी स्थानेयोगा' १.१.४६ ऐसा सूत्र पढने पर किसी भी तरह से इसका विशेषणषष्ठी सिद्ध नहीं हो पा रही है; अतः लिङ्ग से 'पदस्य' को विशेषण-षष्ठी बताते हैं—**अन्तग्रहणाद्वेति**। 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' ८.२.७ को स्थानषष्ठी मानेंगे तो 'अलोऽन्त्यस्य' १.१.५२ इस परिभाषासूत्र के बल से सुतराम् अन्त्य अर्थ का लाभ हो जायेगा। फिर तो 'नलोपः प्रातिपदिकस्य' ऐसा सूत्र पढने के स्थान पर आचार्य ने 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' ८.२.७ ऐसा अन्तपदघटित सूत्र पढा है, उससे बताते हैं कि 'षष्ठी किसी-किसी स्थान पर विशेषण भी होती है'। 'प्रातिपदिकान्तस्य च' यह असमास निर्देश होने से 'प्रातिपदिक पद का जो अन्त नकार, उसका लोप हो' यह सूत्रार्थ है। **{पदस्य पदात्}**।

अनुदात्तं सर्वमपदादौ ८.२.१८

सर्ववचनं किमर्थम्? * सर्ववचनमनादेरनुदात्तार्थम् * **सर्ववचनं क्रियते। किं प्रयोजनम्? 'अनादेरनुदात्तार्थम्'। अनादेरप्यनुदात्तत्वं यथा स्यादिति। तिङ्ङतिङ इति, इहैव स्याद् 'देवदत्तः पचती'ति। इह न स्याद्— 'देवदत्तः करोती'ति।**

'अनुदात्तं सर्वम् अपदादौ' यह तीन प्रथमैकवचनान्त पद का अधिकार सूत्र है। इसका अधिकार पादसमाप्तिपर्यन्त चलता है। 'अपदादि में सभी अनुदात्त होता है' यह सूत्रार्थ है।

अधिकार होने से आगे के सूत्रों में पादसमाप्तिपर्यन्त उपस्थित होगा। सूत्र में सर्वग्रहण क्यों किया है? उत्तर देते हैं—**सर्ववचनमनादेरिति**। यदि सूत्र में सर्वग्रहण नहीं करेंगे तो 'पदात्' ८.१.१७ यह पञ्चम्यन्त पद भी अधिकार है। 'आदेः परस्य' १.१.५४ इससे 'पदस्य' के स्थानषष्ठी होने से आदि अल् के उदात्त को ही अनुदात्त होता है, यही सर्वग्रहण का प्रयोजन है। जैसे 'देवदत्तः पचति' यहाँ पर 'तिङ्ङतिङः' ८.१.२८ सूत्र से 'पचति' को निघात प्राप्त है। वह सम्पूर्ण 'पचति' को होगा। धातुस्वर से पच् आद्युदात्त है तथा पित् होने से 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' ३.१.४ से शप् तिप् अनुदात्त है। 'तिङ्ङतिङः' ८.१. २८ से सभी को अनुदात्त हो जायेगा। परन्तु सर्वग्रहण नहीं करने से 'देवदत्तः करोति' यहाँ पर विकरण 'उ' प्रत्ययस्वर से मध्योदात्त होने लगेगा, वह भी अनुदात्त हो, उसके लिए सूत्र से सर्व पद किया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

*** सर्ववचनमनादेरनुदात्तार्थमिति चेल्लुटि प्रतिषेधात्सिद्धम् * सर्ववचनमनादेरनुदात्तार्थमिति चेत् तन्न। किं कारणम्? 'लुटि प्रतिषेधात्सिद्धम्'। यदयं लुटि प्रतिषेधं शास्ति 'न लु'डिति तज्ज्ञापयत्याचार्योऽनादेरप्यनुदात्तत्वं भवती'ति। कथं कृत्वा ज्ञापकम्? न हि लुडन्तमाद्युदात्तमस्ति।**

यदि 'अनुदात्तं सर्वमपदादौ' ८.१.१८ सूत्र में सर्व पद का प्रयोजन अनादि का अनुदात्त होना कहेंगे तो यह ठीक नहीं है; क्योंकि 'न लुट्' ८.१.२९ ऐसा निषेध शास्त्र पढ कर आचार्य ने लुडन्त में आद्युदात्त का निषेध कहा हैं, वह प्राप्ति होने पर ही चरितार्थ होगा। फिर जब 'श्वः कर्ता' इत्यादि स्थलों में कहीं अन्तोदात्त तथा कहीं मध्योदात्त का ही विधान है। लुडन्त को कहीं भी निघात प्राप्त नहीं है, फिर तो प्राप्ति न होने पर आचार्य ने जो 'न लुट्' ८.१.२९ ऐसा निषेध शास्त्र पढा, वह व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा—'लुडन्त को भी अनुदात्त होता है'।

प्रश्नभाष्य—**कथमिति**। यह ज्ञापक कैसे होगा?

उत्तरभाष्य—**न हीति**। लुडन्त कहीं अन्तोदात्त है तथा कहीं मध्योदात्त, कहीं पर भी लुडन्त निघात नहीं होता है। 'सर्वानुदात्तो निघातः' जहाँ सभी स्वर अनुदात्त हों, उसे निघात कहतें हैं। फिर जब लुडन्त कहीं पर भी निघात नहीं है, तो उसके निषेध से क्या प्रयोजन? चूँकि आचार्य ने निषेध किया है, अतः लिङ्गप्रमाण से 'पदस्य' यह विशेषणषष्ठी होगी, स्थानषष्ठी नहीं। इस तरह षष्ठी नहीं होने से 'आदेः परस्य' १.१.५४ यह सूत्र के प्रवृत्त नहीं हो सकने से अनादि को भी अनुदात्तत्व हो जायेगा।

*** अलोऽन्त्यविधिप्रसङ्गस्तु * अलोन्त्यस्य विधयो भवन्तीत्यन्त्यस्य विधिः प्राप्नोति। यत्र ह्यादिविधिर्नास्ति अलोऽन्त्यस्य विधिना तत्र भवितव्यम्। तत्र को दोषः? 'त्रिङ्ङतिङः' इतीहैव स्याद्—देवदत्तयज्ञदत्तौ कुरुतः। इह न स्याद्—देवदत्तः करोतीति।**

अन्त्य अल् को विधि होती है, अतः अन्त्य अल् को विधि प्राप्त है। 'अलोऽन्त्यस्य' १.१.५२ का अपवाद 'आदेः परस्य' १.१.५४ है। जहाँ अपवाद की प्रवृत्ति नहीं होगी वहाँ उत्सर्गशास्त्र का किसी अपवाद से बाध नहीं होने के कारण उत्सर्गशास्त्र ही प्रवृत्त होगा, अतः भाष्य का आशय यह है कि जहाँ 'आदेः परस्य' १.१.५४ इस अपवाद शास्त्र की प्रवृत्ति नही होगी वहाँ 'अलोऽन्त्यस्य' १.१.५२ यही विधि होगी। अच्छा तो जहाँ अपवाद की प्रवृत्ति नही है, वहाँ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्सर्गशास्त्र 'अलोऽन्त्यस्य' १.१.५२ के प्रवृत्त होने में क्या दोष है? इस में दोष यह है कि 'देवदत्तयज्ञदत्तौ कुरुतः' यहीं पर 'तिङ्ङतिङः' ८.१.२८ सूत्र से निघात होगा, 'देवदत्तः करोति' में नही हो सकेगा। 'कुरुतः' यहाँ पर प्रत्ययस्वर ने लसार्वधातुकस्वर का बाध नहीं होता है। इस में प्रमाण 'तास्यनुदात्तेन्ङिददुपदेशाल्लसार्वधातुकम् अनुदात्तमह्न्विङोः' ६.१.१८६ यह सूत्र है। इस से तास् को लसार्वधातुकानुदात्तत्व विधान किया गया है, जो विकरणस्वर से लसार्वधातुकस्वर के बाध न होने में प्रमाण है। 'करोति' में प्रत्ययस्वर से मध्योदात्त होकर शेष को निघात होने से आदि निघात नहीं हो सकेगा जो दोष है।

* लृटि प्रतिषेधात्सिद्धम् * **लृटि प्रतिषेधात् सिद्धमेतत्। यदयं लृटि प्रतिषेधं शास्ति तज्ज्ञापयत्याचार्योऽनन्त्यस्याऽप्यनुदात्तत्वं भवतीति। कथं कृत्वा ज्ञापकम्? न हि लृडन्तमन्तोदात्तमस्ति। ननु चेदमस्ति भोक्ष्य इति?**

'गत्वर्थ लोटा लृण्न चेत् कारकं सर्वान्यत्' ८.१.५१ सूत्र में लोट् से युक्त लृडन्त के सर्वानुदात्त का निषेध किया है। प्राप्ति होने पर ही निषेध होता है। जब कि लसार्वधातुक अनुदात्त होने से सम्पूर्ण लृडन्त मध्योदात्त होते हैं। इस तरह कहीं भी लृडन्तस्थलनिघात का प्रसङ्ग नहीं है, फिर निषेधवचन क्यों किया गया है? वह व्यर्थ पड कर ज्ञापन करता है—'अनन्त्य को अनुदात्त होता है', इस ज्ञापन से निषेध की सार्थकता हो जाती है। लृडन्त अन्तोदात्त कहीं भी नहीं होता है इस तरह निषेध व्यर्थ पड कर ज्ञापन किया। आप कैसे कहते हैं कि लृडन्त कहीं पर भी अन्तोदात्त नहीं होता है? 'भोक्ष्ये' यहाँ पर लृडन्त अन्तोदात्त है, फिर 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' ६.१.१५८ सूत्र से शेष को निघात होने से मध्यानुदात्तत्व हो गया। जिससे 'गत्यर्थलोटा लृण्न चेत् कारकं सर्वान्यत्' ८.१.५१ यह निषेध चरितार्थ हो जायेगा। जिससे ज्ञापक नहीं हो सकेगा। 'भोक्ष्ये' यह 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः'' ८.२.५ सूत्र से अन्तोदात्त है। यहाँ इसको निघात न हो, इसके लिए लृड्-ग्रहण किया गया। अब यहाँ जो निषेध है, वह 'सम्पूर्ण के निघात का निषेध करता है', यह अर्थ तब आयेगा जब 'अनुदात्तं सर्वमपदादौ' सूत्र में सर्वग्रहण करेंगे। अन्यथा 'अलोऽन्त्यस्य' १.१.५२ सूत्र से अन्त्य का ही निषेध होगा, सम्पूर्ण का नहीं, जो इष्ट नहीं है।

* उक्तं वा * **किमुक्तम्? 'न वा पदाधिकारस्य विशेषणत्वा'दिति। इदं तर्हि प्रयोजनम्—'युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वाम्नावा'विति वक्ष्यति; ते वाम्नावादयः सविभक्तिकस्य यथा स्यु'रिति।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Funding: MIDF

लृट् में सर्वानुदात्त निषेध के लिए प्रकृत सूत्र में सर्वग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है, इस बात को हम बता चुके हैं। वह इस तरह कि सूत्र में सर्वग्रहण न करने पर भी अधिक से अधिक लक्ष्यों की सिद्धि के लिए अनुदात्तविधि की कर्तव्यता में 'सर्वस्य' ८.१.१ को विशेषणषष्ठी मानेंगे, स्थानषष्ठी नहीं। तब सर्वग्रहण का प्रयोजन दूसरा देते हैं—**इदं तर्हीति**। सर्वग्रहण का प्रयोजन यह है कि 'युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वाम्नावौ' ८.१.२० ऐसा आदेश कहेंगे, वह आदेश सविभक्तिक को ही हो, केवल युष्मद् अस्मद् को न हो। यहाँ पर षष्ठी-एकवचन में 'ङसिङसोश्च' ६.१.११० सूत्र से असु परे रहते सर्वरूप एकादेश करने पर रूप में कोई भेद नहीं होने पर भी अन्य वचनों में रूपभेद होने से दोष होगा। परन्तु सर्वग्रहण करने पर युष्मद् अस्मद् शब्द से युष्मद् अस्मद् का अवयव समुदाय लक्षित है; अतः युष्मद् अस्मद् का अवयव सम्पूर्ण पद के स्थान में वाम् और नौ आदि आदेश होते हैं।

एतदपि नास्ति प्रयोजनम्। 'पदस्ये'ति हि वर्तते। विभक्त्यन्तं च पदम्। तत्राऽन्तरेण सर्वग्रहणं सविभक्तिकस्य भविष्यति। भवेत् सिद्धं यत्र विभक्त्यन्तं पदं, यत्र तु खलु विभक्तौ पदं तत्र न सिद्ध्यति—ग्रामो वां दीयते, ग्रामो नौ दीयते। जनपदो वां दीयते, जनपदो नौ दीयते।

अच्छा तो इस में दोष है, क्योंकि प्रकृत रूप में 'पदस्य' ८.१.१६ का अनुवर्तन होता है। जहाँ विभक्त्यन्त पद है, वहीं द्वितीया चतुर्थी एकवचन तथा षष्ठी विभक्त्यन्त आदेश होगा। परन्तु जहाँ पर 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' १.४.१७ सूत्र से विभक्ति पर रहते चतुर्थी द्विवचन में प्रकृति गात्र की पदसंज्ञा है वहाँ विभक्त्यन्त के स्थान में 'वाम् और नौ' आदेश सिद्ध नहीं हो सकेगा, अपितु वहाँ पदसंज्ञक प्रकृति को ही आदेश होने से दोष आ गया। जैसे—'ग्रामो वां=युवाभ्यां दीयते, ग्रामो नौ=आवाभ्यां दीयते' इत्यादि स्थलों में दोष होगा।

ननु च स्थग्रहणं क्रियते तेन सविभक्तिकस्यैव भवति। अस्त्यन्यत् स्थग्रहणस्य प्रयोजनम्। किम्? श्रूयमाणविभक्तिविशेषणं यथा विज्ञायेत—'यत्र विभक्तिः श्रूयते तत्र यथा स्युः'। इह मा भुव'न्नितियुष्मत् पुत्रो ददाति' 'इत्यस्मत्पुत्रो ददाती'ति।

अब कहते हैं कि 'युस्मदस्मदोः' ८.१.२० सूत्र में आचार्य ने स्थग्रहण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किया है। स्थग्रहण का प्रयोजन यह है कि 'वाम्' और 'नौ' आदेश सविभक्तिक को ही हों। नहीं जी! स्थग्रहण का वहाँ दूसरा प्रयोजन है। क्या प्रयोजन है? स्थग्रहण श्रूयमाण विभक्ति में विशेषण है—जहाँ विभक्ति श्रुत है वहाँ 'वाम्' और 'नौ' आदेश हों। जहाँ विभक्ति श्रुत नहीं है वहाँ उक्त आदेश न हों। जैसे—'इतियुष्मत्पुत्रो ददाति, इत्यस्मत्पुत्रो ददाति'। यहाँ विभक्ति श्रुत न होने से उक्त आदेश नहीं हुआ।

* 'समानवाक्ये निघातयुष्मदस्मदादेशाः' * **समानवाक्य इति प्रकृत्य निघातयुष्मदस्मदादेशा वक्तव्याः। किं प्रयोजनम्? नानावाक्ये मा भूवन्निति। अयं दण्डो हराऽनेन। ओदनं पच, तव भविष्यति, मम भविष्यति।**

'समानवाक्ये' ऐसा वचन पढ कर निघात, तथा युष्मद् और अस्मद् का आदेशविधान करना चाहिए। निघात तथा युष्मद् अस्मद्स्थानिक आदेश **'समानवाक्ये'**=एकवाक्य में ही हो। यह पढने का क्या प्रयोजन है? नाना वाक्य में निघात और युष्मद् अस्मद् स्थानिक आदेश का न होना ही प्रयोजन है। 'अथैकत्वाद् एकं वाक्यं साकाङ्क्षं चेद् विभागे स्यात्' यह लौकिक वाक्यलक्षण है। इसका अर्थ है—'विभागे सति साकाङ्क्षावयवकम् एकार्थबोधकं पदकदम्बकं वाक्यम्'। परन्तु प्रकृत में इस तरह का वाक्यलक्षण गृहीत नहीं है; अपितु यहाँ पर पारिभाषिक वाक्यलक्षण है—'आख्यातं साऽव्ययकारकविशेषणं वाक्यम्'। 'आख्यातम्' यहाँ पर एकत्व विवक्षित है। 'अयं दण्डो, हराऽनेन' यहाँ पर 'अयं दण्डोऽस्ति' तथा 'अनेन हर' इस दो तिङन्त पदों के प्रयोग से यह दो वाक्य है, एक नहीं। यहाँ पर 'अनेन' यह तृतीयान्त सर्वनाम पद दण्ड का परामर्शक होने से करण है तथा उसका अन्वय 'हर' में है; अतः सामर्थ्य होने से प्रकृत वाक्य में 'तिङ्ङतिङः' ८.१.२८ सूत्र से निघात का प्रसङ्ग उपस्थित हो गया। उसका वारण करने के लिए 'समानवाक्ये' ऐसा अधिकार करना चाहिए। इसी तरह 'ओदनं पच, तव भविष्यति, मम भविष्यति' यहाँ पर त्वत्कर्तृक पाक से त्वत्स्वामिक एवं मत्कर्तृक पाक से मत्स्वामिक ओदन होगा, इत्याकारक पाक तथा युष्मदर्थ व अस्मदर्थ की व्यपेक्षा होने से युष्मद् अस्मद् के स्थान में 'वाम् नौ' इत्यादि आदेश प्राप्त है, जो इष्ट नहीं है; अतः 'समानवाक्ये' ऐसा पढ कर निघात तथा युष्मदस्मद् आदेश कहना चाहिए।

* पश्यार्थैश्च प्रतिषेधः * **पश्यार्थैश्च प्रतिषेधः समानवाक्य इति प्रकृत्य वक्तव्यः। इतरथा हि यत्रैव पश्यार्थानां युष्मदस्मदी साधनं तत्र प्रतिषेधः स्याद्—ग्रामस्त्वां सम्प्रेक्ष्य संदृश्य समीक्ष्य गतः। ग्रामो मां**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संप्रेक्ष्य संदृश्य समीक्ष्य गतः। इह न स्याद्—ग्रामस्तव स्वं संप्रेक्ष्य संदृश्य समीक्ष्य गतः। ग्रामो मम स्वं संप्रेक्ष्य संदृश्य समीक्ष्य गतः।

विधि में 'समानवाक्ये' ऐसा ग्रहण करने के बाद प्रतिषेध के लिए अन्य-वार्तिक का आरम्भ करते हैं—**पश्यार्थैश्चेति**। **पश्यार्थ**=प्रेक्षण के अर्थ में विद्यमान धातु के साथ साक्षात् अथवा परम्परासम्बन्ध से योग होने पर युष्मदर्थ अस्मदर्थ आदेश का प्रतिषेध कहना चाहिए। 'संप्रेक्ष्य, संदृश्य, समीक्ष्य' ये पर्याय शब्द हैं, अतः इनका प्रयोग विकल्प से होगा। 'ग्रामस्त्वां समीक्ष्य गतः' ग्रामो मां समीक्ष्य गतः' यहाँ पर पश्यार्थक का योग होने से युष्मद् अस्मद् को आदेश-निषेध है। 'ग्रामस्तव स्वं समीक्ष्य गतः' 'ग्रामो मम स्वं समीक्ष्य गतः' यहाँ पर पश्यार्थक का योग स्वं के साथ सीधे है तथा युष्मदर्थ व अस्मदर्थ के साथ परम्परया है; अतः यहाँ युष्मद् अस्मद् आदेश का निषेध नहीं हो सकेगा। जब कि यहाँ भी निषेध इष्ट है। यहाँ भी निषेध हो, इसके लिए-'पश्यार्थैश्च प्रतिषेधः' यह वार्तिक पढना चाहिए। भाष्य में पश्यार्थ बताने के लिए 'संप्रेक्ष्य, संदृश्य व समीक्ष्य' का प्रयोग किया गया है। यदि केवल 'समानवाक्ये' ऐसा अधिकार नहीं करेंगे तो साक्षात्सम्बन्ध में चरितार्थ शास्त्र परम्परा सम्बन्ध में प्रवृत्त नहीं हो सकेगा। परन्तु समानवाक्याधिकार करने पर शास्त्र परम्परया युक्त स्थल में भी प्रवृत्त हो रहा है। 'समानवाक्ये' ऐसा अधिकार न होने से 'न चवाहाहैवयुक्ते' ८.१.२४ यह सूत्र परम्परासम्बन्ध में प्रवृत्त नहीं होता है। इसीलिए भाष्यकार ने 'पश्यार्थैश्च प्रतिषेधः' यही कहा है। {**अनुदात्तं सर्व-मपदादौ**}।

सपूर्वायाः प्रथमाया विभाषा ८.१.२६

*** युष्मदस्मदोरन्यतरस्यामनन्वादेशे * युष्मदस्मदोरन्यतरस्यामनन्वादेश इति वक्तव्यम्। ग्रामे कम्बलस्ते स्वम्, ग्रामे कम्बलस्तव स्वम्। ग्रामे कम्बलो मे स्वम्, ग्रामे कम्बलो मम स्वम्। अनन्वादेश इति किमर्थम्? अथो ग्रामे कम्बलस्ते स्वम्। अथो ग्रामे कम्बलो मे स्वम्।**

सपूर्वायाः—विद्यमान अर्थ का वाचक सह पद के साथ पूर्वपद का समास होकर 'वोपसर्जनस्य' ६.३.८२ सूत्र से 'सह' को सभाव हुआ है। 'प्रथमायाः'—यहाँ प्रत्यय का ग्रहण होने से तदन्तविधि है' अतः सूत्रार्थ हुआ—'विद्यमान पूर्व प्रथमान्त से पर में युष्मद् अस्मद् को अन्वादेश होने पर भी 'वाम् नौ' आदि आदेश विकल्प से हों'। अन्वादेश में ये आदेश नित्य होते हैं। परन्तु

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कहीं पर अन्वादेश में भी विकल्पविधान के लिए ये सूत्र हैं। 'सपूर्वायाः'— यहाँ पर 'विद्यमानं पूर्वं यस्याः सा सपूर्वा तस्याः', ऐसा विग्रह समझना चाहिये। 'किञ्चित् कार्यं विधातुमुपात्तस्य कार्यान्तरं विधातुं पुनरुपादानमन्वादेशः' यह अन्वादेश है। जैसे—'हे देवदत्त! भक्तस्त्वमप्यहं तेन हरिस्त्वां त्रायते स माम्' यहाँ पर अन्वादेश होने से 'त्वा मा' यह भी आदेश विकल्प से होगा।

अनन्वादेश स्थल में युष्मद् और अस्मद् को विकल्प से 'वाम् नौ' आदि आदेश कहना चाहिए। जैसे—'ग्रामे कम्बलस्ते स्वम्, ग्रामे कम्बलस्तव स्वम्। ग्रामे कम्बलो मे स्वम्, ग्रामे कम्बलो मम स्वम्'। इन अन्वादेश स्थलों में 'ते मे' आदेश विकल्प से हुआ है। यदि अनन्वादेश नहीं कहेंगे तो अन्वादेश में भी विकल्प होने लगेगा। जैसे—'अथो ग्रामे कम्बलस्ते स्वम्, अथो ग्रामे कम्बलो मे स्वम्'। यहाँ पर अन्वादेश होने से नित्य 'ते मे' आदेश है।

अपर आह—

*** सर्व एव वान्नावादयोऽनन्वादेशे विभाषा वक्तव्याः * कम्बलस्ते स्वम्, कम्बलस्तव स्वम्। कम्बलो मे स्वम्, कम्बलो मम स्वम्। अनन्वादेश इति किमर्थम्? अथो कम्बलस्ते स्वम्, अथो कम्बलो मे स्वम्। न तहीदानीमिदं वक्तव्यं—'सपूर्वायाः प्रथमाया विभाषे'ति? वक्तव्यञ्च। किं प्रयोजनम्? 'अन्वादेशार्थम्'। अन्वादेशे विभाषा यथा स्यात्। अथो ग्रामे कम्बलेस्ते स्वम्। अथो ग्रामे कम्बलस्तव स्वम्। अथो ग्रामे कम्बलो मे स्वम्। अथो ग्रामे कम्बलो मम स्वम्। {सपूर्वायाः प्रथमायाः}।**

दूसरे कहते हैं—

अनन्वादेश में 'वां नौ आदि' सभी आदेश विकल्प से कहना चाहिये। जैसे—'कम्बलस्ते स्वम्, कम्बलस्तव स्वम्। कम्बलो मे स्वम्, कम्बलो मम स्वम्।' इन स्थलों में अनन्वादेश होने से युष्मद् अस्मद् को विकल्प से आदेश होता है। 'अनन्वादेश में विभाषा होता है', यह कहने से जहाँ अन्वादेश है वहाँ नित्य आदेश होगा। जैसे—'अथो कम्बलस्ते स्वम्, अथो कम्बलो मे स्वम्।' यदि अनन्वादेश में विकल्प विधि है तो 'सपूर्वायाः प्रथमाया विभाषा' यह सूत्र नहीं पढना चाहिये। ऐसा नहीं है। इस सूत्र का पाठ अवश्य करना चाहिए। इसका क्या प्रयोजन है? अन्वादेश स्थल में विकल्प से आदेशविधान के लिए सूत्र आवश्यक है। जैसे—'अथो ग्रामे कम्बलस्ते स्वम्, अथो ग्रामे कम्बलस्तव स्वम्'। इससे यह सिद्ध हुआ कि अन्वादेश तथा अनन्वादेश इन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दोनों स्थलों में 'सपूर्वायाः प्रथमाया विभाषा' यह विधि होता है। {सपूर्वायाः प्रथमाया विभाषा}।

तिङो गोत्रादीनि कुत्सनाभीक्ष्ण्ययोः ८.१.२७

किमिदं तिङो गोत्रादिषु कुत्सनाभीक्ष्ण्यग्रहणं पाठविशेषणं—'कुत्सनाऽऽभीक्ष्ण्ययोरर्थयोर्गोत्रादीनि भवन्ति तिङः पराण्यनुदात्तानी'ति, आहोस्विद् अनुदात्तविशेषणं—'तिङः पराणि गोत्रादीनि कुत्सनाऽऽभीक्ष्ण्य- योरर्थयोरनुदात्तानि भवन्ती'ति?

'तिङन्त पद से पर में गोत्रादिगणपठितशब्द कुत्सन और आभीक्ष्ण्य अर्थ गम्य होने पर अनुदात्त होते हैं'। यह सूत्रार्थ है। जैसे—पचति गोत्रम्'। 'पचति पचति गोत्रम्=स्वं कुलम्'। यहाँ 'पीडयति' अर्थ गम्य है, अतः 'गोत्रम्' को अनुदात्त हुआ। इसी तरह गणपठित ब्रव प्रवचन प्रहसन प्रकथन प्रत्ययन प्रपञ्च प्राय न्याय प्रचक्षण विचक्षण अवचक्षण स्वाध्याय भूयिष्ठ वानाम शब्दों को भी तिङन्त से पर में अनुदात्त समझना चाहिए।

अब यहाँ शङ्का होती है कि क्या कुत्सन और आभीक्ष्ण्यग्रहण पाठविशेषण है अथवा अनुदात्तविशेषण है? यदि कुत्सन और आभीक्ष्ण्य को पाठ= 'पठ्यते इति पाठः' गोत्रादि का विशेषण मानेंगे तो 'कुत्सन और आभीक्ष्ण्य अर्थ में शक्त होने पर तिङ् से पर में गोत्रादि अनुदात्त होते हैं' यह अर्थ होगा। यदि अनुदात्त विशेषण मानेंगे तो 'तिङन्त से पर में गोत्रादि कुत्सन और आभीक्ष्ण्य अर्थ में अनुदात्त हो'. ऐसा अर्थ होगा।

* तिङो गोत्रादिषु कुत्सनाभीक्ष्ण्यग्रहणं पाठविशेषणम् * **तिङो गोत्रादिषु कुत्सनाभीक्ष्ण्यग्रहणं क्रियते। किं प्रयोजनम्? 'पाठविशेषणम्'। पाठो विशेष्यते।**

गोत्रादि में कुत्सन और आभीक्ष्ण्य पाठविशेषण है। तिङ् से पर गोत्रादि में कुत्सन और आभीक्ष्ण्यग्रहण किया जा रहा है। इसका प्रयोजन क्या है? इसका प्रयोजन है—पाठ का विशेषण करना। पाठ कुत्सन और आभीक्ष्ण्य का विशेष्य है। यदि कुत्सन और आभीक्ष्ण्य को अनुदात्त का विशेषण मानेंगे तो जहाँ अन्यत्र सूत्रों में गोत्रादि का ग्रहण है, वहाँ कुत्सन और आभीक्ष्ण्य का ग्रहण करना होगा। जैसे—'चनचिदिवगोत्रादितद्धिताम्रेडितष्वगतेः' ८.१.५७ सूत्र में गोत्रादि का ग्रहण किया गया है। इन छहों के परे रहते अगतिसंज्ञक तिङन्त को अनुदात्त का निषेध है। इसमें गोत्रादि का भी पाठ है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

*** अनुदात्तविशेषणे ह्यन्यत्र गोत्रादिग्रहणे कुत्सनाभीक्ष्ण्यग्रहणम् * अनुदात्तविशेषणे हि सत्यन्यत्र गोत्रादिग्रहणे कुत्सनाभीक्ष्ण्यग्रहणं कर्तव्यं स्यात्—'चनचिदिवगोत्रादितद्धिताम्रेडितेष्वगते'रिति। 'कुत्सनाभीक्ष्ण्ययो'रिति वक्तव्यं स्यात्।**

यदि 'तिङो गोत्रादिषु कुत्सनाभीक्ष्ण्ययोः' सूत्र में कुत्सन और आभीक्ष्ण्य को अनुदात्त का विशेषण मानेंगे तो 'चनचिदिवगोत्रादितद्धिताम्रेडितष्वगतेः' ८.१.५७ सूत्र में जहाँ गोत्रादि का ग्रहण है, वहाँ पुनः कुत्सन और आभीक्ष्ण्य ये दोनों शब्द पढने पडेंगे। पाठविशेषण होने में अन्यत्र नहीं पढना पडता है, अतः उक्त को पाठविशेषण मानना चाहिये, अनुदात्त विशेषण नहीं।

*** अनुदात्तग्रहणं वा * अथवा 'यान्यनुदात्तानी'ति वक्तव्यं स्यात्। तस्मात् सुष्ठूच्यते—'तिङो गोत्रादिषु कुत्सनाभीक्ष्ण्यग्रहणं पाठविशेषणमनुदात्तविशेषणे ह्यन्यत्र गोत्रादिग्रहणे कुत्सनाभीक्ष्ण्यग्रहणमनुदात्तग्रहणं वे'ति।**

अथवा जहाँ अन्यत्र गोत्रादि का ग्रहण है वहाँ अनुदात्त ग्रहण करना पडेगा—'यान्यनुदात्तानि' ऐसा, अतः आप ने ठीक ही कहा कि इस सूत्र में गोत्रादि कुत्सन आभीक्ष्ण्य विषय ही है। यदि अनुदात्त का विशेषण मानेंगे तो जहाँ अन्यत्र गोत्रादि का ग्रहण है वहाँ कुत्सन और आभीक्ष्ण्य ग्रहण अथवा अनुदात्त ग्रहण करना पडेगा जो गौरव है। पाठविशेषण मानेंगे में यह गौरव नहीं अता है। **(तिङो गोत्रादीनि-)**।

तिङ्ङतिङः ८.१.२८

'अतिङ' इति किमर्थम्? पचति करोति * अतिङ्वचनमनर्थकं समानवाक्याधिकारात् * अतिङ्वचनमनर्थकम्। किं कारणम्? 'समानावाक्याधिकारात्'। समानवाक्य इति वर्त्तते, न च समानवाक्ये द्वे तिङन्ते स्तः (तिङ्ङतिङः)।

सूत्रार्थ—'अतिङन्त पद से पर में तिङन्त पद को निघात=सर्वानुदात्त होता हो'। 'अग्निमीळे'।

'अतिङः' ऐसा निषेध वचन क्यों पढते हैं? यह इसलिए कि 'पचति, करोति' यह एक वाक्य है। इसका 'पाकानुकूलव्यापारं करोति' शब्दबोध होता है। यदि अतिङ् निषेध नहीं पढेंगे तो 'पचति करोति' स्थल में 'करोति' को भी निघात हो जायेगा जो इष्ट नहीं है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Funding: MIDF

सूत्र में अतिङ् यह निषेधवचन नहीं पढना चाहिए। क्योंकि 'समानवाक्ये' ऐसा अधिकार करके 'तिङ्ङतिङः' ऐसा पढा है। वार्तिककार वाक्य का लक्षण 'एकतिङ् वाक्यम्' पढते हैं। इसका अर्थ 'एकतिङ्विशेष्यकं वाक्यम्' ऐसा है। 'पचति करोति' स्थल में कृधात्वर्थविशेष्यक पच्धात्वर्थविशेषणक एक ही बोध होता है। 'समानवाक्य में दो तिङ् नहीं होते हैं', यह कथन एकदेशी का है। सिद्धान्ततः दो तिङ्पदघटित भी वाक्य होते हैं। इसे श्री हरि जी ने भी कहा है—

'तथा तिङन्तमप्याहुस्तिङन्तस्य विशेषणम्' ऐसा।

अतः समानवाक्य में भी तिङ् होता ही है तथा 'पचति करोति' स्थल में करोति को निघात निषेध के लिए 'अतिङ्' चरितार्थ है। 'पश्य मृगो धावति' यहाँ दो तिङन्तपदघटित की एकवाक्यता भाष्यकार ने भी मानी है। यदि दो तिङन्तपदघटित वाक्य में 'तिङ्ङतिङः' प्रवृत्त नहीं होता है, ऐसा अर्थ माना जाये तो यह यहाँ के भाष्य से नहीं आता है। {तिङ्ङतिङः}।

निपातैर्यद्यदिहन्तकुविन्नेच्चेच्चण्कच्चिद्यत्रयुक्तम् ८.१.३०

निपातैरिति किमर्थम्? यत्कूजति शकटम्। यती कूजति शकटी। यन् रथः कूजति। निपातैरिति शक्यमवक्तुम्। कस्मान्न भवति—यत्कूजति शकटम्, यती कूजति शकटी, यन् रथः कूजतीति? 'लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैवे'ति। नैषा परिभाषेह शक्या विज्ञातुम्, इह हि दोषः स्याद्—यावद्यथाभ्याम्। इह न स्यात्-यावदस्त्यत्रैषः सरोजनेभ्यः कृणात्।

निपातैरिति। 'निपातैः' तृतीयाबहुवचनान्त 'यद्यदि कच्चिद्यत्र' लुप्ततृतीयाक प्रथमैकवचनान्त, युक्तम् प्रथमैकवचनान्त है। यह तीन पद का सूत्र है। 'न लुट्' ८.१.२९ सूत्र से 'न' इस निषेध का वाचक अव्ययपद तथा 'अनुदात्तं सर्वमपदादौ' ८.१.१८ सूत्र से 'अनुदात्तम्' का अनुवर्तन होता है। सूत्रार्थ हुआ—'यद् यदि, हन्त, कुवित, नेत्, चेत्, चण् कच्चित् और यत्र इन निपातों के साथ युक्त तिङन्त पद का निघात नहीं होता है'। इन निपातों का अर्थ कोशकार इस प्रकार देते हैं—

यद् यदार्थे च हेतौ च विचारे यदिचेच्चणः।
हन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयोः।।
कच्चित् प्रश्ने नेत् निषेधे प्रशंसायां कुवित्स्मृतम्।
यत्रेत्याधारे तत्र मूले कुविदुदाहृतः।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकृत सूत्र में निपातग्रहण का क्या प्रयोजन है? उसका प्रयोजन है—'यत्कूजति शकटम्, यती कूजती शकटी, यन् रथः कूजति'। यहाँ पर सर्वत्र आङ्पूर्वक गत्यर्थक इण् गतौ धा.पा.१०४५ धातु से 'कर्ता मे शतृप्रत्यय करके 'एति इति यत्, यती व यन्' ऐसा रूप बना है। धातु को यण् करके नपुंसक में 'यत्', पुँलिङ्ग में 'यन्' तथा स्त्रीलिङ्ग में 'यती' रूप है। यदि प्रकृत सूत्र में निपातग्रहण नहीं करेंगे तो उक्त उदाहरणों में जहाँ गत्यर्थक इण् धातु का 'यत्, यती व यन्' रूप है, वहाँ भी निघात का निषेध होने लगेगा जो वाञ्छित नहीं है; अतः निपातग्रहण किया है। 'प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्' (प.७२) परिभाषा से यत् से 'यती' का ग्रहण होगा। अच्छा तो सूत्र में 'निपातैः' का ग्रहण मत कीजिए। यदि निपातैः का ग्रहण नहीं करेंगे तो 'यत्कूजति शकटम्' इत्यादि स्थलों में निघात क्यों नहीं होता है? वह इसलिए नहीं होता है कि 'लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणम्' (प.११४) परिभाषा से प्रतिपदोक्त यत् के ग्रहण होने से लाक्षणिक यत्, यती व यन् नहीं लिए जायेंगे। लाक्षणिक का स्वरूपनिश्चय अनुमान से होता है तथा प्रतिपदोक्त का प्रत्यक्ष से। इस तरह 'प्रत्यक्षानुमानयोः प्रत्यक्षस्य बलवत्त्वम् अविलम्बित-प्रतीतिरूपत्वात्' न्याय से प्रत्यक्ष यत् में ही निषेध करेगा, लाक्षणिक में नहीं। परन्तु प्रकृत स्थल में आप इस न्याय का आश्रयण नहीं ले सकते हैं। इस न्याय का आश्रयण करने में यावद् और यथा के योग में निषेधप्रतिषेध नहीं हो सकेगा। जैसे—'यावदस्त्यत्रैषः संरोजनेभ्यः कृणात्'। यहाँ पर 'यत्परिमाणस्य' इस अर्थ में यह मतुबन्त प्रयोग है; अतः लाक्षणिक होने से कृवि हिंसायाम् धा.पा.५९८ धातु से 'कृणात्' इस लेडन्तप्रयोग के निघात का प्रतिषेध नहीं हो सकेगा। 'निपातैः' ऐसा पढने से निपात का ही निषेध करेगा 'यावद्' यह निपात नहीं है। यदि प्रायोगिक रूप लेंगे तब शास्त्र की अपेक्षा न करने से 'लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणम्' (प.११४) परिभाषा उपस्थित नहीं होगी। शास्त्रीयप्रक्रिया में कल्पित प्रकृति और प्रत्यय का ग्रहण होता है, वास्तविक का नहीं। जब कि प्रयोग में वास्तविक का ग्रहण है, अतः शास्त्रीय-प्रक्रिया के समकक्ष प्रयोग को दिखाना उचित नहीं है। इसलिए प्रकृत सूत्र में 'लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणम्' (प.११४) परिभाषा नहीं लगती है।

*** चण्णिद्विशिष्टश्चेदर्थे * चण्णिद्विशिष्टश्चेदर्थे द्रष्टव्यः। 'अयं च वै मरिष्यति'। अयं चेन्मरिष्यति न च पितृभ्यः पूर्वेभ्यो दास्यति। अप्रायश्चित्तिकृतौ च स्याताम्।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Funding: MIDF

चेदर्थे=आशङ्का अवधारण आदि अर्थों में विद्यमान णकार इत्संज्ञक चण् से युक्त तिङन्त का निघात नहीं होता है। 'अयं च वै मरिष्यति'। यहाँ पर आशङ्का गम्य है। अथवा अप्यर्थ गम्य है—'अपि मरिष्यति अयं न च दाष्यति पितृभ्यः पूर्वेभ्यः'। यहाँ 'न च' से 'नैव' अर्थ भी समझना चाहिये। इससे अवधारण अर्थ भी हो गया। 'प्रायश्चित्तिकृतौ च स्याताम्' इस स्थल में भी अवधारण गम्य है। इसका अन्वय पूर्वोक्त से है—'अयं चेन्मरिष्यति अप्रायश्चित्तिः च स्यात्=प्रायश्चित्तं न स्यात्' ऐसा अर्थ है। एवम् 'अयं चेन्मरिष्यति कृतश्च स्यात्' ऐसा अवधारण गम्य होने से पूर्वोक्त स्थलों में णकार इत्संज्ञक चण् का योग है, अतः तद्युक्त होने पर तिङन्त पद को निघात का निषेध हो गया। अब यहाँ यह ध्येय है कि समुच्चय आदि अर्थों में ही 'च' शब्द देखा गया है, परन्तु वह चेत् अर्थ में भी शक्त होगा। इसमें प्रमाण इत्संज्ञक णकार है, यह भाष्य का अभिप्राय समझना चाहिए। {**निपातैर्यद्यदिहन्तकुवित्**}।

छन्दस्यनेकमपि साकाङ्क्षम् ८.१.३५

'अनेक'मिति किमुदाहरणम्? यदा ह्यसौ मत्तो भवति अथ यत्तपति। नैतदस्ति। एकमत्र हियुक्तमपरं तद्युक्तन्तत उभयोरप्यनिघातः।

'छन्दसि' सप्तम्येकवचनान्त, 'अनेकम्' प्रथमैकवचनान्त, 'अपि' अव्यय पद 'साकाङ्क्षम्' प्रथमैकवचनान्त समस्तपद होने से यह चार पदों का सूत्र है। इस में पूर्व सूत्र 'न लुट्' ८.१.२९ से 'न', 'हि च' ८.१.३४ से 'हि', 'निपातैः-' ८.१.३० से 'युक्तम्', 'तिङ्ङतिङः' ८.१.२८ से 'तिङ्' तथा 'अनुदात्तं सर्वमपदादौ' ८.१.१८ से 'अनुदात्तम्' की अनुवृत्ति होने से सूत्रार्थ हुआ—'हि' इस पद से युक्त अनेक साकाङ्क्ष तिङन्तपद भी निघात नहीं होते हैं'। सूत्र में 'अपि' शब्द पढा गया है। उसका अभिप्राय है कि अनेक साकाङ्क्ष तिङन्त पदों का निघात निषिद्ध तो होगा, 'हि' से युक्त एक तिङन्त का भी निघात निषिद्ध हो जायेगा।

अब प्रश्न करते हैं कि 'अनेकम्' इसका उदाहरण क्या है? उत्तर देते हैं—'यदा ह्यसौ मत्तो भवति अथ यत्तपति' यहाँ 'हि' से युक्त परस्पर साकाङ्क्ष अनेक तिङन्त 'भवति' तथा 'तपति' हैं, उनका निघात नहीं हुआ। इसका खण्डन करते हैं—**नैतदिति**। यह उदाहरण नहीं हो सकता है। क्योंकि यहाँ पर 'भवति, हि' से युक्त है तथा 'तपति' 'यद्' से युक्त है। 'भवति' तथा 'तपति' ये दोनों 'हि' से युक्त नहीं हैं; अतः प्रकृत का ये उदाहरण नहीं बन सकते हैं। 'भवति' का निघात 'हि' से युक्त होने से 'हि च' ८.१.३४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूत्र से निषिद्ध है तथा 'यत्' युक्त होने से 'तपति' का निघात 'निपातैः यद्यदि-' ८.१.३० सूत्र से निषिद्ध है। पुनः दूसरा उदाहरण क्या होगा?

इदं तर्हि 'अनृतं हि मत्तो वदति पाप्मा एनं विपुनाति'। एकं खल्वपि 'अग्निर्हि पूर्वमुदजयत्तमिन्द्रोऽनूदजय'दिति। {छन्दस्यनेकमपि साकाङ्क्षम्}।

पूर्वपक्ष में उदाहरण ठीक नहीं होने से पुनः दूसरा उदाहरण देते हैं— 'अनृतं हि मत्तो वदति पाप्मा एनं विपुनाति', तथा 'एकं खल्वपि अग्निर्हि पूर्वमुदजयत् तमिन्द्रोऽनुदजयत्'। यहाँ पर दोनों ही मन्त्र 'हि' युक्त है, तथा उभयत्र अनेक तिङन्त 'हि'युक्त साकाङ्क्ष है जिनका निघात प्रकृत सूत्र से निषिद्ध है। {छन्दस्यनेकमपि साकाङ्क्षम्}।

तुपश्यपश्यताऽहैः पूजायाम् ८.१.३९

'पूजाया'मिति वर्तमाने पुनः पूजाग्रहणं किमर्थम्? अनिघातप्रतिषेधाऽभिसम्बद्धं तत्। यदि तदनुवर्त्तेत इहाप्यनिघातप्रतिषेधः प्रसज्येत। इष्यते चाऽत्र निघातप्रतिषेधः। यथा पुनस्तत्र यावद्यथेत्येताभ्यामनिघाते प्राप्तेऽनिघातप्रतिषेध उच्यते इहेदानीं केनाऽनिघाते प्राप्तेऽनिघातप्रतिषेध उच्येत? इहापि 'यद्वृत्तान्नित्य'मित्येवमादिभिः। {तुपश्यपश्य}।

पूर्व सूत्र से प्रकृत सूत्र में 'तिङ्, युक्तम्, न' तथा 'अनुदात्तम्' का अनुवर्तन है एवं 'पदस्य' का अधिकार भी है। सूत्रार्थ होगा—'तु, पश्य, पश्यत तथा अह से युक्त होने पर तिङन्तपद का निघात नहीं होता है'। जैसे—'आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे' यहाँ पर अह से युक्त 'एरिरे' का निघात निषिद्ध है। इसी तरह 'माणवकस्तु भुङक्ते' यहाँ तु शब्द आश्चर्य में होने से भोजन की पूजा गम्य है। 'पश्य माणवको भुङ्क्ते, पश्यत माणवको भुङ्क्ते' इत्यादि स्थलों में भी समझना चाहिए। उपर्युक्त में सर्वत्र निघात निषिद्ध है।

अब यहाँ भाष्यकार पूर्वपक्ष करते हैं कि पूर्वसूत्र 'पूजायां नानन्तरम्' ८.१.३७ से 'पूजायाम्' इस सप्तम्यन्त पद की अनुवृत्ति 'तुपश्यपश्यताहैः' में होने से 'पूजायाम्' अर्थ का लाभ सुतरां हो जाता है; पुनः प्रकृत में 'पूजायाम्' यह सप्तम्यन्त पद का ग्रहण क्यों किया? इसका उत्तर देते हैं—'पूजायां नानन्तरम्' सूत्र में 'पूजायाम्' अनिघातप्रतिषेध के लिए है, अर्थात् वहाँ पर 'यावद्यथाभ्याम्' ८.१.३६ सूत्र से अनिघात प्राप्त है, उस अनिघात को 'पूजायां नानन्तरम्' ८.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Funding: MIDF

१.३७ से निषेध किया जा रहा है। यदि वहाँ से 'पूजायाम्' का अनुवर्तन करते तो प्रकृत सूत्र में भी अनिघात प्रतिषिद्ध होता। जबकि प्रकृत सूत्र में निघात का प्रतिषेध इष्ट है, अतः पुनः 'पूजायाम्' का ग्रहण किया गया। जैसे—'यावद्यथाभ्याम्' ८.१.३६ सूत्र से अनिघात प्राप्त होने पर 'पूजायां नानन्तरम्' ८.१.३७ सूत्र से अनिघात का प्रतिषेध किया। वैसे प्रकृत में किस सूत्र में अनिघात प्राप्त होगा जिसका निषेध कहेंगे, अर्थात् किसी से भी प्रकृत स्थल में अनिघात प्राप्त नहीं है। प्राप्ति होने पर ही निषेध होता है, अतः अनिघात के अप्राप्त होने से उसका निषेधक 'पूजायाम्' की आवृत्ति नहीं हुई। इसलिए प्रकृत सूत्र में 'पूजायाम्' ऐसा पढा गया। भाष्यकार ने यथा पुनस्तत्र से प्रारम्भ कर अनिघातप्रतिषेध उच्यते यहाँ तक पूर्व पक्ष उठाया है कि-निघात की प्राप्ति नहीं होने से उसका प्रतिषेध भी संभव नहीं है। अब यहाँ निघात की प्राप्ति दिखा कर उत्तर देते हैं—**इहापीति**। प्रकृत सूत्र में भी 'यद्वृत्तान्नित्यम्' ८.१.६६ सूत्र तथा उसके आगे के सूत्रों से निघात प्राप्त है जिसका निषेध 'तुपश्यपश्यताऽहैः पूजायाम्' ८.१.३९ सूत्र से किया गया। {**तुपश्यपश्यताहैः**}।

एहि मन्ये प्रहासे लृट् ८.१.४६

किमर्थमिदमुच्यते, न 'गत्यर्थलोटा लृ'डित्येव सिद्धम्।

आङ्+इण् गत्यर्थक धातु से लोट् लकार मध्यम पुरुष प्रथमैकवचन में सिप् को 'हि' आदेश करके 'एहि' रूप है। सूत्रार्थ है—'एहिमन्ये' इससे युक्त लृडन्त प्रहास गम्य होने पर अनुदात्त नहीं होता है।

अच्छा तो उत्तर सूत्र 'गत्यर्थलोटा लृण्न चेत्कारकं सर्वान्यत्' ८.१.५१ से ही प्रकृत विषय में भी तिङन्त के अनुदात्त का निषेध हो जायेगा, फिर अनुदात्त का निषेध सिद्ध होने पर भी उसी कार्य के लिए अन्य सूत्र क्यों किया है?

* नियमार्थोऽयमारम्भः * **नियमार्थोऽयमारम्भः—'एहि मन्ये प्रहास एव यथा स्यात्'। क्व मा भूत्? एहि मन्ये रथेन यास्यसीति।** {एहि मन्ये प्रहासे लृट्}।

नियम के लिए 'एहिमन्ये प्रहासे लृट्' सूत्र किया है। 'सिद्धे सति आरभ्यमाणो विधिः नियमाय कल्प्यते'। नियम का स्वरूप होगा—'प्रहासगम्य होने पर ही एहिमन्ये से युक्त लृट् के सर्वानुदात्त का निषेध हो, अन्यत्र नहीं'। जैसे—'एहि मन्ये ओदनं भोक्ष्ये, भुक्तः सोऽतिथिभिः'। यहाँ प्रहास गम्य है तथा एहि व मन्ये से युक्त लृडन्त भोक्ष्ये है। उसी के निघात का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निषेध होगा। यहाँ 'मन्यसे भोक्ष्यसे' इस अर्थ में 'प्रहासे च मन्योपपदे मन्यतेरुत्तम एकवच्च' १.४.१०६ सूत्र से पुरुष व्यावर्त्त्य है। तो फिर इस नियम का व्यावर्त्य क्या है? इसका व्यावर्त्य है—'एहि मन्ये रथेन यास्यसि'। यहाँ प्रहास अर्थ गम्य नहीं होने पर भी आगमन और मनन का कर्ता भिन्न है, अतः 'मन्ये' में उत्तम प्रयोग है। यहाँ प्रहास गम्य नहीं होने से 'यास्यसि' इस लृडन्त पद को निघात हो जाता है। यदि इसी वाक्य से प्रहास गम्य होता तो-'एहि मन्ये रथेन यास्यसि' ऐसा प्रयोग एककर्तृक ही होगा तथा 'रथेन यास्यामि यदि त्वं मन्यसे' ऐसा अर्थ होगा। इस अर्थ में मन्ये का मन्यसे अर्थ होने से एहि और मन्ये का कर्ता एक ही हुआ। {**एहि मन्ये-**}।

जात्वपूर्वम् ८.१.४७

किमिदमपूर्वग्रहणं जातुविशेषणं—'जातुशब्दादपूर्वात्तिङन्त'मिति, आहोस्वित् तिङन्तविशेषणं—'जातुशब्दात् तिङन्तमपूर्व'मिति? जातुविशेषणमित्याह। कथं ज्ञायते? यदयं 'किंवृत्तं च चिदुत्तर'मित्याह। कथं कृत्वा ज्ञापकम्? अत्राऽप्यपूर्वमित्येतद् अनुवर्तते न चास्ति सम्भवो यत्किवृत्तं च चिदुत्तरं स्यात्तिङन्तं चाऽपूर्वम्। अत्रापि तिङन्तविशेषणमेव स्यात्। कथम्? किंवृत्ताच्चिदुत्तरात् तिङन्तमपूर्वमिति। यत्तर्हि 'आहो उताहो चानन्तरम्' इत्यनन्तरग्रहणं करोति। एतस्याप्यस्ति वचने प्रयोजनम्। किम्? शेषप्रक्लृप्त्यर्थमेतत्स्यात्—'शेषे विभाषा'। कश्च शेषः? सान्तरं शेष इति। अन्तरेणाऽप्यनन्तरग्रहणं प्रक्लृप्तः शेषः। कथम्? 'अपूर्व' इति वर्तते। {जात्वपूर्वम्}।

'जातु' अव्यय पद तथा 'अपूर्वम्' प्रथमैकवचनान्त होने से यह दो पदों का सूत्र है। इसमें 'न, तिङ्, सर्वस्य, अनुदात्तम्' इन पदों का अनुवर्तन होता है। 'अपूर्वम्' में 'अविद्यमानं पूर्वं यस्य तद् अपूर्वम्', यहाँ 'नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः' वार्त्तिक से बहुव्रीहि समास है। सूत्र में 'अपूर्वम्' पद 'जातु' का विशेषण है, तिङन्त का नहीं। इसमें प्रमाण 'आहो उताहो चानन्तरम्' ८.१.४९ सूत्र में अनन्तरम् ग्रहण है। अन्यथा उत्तर सूत्र में पूर्वसूत्र से 'अनन्तरम्' की अनुवृत्ति हो जाती तथा केवल तिङन्त का ही आनन्तर्य लभ्य हो जाता है। फिर अनन्तरम्ग्रहण व्यर्थ पड कर ज्ञापन करता है कि प्रकृत सूत्र में अपूर्वम् जातु का विशेषण है, तिङन्त का नहीं।

सूत्र में अपूर्वग्रहण जातु का विशेषण है, अथवा तिङन्त का? यदि जातु

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का विशेषण है तो 'अपूर्व जातु शब्द से पर में तिङन्त को अनुदात्त न हो' यह अर्थ होगा। यदि तिङन्त का विशेषण मानेंगे तो 'जातु शब्द से पर में अपूर्व तिङन्त अनुदात्त न हो" ऐसा अर्थ होगा। अपूर्व को जातु का ही विशेषण मानना चाहिए। इसमें प्रमाण क्या है? इसमें उत्तर सूत्र 'किंवृत्तं च चिदुत्तरम्' ८.१.४८ सूत्र प्रमाण है। यह सूत्र उक्त विषय का ज्ञापक कैसे होगा? यह ज्ञापक ऐसे होगा कि 'जात्वपूर्वम्' सूत्र से 'किंवृत्तं च चिदुत्तरम्' ८.१.४८ सूत्र में 'अपूर्वम्' पद की अनुवृत्ति होती है। परन्तु यह सम्भव नहीं है कि तिङन्त किंवृत्त भी हो तथा चिदुत्तर भी हो। अच्छा तो उत्तर सूत्र में अपूर्वग्रहण की अनुवृत्ति इसका प्रमाण नहीं बन सकती है। हम उत्तर सूत्र में भी अपूर्व को तिङन्त का ही विशेषण मानेंगे। अर्थ होगा—किंवृत्त तथा चिदुत्तर से पर में अपूर्व तिङन्त को निघात न हो। इसका फल यह है कि 'कश्चिद् भुङ्क्ते' इत्यादि स्थलों में ही निघात का निषेध होगा, परन्तु 'कश्चित् पुरुषो भुङ्क्ते' इत्यादि स्थलों में जहाँ व्यवधान है, वहाँ निषेध न हो, तदर्थ उत्तर सूत्र में अपूर्व पद को तिङन्त का ही विशेषण मानना चाहिए। अच्छा तो इस पक्ष में ज्ञापक 'आहो उताहो चानन्तरम्' ८.१.४९ सूत्र में अनन्तरग्रहण है। जी नहीं, उक्तार्थ में यह भी प्रमाण नहीं हो सकता है। अनन्तरग्रहण का भी दूसरा प्रयोजन है। क्या प्रयोजन है? 'शेषे विभाषा' ८.१.५० सूत्र में शेषार्थ लाभ के लिए अनन्तरग्रहण चरितार्थ है। 'किंवृत्तं च चिदुत्तरम्' ८.१.४८ तथा 'आहो उताहो चानन्तरम्' ८.१.४९ सूत्र से युक्त व्यवहित तिङन्त अनुदात्त विकल्प से हो, यह 'शेषे विभाषा' ८.१.५० का अर्थ है। शेष क्या है? शेष वह है जो व्यहित हो। 'उक्तादन्यः शेषः'। अव्यवहित कह दिया गया, अतः व्यवहित ही शेष है। यह कोई आवश्यक नहीं है। अव्यवहित कह दिया गया, अतः व्यवहित ही शेष है। यह कोई आवश्यक नहीं है कि अनन्तरग्रहण से ही व्यवहित अर्थ को शेष समझा जाये, अपितु अनन्तरग्रहण किये विना भी शेष व्यवहित अर्थ समझा जा सकता है। वह कैसे? 'जात्वपूर्वम्' ८.१.४७ सूत्र से अपूर्व पद का अनुवर्तन करेंगे। वह शेष अर्थ को बता देगा।

'किंवृत्तं च चिदुत्तरम्' ८.१.४८ तथा 'आहो उताहो चाऽनन्तरम्' ८.१.४९ सूत्र में अव्यवहित में निघात का निषेध है। उससे अन्य व्यवहित में यह सूत्र विकल्प से अनुदात्त का निषेध करेगा। जैसे—'आहो देवदत्तः पचति, कश्चित् पुरुषो भुङ्क्ते'। {जात्वपूर्वम्}।

शेषे विभाषा ८.१.५०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कश्च शेषः? * सपूर्वः शेषः * इति। {शेषे विभाषा}।

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरणमहाभाष्ये
अष्टमाध्यायस्य प्रथमपादे प्रथममाह्निकम्

●

सूत्रार्थ—'पूजा अर्थ गम्य होने पर अहो इस पद से युक्त तिङन्त पद विकल्प से अनुदात्त हो'। जैसे—'अहो कष्टं मरिष्यति'। यहाँ पक्ष में प्रत्ययस्वर होगा।

पूर्वपक्षी—**कश्चेति**। यहाँ शेष क्या है?

उत्तरपक्षी—**सपूर्व इति**। यहाँ सपूर्व शेष है। {**शेषे विभाषा**}।

श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिमुनिविरचित व्याकरणमहाभाष्य
अष्टम अध्याय प्रथम पाद प्रथम आह्निक पर
डॉ. हरिनारायण तिवारी द्वारा रचित
'ज्योत्स्ना' हिन्दी टीका पूर्ण हुई

●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Funding: MIDF

❁ प्रथमे पादे द्वितीयमाह्निकम् ❁

गत्यर्थलोटा लृण्न चेत् कारकं सर्वान्यत् ८.१.५१

* लृटः प्रकृतिभावे कर्त्रन्यत्व उपसंख्यानं कारकाऽन्यत्वात् * **लृटः प्रकृतिभावे कर्त्तुर्यत्कारकमन्यत् तस्याऽन्यत्व उपसंख्यानं कर्तव्यम्। आगच्छ देवदत्त ग्राममोदनं भोक्ष्यसे। किं पुनः कारणं न सिध्यति। 'कारकाऽन्यत्वात्'। 'न चेत्कारकं सर्वान्य'दित्युच्यते सर्वान्यच्चाऽत्र कारकम्। किं पुनः कारणं सर्वान्यत् प्रतिषेधेनाऽऽश्रीयते न पुनरसर्वान्यद् विधानेनाऽऽश्रीयेत? कर्त्ता चाऽत्राऽसर्वान्यस्ततः कर्तृसामान्यात् सिद्धम्।**

सूत्रार्थ—'जिस कारक में लोट् हो उसी कारक में यदि लृट् भी विहित हो तथा वह लोट् गत्यर्थक धातु से विहित हो तो उससे युक्त तिङन्त निघात नहीं होता है'।

इस पर वार्तिककार कहते हैं—लट् को **प्रकृतिभावे**=निघातनिषेध करने में **कर्तुः**=(प्रकृत में कर्तृभिन्न अर्थ लक्षित है) अर्थात् कर्ता, यानि लोडन्त तथा लृडन्त का कर्ता जहाँ एक हो, वहीं पर निघात का निषेध कहना चाहिए। कर्ता के एक होने में निघात का निषेध इसलिए कहना चाहिए कि अन्य कारक भिन्न हो भी सकता है परन्तु कर्ता को अभिन्न ही होना चाहिए। जैसे—'आगच्छ देवदत्त ग्राममोदनं भोक्ष्यसे' इस लृडन्त का कर्त्ता तथा भोक्ष्यसे का कर्ता देवदत्त एक ही है, अतः यहाँ पर निषेध सिद्ध नहीं होता है? कारण यह है कि कर्मरूप कारक भिन्न-भिन्न है। सूत्र में कारक शब्द से कारक व्यक्ति लिया गया है, अतः द्वितीया कारक के एक होने पर भी ग्राम और ओदन व्यक्ति के भिन्न होने से कारकभेद हुआ। सूत्र में 'सर्वान्यत्' ऐसा पद कहा हैं, वहाँ पर सौत्रसमास समझना चाहिए। अथवा 'सर्व' यह लुप्तविभक्ति सर्व पद कारकविशेषण है। अच्छा तो सूत्र में 'न चेत् कारकं सर्वान्यत्' ऐसा कहा है, जहाँ सभी कारक भिन्न न हों, वहीं निषेध होगा, ऐसा कहने से पूर्वोक्त उदाहरण में कर्मभेद होने पर भी उभय तिङन्त का कर्ता एक ही है, अतः निषेध हो जायेगा। अच्छा तो क्या कारण है कि 'न चेत् कारकं सर्वान्यत्'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऐसा प्रतिषेध के रूप में सर्वान्यत् का आश्रयण करते हैं। सूत्रकार ने 'चेत् कारकमसर्वान्यत्' ऐसा विधान का ही आश्रयण क्यों किया है? यदि विधान का भी आश्रयण करते तब भी पूर्वोक्त उदाहरण में कर्मभेद होने पर भी कर्ता असर्वान्यत् है, अतः निघातनिषेध हो ही जाता, फिर 'न चेत् कारकं सर्वान्यत्' ऐसा प्रतिषेध का आश्रयण क्यों किया है?

* कर्तृसामान्यात् सिद्धमिति चेत् तद्भेदेऽन्यसामान्ये प्रकृतिभावप्रसङ्गः * **कर्तृसामान्यात् सिद्धमिति चेत् तद्भेदे—कर्तृभेदेऽन्यस्मिन् कारकसामान्ये प्रकृतिभावः प्राप्नोति। आहर देवदत्त! शालीन् यज्ञदत्त एनान् भोक्ष्यते। एवं तर्हि व्यक्तमेव पठितव्यं 'न चेत् कर्त्ता सर्वान्य इती'ति।**

कर्तृसामान्य पक्ष में निघात का प्रतिषेध कहने में दोष दिखाते हैं—**कर्तृसामान्यादिति**। यदि कर्तृसामान्य होने से निघात का प्रतिषेध कहेंगे तो **तद्भेदे**= तिङर्थ कर्ता वाच्य होने पर भी निघात का प्रतिषेध होने लगेगा, जो इष्ट नहीं है। जैसे—'आहर देवदत्त! शालीन् यज्ञदत्त एनान् भोक्ष्यते' यहाँ पर कर्त्री व्यक्ति के भेद होने पर भी लकारार्थ कर्ता एक ही है, अतः यहाँ निषेध होने लगेगा जो इष्ट नहीं है। यदि ऐसी बात है तो व्यक्त ही पढना चाहिए— 'न चेत् कारकं सर्वान्यत्'।

* न चेत् कर्त्ता सर्वान्य इति चेदन्याभिधाने प्रतिषेधमेके * **'न चेत्कर्त्ता सर्वान्य' इति चेदन्याभिधाने प्रतिषेधमेके इच्छन्ति। 'उह्यन्तां देवदत्तेन शालयो यज्ञदत्तेन भोक्ष्यन्त' इति प्राप्नोति। 'भोक्ष्यन्त' इति चेष्यते।**

अच्छा तो 'न चेत् कारकं सर्वान्यत्' की जगह 'न चेत् कर्ता सर्वान्यत्' ऐसा सूत्र में क्यों न पढ दिया जाय? यदि आप ऐसा वार्तिक पढेंगे तो 'आहर देवदत्त! शालीन् यज्ञदत्त एनान् भोक्ष्यते' इस वाक्य में कर्त्री व्यक्ति के भेद होने पर भी शालिरूप कर्म एक ही है। जब लकारद्वय से वाच्य एक ही कर्म होगा, तथा दो कर्ता होंगे तब भी निघातप्रतिषेध इष्ट है, जो 'न चेत् कर्ता सर्वान्यत्' कहने से सिद्ध नहीं हो पा रहा है। वार्तिक में 'एके' ऐसा कहा है। वहाँ एकग्रहण विकल्प अर्थ में नहीं है, अपितु आगमपारम्पर्यप्रतिपादन के लिए है। 'उह्यन्तां देवदत्तेन शालयो यज्ञदत्तेन भोक्ष्यन्ते' यहाँ पर कर्ता अन्य होने पर भी 'भोक्ष्यन्ते' इस लृडन्त का निघातप्रतिषेध इष्ट है; अतः 'कर्ता न सर्वान्यत!' ऐसा नहीं कहा है।

* सिद्धं तु तिङोरेकद्रव्याभिधानात् * **सिद्धमेतत्। कथम्? 'तिङोरेकद्रव्या-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Funding: MIDF

ऽभिधानात्' । यत्र तिङ्भ्यामेकं द्रव्यम् अभिधीयते तत्रेति वक्तव्यम् । {गत्यर्थलोटा} ।

अच्छा तो ऐसा कोई दोष नहीं है । यदि कारकशक्ति से विशिष्ट एक द्रव्य चाहे वह कर्म हो अथवा कर्ता हो, और लृट् से कहा जा रहा हो, तो वहाँ पर निघातप्रतिषेध कहना चाहिए । तो क्या 'सिद्धं तु 'तिङोरेकद्रव्याऽभिधानात्' यह वार्तिक पृथक् पढना चाहिए? नहीं? यह विना पढे भी उपर्युक्त अर्थ सिद्ध हो जायेगा, अर्थात् वार्तिककार जो कह रहे हैं वह सूत्र से ही आ रहा है । वह कैसे? वह इस तरह कि—'तिङोरेकद्रव्याभिधानात्' । जहाँ तिङ्द्वय से एक ही अर्थ अभिहित है, वहीं पर निघातप्रतिषेध करना चाहिए । अर्थात् लोट् और लट् के सन्निधान से वाच्य कारक ही प्रकृत में लिया जाये । लोडन्त और लृडन्त का अर्थलक्षण निमित्तानिमित्तिभाव होने से शक्तिविशिष्ट एक द्रव्य कर्म अथवा कर्त्ता अर्थ सूत्र से ही लब्ध हो जायेगा । **{गत्यर्थलोटा लृण्न चेत्-}** ।

आम एकान्तरमामन्त्रितमनन्तिके ८.१.५५

कस्याऽयं प्रतिषेधः? * आम एकान्तर ऐकश्रुत्यप्रतिषेधः * **आम एकान्तर ऐकश्रुत्यस्याऽयं प्रतिषेधः । कथं पुनरप्रकृतस्याऽसंशब्दितस्यैकश्रुत्यस्य प्रतिषेधः शक्यो विज्ञातुम्? अनन्तिक इत्युच्यते । अनन्तिकं च किम्? दूरम् । दूरात् संबुद्धौ चैकश्रुतिरुच्यते । अस्ति प्रयोजनमेतत्? किं तर्हीति?** * निघातप्रसङ्गस्तु * **निघातप्रसङ्गस्तु प्राप्नोति—आम् भो देवदत्ता३ । आमन्त्रितस्याऽनुदात्तत्वं प्राप्नोति ।**

'अन्तरयति इत्यन्तरं व्यवधायकम्, एकमन्तरं यस्य तदेकान्तरम्'=एक का व्यवधान वाला । 'आमः' यह पञ्चमी-एकवचन है, अतः परत्वरूप अर्थ का उपस्थापक होगा । सूत्रार्थ होगा—'आम् से पर में एकपदान्तरित आमन्त्रित अनुदात्त नहीं होता है ।' सम्बोधन में प्रथमा-एकवचन की आमन्त्रित संज्ञा होती है—सामन्त्रितम् २.३.४८ । जैसे—आम् पचसि देवदत्ता३! ।

प्राप्ति होने पर ही निषेध होता है । 'आम एकान्तरम्' सूत्र से आप किस प्राप्ति का निषेध कर रहे हैं? उत्तर देते हैं—आम् से पर में एक के व्यवधान रहने पर ऐकश्रुत्य प्राप्त है; उसी का निषेध कर रहा हूँ । जैसे—'आम् भो देवदत्ता३' । इस उदाहरण में आम् निपात होने से आद्युदात्त है । 'विभाषा भवद्भगवदघवतामोच्चावस्य' इस वार्तिक से भवत् शब्द के अव को ओ तथा त् वर्ण को रुत्व कर के भोः शब्द निष्पन्न हुआ है । उस भोः को पद से पर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होने से आमन्त्रित को निघात हुआ है। 'देवदत्ता३' इस आमन्त्रित को भी पद से पर में निघात प्राप्त है उसको 'आम एकान्तरम्' सूत्र से निषेध किया गया है। 'नामन्त्रिते समानाधिकरणे सामान्यवचनम्' ८.१.७३ सूत्र से भोः शब्द के अविद्यमान का निषेध है तथा एकान्तरत्व होने से आमन्त्रित देवदत्ता३ के निघात का भी निषेध हो गया। फिर तो निघात के निषेध हो जाने पर 'एकश्रुतिर्दूरात्सम्बद्धौ' १.२.३३ सूत्र से उक्त आमन्त्रित को एकश्रुति स्वर प्राप्त है, तथा 'दूराद्धूते च' ८.२.८४ सूत्र से प्लुतोदात्तत्व प्राप्त है। अब यहाँ पर 'स्वरितस्य अर्धह्रस्वोदात्तोदात्तस्वरितपरस्य सन्नतराद् ऊर्ध्वम् उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितात् कार्यं स्वरितादिति सिद्ध्यर्थम्' इस वचन से प्लुतोदात्त की कर्तव्यता में 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' ८.२.१ सूत्र से एकश्रुति असिद्ध होगी, अतः प्लुतोदात्त ही होता है, एकश्रुति नहीं। फिर तो यहाँ पर अनेक प्रतिषेध सम्भव होने से एकश्रुति का निषेध सुतरां हो जायेगा। उसी एकश्रुति का निषेध करने के लिए आप ने पृथक् सुत्र क्यों पढा है? शंसय में यही मूल है। अपरञ्च यदि आप प्रकरण की अपेक्षा करेंगे तो निघात का ही प्रतिषेध होगा, एकश्रुति का नहीं। यदि सामर्थ्यात् प्राप्त का निषेध करेंगे तो एकश्रुति का निषेध होगा, निघात का नहीं। **अतः**=ऐसी शङ्का मन में रख कर प्रश्न किया है—'कस्याऽयं प्रतिषेधः'? यह प्रतिषेध एकश्रुति का है। यह कैसे मान लिया जाये कि जो प्रकृत में प्राप्त नहीं है ऐसा असंशब्दित एकश्रुति का प्रतिषेध किया जा रहा है? वह ऐसे कि सूत्र में 'अनन्तिके' ऐसा कहा जा रहा है, उससे समझेंगे कि एकश्रुति का निघातप्रतिषेध है। अनन्तिक क्या है? अनन्तिक दूर को कहते है। दूर से सम्बुद्धि में एकश्रुति कहते हैं। दूर से कहने में अर्थतः एकश्रुति सन्निहित होती है। अनन्तिक दूर ऐसे हैं कि कोई कोई नञ्समास अन्य अर्थ का ही वाचक होता है। जैसे—अनादरः, यहाँ आदराभाव अर्थ का बोध नहीं है, अपितु अवज्ञान अथवा तिरस्कार अर्थ गम्य हो रहा है। इसी तरह अनृत= असत्य, अमित्र=शत्रु, अधर्म=पाप आदि अर्थान्तर ही लिये जाते हैं, प्रतियोगिकर्तृक अभाव नहीं। इसी तरह अनन्तिक शब्द भी दूर अर्थ का वाचक है। यहाँ पर 'देवदत्तः पचति'स्थल में 'तिङ्ङतिङः' ८.१.२८ सूत्र से अनुदात्त सावकाश है। उसका बाध कर एकश्रुति स्वर प्राप्त था। उसको 'आम एकान्तरम्' सूत्र से निषेध किया है।

परन्तु अपवाद शास्त्र के निषिद्ध हो जाने पर भी उत्सर्ग शास्त्र की स्वतः प्रवृत्ति होने से निघात का प्रसङ्ग होगा। 'आम् भो देवदत्ता३' स्थल में आमन्त्रित को अनुदात्त प्राप्त है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Funding: MIDF

*** सिद्धं तु प्रतिषेधाधिकारे प्रतिषेधवचनात् * सिद्धमेतत्। कथम्? 'प्रतिषेधाधिकारे प्रतिषेधवचनात्'। प्रतिषेधाऽधिकारे प्रतिषेधवचन-सामर्थ्यान्निघातो न भविष्यति। नैव वा पुनरत्रैकश्रुत्यं प्राप्नोति। किं कारणम्? 'अनन्तिक' इत्युच्यते। अन्यच्च दूरम् अन्यदनन्तिकम्। यद्येवं प्लुतोऽपि तर्हि न प्राप्नोति, प्लुतोऽपि हि 'दूरादि'त्युच्यते। इष्टमेवैतत् संगृहीतम्, आम्भो देवदत्तेत्येव भवितव्यम्।**

अच्छा तो प्रकृत में 'आम् भो देवदत्ता3' यहाँ पर अनुदात्त का भी निषेध है, वह इसलिए कि निघात प्रतिषेधाधिकार में निषेधक वचन पढा गया है, वह निघात का भी प्रतिषेध करेगा। यदि ऐसा नहीं होता तो आचार्य 'एकश्रुतिर्दूरात् सम्बुद्धौ' १.२.३३ ऐसा सूत्र पढ कर 'नाम एकान्तरम्' ऐसा सूत्र पढते। इसमें लाघव यह होता कि स्वर में 'आमन्त्रितमनन्तिके' ८.१.५५ का ग्रहण नहीं करना पडता। यदि एकश्रुति स्वर से केवल निघात का बाध करेंगे तो प्रतिषेध-वचन व्यर्थ होगा, अतः प्रतिषेध से निघात तथा प्रतिषेध दोनों का बाध करेंगे।

'देवदत्ता३ आगच्छ' स्थल में एकश्रुति सावकाश है। वह 'आम्भो देवदत्ता३' इस स्थल में निघात का बाध कैसे करेगी? अपितु पर होने से निघातस्वर एकश्रुति स्वर को ही बाध लेगा, अतः प्रकृत स्थल में निघात के ही प्राप्त होने से निघात का ही प्रतिषेध उचित है। निघात का निषेध कर देने से प्रकृत में एकश्रुतिस्वर ही होना चाहिए, फिर निघात का निषेध उक्त सूत्र से कैसे हुआ?

अच्छा तो आप यह दोष नहीं दे सकते हैं, क्योंकि पदद्वयनिबन्धन निघात है तथा उससे भी अधिक निबन्धक वाला एकश्रुतिस्वर। इस तरह 'अल्प-निमित्ताकत्वम् अन्तरङ्गत्वम्, तथा बहुनिमित्तकत्वं बहिरङ्गत्वम्', इसके अनुसार अल्पनिबन्धक निपात अन्तरङ्ग हुआ तथा दूर से सम्बोधन की अपेक्षा करने वाला एकश्रुतिस्वर बहिरङ्ग; अतः अन्तरङ्ग होने से निघातस्वर के प्रथम प्राप्त हो जाने पर शिष्टस्वर एकश्रुति प्राप्त है, अतः शिष्टस्वरत्वात् एकश्रुतिस्वर ही होगा, फिर तो उसी का प्रतिषेध उचित है; तथा प्रतिषेधाधिकार में 'आम एकान्तरमामन्त्रितमनन्तिके' ८.१.५५ सूत्र पढा है, अतः निघात का भी निषेध उचित है। इस तरह प्रकरण में उभयनिषेधसिद्धि हुई।

अच्छा तो 'आम् भो देवदत्ता३' यहाँ पर आमन्त्रित को अनुदात्त प्राप्त है उसको प्रतिषेधप्रकरण में प्रतिषेधवचनसामर्थ्य से निघात नहीं हो सकेगा। सा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ही यहाँ पर एकश्रुति भी प्राप्त नहीं होगी। इसका क्या कारण है? सूत्र में 'अनन्तिके' ८.१.५५ ऐसा आचार्य ने कहा है। दूर और अनन्तिक भिन्न-भिन्न हैं। न अन्तिकम् अनन्तिकम् इस व्युत्पत्ति में नञ् शब्द सादृश्य अर्थ का वाचक है—जो न दूर है न अनन्तिक है—वह अनन्तिक यहाँ पर लिया जायेगा। यदि ऐसा नहीं था, अर्थात् दूर अर्थ का वाचक अनन्तिक शब्द प्रकृत में मानेंगे तो आचार्य सीधे दूर शब्द का ही लाघव होने से ग्रहण करते, जहाँ कोई शंसय नही था। 'अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः, असन्देहार्थश्चाध्येयं व्याकरणम्'। इस तरह लघुभूत न्यास से कार्य हो जाने पर भी जो गुरुभूत न्यास किया वह बताता है कि प्रकृत में अनन्तिक शब्द दूर अर्थ का वाचक नहीं है।

यदि ऐसा है तो प्रकृत में प्लुत भी नहीं हो सकेगा, क्योंकि प्लुतसंज्ञा के लिए भी 'दूरात्' ऐसा कहा है? 'आम् भो देवदत्त३!' यह इष्ट का ही संग्रह किया है। अथवा मध्यम अर्थ में सामान्य अनन्तिक शब्द है। अनन्तिक में निघात का विधान है तथा अनन्तिक में निषेध। {आम एकान्तरम्}।

यद्धितुपरं छन्दसि ८.१.५६

किमर्थमिदमुच्यते यदाद्यैरेव सर्वैरेतैरनिघातकारणैर्योगेऽनिघात उच्यते, यथैव पूर्वैयोगे एवं परैरपि? अत उत्तरं पठति—* यद्धितुपरस्य च्छन्दस्यनिघातोऽन्यपरप्रतिषेधार्थः * यद्धितुपरस्य च्छन्दस्यनिघात उच्यते। किं प्रयोजनम्? 'अन्यपरप्रतिषेधार्थः'। अन्यपरस्य प्रतिषेधो मा भूदिति। जाये स्वो रोहावेति। अथेदानीं रोहावेत्यनेन युक्ते 'एही'त्यस्य कस्मान्न भवति? लोट्चगत्यर्थलोटा युक्त इति प्राप्नोति।

'यच्च हि च तु च इत्येतेषां समाहारः यद्धितु, तत्परं यस्मात् तद्'। अर्थात् यद्, हि और तु शब्द हो पर में जिसके, ऐसा जो तिङन्त पद, उसको वेद में निघात नहीं होगा। जैसे—उदसृंजो यदङ्गिरः। 'असृजः' यह तुदादि सृज विसर्गे धा.पा.१४१५ धातु से लङ् सिप् तथा धातु को अडागम करके रूप है। यहाँ तद् पर में होने से 'असृजः' इस तिङन्त के निघात का निषेध हो गया। इसी तरह 'हि' के योग में 'उशन्ति हि'। अदादि वश कान्तौ धा.पा.१०८० धातु से लट् कर्ता में झि, अन्तादेश तथा 'ग्रहिज्यावयिव्यधि' ६.१.१६ सूत्र से धातुघटक व को सम्प्रसारण करके 'उशन्ति' रूप है। 'हि' पर होने से उसके निघात का निषेध हो गया। 'तु' पर का उदाहरण—'आख्यास्यामि तु ते'।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Funding: MIDF

अब यहाँ भाष्यकार पूछते हैं कि यद् के योग में 'निपातैर्यद्यदिहन्तकुविन्नेच्चेच्चण्कच्चिद् यत्रयुक्तम्' ८.१.३० सूत्र से निघात का निषेध प्राप्त था। एवम् 'हि' के योग में 'हि च' ८.१.३४ सूत्र से निषेध प्राप्त था। इसी तरह 'तु' के योग में 'तुपश्यपश्यताहैः पूजायाम्' ८.१.३९ सूत्र से निघात का निषेध प्राप्त था। फिर 'यद्धितुपरं छन्दसि' ८.१.५६ योग का आरम्भ क्यों किया है? पूर्व योग भी उसी निघात का निषेध कर रहा है तथा पर योग भी उसी निघात का निषेध कर रहा है। इस तरह उत्तर सूत्र व्यर्थ पड गया, अतः इसका उत्तर पढते हैं—यद्, हि, तु पर रहते निघात का निषेध वेद में अन्यतर का प्रतिषेध न करने के लिए किया है। यद्, हि और तु पर रहते वेद में तिङन्त को निघात का निषेध करते हैं। इसका प्रयोजन क्या है? इसका प्रयोजन अन्यतर का प्रतिषेध न करना है। जैसे—'जाये स्वो रोहावेहि'। आङ्पूर्वक गत्यर्थक इण् गतौ धा.पा.१०४५ धातु से लोट् के स्थान पर सिप् आदेश कर 'सिप्' को 'हि' हुआ, गुण करके 'एहि' रूप हैं लोडन्त 'एहि' जो गत्यर्थक है, उससे युक्त 'रोहाव' के अनुदात्त स्वर का निषेध 'लोट् च' ८.१.५२ सूत्र से है। उस निघातनिषेध का व्यावर्तन इस नियम से हो जाने से 'स्व' शब्दाश्रित निघात 'रोहाव' को हो जा रहा है।

अच्छा तो रोहाव से युक्त 'एहि' इस गत्यर्थक लोडन्त स्थल में आङ् से पर में 'इहि' का निघात इष्ट है, परन्तु 'लोट् च' ८.१.५२ सूत्र से निषेध हो जाने से प्राप्त नहीं है। वेद में केवल रुहिधातु भी गत्यर्थक देखा जाता है, अतः आङ् का योग इण् धातु के साथ है, रुह् के साथ नहीं। यदि आप 'छन्दसि परेऽपि' १.४.८१ 'व्यवहिताश्च' १.४.८२ सूत्र से पर और व्यवहित में भी वेद में उपसर्ग का योग मानकर आङ् का योग रुह् से पर और व्यवहित में भी वेद में उपसर्ग का योग मानकर आङ् का योग रुह् के साथ कहेंगे, इण् के साथ नहीं, तो वाक्यभेद हो जाने से आङ् निघात नहीं हो सकेगा, जो इष्ट है, अतः आङ् का योग इण् के साथ ही मानना पडेगा, रुह के साथ नहीं। यदि आ+इण् इस स्थिति में एकादेश के नित्य होने से एकादेश हो जाने पर ही एकादेश के द्वारा आङ् का अपहार हो जाने से आङ्रूपता नहीं रही, फिर निघात किसको होगा? यदि 'अन्तादिवच्च' ८.१.८५ सूत्र से अन्तादिवद्भाव से आङ् को एकादेश में लायेंगे तो पूर्वादिवद्भाव भी प्राप्त होने से इत्व भी आयेगा। फिर तो 'उभयथाऽऽश्रयणे नान्तादिवत्' परिभाषा से उभयतः आश्रयण होने से अन्तादिवद्भाव का निषेध हो जाने से आङ् को निघात नहीं हो सकेगा। अच्छा तो भाष्यकार के इसी विचार से हम ज्ञापन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करेंगे—'प्राङ् निघातस्तत एकादेशः'।

न हि रुहिर्गत्यर्थः। कथं ज्ञायते? यदयं 'गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्चे'ति पृथग् रुहिग्रहणं करोति। यदि न गत्यर्थः, 'आरोहन्ति हस्तिनं मनुष्याः, आरोहयति हस्ती स्थलं मनुष्यान्', 'गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माऽकर्मकाणाम् अणिकर्ता स णा'विति कर्मसंज्ञा न प्राप्नोति। तस्मान्नैतच्छक्यं वक्तुं 'न रुहिर्गत्यर्थ' इति। कस्मात्तर्हि रोहावेत्यनेन युक्ते 'एही'त्येतस्य न भवति? छान्दसत्वात्। {यद्धितुपरं छन्दसि}।

अच्छा तो रुह धातु गत्यर्थक नहीं है। गत्यर्थक वे ही होंगे जो उपसर्ग से योग किये विना भी गति अर्थ को कहें। जैसे—गम्लृ। रुह धातु आङ् से युक्त होकर ही गति अर्थ को कहता हैं यदि रुह गत्यर्थक होता तो 'गत्यार्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च' ३.४.७२ सूत्र में गत्यर्थक से ही रुह का ग्रहण हो जाता। आचार्य ने गत्यर्थक से पृथक् जो रुह् का ग्रहण किया उससे ज्ञात है कि रुह गत्यर्थक नहीं है।

अच्छा तो यदि रुह गत्यर्थक नहीं है तो 'आरोहन्ति हस्तिनं मनुष्याः', इस अण्यन्तावस्था के कर्ता को ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा होने से कर्म में द्वितीयाविधान कर 'आरोहयति हस्ती स्थलं मनुष्यान्' यह इष्ट प्रयोग नही हो सकेगा, 'गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माऽकर्मकाणामणिकर्ता स णौ' १.४.५२ सूत्र से गत्यर्थक धातु के अण्यन्तावस्था के कर्ता को ण्यन्तावस्था में कर्मसंज्ञा होती है, अतः रुह धातु गत्यर्थक नहीं है, ऐसा नहीं कह सकते हैं। यहाँ यह ध्येय है कि भाष्यकार ने लौकिक उदाहरण दिया है, अतः लोक में रुह् गत्यर्थक भी है। उपसर्ग के योग में हृ धातु भक्षणार्थक होता है, अतः हृ को भक्षणार्थक भी मानेंगे। उसी तरह आङ् से युक्त रुह गत्यर्थक है, अतः केवल रुह् को गत्यर्थक भी माना जायेगा। अच्छा तो जब रुह् धातु गत्यर्थक है तो 'जाये स्वो रोहावेति' यहाँ पर रोहाव से युक्त एहि का निघात क्यों नहीं होता है? उत्तर दिया—**छान्दसत्वादिति**। 'गत्यर्थाकर्मक' ३.४.७२ सूत्र में रुहग्रहण प्रपञ्चार्थक है। **{यद्धितुपरं छन्दसि}**।

चनचिदिवगोत्रादितद्धिताम्रेडितेष्वगतेः ८.१.५७

* 'आमेडितेष्वगतेः' 'सगतिरपि ति'ङ्ङित्यत्र गतिग्रहणे उपसर्गग्रहणम् *

'आमेडितेष्वगतेः' 'सगतिरपि ति'ङित्यत्र गतिग्रहणे उपसर्गग्रहणं द्रष्टव्यम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Funding: MIDF

इह मा भूत्—शुक्लीकरोति चन, कृष्णीकरोति चन। यत्काष्ठं शुक्लीकरोति, यत्काष्ठं कृष्णीकरोति। अपर आह—'सर्वत्रैवाऽऽष्टमिके गतिग्रहणे उपसर्गग्रहणं द्रष्टव्यं—गतिर्गतौ' तिङि चोदात्तवति वर्ज'मिति। {चनचिदि}।

प्रकरण पूर्ववत् है। 'चन, चित्, इव, गोत्रादि, तद्धित, और आम्रेडित इन छः के परे रहते अगतिसंज्ञक तिङन्तपद को अनुदात्त नहीं होता है।' जैसे—'देवः पचति चन। देवः पचति चित्। देवः पचतीव। देवः पचति गोत्रम्। देवः पचतिकल्पम्। देवः पचति पचति'।

'आम्रेडितेष्वगतेः' ८.१.५७ तथा 'सगतिरपि तिङ्' ८.१.८६ सूत्र में गति-ग्रहण में उपसर्गग्रहण करना चाहिये, अर्थात् 'आम्रेडितेष्वगतेः' की जगह 'आम्रेडिते-ष्वनुपसर्गस्य' तथा 'सगतिरपि तिङ्' की जगह 'सोपसर्गोऽपि तिङ्' ऐसा सूत्र पढना चाहिये। इसका फल यह है कि 'न शुक्लमशुक्लम्, अशुक्लं शुक्लं करोति इति शुक्लीकरोति चन', इसी तरह 'न कृष्णमकृष्णम्, अकृष्णं कृष्णं करोति इति कृष्णीकरोति, कृष्णकरोति चन'। इन दोनों स्थलों में 'चन' के पर रहते तिङन्त है तथा 'उर्यादिच्विडाचश्च' १.४.६१ सूत्र में च्वि के योग होने से गतिसंज्ञा भी है। उपर्युक्त में गतिग्रहण की जगह उपसर्ग ग्रहण करने से यहाँ तिङन्त को निघात का निषेध नहीं होता है। अन्यथा 'अगतेः' इस निषेध से प्रकृत में निघात का निषेध हो जाता है। एवं 'यत्काष्ठं शुक्लीकरोति, यत्काष्ठं कृष्णीकरोति' यहाँ पर भी अनिघात होता है।

दूसरे यह कहते हैं कि **आष्टमिके**=अष्टम अध्याय में जहाँ कहीं भी गति का ग्रहण किया गया वहाँ सर्वत्र मात्र दो सूत्रों—'गतिर्गतौ' ८.२.७० तथा 'तिङि चोदात्तवति' ८.१.७१ को छोड कर गतिग्रहण में उपसर्ग ग्रहण ही करना चाहिए। {**चनचिदिव**}।

यद्वृत्तान्नित्यम् ८.१.६६

यद्वृत्तादित्युच्यते तत्रेदं न सिद्ध्यति—यः पचति यं पचति येन पचतीति * वृत्तग्रहणेन तद्विभक्त्यन्तम् * **वृत्तग्रहणेन तद्विभक्त्यन्तं प्रतीयताम्। कथं यतरः पचति यतमः पचतीति।**

'जहाँ पद में यत् शब्द हो उस पद से पर में तिङन्त को अनुदात्त न हो' यह सूत्रार्थ है। अच्छा तो सूत्र में 'यद्वृत्ताद्' ऐसा पञ्चम्यन्त समस्त पद कहा है, जिसका अर्थ है यद् से युक्त की ही पदसंज्ञा होनी चाहिए, उससे पर में तिङन्त को निघात न हो। जैसे—'यदद्र्यङ् वाति' यहाँ पर 'यदञ्चति'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस विग्रह में क्विन् प्रत्यय करके 'यदद्र्यङ्' यह यद्वृत्त पद हुआ। इससे पर में तिङन्त 'वाति' को अनिघात होगा। परन्तु-'यः पचति, यं पचति, येन पचति', इन स्थलों में मात्र यद् ही पद है, यद्वृत्त नहीं, अतः यहाँ अनिघात कैसे होगा?

इसका उत्तर देते हैं—**वृत्तग्रहणेनेति**। सूत्र में वृत्तग्रहणसामर्थ्य से यद् विभक्त्यन्त लिया जायेगा। यः यम्, येन यह विभक्त्यन्त यद् शब्द है, अतः उससे पर में तिङन्त को अनिघात हो जायेगा। अच्छा तो 'यतरः पचति, यतमः पचति', इन स्थलों में यद् विभक्त्यन्त नहीं है, यहाँ अनिघात कैसे होगा?

* डतरडतमौ च * **डतरडतमौ च प्रतीयताम्। कथं यदा ददातीति? एषोऽपि विभक्तिसंज्ञः। कथं 'यावदस्यस्त्यत्रैषः सरो जनेभ्यः कृणवत्'। यावद्यथाभ्यामित्येवं भविष्यति। कथं 'यद्र्यङ्वायुः पवते' 'यत्कामास्ते जुहुमः'। एवं तर्हि यदस्मिन् वर्तते यद्वृत्तं यद्वृत्तादित्येवं भविष्यति** * वा याथाकाम्ये * **वा याथाकाम्य इति वक्तव्यम्। यत्र क्व चन यजते तद्देवयजन एव यजते। {यद् वृत्तान्नित्यम्}।**

इसका उत्तर देते हैं—'डतरडतमौ च'। डतर और डतम ये प्रत्यय हैं। प्रत्यय के ग्रहण में तदन्त का ग्रहण होने से डतरान्त यदादि डतमान्त तदादि लेने से यहाँ भी यद्वृत्त है, अतः अनिघात हो जायेगा। अच्छा तो 'यदा ददाति' इन स्थलों में अनिघात कैसे होगा? स्वादि ही विभक्ति के रूप में प्रसिद्ध है, अतः यहाँ संशय हुआ। 'यंदा' यह भी विभक्त्यन्त है। 'प्राग् दिशो विभक्तिः' ५.३.१ सूत्र से 'दा' की भी विभक्तिसंज्ञा होती है। अच्छा तो 'यावदस्त्यत्रैष सरो जनेभ्यः कृणवत्' यहाँ पर अनिघात कैसे होगा? यहाँ पर अनिघातविधायक 'यावद्यथाभ्याम्' ८.१.३६ सूत्र है। उससे यावद् से पर में अस्ति के निघात का निषेध हो जायेगा। अच्छा तो 'यद्र्यङ्वायुः पवतेः' तथा 'यत्कामास्ते जुहुमः' यहाँ पर वायुः एवं ते पद का व्यवधान होने से अव्यवहितपरत्वविशिष्ट तिङन्त नहीं होने से 'यद् वृत्तान्नित्यम्' की प्रवृत्ति नहीं हो सकेगी। 'यदञ्चति' इस विग्रह में क्विन् है। 'विष्वग्देवयोश्च टेरद्र्यञ्चतावप्रत्यये' ६.३.९२ से टि को अद्रि आदेश है। यहाँ पर अनिघात कैसे होगा? वहाँ पर भी अनिघात इसी सूत्र से हो जायेगा। यह सूत्र व्यवहित होने पर अनिघात करता है। इसमें प्रमाण उत्तर सूत्र 'पूजनात् पूजितमनुदात्तं काष्ठादिभ्यः' ८.१.६७ सूत्र है। वह इस तरह कि पूजनात् से ही पूजित अर्थ का लाभ हो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Funding: MIDF

जायेगा। फिर पूजित ग्रहण व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा कि 'यद् वृत्तान्नित्यम्' ८.१.६६ सूत्र में भी अनिघात करेगा। जिससे 'यदद्र्यङ् वायुः पवते' में अनिघात हो गया तथा 'पूजनात् ८.१.६७ सूत्र में भी अनन्तर पूजित अर्थ का लाभ हो गया।

याथाकाम्य अर्थ गम्य होने पर विकल्प से अनिघात कहना चाहिए। जैसे—'यत्र क्व चन यजते तद् देवयजन एव यजते' यहाँ पर याथाकाम्य होने से अनिघात विकल्प है। {यद् वृत्तान्नित्यम्}।

पूजनात् पूजितमनुदात्तं काष्ठादिभ्यः ८.१.६७

* पूजितस्याऽनुदात्तत्वे काष्ठादिग्रहणम् * **पूजितस्याऽनुदात्तत्वे काष्ठादिग्रहणं कर्तव्यम्। काष्ठादिभ्यः पूजनादिति वक्तव्यम्। इह मा भूत्—शोभनोऽध्यापकः** * मलोपवचनं च * **मलोपश्च वक्तव्यः। दारुणाध्यापकः। दारुणाभिरूपः।** {पूजनात् पूजितमनुदात्तम्}।

इस सूत्र में 'न' की अनुवृत्ति नहीं होती है, अतः यह सूत्र निघात का विधान करता हैं। उत्तर सूत्र 'सगतिरपि तिङ्' ८.१.६८ में तिङ्ग्रहणसामर्थ्य से यह सूत्र सुबन्त को भी अनुदात्त का विधान करेगा; अतः सूत्रार्थ हुआ—पूजनार्थक काष्ठादि से पर में पूजितवचन सुबन्त अनुदात्त होता है'। काष्ठादि गणपाठ में काष्ठ, दारुण, अमातापुत्र, वेश, अनाज्ञात, अनुज्ञात, अपुत्र, अयुत, अद्भुत, अनुक्त, भृश, घोर, सूख, सुअति शब्द पढे गये हैं। ये सभी शब्द अद्भुत अर्थ के वाचक होने से अद्भुतपर्याय है। सूत्रकार ने 'पूजनात् पूजितमनुदात्तम्' इतना ही सूत्र पढा था। इस पर भाष्यकार कहते हैं कि पूजित को अनुदात्त की कर्तव्यता में काष्ठादिग्रहण करना चाहिए। पूजनार्थक काष्ठादि से पर में अनुदात्त कहना चाहिए। काष्ठादिगणपाठ का प्रयोजन है कि 'शोभनोऽध्यापकः' यहाँ पर शोभन से पर में अध्यापक पद को निघात नहीं हुआ।

'मलोप भी कहना चाहिए' जैसे—दारुणमध्यापकः दारुणाध्यापकः, दारुणमभिरूपः दारुणाभिरूपः। यहाँ पर मलोप है। इस उदाहरण में 'मयूरव्यंसकादयश्च' २.१.७२ सूत्र से समास है। समास होने से समासनिमित्ताक प्रातिपदिकसंज्ञा करके 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' २.४.७१ सूत्र से सुलोप होने से मलोप स्वयं प्राप्त था, फिर वार्तिकमुखेन मकार की निवृत्ति अपूर्व वचन नहीं है। अथवा 'दारुणमध्यापकः' यहाँ 'दारुणम्' के क्रियाविशेषण होने से मलोप प्राप्त नहीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है, जिसको वार्तिक से विधान किया है। {पूजनात्-}।

सगतिरपि तिङ् ८.१.६८

सगतिग्रहणं किमर्थम्? * सगतिग्रहणमपदत्वात् * **सगतिग्रहणं क्रियते। किं कारणम्? 'अपदत्वात्'। पदस्येतिवर्तते, नहि सगतिकं पदं भवति।**

पूर्व सूत्र से 'पूजनात् पूजितम्' तथा 'काष्ठादिभ्यः' ये तीन पद इस सूत्र में अनुवृत्त हैं। सूत्रार्थ हुआ—'पूजनार्थक काष्ठादि से पर में पूजति तिङन्त अनुदात्त होता है'। सूत्र में 'सह' पद तुल्ययोग में है; अतः गति का भी निघात होता है। जैसे 'यत्काष्ठां पचति, यत्काष्ठां प्रपचति'। 'तिङ्ङतिङः' ८.१.२८ सूत्र से प्राप्त निघात को 'निपातैर्यद्यदि-' ८.१.३० सूत्र निषेध कर रहा था; अतः 'सगतिरपि तिङ्' सूत्र का आरम्भ किया गया। यहाँ गतिग्रहण से उपसर्ग का ही ग्रहण होता है, यह मैं 'चनचिदिव-' ८.१.५७ सूत्र पर कह आया हूँ; अतः 'यत्काष्ठां शुक्लीकरोति' स्थल में 'ऊर्यादिच्विडाचश्च' १.४.६१ सूत्र से गतिसंज्ञा होने पर भी 'शुक्लीकरोति' को निघात नहीं हुआ।

सूत्र में सगति ग्रहण क्यों किया है? वह इसलिए कि 'पदस्य' ८.१.१६ का अनुवर्तन होगा। पदसंज्ञा सुबन्त, तिङन्त की होती है। तिङ् मात्र धातु से विहित है। भ्वादिगण पठित होकर क्रियावाचक की धातुसंज्ञा होती है। भ्वादिगण में सगतिक धातु नहीं पढे गये हैं। गतिरहित की ही पदसंज्ञा होने से उसी को मात्र निघात होगा। जबकि सगतिक को भी इष्ट है, अतः सगतिग्रहण किया गया है।

* उत्तरार्थञ्च * **उत्तरार्थं चापि सगतिग्रहणं क्रियते—'कुत्सने च सुप्यगोत्रादौ'। सगतिरपि पचति। प्रपचति पूति।**

अथ च सगतिग्रहण का अन्य प्रयोजन उत्तरार्थ भी है। उत्तर सूत्र 'कुत्सने च सुप्यगोत्रादौ' ८.१.६९ में सगतिः का अनुवर्तन हो सके इसलिए भी प्रकृत सूत्र में सगतिग्रहण किया गया। जिससे 'यत्काष्ठां पचति' इसमें पचति को निघात हो तथा 'यत्काष्ठां प्रपचति' इस सगतिक प्रपचति को भी निघात हो सके।

अथाऽपि ग्रहणं किमर्थम्? अगतिकस्याऽपि यथा स्यात्—यत्काष्ठा पचतीति। नैतदस्ति प्रयोजनं, सिद्धं पूर्वेणाऽगतिकस्य। न सिद्ध्यति। मलोपाभिसम्बद्धं तत्। यदि तदनुवर्तते इहापि मलोपः प्रसज्येत—दारुणं पचतीति * उत्तरार्थञ्च * **उत्तरार्थं चापि ग्रहणं क्रियते—'कुत्सने च**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सुप्यगोत्रादौ'। 'अगतिरपी'ति। पचति पूतीति।

अच्छा तो 'सगतिः तिङ्' इतना ही सूत्र पढते, सूत्र में अपिग्रहण क्यों किया? वह इसलिए कि अगतिक को भी निघात हो सके। जैसे—यत्काष्ठा पचति। जी नहीं। अपिग्रहण का यह प्रयोजन ठीक नहीं है। यहाँ तो पूर्वसूत्र 'पूजनात् पूजितम् अनुदात्तं काष्ठादिभ्यः' ८.१.६८ से भी निघात सिद्ध हो जाता, पुनः सूत्र में अपि ग्रहण क्यों किया है? ऐसी बात नहीं है, यहाँ पूर्वसूत्र से निघात सिद्ध नहीं है। वह इसलिए कि 'पूजनात् पूजितमनुदात्तां काष्ठादिभ्यः' ८.१.६८ मलोपविषयक है, अतः मलोप की विषयता होने पर भी पूजनार्थक काष्ठादि से पर में पूजित को अनुदात्त करेगा। 'यत्काष्ठा पचति' यह मलोपविषयक नहीं है, अतः पूर्वशास्त्र की प्रवृत्ति नहीं होने से उत्तरशास्त्र में आचार्य ने 'अपि'ग्रहण किया है। एवं च दूसरी बात यह भी है कि पूर्वशास्त्र सुबन्तविषयक भी है, यह मैं पहले बता चुका हूँ। यदि पूर्वशास्त्रीय अनुदात्त का अनुवर्तन करेंगे तो 'दारुणं पचति' इस स्थल में भी मलोप होने लगेगा, जो इष्ट नहीं है।

दूसरी बात यह है कि 'सगतिरपि तिङ्' सूत्र में अपिग्रहण उत्तरार्थक भी करना चाहिए। जिससे 'कुत्सने च सुप्यगोत्रादौ' ८.१.६९ सूत्र में अपि पद का अनुवर्तन हो सके, उत्तर सूत्र से अगति को भी निघात हो—'पचति पूति इति'।

* तिङ्ङिनघातात् पूजनात् पूजितमनुदात्तं विप्रतिषेधेन * **तिङ्ङिनघातात् पूजनात् पूजितमित्येतद् भवति विप्रतिषेधेन। तिङ्ङिनघातस्यावकाशः—देवदत्तः पचति। पूजनात् पूजितमित्यस्याऽवकाशः—काष्ठाध्यापकः, काष्ठाभिरूपकः। इहोभयं प्राप्नोति—काष्ठा पचति। पूजनात् पूजितमित्येतद् भवति विप्रतिषेधेन। कः पुनरत्र विशेषः तेन वा सत्यनेन वा? अयमस्ति विशेषः सापवादकः स विधिः। अयं पुनर्निरपवादकः। यदि हि तेन स्यादिह न स्यात्—यत्काष्ठा पचति। {सगति}।**

'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' १.४.२ सूत्र के द्वारा 'तिङ्ङतिङः' ८.१.२८ सूत्र को बाध कर पर होने से 'पूजनात् पूजितमनुदात्तं काष्ठादिभ्यः' ८.१.६७ प्राप्त है। वार्तिक में 'तिङ्ङिनघातात्' यहाँ ल्यब्लोप करके कर्म में पञ्चमी है। अर्थ हुआ—'तिङ्ङिनघातं प्रबाध्य'। तिङ्ङिनघात—'देवदत्तः पचति' में चरितार्थ है तथा 'पूजनात् पूजितमनुदात्तं काष्ठादिभ्यः' ८.१.६७ 'काष्ठाध्यापकः तथा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

काष्ठाभिरूपकः में चरितार्थ है। अन्यत्राऽन्यत्र लब्धावकाश शास्त्र 'तिङ्ङतिङः' ८.१.२८ तथा 'पूजनात् पूजितमनुदात्तं काष्ठादिभ्यः' ८.१.६७ इन दोनों शास्त्रों की प्रवृत्ति-'काष्ठा पचति' स्थल में एक साथ हो रही है, अतः 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' १.४.२ इस परिभाषा सूत्र से परशास्त्र 'पूजनात् पूजितमनुदात्तं काष्ठादिभ्यः' ८.१.६७ की बलवत्ता होगी तथा 'काष्ठा पचति' में उसी से अनुदात्त स्वर प्राप्त होगा। अच्छा तो 'काष्ठा पचति' में 'तिङ्ङतिङः' ८.१.२८ से निघात करें अथवा 'पूजनात् पूजितमनुदात्तं काष्ठादिभ्यः' ८.१.६७ से, इसमें क्या विशेष है? दोनों सूत्र निघात ही तो कर रहे हैं तथा वह एक ही जैसा होगा। कोई रूपभेद तो है नहीं। जी नहीं। इसमें यह विशेष है कि 'मध्येऽपवादा अनन्तरान् विधीन् बाधन्ते नोत्तरान्' इस परिभाषा के बल पर 'न लुट्' ८.१.२९ सूत्र 'तिङ्ङतिङः' ८.१.२८ का ही निषेध करेगा, 'पूजनात् पूजितमनुदात्तं काष्ठादिभ्यः' ८.१.६७ का नहीं। अथ च 'तिङ्ङतिङः' ८.१.२८ सावकाश विधि है तथा 'पूजनात् पूजितमनुदात्तं काष्ठादिभ्यः' ८.१.६७ निरवकाश है। इस तरह निरवकाशरूप अपवाद होने से 'पूजनात् पूजितमनुदात्तं काष्ठादिभ्यः' ८.१.६७ 'तिङ्ङतिङः' ८.१.२८ को बाध लेगा। यदि 'तिङ्ङतिङः' ८.१.२८ से अनुदात्त करेंगे तो 'निपातैर्यद्यदि-' ८.१.३० सूत्र से सद् के योग में निषेध होने से 'यत्काष्ठा पचति' यहाँ पर निघात नहीं हो सकेगा, अतः निघात-विधान करने के लिए 'सगतिरपि तिङ्' सूत्र पढना चाहिए। {**सगतिरपि तिङ्**}।

कुत्सने च सुप्यगोत्रादौ ८.१.६९

* सुपि कुत्सने क्रियायाः * **क्रियायाः कुत्सन इति वक्तव्यम्। कर्तुः कुत्सने मा भूत्। पचति पूतिः। गिरति पूतिः** * पूतिश्च चानुबन्धः * **पूतिश्च चानुबन्धो द्रष्टव्यः। पचति पूति।**

सुपिग्रहणसामर्थ्य से 'पदात्' ८.१.१७ यह अधिकार यहाँ अनुवृत्त नहीं होगा। 'गोत्रादि से भिन्न सुबन्त परे रहते कुत्सन अर्थ गम्य होने पर सगति व अगति तिङन्त को निघात हो' यह सूत्रार्थ है। जैसे—पचति, पूति, प्रपचति पूति, पचति मिथ्या, प्रपचति मिथ्या। यहाँ कुत्सन=निन्दा अर्थ गम्य होने पर सुबन्त परे रहते सगतिक और अगतिक का निघात है। कुत्सन अर्थ गम्य होने पर सुबन्त परे रहते सगतिक और अगतिक का निघात है। यदि कुत्सन अर्थ गम्य हो तो सुबन्त को निघात नहीं होगा। जैसे—पचति शोभनम्। कुत्सन अर्थ गम्य होने पर भी यदि सुबन्त पर में नहीं है तो भी तिङन्त को निघात

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं होगा। जैसे—'पचति क्लिश्नाति'। यदि निन्दा अर्थ गम्य हो, परन्तु गोत्रादि सुबन्त पर में हों तो भी तिङन्त को निघात नहीं होगा। जैसे—'पचति गोत्रम्'=कुल का नाश करता है, यहाँ निन्दा गम्य है।

'सुबन्त परे रहते क्रिया का कुत्सन गम्य होने पर सगतिक तथा अगतिक तिङन्त को अनुदात्त कहना चाहिए', यह वार्तिकार्थ है। जैसे—'पचति मिथ्या' इस वाक्य में पाकानुकूलव्यापार की निन्दा गम्य है, अतः यहाँ तिङन्त पचति को अनुदात्त हो जायेगा। परन्तु जहाँ कर्ता का कुत्सन गम्य है वहाँ सुबन्त परे रहते तिङन्त को निघात नहीं होगा। जैसे—'पचति पूतिः सोमदत्तः गिरति पूतिः सोमदत्तः' यहाँ पर कर्ता का कुत्सन है, अतः पूतिः के परे रहते भी सुबन्त पचति व गिरति को अनुदात्त नहीं हुआ।

'पूतिरियम्' ऐसा सामानाधिकरण्य देखा जाता है, अतः पूति शब्द क्तिन्नन्त भी नहीं है, तथा क्तिजन्त भी नहीं है; अपितु पूति यह संज्ञा है तथा अव्युत्पन्न प्रातिपदिक है, इसी बात को 'पूतिश्च चानुबन्धः' वार्तिक से बताया है; अतः चकारानुबन्ध होने से 'चितः' ६.१.१६३ सूत्र से पूति शब्द अन्तोदात्त है। यदि 'वशेस्तिः' उणादि. ६१६ सूत्र में बाहुलक ग्रहण होने से पूञ् धातु १४८३ से बाहुलकात् ति प्रत्यय करके पूति शब्द को व्युत्पन्न करेंगे तो तिबन्त पूति शब्द को बाहुलकात् गुणाभाव तथा आद्युदात्त भी होगा। उस निघात निमित्त का अन्तोदात्त हो सके इसलिए पूतिच् ऐसा चित् भाष्यकार ने कहा है।

* विभाषितं चापि बह्वर्थम् * **विभाषितं चापि बह्वर्थं द्रष्टव्यम्। पचन्ति पूति। पचन्ति पूति।**

*** सूपि कुत्सने क्रियाया मकारलोपोऽतिङीति चोक्तार्थम्।**
पूतिश्च चानुबन्धो विभाषितं चापि बह्वर्थम्।।१।। *

विभाषितमिति—बहुवचनान्त तिङन्त को विकल्प से अनुदात्त कहना चाहिए। जैसे—पचन्ति पूति। यदि तिङन्त को निघात करेंगे तो पूति अन्तोदात्त होगा। जैसे—पचन्ति पूति।

उक्त श्लोकवार्तिक में चार वार्तिकों का एकत्र संग्रह है। १. सुपि कुत्सने क्रियायाः। २. मकारलोपोऽतिङि। ३. पूजितश्च चानुबन्धः। ४. विभाषितं चापि बह्वर्थम्। प्रथम तृतीय व चतुर्थ वार्तिक का व्याख्यान इसी सूत्र पर कर दिया गया। 'पूजनात् पूजितमनुदात्तं काष्ठादिभ्यः' ८.१.६७ सूत्र पर 'मलोपवचनं च' ऐसा वार्तिक पढा है। उसके बारे में भाष्यकार कहते हैं—मलोप तिङ्भिन्न

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परे रहते कहना चाहिए। जैसे—दारुणाऽभिरूपः। परन्तु जहाँ तिङ् पर में है वहाँ मलोप नहीं होगा। जैसे—दारुणं पचति। {कुत्सने च-}।

'गतिर्गतौ' ८.१.७०

गताविति किमर्थम्? प्रपचति। प्रकरोति * गतेरनुदात्तत्वे गतिग्रहणानर्थक्यं तिङ्यवधारणात् * **गतेरनुदात्तत्वे गतिग्रहणानर्थक्यम्। किं कारणम्? 'तिङ्यवधारणात्'। 'तिङि चोदात्तवती'त्येतन्नियमार्थं भविष्यति—'तिङ्युदात्तवत्येव गतिरनुदात्तो भवती'ति।**

इस सूत्र में 'पदात्' ८.१.१७ की अनुवृत्ति नहीं होती है। सूत्रार्थ है—'गति पर रहते गति को अनुदात्त हो'। जैसे—'अभ्युद्धरति'। यहाँ हृ धातु के योग में अभि और उत्, ये दोनों गतिसंज्ञक हैं, अतः उत् परे रहते अभि को निघात हुआ।

अब प्रश्न करते हैं—'गतौ' ऐसा सप्तम्यन्त निमित्तवचन क्यों किया है? प्रश्न में स्वारस्य यह है कि तिङन्त अथवा कृदन्त से युक्त गति का ही केवल प्रयोग होगा अथवा गति परे रहते प्रयोग होगा। परन्तु जो शुद्ध रूप से गो अश्व आदि रूढि शब्द हैं उनके परे रहते गतिसंज्ञक प्रादि का प्रयोग होता हैं कृदन्त स्थल में सगतिक परे रहते अथवा अगतिक परे रहते कृत्स्वर, थाथादिस्वर तथा गतिस्वर कर लेने पर शेषनिघात के द्वारा गतिसंज्ञक को निघात सुतरां हो जायेगा। एवम् इसी तरह तिङन्त स्थल में 'तिङि चोदात्तवति' ८.१.७१ सूत्र से गति को निघात हो जाने से तिङन्त परे रहते गति को कहीं भी अनुदात्त प्राप्त नहीं है, अपितु गति परे रहते ही गति को अनुदात्त होगा। इससे 'गतौ' का स्वयं लाभ हो जा रहा है; पुनः सूत्र में 'गतौ' ग्रहण क्यों किया है? इस तरह 'प्रपचति, प्रकरोति' स्थल में भी गति को निघात होने लगेगा, जो इष्ट नहीं है। 'गतौ' ग्रहण करने पर यहाँ गति परे नहीं होने से गति को निघात नहीं होता है।

* छन्दोऽर्थन्तु * **छन्दोऽर्थं तर्हि गतिग्रहणं कर्त्तव्यम्। छन्दसि गतौ परतोऽनुदात्तत्वं यथा स्यान्मन्द्रशब्दे मा भूत्। आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः।**

अच्छा तो गति को अनुदात्त की कर्तव्यता में 'गतौ' यह निमित्त का ग्रहण नहीं करना चाहिए, क्योंकि 'तिङि चोदात्तवति' ८.१.७१ सूत्र नियम करेगा। प्रपचति, प्रकरोति स्थलों में 'तिङ्ङतिङः' ८.१.२८ सूत्र से 'पचति' और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'करोति' के निघात हो जाने पर उदात्तवान् तिङ् पर रहते गति प्र को भी 'तिङि चोदात्तवति' ८.१.७१ सूत्र से अनुदात्त होता है, अतः वह 'गतौ' का व्यावर्त्य नहीं हो सकता है। इस तरह गति का अनुदात्त सिद्ध हो जाने पर गतिग्रहण व्यर्थ हो गया। इसका क्या कारण है? इसका कारण यह है कि 'तिङि चोदात्तवति' ८.१.७१ यह नियमार्थक होगा। नियमस्वरूप होगा—'तिङि चोदात्तवति एव गतिरनुदात्तो भवति, नान्यत्र' अर्थात् 'जहाँ पर तिङन्त को अनुदात्त हो वहीं पर गति को निघात हो, अन्यत्र नहीं।' जैसे 'प्रपचति, प्रकरोति' इन स्थलों में 'तिङ्ङतिङः' ८.१.२८ से 'पचति, करोति' को निघात हो जाने से तिङन्त अनुदात्त परे रहते प्र को अनुदात्त होता ही है; अतः वह 'गतौ' का व्यावर्त्य नहीं बन सकता हैं, इस तरह 'गतौ' ग्रहण क्यों किया? यह प्रश्न अभी भी यथावत् बना है।

* छन्दोऽर्थमिति चेन्नाऽगतित्वात् * **छन्दोऽर्थमिति चेत्तन्न। किं कारणम्? 'अगतित्वात्'। यत्क्रियायुक्तास्तं प्रति गत्युपसर्गसंज्ञे भवतः। न चाऽत्राऽऽङो मन्द्रशब्दं प्रति क्रियायोगः। किं तर्हि? याहिशब्दं प्रति। इहापि तर्हि न प्राप्नोति—अभ्युद्धरति समुदानयति उपसमादधातीति। अत्राऽपि नाभेरुदं प्रति क्रियायोगः। किं तर्हि? हरतिं प्रति क्रियायोगः। नैष दोषः। उदं प्रति क्रियायोगः।**

अतः उसका उत्तर देने के लिए दूसरा वार्तिक अवतरित करते हैं—**छदोऽर्थमिति**। अच्छा तो गतिग्रहण वेद के लिए होगा। वेद में गति परे रहते अनुदात्त हो मन्द्र शब्द परे रहते न हो। जैसे—'आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः'। यहाँ पर आङ् का याहि के साथ योग है, परन्तु आङ् मन्द्र शब्द से पूर्व है, याहि से नहीं; अतः आङ् को अनुदात्त नहीं हुआ। यहाँ यह विशेष ध्येय है कि 'ते प्राग्धातोः' १.४.८० सूत्र पर भाष्यकार ने पक्ष उठाया है कि ये गति और उपसर्गसंज्ञक धातु से पूर्व प्रयुक्त हों, अथवा धातु से पूर्व इनकी गतिसंज्ञा और उपसर्ग संज्ञा की जाये?

यदि धातु से पूर्वप्रयोग नियम मानेंगे तो 'धातोः प्रागेव गत्युपसर्गाः प्रयोक्तव्याः' ऐसा कहा जायेगा; तब इस पक्ष में 'छन्दसि परेऽपि' १.४.८१ 'व्यवहिताश्च' १.४.८२ ये दोनों सूत्र पढने होंगे। एवं वहीं पर पुनः भाष्यकार कहते हैं—'प्राग्वचनं प्रयोगनियमार्थं चेद् अनुकरणस्येतिकरणपरप्रतिषेधोऽनिष्ट-शब्दनिवृत्त्यर्थः छन्दसि परव्यवहितवचनं च'। इस पक्ष में 'याहि' इस क्रियापद की अपेक्षा आङ् की गतिसंज्ञा होगी तथा निघात हो जायेगा। परन्तु यदि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संज्ञानियम करेंगे तो अर्थ होगा—'धातु से पूर्व प्रयुक्त प्रादि की ही गति व उपसर्गसंज्ञा हो, पर और व्यवहित प्रयुक्त की नहीं'। इस तरह 'आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः' यहाँ पर आङ् का व्यवहित प्रयोग होने से गतिसंज्ञा नहीं हुई जिससे निघात भी प्राप्त नहीं है।

अच्छा तो यदि 'गतौ' इस सप्तम्यन्त वचन को छन्दोऽर्थ मानोगे तो वह नहीं बन सकता है। इसका क्या कारण है? गतिसंज्ञा न होना ही इसका कारण है। 'आ मन्दैरिन्द्र हरिभिर्याहिमयूररोमभिः' यहाँ पर आङ् का मन्द्र शब्द के प्रति क्रिया योग है। जिस क्रिया से युक्त प्रादि होते हैं उसी क्रिया के प्रति उस की उपसर्गसंज्ञा होती है। मन्द्र शब्द रूढ होने से अव्युत्पन्न हैं, अतः मन्द्र शब्द के प्रति आङ् का योग नहीं है। तब किस के साथ है? याहि शब्द के प्रति आङ् का योग है। अच्छा तो जिस क्रिया से प्रादि युक्त होंगे उसी के प्रति गतिसंज्ञक होंगे ऐसा मानेंगो, तो 'अभ्युद्धरति, समुदानयति' तथा 'उपसमादधामि' में भी दोष होगा। 'अभ्युद्धरति' में क्रिया के साथ उत् का योग है, अभि का नहीं, एवम् 'समुदानयति में नयतिक्रिया के साथ आङ् का योग है, सम और उत् का नहीं' तथा 'उपसमादयति' में 'दधातिक्रिया' के साथ आङ् का योग है, उप और सम् का नहीं। इस तरह जिसका क्रिया से योग नहीं है उसकी गतिसंज्ञा न होने से स्वर में दोष आ गया। यहाँ भी उत् का अभि के प्रति क्रियायोग नहीं है। तब किसके साथ है? हरति के प्रति क्रियायोग है। यह कोई दोष नहीं है। अभि को उत् के प्रति ही क्रियायोग मानना चाहिए।

कथम्? उत् हरितिक्रियां विशिनष्टि। उदा विशिष्टाम् अभिर्विशिनष्टि। तत्र 'यत्क्रियायुक्ता' इति भवत्येव संघातं प्रति क्रियायोगः। इहाऽपि तर्हि मन्द्रसाधना क्रियाऽऽङाऽभिव्यज्यते—आयाहि मन्द्रै'रिति। ननु 'पूर्वं धातु-रुपसर्गेण युज्यते पश्चात् साधनेने'ति? नैतत् सारम्—'पूर्वं धातुः साधनेन युज्यते पश्चादुपसर्गेण'। किं कारणम्? साधनं हि क्रियां निर्वर्तयति तामुपसर्गो विशिनष्टि, अभिनिर्वृत्तस्य चोपसर्गेण विशेषः शक्यो वक्तुम्। सत्यमेवमेतत्। यस्त्वसौ धातूपसर्गयोः अभिसम्बन्धस्तमभ्यन्तरीकृत्य धातुः साधनेन युज्यते। अवश्यं चैतदेवं विज्ञेयम्, यो हि मन्यते—'पूर्वं धातुः साधनेन युज्यते पश्चादुपसर्गेणेति। 'आस्यते गुरुणे'त्यकर्मकः 'उपास्यते गुरु'रिति केन सकर्मकः स्यात्?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह कैसे? यह इसलिए कि उत् हरति क्रिया में विशेष ला रहा है, एवम् उत् से विशिष्ट क्रिया में अभि विशिष्ट ला रहा है, अतः अभि को उत् के प्रति क्रियायोग मानेंगें, हरति के प्रति नहीं। ऐसा नहीं है—उद्विशिष्ट हरति—उद्धरति से वाच्य क्रिया में अभि का भी क्रिया के साथ योग होने से गति संज्ञा हो गयी, 'गतिर्गतौ' ८.१.७० से अभि को निघात हो जायेगा। अच्छा तो 'आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः' यहाँ पर भी मन्द्रादिकरण इन्द्रकर्तृक यान को आङ् से विशिष्ट करेंगे, इस तरह समुदाय के प्रति क्रियाविशेष को बताने वाले की गतिसंज्ञा हो जायेगी। और बात यह भी है कि 'धातु का पहले उपसर्ग के साथ योग होता है तथा बाद में साधन=कारक के साथ' यह उचित नहीं है, अपितु धातु का पहले साधन=कारक के साथ योग होता है तथा बाद में उपसर्ग के साथ, यही उचित है। इसका कारण क्या है? **साधन**=कारक क्रिया को उत्पन्न करता है तथा साधन द्वारा उत्पन्न क्रिया में उपसर्ग विशिष्ट करता है। धातु और उपसर्ग का जो सम्बन्ध, उससे वाच्य जो क्रिया, उस क्रिया को साधन उत्पन्न करता है तथा केवल धातुवाच्य क्रिया को भी, यही मानना उचित है। जो लोग मानते हैं कि धातु पहले साधन से युक्त होता है तथा बाद में उपसर्ग से; उनके यहाँ 'आस्यते गुरुणा' यह अकर्मक होते हुए भी 'उपास्यते गुरुः' यह सकर्मक नहीं हो सकेगा, अतः धातु को पहले उपसर्ग से ही योग करना चाहिए, उपसर्ग से योग होने पर उपास्य सकर्मक हो गया तथा 'उपास्यते गुरुः' यह सम्पन्न हो गया। यहाँ साधन सकर्मक का ही निर्वर्तन कर रहा है। इन्हीं विषयों को भाष्यकार यहाँ कारिकामुखेन कहते हैं—

* गतिना तु विशिष्टस्य गतिरेव विशेषकः।
साधने केन ते न स्याद् बाह्यमाभ्यन्तरो हि सः।।१।। *

कारिकार्थ—अभ्युद्धरति यहाँ पर ऊर्ध्वताविशिष्ट हरतिक्रिया गति से विशेषित है। इसी बात को बताया है—गति से विशिष्ट उद्धरति का विशेषक अभि है; अतः 'अभि' भी गति है। **साधने**='गतौ' इस सूत्रांश के न रहने पर 'आ मन्द्रैः' यहाँ पर साधनाभिधायी मन्द्रशब्द के परे रहते निघात क्यों नहीं होता है? यह पूर्व पक्ष 'साधने केन ते न स्याद्' इस पूर्वार्ध से किया है।

इसका उत्तर देते हैं—**बाह्यमिति**। गति के प्रति साधन बाह्य होता है तथा धातु अन्तरङ्ग, अतः 'असिद्धं बहिरमिन्तरङ्गे' ५०, परिभाषा के बल पर 'आ मन्दैः' स्थल में धातु और उपसर्ग का अन्तरङ्ग कार्य होगा तथा उसकी दृष्टि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में **बाह्य**=साधनसम्बन्धी बहिरङ्ग असिद्ध हो जायेगा; अतः आ याहि के प्रतिगतिसंज्ञक होगा, मन्द्र के प्रति नहीं, अतः मन्द्र से पूर्व आ को निघात प्राप्त नहीं है। {गतिर्गतौ}।

तिङि चोदात्तवति ८.१.७१

तिङ्ग्रहणं किमर्थम्? * तिङ्ग्रहणमुदात्तवतः परिमाणार्थम् * **तिङ्ग्रहणं क्रियते। किं प्रयोजनम्? उदात्तवतः परिमाणार्थम्। तिङ्युदात्तवति यथा स्यान्मन्द्रशब्दे मा भूद्—आमन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि।**

तिङि इति। 'निपाता आद्युदात्ताः' (फिट् सूत्र ८०) का यह अपवाद सूत्र है। उदात्तवान् तिङन्त परे रहते गति को निघात होता है। जैसे—'यत्प्रपचति'। यहाँ पर यद् के योग में 'निपातैर्यद्यदिहन्तकुविन्नेच्चेच्चण्कच्चिद्यत्रयुक्तम्' ८.१.३० सूत्र से तिङन्त के निघात का निषेध है; अतः तिङन्त उदात्तवान् है। उसका उदात्तवान् तिङन्त के परे रहते गति प्र को अनुदात्त किया गया।

अच्छा तो सूत्र में तिङिग्रहण क्यों किया है? यदि तिङिग्रहण नहीं करते तो 'उदात्तवति' इतना ही सूत्र रहता। अर्थ होता—'उदात्तवान् परे रहते गति को निघात हो'। इस तरह यत्प्रपचति में गति को निघात हो जाता, पुनः सूत्र में तिङिग्रहण क्यों किया?

इसका उत्तर देते हैं—**तिङ्ग्रहणमिति।** तिङ्ग्रहण उदात्तवान् का परिमाण है। सूत्र में तिङ्ग्रहण उदात्तवान् के परिमाणार्थ है। तिङन्त उदात्तवान् परे रहते गति को निघात हो, उदात्तावान् मन्द्रशब्द परे रहते आ को निघात न हो। जैसे—'आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि'। यदि सूत्र में तिङ्ग्रहण नही करते तो मन्द्र शब्द रक्प्रत्ययान्त अन्तोदात्त है, उसके परे रहते भी आ को निघात प्राप्त होता जो इष्ट नहीं है; अतः तिङ्ग्रहण किया गया।

* यद्योगाद् गतिः * **यत्क्रियायुक्तास्तं प्रति गत्युपसर्गसंज्ञे भवतो न चाङो मन्द्रशब्दं प्रति क्रियायोगः। किं तर्हि? 'याहि' शब्दं प्रति** * यद्योगाद्गतिरिति चेत् प्रत्ययोदात्तत्वेऽप्रसिद्धिः * **यद्योगाद् गतिरिति चेत् प्रत्ययोदात्तत्वेऽप्रसिद्धिः स्यात्। यत्प्रकरोति। तस्मात् तिङ्ग्रहणं कर्तव्यम्।**

पुत्र, पत्नी, पिता शब्द की तरह गति शब्द अपने सम्बन्धी में नित्य साकाङ्क्ष है, अतः गति शब्द का सम्बन्धी की आकाङ्क्षा में गति शब्द से क्रियावाची का आक्षेप होगा तथा उसी के प्रति गतिसंज्ञा होगी, मन्द्रशब्द के प्रति नहीं। एवञ्च जिस क्रिया के साथ प्रादि का योग होगा, उसी के प्रति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उसकी उपसर्ग संज्ञा होगी, इतर के प्रति नहीं। जैसे 'प्रर्द्धः यहाँ पर 'प्रगतः ऋद्धः' ऐसा विग्रह करते हैं तथा 'प्रर्द्धः' ऐसा समास। अब यहाँ 'उपसर्गादृति धातौ' ६.१.९१ से वृद्धि इसलिए नहीं होती है कि विग्रह वाक्य में प्र का योग गत के साथ है, अतः गम् धातुनिरूपित उपसर्गत्व प्र में जायेगा। जब कि वृद्धि ऋद्ध निरूपित है, अतः ऋद्ध के प्रति उपसर्गत्व नहीं होने से वृद्धि नहीं हुई, गुण होकर 'प्रर्द्धः' ऐसा ही रूप रहा। प्रकृत में आङ् का मन्द्र शब्द के प्रति क्रियायोग नहीं है, अपितु याहि के प्रति क्रिया योग है, अतः उदात्तवान् मन्द्र परे रहते आङ् को अनुदात्त नहीं हुआ।

यदि 'यद्योगाद् गतिः' ऐसा वार्तिक पढ कर 'यत्क्रियायुक्तास्तं प्रत्येव गत्युपसर्गसंज्ञे भवतः' ऐसा मानेंगे तो गतिसंज्ञा क्रियावाची के योग में होगी। धातु ही क्रियावाची होता है, अतः गतिसंज्ञा का निमित्त धातु होगा। उस धातु के ही उदात्तवान् होने पर गति को निघात करना चाहिए, जहाँ प्रत्यय उदात्तवान् है, तन्निमित्तक निघात गति को नहीं हो सकेगा, क्योंकि प्रत्यय क्रियावाची नहीं है, तथा उसके योग में कहीं पर भी गति नहीं मिलेगा। जैसे 'यत्प्रकरोति' स्थल में प्र की गतिसंज्ञा कृ-निमित्तक है, तिङ्निमित्तक नहीं; अतः 'उदात्तवति' इतना सूत्र पढने पर प्र को निघात नहीं हो पा रहा है जिससे सूत्र में तिङ्ग्रहण किया गया।

यदि तिङ्ग्रहणं क्रियते आमन्ते न प्राप्नोति, प्रपचतितरां प्रजल्पतितराम्। असति पुनस्तिङ्ग्रहणे क्रियाप्रधानमाख्यातं तस्मादतिशये तरबुत्पद्यते, तरबन्तात् स्वार्थे आम्, तत्र 'यत्क्रियायुक्तास्तं प्रति गत्युपसर्गसंज्ञे भवत' इति भवत्येतं सङ्घातं प्रति क्रियायोगः। तस्मान्नार्थस्तिङ्ग्रहणेन। कस्मान्न भवति—'आ मन्दैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः'? 'यद्योगाद् गति'रिति। यद्योगाद् गतिस्तं प्रति गत्युपसर्गसंज्ञे भवतो न चाङो मन्द्रशब्दं प्रति क्रियायोगः।

फिर भी तिङ्ग्रहण करने पर भी अन्य दोष उठाते हैं—**यदीति**। यदि सूत्र में तिङ्ग्रहण करेंगे तब भी 'प्रपचतितराम्, प्रजल्पतितराम्', यहाँ आमन्त स्थल में गति को अनुदात्त प्राप्त नहीं हो रहा है, जबकि यहाँ अनुदात्त इष्ट है। 'अनयोः अतिशयेन प्रपचति इति प्रपचतितराम्, अनयोः अतिशयेन प्रजल्पति इति प्रजल्पतितराम्', इस व्युत्पत्ति में 'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीसयुनौ' ५.३.५७ सूत्र से अतिशय अर्थ में तरप् तथा तरबन्त से 'किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे' ५.४.११ सूत्र से आम् प्रत्यय हुआ है। रूप हुआ—'प्रपचतितराम्, प्रजल्पतितराम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ पर 'गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः' इस वार्तिक से सुबुत्पत्ति से पूर्व समास कर देने पर आम् को उदात्तस्वर होगा, तथा वह अतिङन्त उदात्त होगा। इस तरह आमन्त के अतिङन्त होने से 'प्रपचतितराम्, प्रजल्पतितराम्' स्थल में गति को अनुदात्त प्राप्त नहीं होने से अव्याप्ति दोष आया, परन्तु यदि सामान्यतया 'गतीनां समासः प्राक्सुबुत्पत्तेः' यह पक्ष मानेंगे तो आमन्त के साथ प्र शब्द का समास होने से अव्ययपूर्वपद प्रकृतिस्वर शेष निघात होगा। अथवा 'गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः' यहाँ पर कृद्ग्रहण का प्रत्याख्यान मान कर उत्तरपद प्रकृतिस्वर से 'प्र'शब्द को शेषनिघात करेंगे तब तिङ्ग्रहण का अव्याप्तिदोष नहीं है। यदि सूत्र में तिङ्ग्रहण नहीं करेंगे तो इस पक्ष में आख्यात क्रियाप्रधान होता है। तिङन्त से अतिशय अर्थ में उत्पन्न होता हुआ तरप् प्रत्यय क्रियातिशय को कहेगा, एवम् तरबन्त से स्वार्थ में होने वाला आम् प्रत्यय भी क्रियातिशय को ही कहेगा। इस तरह प्रादि जिस क्रिया से युक्त होंगे उसी के प्रति उपसर्ग तथा गतिसंज्ञक होंगे। प्रपचतितराम् स्थल में 'अयम् अनयोरतिशयेन प्रपचति' इस अर्थ में तिङन्त से तथा 'अयमनयोरतिशयेन प्रजल्पति' इस अर्थ में भी तिङन्त से तरप् प्रत्यय होता हुआ क्रियातिशय को ही कहेगा तथा आम् भी स्वार्थ में होता हुआ क्रियातिशय को ही कहेगा। इस तरह प्रादि उक्त स्थल में क्रियायुक्त ही होंगे तथा समुदाय के प्रति उनकी गतिसंज्ञा होगी, अतः 'प्रपचतितराम् प्रजल्पतितराम्' स्थल में संघात के प्रति प्रादि के गति होने से तिङ्ग्रहण की आवश्यकता नहीं है। अच्छा तो यदि तिङ् ग्रहण नहीं करेंगे तो 'आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः' यहाँ पर उदात्तवान् मन्द्रशब्द परे रहते आङ् को निघात क्यों नहीं होता है? वह इसलिए कि जिस क्रिया से प्रादि युक्त होंगे उसी के प्रति उनकी गतिसंज्ञा होगी। प्रकृत में याहि के साथ आङ् का योग है, मन्द्र के साथ नहीं। अतः उदात्तवान् मन्द्र परे रहते आङ् को निघात नहीं हुआ।

ननु चोक्तं 'यद्योगाद् गतिरिति चेत्प्रत्ययोदात्तत्वेऽप्रसिद्धि'रिति। नैष दोषः। 'यत्क्रियायुक्ता' इति नैवं विज्ञायते—यस्य क्रिया यत्क्रिया, यत्क्रियायुक्तास्तं प्रति गत्युपसर्गसंज्ञे भवत इति। कथं तर्हि? या क्रिया यत्क्रिया यत्क्रियायुक्तास्तं प्रति गत्युपसर्गसंज्ञे भवत इति।

आप ने पहले जो कहा था—'यद् योगाद् गतिरिति चेत् प्रत्ययोदात्तत्वेऽसिद्धिः'। यह कोई दोष नहीं है। 'यत्क्रियायुक्ताः' यहाँ पर हम यह नहीं कहते हैं कि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'यस्य क्रिया यत्क्रिया' यत्क्रिया युक्त हो उसी के प्रति गति व उपसर्गसंज्ञा होती है। अच्छा तो आप क्या कर रहे हैं? मैं यह कह रहा हूँ कि 'या चासौ क्रिया च यत्क्रिया', तादृश क्रियायुक्त की तादृश क्रिया के प्रति गति व उपसर्ग संज्ञा होती है। इसका आशय इस प्रकार है—अन्वय और व्यतिरेक के द्वारा धातु की जो क्रिया उस क्रिया से युक्त प्रादि गतिसंज्ञक होते हैं तो उसी क्रिया के प्रति गतिसंज्ञक होंगे, अन्य के प्रति नहीं। इस तरह 'प्रपचतितराम्, प्रजल्पतितराम्' स्थल में पचति व जल्पति के योग में गतित्व होगा, यह अन्वय है—'तत्संत्त्वे तत्सत्ता अन्वयः'। परन्तु 'पचतितराम्, जल्पतितराम्' के योग में गतित्व नहीं होगा क्योंकि वहाँ पचति व जल्पति रूप का अभाव है' अतः "तदभावे तदभावः" व्यतिरेक ऐसा व्यतिरेक होने से 'प्रपचतितराम्, प्रजल्पतितराम्' स्थल में 'प्र' को निघात नहीं हो पा रहा है। परन्तु द्वितीय अर्थ 'या क्रिया यत्क्रिया' ऐसा अर्थ लेंगे तो क्रियालक्षण अर्थ लिया जायेगा तब अर्थ के प्रति गतिसंज्ञा होगी, शब्द के प्रति नहीं; अतः अर्थरूपा क्रिया जैसे पचति में है वैसे 'पचतितराम्' में भी है, अतः जैसे पचति के प्रति 'प्र' गतिसंज्ञक है वैसे 'पचतितराम्' के प्रति भी। इसी तरह 'जल्पति' की अर्थरूपा क्रिया जैसे 'जल्पति' में है वैसे 'जल्पतितराम्' में भी; अतः जैसे जल्पति के प्रति प्र में गतिसंज्ञक है वैसे 'पचतितराम्' के 'प्रति' भी। इसी तरह जल्पति की अर्थरूपा क्रिया जैसे 'जल्पति' में है वैसे 'जल्पतितराम्' में भी, अतः जैसे 'जल्पति' के प्रति प्र में गतित्व है वैसे जल्पतितराम् के प्रति भी। अर्थ के प्रति गतित्व मानने पर अर्थ में कार्य असम्भव है, अतः अर्थ का वाचक शब्द के प्रति कार्य समझना चाहिए। इस तरह सभी क्रियाप्रधान में प्रत्यय-उदात्त तथा धातु-उदात्त के रूप में उदात्तवान् परे रहते गति को निघात होता है। {तिङि-}।

आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत् ८.१.७२

वत्करणं किमर्थम्? स्वाश्रयमपि यथा स्यात्। आम् भो देवदत्तेत्यत्र 'आम एकान्तरमामन्त्रितमनन्तिक' इत्येकान्तरता यथा स्यात्।

वत्करण से यह अतिदेशशास्त्र है। सम्बोधन में प्रथमा एकवचन की आमन्त्रितसंज्ञा होती है, जैसा कि 'सामन्त्रितम्' २.३.४८ सूत्र से स्पष्ट है। प्रकृत सूत्र का अर्थ इस प्रकार है—'पूर्व आमन्त्रित अविद्यमानवद् होता है'। जैसे—'अग्ने तव श्रवो वयः' इस मन्त्र में अग्ने यह सम्बोधन में प्रथमैकवचनान्त होने से अविद्यमानवत् है। अग्ने के अविद्यमानवत् होने से अस्मद् को ते आदेश नहीं हुआ। इसी तरह 'देवास्मान् पाहि' में देव! के अविद्यमानवद् होने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से अस्मद् को नस् आदेश नहीं हुआ। एवम्-'अग्ने नय सुपथा रायः' यहाँ पर अग्ने! के अविद्यमानवद् होने से नय को 'तिङ्ङतिङः' ८.१.२८ से निघात नहीं हुआ।

अब प्रश्न करते हैं कि सूत्र में वत्करण क्यों किया है? यदि यह अतिदेश शास्त्र है यह बताने के लिए आचार्य ने वत्करण किया है तो वत्करण के विना भी अतिदेश गम्य होता है। जैसे—'गोतो णित्' ७.१.९० । यदि आप यह कहें कि वत्करण के अभाव में 'आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानम्' इतना ही सूत्र बचेगा। इससे पूर्व आमन्त्रित की निवृत्ति हो जायेगी तो यह भी कोई दोष नहीं। वह इसलिए कि अर्थबोध के लिए ही शब्दों का प्रयोग किया जाता है। परन्तु अर्थ की निवृत्ति हो जाने से शब्द की निवृत्ति नहीं होती है। इस तरह जब अतिदेश अर्थ का लाभ हो जायेगा तब सूत्र में वत्करण क्यों किया है? वत्करण का प्रयोजन यह है कि पूर्व आमन्त्रित अविद्यमान हो तथा आमन्त्रित को आश्रय मानकर जो कार्य विहित है, वह भी हो। जैसे—आम भो देवदत्त! यहाँ पर 'आम एकान्तरम् आमन्त्रितमनन्तिके' ८.१.५५ सूत्र से आम् से पर में एक पद का व्यवधान होने पर आमन्त्रित को अनुदात्त का निषेध है। वत्करण का भाव इस प्रकार है—जो स्वाश्रय कार्य आतिदेशिक के द्वारा नहीं हो पा रहे हैं, उनका बाध हो। 'चाण्डालवदस्मिन् ब्राह्मणे वर्तितव्यम्' ऐसा अतिदेश करने पर 'ब्राह्मणा भोज्यन्ताम्' इस तरह कहने पर जिसमें चाण्डालातिदेश किया गया उसका भोजन का बाध हो गया।

* पूर्वं प्रति विद्यमानत्वादुत्तारत्रानन्तर्याऽप्रसिद्धिः * **पूर्वं प्रतिविद्यमानत्वादुत्तरत्रानन्तर्यस्याऽप्रसिद्धिः स्यात्। इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि। गङ्गेशब्दोऽयं यमुनेशब्दं प्रति अविद्यमानवद् भवति, न तु मेशब्दं प्रति। तत्राऽऽमन्त्रितस्य पदात् परस्येत्यनुदात्तत्वं न स्यात्।**

अच्छा तो सूत्र मे पूर्वम् पद पढा है। पूर्व सम्बन्धी शब्द है, अतः सम्बन्ध में नित्य सांकाङ्क्ष होने से पूर्व शब्द से पर का आक्षेप होगा। इस तरह पर के प्रति पूर्व अविद्यमानवत् होगा, पूर्व के प्रति नहीं। अपितु पूर्व के प्रति पर शब्द के विद्यमान होने पर उत्तर आनन्तर्य की अप्रसिद्धि होगी। इस तरह 'इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि।' यहाँ पर गङ्गे शब्द यमुने शब्द के प्रति अविद्यमानवत् होगा, 'मे' शब्द के प्रति नहीं। 'मे' शब्दनिमित्तक निघात यमुने शब्द को करना है। यमुने शब्द के प्रति गङ्गे शब्द के अविद्यमान होने पर भी मे शब्द के प्रति गङ्गे शब्द विद्यमान ही होगा, अतः 'मे' शब्दनिमित्तक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनिघात यमुने शब्द को नहीं हो सकेगा।

* सिद्धं तु पूर्वपदस्येति वचनात् * **सिद्धमेतत्। कथम्? 'पूर्वपदस्येति-वचनात्'। पूर्वपदस्य चाऽऽमन्त्रितस्याऽविद्‌यमानवद्‌भावो भवतीति वक्तव्यम्। कानि पुनरस्य योगस्य प्रयोजनानि?**

अच्छा तो यह कोई दोष नहीं हैं। यह दोष 'पूर्वपदस्य' इस वचन से निवृत्त हो जायेगा। वह इस तरह कि पूर्व जो पद उसकी अपेक्षा से भी पूर्व आमन्त्रित अविद्यमानवत् होगा; अतः व्यवधायक नहीं होने से लक्ष्यसिद्धि हो जायेगी। जैसे यमुने शब्द से पूर्व जो गङ्गे शब्द उससे भी पूर्व 'मे' शब्द के प्रति गङ्गे शब्द के अविद्यमानवत् होने से यमुने शब्द को अनिघात हो जायेगा। अच्छा तो 'आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत्' ८.१.७२ का प्रयोजन कौन-कौन से है?

* अविद्‌यमानवत्त्वे प्रयोजनमामन्त्रितयुष्मदस्मत्तिङ्‌निघाताः * **अविद्‌यमान-वत्त्वे आमन्त्रितयुष्मदस्मत्तिङ्‌निघाताः प्रयोजनम्। आमन्त्रितस्य पदात् परस्यानुदात्तो भवतीतीहैव भवति 'पचसि देवदत्त'। 'देवदत्त यज्ञदत्ते'त्यत्र न भवत्यविद्‌यमानवत्त्वादामन्त्रितस्य। 'युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीया-स्थयोर्वांनावौ' इतीहैव भवति 'ग्रामो वां स्वम्' 'जनपदो नौ स्वम्'। 'देवदत्तयज्ञदत्तौ युवयोः स्व'मित्रत्य न भवत्यविद्‌यमानवत्त्वादामन्त्रितस्य। 'तिङ्ङतिङ' इतीहैव भवति—'देवदत्तः पचती'ति। 'देवदत्त पचसी'त्यत्र न भवत्यविद्‌यमानवत्त्वादामन्त्रितस्य।**

अविद्यमानवत् का प्रयोजन है—आमन्त्रित को निघात, युष्मद् अस्मद् आदेश तथा तिङ्‌निघात। 'आमन्त्रितस्य च' ८.१.१९ सूत्र पद से पर में अपदादिस्थित आमन्त्रित को सर्वानुदात्त करता है। जैसे—'इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि' यहाँ पर गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि को सर्वानुदात्त हुआ। वैसे ही 'पचसि देवदत्त!' यहाँ पर पचसि पद से पर में 'देवदत्त यज्ञदत्त' समान वाक्य में जहाँ दोनों आमन्त्रित हैं, वहाँ पूर्व के अविद्यमानवत् होने से पूर्वपदनिमित्तक पर आमन्त्रिक को सर्वानुदात्त नहीं होता है। इसी तरह युष्मद् अस्मद् आदेश 'ग्रामो वां स्वम्' 'जनपदो नौ स्वम्' यहाँ पर 'युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीया-स्थयोर्वांनावौ' ८.१.२० से अस्मद् ओस् को नौ तथा युष्मद् ओस् को वाम् आदेश हो जाता है। इस आदेश में अपदादि निषेध है, अर्थात् यदि ये वाक्य के आदि में होंगे तो उक्त आदेश नहीं होगा। जैसे—'मे गृहमिदम्' ये अशुद्ध वाक्य है। इस योग से पूर्व आमन्त्रित के अविद्यमानवत् होने से 'देवदत्तयज्ञदत्तौ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

युवयोः स्वम्' 'देवदत्तयज्ञदत्तौ[1] आवयोः स्वम्' यहाँ पर आमन्त्रित सम्बोधनान्त के अविद्यमानवत् होने से युस्मद् ओस् अस्मद् ओस् वाक्य का आद्यवयव हो गया, अतः इसको वां नौ आदि ओदश नहीं होंगे। इसी तरह उक्त योग का तिङ्निघात भी प्रयोजन है। जैसे—देवदत्तः पचति' यहाँ पर 'तिङ्ङतिङः' ८.१.२८ से 'पचति' का निघात होता है; परन्तु 'देवदत्त पचसि' यहाँ पर आमन्त्रित के अविद्यमान होने से पचति को निघात नहीं हुआ।

* पूजायामनन्तरप्रतिषेधः * **पूजायामनन्तरप्रतिषेधः प्रयोजनम्। यावत्पचति शोभनम्। यावद्देवदत्त पचसीत्यत्रापि सिद्धं भवति** * जात्वपूर्वम् * **जात्वपूर्वं प्रयोजनम्। जातु पचति। देवदत्त जातु पचसीत्यत्रापि सिद्धं भवति।**

अथ च सूत्र में पूर्वग्रहण का अन्य प्रयोजन पूजा में अनन्तर का प्रतिषध है। जैसे—'यावत् पचति शोभनम्, यथा पचति शोभनम्'। यहाँ पर यावद् और यथा से युक्त अनन्तर तिङन्त का पूजा अर्थ गम्य होने पर 'पूजायां नानन्तरम्' ८.१:३७ सूत्र से अनुदात्त का निषेध है। जब 'आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत्' सूत्र में पूर्वग्रहण करते हैं तो 'यावद्देवदत्त! पचसि' यहाँ पर यावद् से पचसि का अनन्तर नहीं है, अपितु सम्बोधनान्त 'देवदत्त!' का अन्तर होने से उक्त स्थल में अनुदात्त का निषेध नहीं हो पा रहा है। पूर्वग्रहण करने से हो जा रहा हैं, वह इस तरह कि 'देवदत्त!' यह सम्बोधनान्त प्रथमैकवचनान्त होने से आमन्त्रित है वह अविद्यमानवत् होगा, जिससे यावद् से अनन्तर पचसि पद का योग हो गया, तथा 'पूजायां नानन्तरम्' ८.१.३७ सूत्र से अनुदात्त का निषेध हो गया।

अथ च सूत्र में पूर्वग्रहण का अन्य प्रयोजन 'जात्वपूर्वम्' है। अविद्यमानपूर्व जातु शब्द से युक्त तिङन्त को निघात का निषेध 'जात्वपूर्वम्' ८.१.४७ सूत्र करता है। जैसे—'जातु पचति'। सूत्र में पूर्वग्रहण करने से 'देवदत्त जातु पचसि' यहाँ पर आमन्त्रित देवदत्त पद के अविद्यमानवत् होने से 'देवदत्त जातु पचसि' स्थल में भी निघात का निषेध हो जा रहा है।

* आहो उताहो चानन्तरविधौ * **आहो उताहो चानन्तरविधौ प्रयोजनम्।**

---

१. 'सामन्त्रितम्' २.३.४८ सूत्र सम्बन्धोन में प्रथमा एकवचनान्त को ही आमन्त्रितसंज्ञा करता है, जबकि यहाँ भाष्यकार ने सम्बन्धोन में प्रथमाद्विवचन को भी आमन्त्रित कहा है, अतः भाष्यकारीय आचरण से सम्बोधन में प्रथमाद्विवचन की भी आमन्त्रित समझना चाहिए।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आहो पचसि, उताहो पचसि। आहो देवदत्त पचसि, उताहो देवदत्त पचसीत्यत्रापि सिद्धं भवति।

अथ च पूर्वग्रहण का अन्य प्रयोजन 'आहो उताहो चानन्तरम्' ८.१.४९ सूत्र भी है। इस सूत्र से आहो और उताहो से युक्त तिङन्त का निषेध होता है। 'आहो पचसि, उताहो पचसि' स्थल में तिङन्त का निषेध होता है। परन्तु 'आहो देवदत्त पचसि, उताहो देवदत्त पचसि', यहाँ पर देवदत्त का अन्तर होने से निघातनिषेध प्राप्त नहीं है। सूत्र में पूर्वग्रहण करने से देवदत्त पद अविद्यमानवत् हो जा रहा है तब 'आहो देवदत्त पचसि; उताहो देवदत्त पचसि', यहाँ पर भी तिङन्त को अनुदात्त का निषेध हो गया।

* आम एकान्तरविधौ * **आम एकान्तरविधौ प्रयोजनम्। आम् पचसि देवदत्त। आम् भोः पचसि देवदत्तेत्यत्रापि सिद्धं भवति अविद्यमानवत्त्वाद् आमन्त्रितस्य।** {आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत्}।

अथ च सूत्र में पूर्वग्रहण का अन्य प्रयोजन—'आम एकान्तरमामन्त्रितमनन्तिके' ८.१.५५ सूत्र में हैं। यह सूत्र आम् से पर एक पद का व्यवधान रहने पर आमन्त्रित के अनुदात्त का निषेध करता है। जैसे—'आम् पचसि देवदत्त!' यहाँ पर 'पचसि' इस एक पद के व्यवधान होने पर आमन्त्रित देवदत्त के अनुदात्त का निषेध हुआ है। परन्तु 'आम् भोः पचसि देवदत्त' यहाँ पर 'भोः' और 'पचसि' इन दो पदों के व्यवधान में देवदत्त इस आमन्त्रित पद के होने से अनिघात प्राप्त नहीं हो पा रहा है। 'भोः' इस आमन्त्रित को अविद्यमानवत् कर देने से उक्त स्थल में पचसि इस एक पद का ही व्यवधान हुआ। इस तरह 'आम् भोः पचसि देवदत्त' यहाँ पर भी देवदत्त इस आमन्त्रित को अनिघात सिद्ध हो गया। **{आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत्}**।

नामन्त्रिते समानाधिकरणे ८.१.७३

इह कस्मान्न भवति—अघ्न्ये देवि सरस्वति इडे काव्ये विहव्ये एतानि ते अघ्न्ये नामानि? योगविभागः करिष्यते—'नामन्त्रिते समानाधिकरणे सामान्यवचनम्।' ततो 'विभाषितं विशेषवचन' इति। {नामन्त्रिते समानाधिकरणे}।

इस सूत्र में पूर्वसूत्र से 'आमन्त्रितम्, अविद्यमानवत्' इन दोनों पदों का अनुवर्तन होता है। भाष्यकार ने योगविभाग से 'नामन्त्रिते समानाधिकरणे सामान्यवचनम्' ऐसा सूत्र कहा है। सूत्र में सामान्यवचन शब्द से विशेष्य अर्थ गृहीत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। विशेष्य विशेषण में नित्य साकाङ्क्ष होता है, अतः सामान्यवचन से विशेषण का आक्षेप होगा तथा उसका समानाधिकरण के साथ अन्वय होगा। सूत्रार्थ हुआ—'समानाधिकरण विशेषण आमन्त्रित परे रहते आमन्त्रित विशेष्य को अविद्यमानवत् नहीं होता है।'। जैसे—'हरे दयालो नः पाहि, अग्ने तेजस्विन्'।

अच्छा तो सूत्रकार ने 'नामन्त्रिते समानाधिकरणे' इतना ही सूत्र पढा है। 'अघ्न्ये देवि सरस्वति इडे काव्ये विहव्ये' ये सभी आमन्त्रित समानाधिकरण हैं। इनके परे पूर्वपूर्व के अविद्यमानवत् का निषेध क्यों नहीं होता है? इतना ही मात्र सूत्र रखने से यहाँ पर भी अविद्यमानवत् का निषेध प्राप्त हो रहा है। अच्छा तो इसके लिए हम योगविभाग करेंगे—आचार्य ने 'नामन्त्रिते समानाधिकरणे' ऐसा सूत्र पढा है तथा इसके बाद 'सामान्यवचनं विभाषितं विशेषवचने' यह दूसरा सूत्र भी पढा है। इससे 'अघ्न्ये देवि सरस्वति इडे काव्ये विहव्ये' इन पर्याय शब्दों का भी समानाधिकरण्य होने से अविद्यमानवत् का निषेध प्राप्त होगा, जिससे निघात का प्रसङ्ग प्राप्त है। इसके वारण के लिए भाष्यकार ने 'नामन्त्रिते समानाधिकरणे सामान्यवचनम्' ऐसा सूत्र का विभाग किया हैं। इसके बाद 'विभाषितं विशेषवचने' ऐसा सूत्र पढा है। इससे सामान्य को विशेषण में नित्य साकाङ्क्ष होने से सामान्य से विशेषण का आक्षेप होगा। 'अघ्न्ये देवि सरस्वति' आदि में विशेषण परे नहीं होने से अविद्यमानवत् का निषेध नहीं हुआ। इससे सभी आमन्त्रित पदों को आमन्त्रित आद्युदात्त हो जा रहा है। {नामन्त्रिते-}।

सामान्यवचनं विभाषितं विशेषवचने ८.१.७४

इह कस्मान्न भवति—ब्राह्मण वैयकारण? बहुवचनमिति वक्ष्यामि। सामान्यवचनमिति शक्यमवक्तुम्। कथम्? 'विभाषितं विशेषवचन' इत्युच्यते, तेन यत्प्रति विशेषवचनमित्येतद् भवति तस्य भविष्यति। किं च प्रत्येतद् भवति? सामान्यवचनम्। अपर आह—'विशेषवचन' इति शक्यमवक्तुम्। कथम्? 'सामान्यवचनं विभाषित'मित्युच्यते तेन यत्प्रति सामान्यवचनमित्येतद् भवति, तस्य भविष्यति। किं च प्रत्येतद् भवति? विशेषवचनम्। 'सामान्यवचनं विभाषितं विशेषवचन' इति।

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरणमहाभाष्ये
अष्टमाध्यायस्य प्रथम पादे द्वितीयमाह्निकम्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ पूर्व सूत्र से प्राप्त निषेध को विकल्प किया है। 'सामान्यवचनं विभाषितं विशेषवचने' इतना ही सूत्र रखने पर अर्थ होगा—'आमन्त्रित विशेषण परे रहते पूर्व आमन्त्रित को विद्यमानवत् विकल्प से हो'। अब भाष्यकार कहते हैं कि ब्राह्मण वैयाकरण' यहाँ पर अविद्यमानवद् विकल्प क्यों नहीं होता है? इसके लिए सूत्र में बहुवचन कहेंगे, अर्थ होगा—आमन्त्रित विशेषण परे रहते पूर्व बहुवचनान्त अविद्यमानवत् विकल्प से होता है।' इस तरह 'ब्राह्मण वैयाकरण' यह एकवचनान्त है, अतः यहाँ विकल्पविधि नहीं होने से 'आमन्त्रितस्य च' ८.१.१९ सूत्र से नित्य निघात होगा। परन्तु 'ब्राह्मणा वैयाकरणाः' यहाँ पर विकल्प से अविद्यमानवत् होने से निघात भी विकल्प से ही होगा।

सूत्र में सामान्यवचनम् पद नहीं पढना चाहिए। ऐसा क्यों? वह इसलिए कि 'विभाषितं विशेषवचने' ऐसा सूत्र पढा जा रहा है। इससे जिसके प्रति विशेषवचन होगा उसी के प्रति अविद्यमानवद् विकल्प हो जायेगा। यह किसके प्रति विशेषवचन होगा? सामान्यवचन के प्रति विशेषवचन होगा। उसके प्रति अविद्यमानवद् विकल्प हो जायेगा।

दूसरे कहते हैं—'विशेषवचने' यह नही पढना चाहिए। क्यों? 'सामान्य वचनं 'विभाषितम्' इतना ही सूत्र रखेंगे; वह जिसके प्रति सामान्यवचन होगा उसके परे रहते सामान्यवचन को अविद्यमानवद् विकल्प हो जायेगा। अच्छा तो किसके प्रति सामान्य वचन होगा? विशेषवचन के प्रति सामान्यवचन होगा।

श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिमुनिविरचित व्याकरणमहाभाष्य
अष्टम अध्याय प्रथम पाद द्वितीय आह्निक पर
डॉ. हरिनारायण तिवारी द्वारा रचित
'ज्योत्स्ना' हिन्दी टीका पूर्ण हुई

प्रथम पाद भी पूर्ण हुआ

●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

❁ द्वितीये पादे प्रथममाह्निकम् ❁

पूर्वत्राऽसिद्धम् ८.२.१

येयं सपादसप्ताध्याय्यनुक्रान्ता एतस्यामयं पादोनोऽध्यायोऽसिद्धो वेदितव्यः। यदि 'सपादायां सप्ताध्याय्यामयं पादोनोऽध्यायोऽसिद्ध' इत्युच्यते य इह सप्तमीनिर्देशाः पञ्चमीनिर्देशाः षष्ठीनिर्देशाश्चोच्यन्ते तेऽप्यसिद्धाः स्युः। तत्र को दोषः? 'झलो झलि' 'ह्रस्वादङ्गात्' 'संयोगान्तस्य लोप' इत्येतेषां निर्देशानामसिद्धत्वात् 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' 'तस्मादित्युत्तरस्य' 'षष्ठी स्थानेयोगा' इत्येताः परिभाषा न प्रकल्पेरन्। नैष दोषः, यद्यपीदं तत्राऽसिद्धं तत्त्विह सिद्धम्। कथम्?

यह अतिदेश तथा अधिकार सूत्र है। इस में 'पूर्वस्मिन्निति पूर्वत्र' यहाँ 'सप्तम्यास्त्रल्' ५.३.१० सूत्र से सप्तम्यन्त पद से त्रल् प्रत्यय हुआ है। 'पूर्वस्मिन्' यहाँ पर सति सप्तमी है। अर्थ होगा—'पूर्वस्मिन् सति असिद्धम्'='पूर्व के रहते असिद्ध हो'। पूर्व पद पर में नित्य साकाङ्क्ष है तथा पर के विना अनुपपन्न भी, अतः इस सूत्र से पूर्वपद के द्वारा पर का असिद्धत्वबोधन होगा। इस सूत्र में कुछ भी पूर्व और पर सङ्केतित नहीं है; अतः प्रत्यासत्त्या इस शास्त्र से पूर्व सपादसप्ताध्यायी को पूर्व कहेंगे, अतः इससे उत्तर त्रिपादी असिद्ध होगा। इस शास्त्र में शास्त्रासिद्धत्वपक्ष का ही अवलम्बन करना चाहिए। अन्यथा कार्यासिद्धत्वपक्ष मानने पर 'देवदत्तहन्तृहत' न्याय से वह व्यर्थ हो जायेगा। जैसे—देवदत्त के हन्ता को मार देने पर भी देवदत्त का पुनरुज्जीवन सम्भव नहीं है, वैसे कार्य हो जाने से उसके असिद्धत्व हो जाने पर भी कोई लाभ नही होगा। इसलिए इस सूत्र मे कार्यासिद्धत्वपक्ष की अपेक्षा शास्त्रासिद्धत्वपक्ष ही मानना चाहिये। यह सूत्र अपने को छोड कर अन्य सूत्रों का ही असिद्धत्वविधान करेगा। अपना असिद्धत्व इसलिए नहीं करेगा कि यह सूत्र बोधक है। बोधक बोध्य नहीं होता है। यदि यह भी असिद्ध होगा तो यह उस पक्ष के सभी का असिद्धत्व नहीं बता सकेगा। जैसे—'मैं सभी कुछ असत्य बोलता हूँ' यह वाक्य दूसरे वाक्यों का ही मिथ्यात्वप्रतिपादन करेगा, यदि इस वाक्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से इसी वाक्य का मिथ्यात्वबोध कर लिया जाये तो, इस वाक्य से इतर वाक्यों का मिथ्यात्व सिद्ध नहीं हो पायेगा।

जो यह सपादसप्ताध्यायी पढी गयी है, उसके रहते (पादेन उनः पादोनः एक पाद कम) त्रिपादी को असिद्ध समझना चाहिए।

यदि आप सपादसप्ताध्यायी की दृष्टि में त्रिपादी को असिद्ध कहेंगे तो त्रिपादी में जो सप्तमीनिर्देश, पञ्चमीनिर्देश तथा षष्ठीनिर्देश किया गया है, वे भी असिद्ध होंगे। अच्छा तो त्रिपादीस्थ सप्तम्यन्त, पञ्चम्यन्त और षष्ठ्यन्त पदों के असिद्ध हो जाने से कौन-सा दोष होगा? दोष यह होगा कि 'झलो झलि' ८.२.२६, 'ह्रस्वादङ्गात्' ८.२.२७ तथा 'संयोगान्तस्य लोपः' ८.२.२३, इन निर्देशों के असिद्ध हो जाने से 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' १.१.६६, 'तस्मादित्युत्तरस्य' १.१.६७ तथा 'षष्ठी स्थानेयोगा' १.१.४९ ये परिभाषासूत्र त्रिपादी में नहीं लग सकेंगे। यह कोई दोष नहीं है। यद्यपि त्रिपादीसूत्र सपादसप्ताध्यायी के प्रति असिद्ध है, फिर भी **तत्तु**=परिभाषासूत्र तथा संज्ञासूत्र **इह**= त्रिपादी में भी सिद्ध ही रहेंगे। यह कैसे माना जाये कि सपादसप्ताध्यायीस्थ परिभाषासूत्र तथा संज्ञासूत्र भी त्रिपादी में सिद्ध ही रहेंगे?

* कार्यकालं संज्ञापरिभाषम् * **यत्र कार्यं तत्रोपस्थितं द्रष्टव्यम्। 'झलो झलि' 'ह्रस्वादङ्गात्' 'संयोगान्तस्य लोपः'। उपस्थितमिदं भवति, 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' 'तस्मादित्युत्तरस्य' 'षष्ठी स्थानेयोगे'ति। यदि 'कार्यकालं संज्ञापरिभाष'मित्युच्यते इयमपि परिभाषाऽस्ति 'विप्रतिषेधे पर'मिति। साऽपीहोपतिष्ठेत। तत्र को दोषः? विस्फोर्यम् अवगोर्यमिति। गुणाद्दीर्घत्वं स्याद् विप्रतिषेधेन। अत उत्तरं पठति—**

इसका उत्तर देते हैं—**कार्यकालमिति**। 'कार्यकालं संज्ञापरिभाषम्' यह पक्ष है। 'कार्येण काल्यते=स्वसन्निधिं प्राप्यते इति कार्यकालम्'। अर्थात् संज्ञासूत्र तथा परिभाषासूत्र विधिसूत्र के उपकारक होने से गौड है, अतः जहाँ पर **कार्यम्**=कार्य विधायकसूत्र होगा वहीं पर संज्ञासूत्र तथा परिभाषासूत्र उपस्थित होंगे तथा संज्ञासूत्र और परिभाषासूत्र का विधिप्रदेश ही देश माना जायेगा। जैसे—'झलो झलि' ८.२.२६ के देश में 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' १.१.६६ उपस्थित होगा। इसी तरह 'ह्रस्वादङ्गात्' ८.२.२७ के देश में 'तस्मादित्युत्तरस्य' १.१.६७ तथा 'संयोगान्तस्य लोपः' ८.२.२३ के देश में 'अलोऽन्त्यस्य' १.१.४९ उपस्थित होगा एवं स्वदेश का परित्याग करके विधिसूत्र के देश का ही माना जायेगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अच्छा तो यदि 'कार्यकालं संज्ञापरिभाषम्' यह पक्ष मानेंगे तो 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' १.४.२ यह भी परिभाषासूत्र है, वह भी त्रिपादी में उपस्थित होगा। यदि 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' १.४.२ यह परिभाषासूत्र त्रिपादी में उपस्थित हो जाये तो उससे क्या दोष होगा? उससे दोष यह होगा कि विस्फोर्यम्, अवगोर्यम्, यहाँ पर विपूर्वक स्फुर सञ्चलने धा.पा.१३९६ धातु से तथा अवपूर्वक गुरी उद्यमने धा.पा.१३९८, धातु से कर्म अर्थ में 'ऋहलोर्ण्यत्' ३.१.१२४ सूत्र ण्यत् प्रत्यय का विधान करता है। लघूपध गुण करके 'विस्फोर्यम्' एवम् 'अवगोर्यम्' रूप बनता है। अब यहाँ पर शङ्का होती है कि यदि 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' १.४.२ त्रिपादी में भी प्रवृत्त होगा तो 'विस्फुर्+ण्यत् अवगुर्+ण्यत्' ऐसी स्थिति में 'पुगन्तलघूपधस्य च' ७.३.८६ सूत्र से लघुपध गुण प्राप्त है तथा 'हलि च' ८.२.७७ सूत्र से रेफान्त धातु की उपधा को हल् परे रहते दीर्घ प्राप्त है। पर होने से गुण का बाध कर अनिष्ट दीर्घ होने लगेगा।

* पूर्वत्राऽसिद्धे नास्ति विप्रतिषेधोऽभावादुत्तरस्य * **पूर्वात्रासिद्धे नास्ति विप्रतिषेधः। किं कारणम्? 'अभावादुत्तरस्य'। द्वयोर्हि सावकाशयोः समवस्थितयोर्विप्रतिषेधो भवति न च पूर्वत्राऽसिद्धे परं पूर्वं प्रति भवति। यद्येवं दोग्धा दोग्धुं—घत्वस्याऽसिद्धत्वाड्ढत्वं प्राप्नोति। काष्ठतट् कूटतट्। संयोगादिलोपस्याऽसिद्धत्वात् संयोगान्तलोपः प्राप्नोति।**

भाष्यकार इसका उत्तर इस तरह देते हैं—'पूर्वत्राऽसिद्धम्' ८.२.१ का क्षेत्र त्रिपादी में उत्तर शास्त्र का अभाव होने से 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' १.४.२ नहीं लगता है। समानबल वाले सावकाश दो सूत्रों का विप्रतिषेध होता है, जबकि त्रिपादी में पूर्वशास्त्र के प्रति परशास्त्र का अभाव है, अतः त्रिपादी में एकत्र दो शास्त्रों की विद्यमानता नहीं होने से विप्रतिषेध नहीं हो पायेगा। अच्छा तो यदि ऐसी बात है तो 'दोग्धा दोग्धुम्', यहाँ पर दुह् प्रपूरणे धा.पा.१०१४ से तृच् करके दोग्धा तथा तुमुन् करके दोग्धुम् रूप बनता है। यहाँ उभयत्र 'दादेर्धातोर्घः' ८.२.३२ से घत्व करके रूप सिद्ध है। परन्तु यहाँ पर 'हो ढः' ८.२.३१ से ढत्व भी प्राप्त है तथा 'दादेर्धातोर्घः' ८.२.३२ का अभाव रहेगा, अतः 'दोग्धा, दोग्धुम्' में ढत्व होगा, घत्व नहीं। इससे इष्ट रूप सिद्ध नहीं हो सकेगा। एवञ्च 'काष्ठतट्, कूटतट्' स्थल में 'काष्ठं तक्षति इति काष्टतट्' तथा 'कूटं तक्षति इति कूटतट्' इस विग्रह में कर्ता में क्विप् करके रूप है। यहाँ पर 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' ८.२.२९ सूत्र से संयोगान्त का आद्यवयव स् का लोप कर ष् को जश्त्व, चर्त्व है। अब भाष्यकार कहते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं—'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' ८.२.२९ पर त्रिपादी है तथा 'संयोगान्तस्य लोपः' ८.२.२३ पूर्व त्रिपादी है। पूर्व त्रिपादी की दृष्टि में पर त्रिपादी का अभाव होने से काष्ठतट् और कूटतट् में 'संयोगान्तस्य लोपः' ८.२.२३ ही प्रवृत्त होगा, अतः संयोगान्तलोप होने से इष्ट रूप नहीं हो पा रहा है।

* अपवादो वचनप्रामाण्यात् * **अपवादो वचनप्रामाण्यात्। अनवकाशावेतौ वचनप्रामाण्याद् भविष्यतः। तस्मात् कार्यकालं संज्ञापरिभाषमिति न दोषः** * पूर्वत्रासिद्धमधिकारः * **'पूर्वत्राऽसिद्ध'मित्याधिकारोऽयं द्रष्टव्यः। किं प्रयोजनम्?** * परस्य परस्य पूर्वत्र पूर्वत्राऽसिद्धविज्ञानार्थम् * **परस्य परस्य पूर्वत्र पूर्वत्राऽसिद्धविज्ञानार्थम्। परः परो योगः पूर्वं पूर्वं योगं प्रत्यसिद्धो यथा स्यात्।**

अच्छा तो वचनप्रामाण्य से हम दोनों को अपवाद मानेंगे। 'निरवकाशो विधिरपवादः' परिभाषा से 'दादेर्धातोर्घः' ८.२.३२ तथा 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' ८.२.२९ सूत्र को अपवाद मानेंगे। जो अपवाद कार्य है वह वचनप्रमाण से सामान्य का बाध कर हो जायेगा। इस तरह 'कार्यकालं संज्ञापरिभाषम्' पक्ष में दोष नहीं हुआ। अब तक भाष्यकार ने इस सूत्र का अतिदेशपक्ष का प्रतिपादन किया है। अब इसके अधिकारपक्ष का प्रतिपादन करने के लिए वार्तिक का अवतरण करते है—**अधिकार इति**। 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' को अधिकारसूत्र भी समझना चाहिये। अधिकार होने से उत्तर के सूत्रों में इसका अधिकार जायेगा। इससे त्रिपादी में पूर्व-पूर्व शास्त्र के प्रति पर-पर शास्त्र असिद्ध होगा।

* अनधिकारे हि समुदायस्य समुदायेऽसिद्धत्वविज्ञानम् * **अनधिकारे हि सति समुदायस्य समुदायेऽसिद्धत्वं विज्ञायेत। तत्र को दोषः?** * तत्राऽयथेष्टप्रसङ्गः * **तत्राऽयथेष्टं प्रसज्येत। गोधुङ्मान् गुडलिण्मानिति, घत्वढत्वयोः कृतयो'र्झय' इति वत्वं प्रसज्येत।**

इसे अधिकार न मानने पर जो दोष होगा, उसे बताते हैं—**अनधिकारे इति**। यदि 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' को अधिकार नहीं मानेंगे तो यह शास्त्र स्वतन्त्र विधि होगा। अधिकार न होने की अवस्था में त्रिपादी समुदाय को समुदाय सपादसप्ताध्यायी के प्रति का ही असिद्धत्व बोध करायेगा।

प्रश्नभाष्य—**तत्र क इति**। यदि समुदाय को समुदाय के प्रति असिद्ध होना मान लिया जाये तो इसमें क्या दोष है?

उत्तरभाष्य—**तत्राऽयथेति**। उसमें दोष यह है कि इष्ट रूप की सिद्धि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं हो सकेगी, तथा अनिष्ट भी इष्ट होने लगेगा। जैसे—'गोधुङ्मान्'। यहाँ पर गोदुहोऽस्य सन्ति' इस विग्रह में मतुप् प्रत्यय का विधान कर 'दादेर्धातोर्घः' ८.२.३२ सूत्र से ह को घ आदेश हुआ है। घ को 'झलां जशोऽन्ते' ८.२.३९ सूत्र से जश्त्व ग् होगा। उस जश्त्व के असिद्ध हो जाने से 'एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः' ८.२.३८ सूत्र से भष्भाव तथा 'प्रत्यये भाषायां नित्यम्' ८.४.४५ सूत्र पर पठित वार्तिक से परसवर्ण करके 'गोधुङ्मान्' बना है। इसी तरह 'गुडलिण्मान्' यह भी रूप है। यहाँ पर भी 'हो ढः' ८.२.३१ सूत्र से ढत्व कर लेने पर 'झयः' ८.२.१० सूत्र की दृष्टि में जश्त्वादि के असिद्ध हो जाने से मतुप् प्रत्ययघटक मकार को वकार प्राप्त होगा।

* तस्मादधिकारः * **तस्मादधिकारोऽयं द्रष्टव्यः। अथाऽसिद्धवचनं किमर्थम्** * असिद्धवचन उक्तम् * **असिद्धत्ववचने उक्तम् । किमुक्तम्? तत्र तावदुक्तं—'षत्वतुकोरसिद्धवचनमादेशलक्षणप्रतिषेधार्थमुत्सर्गलक्षणभावार्थं चे'ति। एवमिहाऽपि पूर्वत्राऽसिद्धवचनमादेशलक्षणप्रतिषेधार्थम् उत्सर्गलक्षण-भावार्थं च।**

अतः 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' को अधिकार भी मानना चाहिए। अधिकार मानने से त्रिपादी में पूर्व के प्रति पर को असिद्ध करेगा। इस तरह 'झयः' ८.२.१० की दृष्टि में 'दादेर्धातोर्घः' ८.२.३२ के असिद्ध हो जाने से झय् परकत्वाभाव होने से 'झयः' ८.२.१० सूत्र की प्रवृत्ति नहीं है।

अच्छा तो 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' सूत्र में असिद्ध पद का ग्रहण क्यों किया गया है? भाष्य में अर्थ पद विषयपरक है, अतः असिद्धवचन का विषय क्या है? असिद्धवचन का प्रयोजन बताया जा चुका है। यहाँ पर सिद्ध का असिद्धविधान करने से अतिदेश का आश्रय किया गया है। यहाँ पर शास्त्रासिद्धत्व तथा कार्यासिद्धत्व इन दोनों पक्षों पर विद्वान् लोग विचार करते हैं। इन दोनों पक्षों में शास्त्रासिद्धत्व पक्ष ही भाष्यसम्मत है, कार्यासिद्धत्व नहीं। यदि कार्यासिद्धत्वपक्ष मान लिया जाये तो उत्सर्गलक्षण कार्य सिद्ध नहीं हो सकेंगे। 'षत्वतुकोरसिद्धः' ८.१.८६ सूत्र पर भाष्यकार ने 'षत्वतुकोरसिद्धवचनमादेशलक्षणप्रतिषेधार्थम् उत्सर्ग-लक्षणभावार्थञ्च' ऐसा कहा है। वह असिद्धवचन का विषय है। वैसे ही 'पूर्वत्रा-सिद्धम्' ८.२.१ सूत्र में भी पूर्वत्राऽसिद्धवचन का विषय आदेशलक्षण का प्रतिषेध तथा उत्सर्गलक्षण की प्रवृत्ति है।

आदेशलक्षणप्रतिषेधार्थं तावद्—राजभिः तक्षभिः राजभ्यां तक्षभ्यां

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

राजसु तक्षसु इति। नलोपे कृते'ऽत' इत्यैस्भावादयः प्राप्नुवन्ति। असिद्धत्वान्न भवन्ति। उत्सर्गलक्षणभावार्थं च—अमुष्मै अमुष्मात् अमुष्य अमुष्मिन्निति। अत्र मुभावे'ऽत' इति स्मादयो न प्राप्नुवन्ति, असिद्धत्वाद् भवन्ति। सुपर्वाणौ। सुपर्वाणः। णत्वे कृते 'नोपधाया' इति दीर्घत्वं न प्राप्नोति। असिद्धत्वाद् भवति।

जैसे आदेशलक्षणप्रतिषेध का प्रयोजन 'राजभिः तक्षभिः' स्थल में नलोप कर देने पर अत् से पर में होने से भिस् को 'अतो भिस ऐस्' ७.१.९ सूत्र से ऐस् प्राप्त है, इसी तरह 'राजभ्याम्, तक्षभ्याम्' में नलोप कर देने पर 'अतो दीर्घो 'यञि' ७.३.१०१ सूत्र से अत् को दीर्घ प्राप्त है, तथा 'राजसु, तक्षसु' में नलोप कर देने पर 'बहुवचने झल्येत्' ७.३.१०३ सूत्र से एत् प्राप्त है। सर्वत्र 'नलोपः सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति' ८.२.२ से नलोप के असिद्ध हो जाने से ऐस्, दीर्घ व एत् नहीं होते हैं।

उत्सर्गलक्षणप्रवृत्ति के लिए जैसे—'अमुष्मै, अमुष्मात्, अमुष्य, अमुष्मिन्', इन स्थलों में मुभाव हो जाने पर अत् से पर में होने वाला क्रमशः स्मै, स्मात्, स्य और स्मिन् आदेश प्राप्त नहीं हो रहे हैं, परन्तु मुभाव के असिद्ध हो जाने पर हो जा रहे हैं। इसी तरह 'सुपर्वाणौ, सुपर्वाणः' यहाँ पर णत्व हो जाने पर 'नोपधायाः' ७.४.७ सूत्र से दीर्घ प्राप्त नहीं है, णत्व के असिद्ध होने से नोपधा को दीर्घ हो जा रहा है। {पूर्वत्राऽसिद्धम्}।

नलोपः सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति ८.२.२

'सुब्विधिं प्रति नलोपोऽसिद्धो भवती'त्युच्यते भवेदिह राजभिः तक्षभिरिति, नलोपे कृते'ऽत' इत्यैस्भावो न स्यात्। इह तु खलु राजभ्यां तक्षभ्यां राजसु तक्षस्विति, नलोपे कृते दीर्घत्वैत्त्वे प्राप्नुतः।

द्वन्द्वान्त में श्रूयमाण विधि पद का प्रत्येक के साथ अन्वय हैं। सूत्रार्थ हुआ—'सुब्विधि, स्वरविधि, संज्ञाविधि और कृत् तुक्विधि की कर्तव्यता में नलोप असिद्ध हो'। इस सूत्र से जहाँ नलोप असिद्ध किया गया है, वहीं पर 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' ८.२.१ सूत्र से नलोप असिद्ध है; फिर उसी नलोप को असिद्ध करने के लिए किया गया सूत्रारम्भ नियामक होगा—'एतेष्वेव नलोपोऽसिद्धः, नान्यत्र'। इसका व्यावर्त्य फल है—'तक्षाश्वः' में दीर्घसिद्धि।

सुब्विधि के प्रति नलोप को असिद्ध कहा जा रहा है। 'राजभिः, तक्षभिः' यहाँ पर नलोप हो जाने पर अत् से पर में 'अतो भिस ऐस् ८.१.९ प्राप्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। ऐस्भाव सुब्विधि है। सुब्विधि की कर्तव्यता में नलोप के असिद्ध हो जाने से ऐस्भाव नहीं होता हैं, परन्तु 'राजभ्याम्, तक्षभ्याम्' स्थल में नलोप करने पर 'अतो दीर्घो यञि' ७.३.१०१ सूत्र से अत् को दीर्घ प्राप्त है और 'राजभ्यः तक्षभ्यः' स्थल में नलोप हो जाने पर 'बहुवचने झल्येत्' ७.३.१०३ सूत्र से अत् को एत् प्राप्त है; ये दोनों ही सुब्विधि नहीं हैं, अतः हो जायेंगे जिससे अनिष्ट की आपत्ति हुई।

नैष दोषः * सुब्विधिरिति सर्वविभक्त्यन्तः समासः * **सुब्विधिरिति सर्वविभक्त्यन्तः समासः। सुपो विधिः सुब्विधिः, सुपि विधिः सुब्विधिरिति।**

इस अनिष्टापत्ति का परिहार करते हैं—**नैष दोषः**। 'राजभ्याम्, तक्षभ्याम् राजभिः तक्षभिः' स्थलों में दीर्घ तथा एत् का प्राप्तिरूप दोष नहीं है। क्योंकि सुब्विधिः स्थल में सर्वविभक्त्यन्त समास है—'सुपो विधिः सुब्विधिः', यहाँ सम्बन्धसामान्य विवक्षित है। 'सुबाश्रयविधि की कर्तव्यता में' ऐसा अर्थ होगा। एवम् 'सुपि विधिः सुब्विधिः' यह सप्तमीसमास भी है, जिससे सुब्निमित्तक विधि की कर्तव्यता में नलोप असिद्ध हो, ऐसा अर्थ होने से 'राजभ्याम्, तक्षभ्याम्, राजभिः, तक्षभिः' स्थलों में दीर्घ और ऐस् भाव नहीं हुआ। **सर्वविभक्त्यन्तसमासः**= यहाँ पर सर्वविभक्त्यन्त अवयव होने से सर्वविभक्त्यन्त कहा है।

अथ संज्ञाविधौ किमुदाहरणम्? पञ्च सप्त। पञ्च सप्तेत्यत्र नलोपे कृते 'ष्णान्ता ष'डिति षट्संज्ञा न प्राप्नोति। असिद्धत्वाद् भवति * संज्ञाग्रहणाऽऽनर्थक्यं च तन्निमित्तात्वाल्लोपस्य * **संज्ञाग्रहणं चाऽनर्थकम्। किं कारणम्? 'तन्निमित्तात्वाल्लोपस्य'। नाऽकृतायां षट्संज्ञायां जश्शसोर्लुक्, न चाऽकृते लुकि पदसंज्ञा, न चाऽकृतायां पदसंज्ञायां नलोपः प्राप्नोति। तदेतदानुपूर्व्या सिद्धं भवति। इदं तर्हि प्रयोजनं—पञ्चभिः सप्तभिरिति। 'षट्त्रिचतुर्भ्यो हलादिः' 'झल्युपोत्तामम'मित्येष स्वरो यथा स्यात्।**

संज्ञाविधि का क्या उदाहरण है? संज्ञाविधि का उदाहरण है—पञ्च और सप्त। पञ्चन्, सप्तन् यह नान्तप्रकृतिक पद है। नलोप होकर प्रथमा, द्वितीया बहुवचन में पञ्च सप्त रूप बना है। नलोप हो जाने से 'ष्णान्ता षट्' १.१.२४ सूत्र से षट्संज्ञा प्राप्त नहीं है, नलोप के असिद्ध हो जाने से नान्त मानकर षट्संज्ञा हो जा रही है। 'षड्भ्यो लुक्' ७.१.२२ सूत्र में लोप का निमित्त षट्संज्ञा है। जब तक षट्संज्ञा नहीं होगी 'षड्भ्यो लुक' ७.१.२२ सूत्र

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रवृत्त नहीं होगा। पहले नलोप कर लेने पर षट्संज्ञा प्राप्त नहीं है। इसलिए 'षड्भ्यो लुक्' ७.१.२२ सूत्र व्यर्थ हो कर नलोप के असिद्ध होने का ज्ञापन कर देगा। इस तरह 'नलोपः सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति' ८.२.२ सूत्र में संज्ञाग्रहण व्यर्थ है। जब तक षट्संज्ञा नहीं होगी जस् और शस् का लोप नहीं होगा। विना जस् शस् का लोप किये पदसंज्ञा भी नहीं होगी तथा पदसंज्ञा के अभाव में नलोप भी प्राप्त नहीं हो सकेगा, षट्संज्ञा हो जाने पर ये सभी कार्य आनुपूर्वी सिद्ध हो जा रहे हैं।

अच्छा तो संज्ञाविधि की कर्तव्यता में नलोप के असिद्ध होने का फल 'राजभिः सप्तभिः' में 'झल्युपोत्तमम्' ६.१.१८० से उदात्तस्वर प्रयोजन है। यह सूत्र षट्संज्ञक त्रि शब्द तथा चतुर् शब्द से पर में झलादि विभक्ति, तदन्त जो पद, उस पद के रहते **उपोत्तम**=अन्त्यसमीप को उदात्त स्वर करता है। नलोप के असिद्ध होने से 'राजभिः सप्तभिः' में 'झल्युपोत्तमम्' ६.१.१८० में उपोत्ताम उदात्ता स्वर सिद्ध हो जा रहा है।

*** स्वरेऽवधारणाच्च * स्वरेऽवाारणाच्च सञ्ज्ञाग्रहणम् अनर्थकम्। स्वरेऽवधारणं क्रियते—'स्वरविधिं प्रती'ति। इदं तर्हि—दण्डिदत्तौ दत्तदण्डिनौ।**

अच्छा तो संज्ञाविधि में नलोप असिद्ध होने का प्रयोजन 'पञ्चभिः सप्तभिः' में उपोत्तम उदात्तसिद्धि भी नहीं बन सकता है। वह इसलिए कि स्वरविधि की कर्तव्यता में भी नलोप को असिद्ध कहा है। उक्त स्थल में स्वरविधि होने से उसकी कर्तव्यता में नलोप असिद्ध हो जायेगा तथा स्वरसिद्धि हो जायेगी, अतः यह भी संज्ञाविधि का उदाहरण नहीं बन सकता है।

संज्ञाविधि में नलोप असिद्ध होने का दूसरा प्रयोजन देते हैं—**दण्डिदत्तौ इति**। 'दण्डी च दत्तश्च दण्डिदत्तौ, दत्तदण्डिनौ'। यहाँ पर यदि नलोप को सिद्ध मान लिया जाये तो दण्डिशब्द की घिसंज्ञा होगी तथा 'द्वन्द्वे घि' २.२.३२ सूत्र से दण्डिशब्द को ही नियमेन पूर्वनिपत प्राप्त होगा, जबकि उक्त स्थल में पूर्वनिपात के विषय में विकल्प इष्ट है, उसके लिए नलोप को असिद्ध किया गया।

तुग्विधौ किमुदाहरणम्? वृत्रहभ्याम् वृत्रहभिः। नलोपे कृते 'ह्रस्वस्य पिति कृति तु'गिति तुक् प्राप्नोत्यसिद्धत्वान्न भवति * तुग्विधौ चोक्तम् * तुग्विधौ चोक्तम्। किमुक्तम्? 'सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्ये'ति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इदं तर्हि प्रयोजनं 'कृतीति वक्ष्यामी'ति। इह मा भूद्—ब्रह्महच्छत्रम्। भ्रूणहच्छाया। न ह्येष संनिपातलक्षणो नलोपः।

तुग्विधि का क्या उदाहरण है? तुग्विधि का उदाहरण है—'वृत्रहभ्याम्, वृत्रहभिः'। यहाँ 'वृत्रं हतवान् इति वृत्रहा ताभ्यां वृत्रहभ्याम्, तैः वृत्रहभिः' स्थल में नलोप कर लेने पर 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' ६.१.७१ सूत्र से तुक् प्राप्त है। वृत्रहन्+क्विप् ऐसी स्थिति में क्विप् के पित् होने से नलोप कर ह्रस्व को तुक् प्राप्त है। तुक् की कर्तव्यता में नलोप के असिद्ध हो जाने से नहीं होता है।

अच्छा तो तुग्विधि का यह उदाहरण नहीं हो सकता है। यहाँ 'सन्निपात-लक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्य' परिभाषा तुक् का व्यावर्तन करा देगी। हन् के सम्बन्ध में जायमान क्विप् तुक् का आगम करा कर 'हन् +क्विप्' के सम्बन्ध का विघातक नहीं हो सकेगा।

'कृति तुग्विधौ' का दूसरा उदाहरण मैं बताऊँगा। सूत्र में तुग्ग्रहण नियमार्थक होगा—'कृत्-लक्षण तुक् न हो, परन्तु छ-लक्षण तुक् हो'। इस नियम से 'ब्रह्महच्छत्रम्, भ्रूणहच्छाया' स्थल में छ-लक्षण तुक् होने से तुक् का अभाव नहीं है। यहाँ पर सन्निपातलक्षण नलोप नहीं है, अतः यह तुग्विधि का उदाहरण है। {नलोपः-}।

न मु ने ८.२.३

इह 'ने यत्कार्यं प्राप्नोति तत्प्रति मुभावो नाऽसिद्ध' इत्युच्यते नाभावश्चैव तावन्न प्राप्नोति। एवं तर्हि * न मु टादेशे * न मु टादेश इति वक्तव्यम्। किमिदं टादेश इति? टाया आदेशः टादेशः। यदि तर्हि टाया आदेश इत्युच्यते टायामादेशेऽप्रतिषिद्धं भवति। तत्र को दोषः? 'अमुने'त्यत्र मुभावस्याऽसिद्धत्वाद्—'अतो दीर्घो यञि', 'सुपि चे'ति दीर्घत्वं प्रसज्येत।

Acc. 39804

प्रकृत सूत्र में 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' ८.२.१ सूत्र से 'असिद्धम्' का अनुवर्तन होता है। 'न' अव्ययपद निषेधवचन है। 'म् च उश्च इत्यनयोः समाहारः मु', प्रथमैकवचान्त है। 'मु असिद्धं न' इस वाक्य से मुत्व का असिद्धत्वाभाव विधेय है। 'ने' यह ना शब्द का सप्तमी-एकवचनान्त है। यह विषयसप्तमी है; अतः सूत्रार्थ हुआ—'नाभाव की कर्तव्यता में अथवा नाभाव के हो जाने पर मुभाव असिद्ध नहीं होता है'। जैसे—'अमुना'। यहाँ नाभाव की कर्तव्यता में मुभाव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

असिद्ध नहीं हुआ, अतः घिसंज्ञा हो जाने से 'टाङसिङसामिनात्स्याः' ७.१.१२ सूत्र से घिसंज्ञानिमित्तक नाभाव सिद्ध हो जाता है।

अब यहाँ पूर्वपक्षी आक्षेप करता है कि 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' १.१.६६ सूत्र से शास्त्र में निमित्तसप्तमी ही विहित है, सत्सप्तमी नहीं। इस तरह 'न मु ने' सूत्र नाभाव परे रहते मुभाव का सिद्धत्व बोध करायेगा। जबकि नाभाव घिसंज्ञानिमित्तक है। 'अद+टा' इस दशा में घिसंज्ञा के अभाव होने से नाभाव प्राप्त नहीं है।

अच्छा तो यदि ऐसी बात है तो 'न मु ने' सूत्र के स्थान पर 'न मु टादेशे' ऐसा सूत्र पढ लेंगे। यह टादेशे क्या है? यदि टादेशे का अर्थ—'टाया आदेशः टादेश तस्मिन्' ऐसा मानेंगे तो टास्थानिक आदेश की कर्तव्यता में मुभाव असिद्ध न हो, यह अर्थ होगा। परन्तु इस अर्थ में दोष यह होगा कि 'टायामादेशः टादेशः' अर्थात् टानिमित्तक का निषेध नहीं हो सकेगा। यदि टानिमित्तक आदेश को अप्रतिषिद्ध मानेंगे तो इसमें क्या दोष होगा? इसमें दोष यह होगा कि—'अमुना' इस प्रयोग में मुभाव के असिद्ध हो जाने से 'सुपि च' ७.३.१०२ सूत्र से दीर्घ प्राप्त होगा।

नैष दोषः 'टादेश' इति सर्वविभक्त्यन्तोऽयं समासः—टाया आदेशः टादेशः, टायामादेशः टादेश इति। सिध्यति। सूत्रं तर्हि भिद्यते। यथान्यासमेवाऽस्तु। ननु चोक्तं—'ने यत्कार्यं प्राप्नोति तस्मिन् मुभावो नासिद्ध इत्युच्यते नाभावश्चैव तावन्न प्राप्नोती'ति। नैष दोषः। इहेङ्गितेन चेष्टितेन निमिषितेन महता वा सूत्रनिबन्धेनाऽऽचार्याणामभिप्रायो लक्ष्यते। एतदेव ज्ञापयत्याचार्यो 'भवत्यत्र नाभाव' इति यदयं ने परतोऽसिद्धत्वप्रतिषेधं शास्ति।

यह दोष यहाँ प्राप्त नहीं है। 'टादेशः'—यह सर्वविभक्त्यन्त समास है। (यहाँ भाष्य में सर्वशब्द अवयववाची है, समुदायवाची नहीं) 'टाया आदेश टादेशः' यह षष्ठीतत्पुरुष है तथा 'टायामादेशः टादेशः' सप्तमीतत्पुरुष भी, अतः उभय अर्थ संगृहीत हो जायेगा। अच्छा तो 'न मु ने' की जगह 'न मु टादेशे' पढने पर लक्ष्य तो संगृहीत हो जा रहा है, परन्तु सूत्रभेद तो हो गया। यदि सूत्रभेद होने से आप दोष मानते हैं तो सूत्र को यथान्यास—'न मु ने' सूत्र ही रखिये। इस पक्ष में आपने जो दोष दिया था कि-'मु'निमित्तक जो कार्य प्राप्त है, वह नाभाव के परे रहते मुभाव असिद्ध न हो। इस अर्थ में नाभाव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्राप्त नहीं हो रहा है', यह कोई दोष नहीं होगा। यह कोई आवश्यक नहीं है कि आचार्य किसी पद का उच्चारण करके ही अर्थ का बोध करावें, अपितु **इङ्गितेन**=सङ्केत से, चेष्टा से, **निमिषितेन**=पलकों के सङ्केत से अथवा बडा से बडा सूत्र रचना से भी आचार्य अपना अभिप्राय बताते हैं। आचार्य ने नाभाव परे रहते मुभाव को सिद्ध बताया है, उसी से आचार्य ज्ञापन करा रहे हैं कि 'भवत्यत्र नाभावः'। 'अमुना' में नाभाव होता है'।

अथवा 'द्विगता अपि हेतवो' भवन्ति। तद्यथा—आम्राश्च सिक्ताः पितरश्च प्रीणिता भवन्ति। तथा वाक्यान्यपि द्विगतानि दृश्यन्ते 'श्वेतो धावति, अलंबुसानां यातेति, अथवा 'वृद्धकुमारीवाक्यव'दिदं द्रष्टव्यम्। तद्यथा—वृद्धकुमारीन्द्रेणोक्ता 'वरं वृणीष्वे'ति, सा वरमवृणीत—'पुत्रा मे बहुक्षीरघृतमोदनं कांस्यपात्र्यां भुञ्जीर'न्निति। न च तावदस्याः पतिर्भवति कुतः पुत्राः, कुतो वा गावः, कुतो धान्यम्? तत्राऽनयैकेन वाक्येन पतिः पुत्रा गावो धान्यमिति सर्वं सङ्गृहीतं भवति। एवमिहापि नेऽसिद्धत्वप्रतिषेधं ब्रुवता नाभावोऽपि सङ्गृहीतो भवति। {न मु ने}।

अथवा हेतु द्व्यर्थक भी होते हैं। जैसे—आम्र के तल पर बैठकर कोई व्यक्ति देवर्षिपितृतर्पण कर रहा है तो उस तर्पण से उसके पितर भी तृप्त होंगे तथा आम्र का सेचन भी हो जायेगा। इस तरह वाक्य भी द्व्यर्थक होते हैं। जैसे—'श्वेतो धावति'=श्वेत गुण वाला अश्व दौडता है, एवम्-'श्वा+इतो धावति'= इधर से कुत्ता दौडता है। 'अलम्बुसानां याता'=अलम्बुस देश को जाने वाला और 'बुसानाम्'=भूसा के लिए **याता**=जाने वाला **अलम्**=न जाये। इससें प्रकृत में यह आया कि आचार्य नाभाव परे रहते जो प्राप्त है वहाँ मुभाव को सिद्धत्व बता रहे हैं जिससे 'सुपि च' ७.३.१०२ से दीर्घ नहीं हुआ। एवं नाभाव की कर्तव्यता में मुभाव को सिद्ध बता रहे हैं जिससे नाभाव भी सिद्ध हो गया।

अथवा 'न मु ने' सूत्र वृद्धकुमारी वाक्य की तरह है। जैसे इन्द्र ने किसी वृद्ध कुमारी से कहा—'तुम मुझ से वर माँग लो।' वृद्धकुमारी ने वर माँगा—'मेरे पुत्रगण पर्याप्त दुग्ध और घृत से सना हुआ ओदन चाँदी के पात्र में खायें'। अब यहाँ विचार कीजिए, उस वृद्धकुमारी का कोई पति भी नहीं है, फिर तो उसके पुत्र, गाय तथा धान्य कहाँ से होंगे? यहाँ पर वृद्धकुमारी ने एक ही वाक्य से पति, पुत्र, गाय व धान्य सब कुछ माँग लिया। इसी तरह प्रकृत में भी नाभाव परे रहते असिद्ध का निषेध बताते हुए आचार्य ने नाभाव का भी संग्रह कर लिया है। **{न मु ने}**।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य ८.२.४

सूत्रार्थ—'उदात्त और स्वरित के स्थान में जायमान जो यण्, उससे पर में अनुदात्त को स्वरित आदेश हो'। जैसे उदात्तस्थानिक यण् से पर का उदाहरण—'अभ्यभि हि'। 'उपसर्गाश्चाभिवर्जम्' (फिट् सूत्र ८0) सूत्र से अभि-शब्द को छोड कर शेष सभी उपसर्ग आद्युदात्त होते हैं, अतः 'फिषोऽन्त उदात्तः' (फिट्सूत्र १) से अभि को उन्तोदात्त हुआ। वीप्सा में अभि को द्वित्व करने पर 'आमन्त्रितस्य च' ८.१.१९ सूत्र से पर आमन्त्रित को अनुदात्त हुआ, उस अनुदात्त के परे रहते इकार उदात्त को यण् आदेश होगा। उससे पर में आमन्त्रितघटक अनुदात्त अकार को स्वरित आदेश हुआ। इसी तरह स्वरित यण् का उदाहरण जैसे 'खलप्व्याशा'। 'खलं पूनाति इति खलपूः', यहाँ खलपू शब्द कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वर होने से अन्तोदात्त है। इससे पर में सप्तमी-एकवचन की विवक्षा में 'ङि' प्रत्यय आया। 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' ३.१.४ सूत्र में 'ङि' अनुदात्त है। 'ओः सुपि:' ६.४.८३ से खलपूघटक उदात्त ऊ को यण् होने से यण् से पर में अनुदात्त 'ङि' को स्वरित हुआ। इस तरह खलप्विशब्दघटक इ स्वरित हुआ। 'खलप्वि+आशा' इस स्थिति में खलप्विघटक इकार स्वरित के स्थान में यण् आदेश करने से यण् से पर में आशाघटक अनुदात्त आ स्वरित हो गया। आशा शब्द 'आशाया अदिगाख्या चेत्' (फिट् सूत्र १८) सूत्र से अन्तोदात्त है, अतः 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' ६.१.१५८ से आशा का आद्यवयव अनुदात्त हुआ, उसको स्वरित होता है।

* यण्स्वरो यणादेशे स्वरितयणः स्वरितार्थम् * **यण्स्वरो यण्णादेशे सिद्धो वक्तव्यः। किं प्रयोजनम्? स्वरितयणः स्वरितार्थम्'। स्वरितयणः स्वरितत्वं यथा स्यात्, खलप्व्यटति खलप्व्यश्नाति। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। आहाऽयं—'स्वरितयण' इति, न चाऽस्ति सिद्धः स्वरितः, तत्राश्रयात्सिद्धत्वं भविष्यति।**

यणादेश होने पर यण्निमित्तक स्वर को सिद्ध कहना चाहिए। यणादेश होने पर यण्निमित्तक स्वर को सिद्ध कहने का प्रयोजन क्या है? उसका प्रयोजन यह है कि स्वरित के स्थान में जो यणादेश, उससे पर में अनुदात्त को स्वरित हो सके। जैसे 'खलप्व्यटति खलप्व्यश्नाति', यहाँ पर कृदुत्तरपद प्रकृतिस्वर से खलपूघटक ऊ उदात्त है तथा ङि अनुदात्त, ऊ को यण् होने से 'ङि' स्वरित हो गया। पुनः 'खलप्वि+अटति, खलप्वि+अश्नाति' स्थल में खलप्विघटक स्वरित इ को यण् आदेश कर उस यण् से पर में 'अटति' व

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'अश्नाति'घटक अनुदात्त अ को स्वरित सिद्ध हो सके। अन्यथा 'तिङ्ङतिङः' ८.१.२८ सूत्र से 'अटति' व 'अश्नाति' के सर्वानुदात्त होने से स्वरित प्राप्त नहीं था। उस स्वरित को सिद्ध करने के लिए यणादेश होने पर यण् स्वर को सिद्ध कहना चाहिए। तो क्या 'यण्स्वरो यणादेशे स्वरितयणः स्वरितार्थम्' यह वार्तिक कहना चाहिए? जी नहीं, यह वार्तिक कहने की आवश्यकता नहीं है। सूत्रकार 'स्वरितयणः' ऐसा कहते हैं, 'खलप्व्यटति, खलप्व्यश्नाति' स्थल में स्वरित सिद्ध नहीं है, अतः यहाँ **आश्रयात्**='स्वरितयणः' इस आरम्भसामर्थ्य से स्वरित सिद्ध हो जायेगा।

* आश्रयात्सिद्धत्वमिति चेदुदात्तात् स्वरिते दोषः * **आश्रयात् सिद्धत्वमिति चेदुदात्तात् स्वरिते दोषो भवति—दध्याशा मध्वाशा। एवं तर्हि योगविभागः करिष्यते। 'उदात्तयणः। उदात्तयणः परस्याऽनुदात्तस्य स्वरितो भवति। ततः 'स्वरितयणः'। स्वरितयणश्च परस्याऽनुदात्तस्य स्वरितो भवति। 'उदात्तयण' इत्येव।**

यदि आश्रय से स्वरितस्वर को सिद्ध मानेंगे तो जहाँ पर उदात्तस्थानिक यण् से पर मे स्वरितस्वर प्राप्त है वहाँ पर दोष होगा। जैसे—'दध्याशा, मध्वाशा'। यहाँ 'आशाया अदिगाख्या चेत्' (फि.सू.१८) से आशाशब्द अन्तोदात्त है। 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' ६.१.१५८ से शेषनिघात होने से आशाघटक आ अनुदात्त हुआ। 'नब्विषयस्याऽनिसन्तस्य' फि.सू.२६ से आद्युदात्त तथा 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' ८.४.६६ से दधि मधु घटक इ उ स्वरित है। उसके स्थान में जायमान यण् स्वोत्तर आ को स्वरित कर रहा है, परन्तु यह आरम्भसामर्थ्य से न हो कर स्वतः है। अच्छा तो इस दोष की निवृत्ति के लिए हम योग-विभाग करेंगे। प्रथम योग होगा—'उदात्तयणः'। अर्थ होगा—उदात्तस्थानिक यण् से पर में अनुदात्त को स्वरित हो। दूसरा योग होगा—'स्वरितयणः'। अर्थ होगा—स्वरितस्थानिक यण् से पर में अनुदात्त को स्वरित हो। इस योगविभाग से प्रकृत में जो आया उसको स्पष्ट करते हैं—**उदात्तयण इत्येवेति**। 'उदात्तयण् के स्थान में जायमान जो यण् उससे पर में जायमान जो स्वरित उस स्वरित के स्थान में जायमान यण् से पर में अनुदात्त को स्वरित होता है', अतः इसी स्वरित के आश्रय से सिद्धत्व होगा।

अथवा स्वरितग्रहणं न करिष्यते। केनेदानीं स्वरितयणः परस्याऽनुदात्तस्य स्वरितो भविष्यति? 'उदात्तयण' इत्येव। ननु च स्वरितयणा व्यवहितत्वान्न प्राप्नोति। 'स्वरविधौ व्यञ्जनम् अविद्यमानव'दिति नास्ति व्यवधानम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथवा सूत्र में स्वरितग्रहण नहीं करेंगे। यदि सूत्र में आप स्वरितग्रहण नहीं करेंगे तो स्वरितयण् से पर में अनुदात्त को स्वरित कैसे होगा? सूत्र में 'उदात्तयणः' यह पढा गया है, वहीं स्वरितयण् से पर में अनुदात्त को भी स्वरित कर देगा। अच्छा तो 'उदात्तयणः' यह पञ्चम्यन्त है। अव्यवहितपरत्व अर्थ की उपस्थिति होगी। स्वरितयण् के व्यवधायक होने से उदात्तयण् से पर में अनुदात्त नहीं मिलेगा, फिर उदात्तयण् से पर में अनुदात्त को स्वरित कैसे होगा? यह कोई दोष नहीं है। इस पक्ष में 'स्वरविधौ व्यञ्जनमविद्यमानवत्' परिभाषा है। स्वर की कर्तव्यता में व्यञ्जन अविद्यमान के जैसा होता है, अतः स्वरितयण् के व्यवधान नहीं होने से उदात्त यण् से पर में अनुदात्त को स्वरित हो जायेगा।

अथवा नैवं विज्ञायते—वरितस्य यण्, स्वरितयण्, स्वरितयण इति। कथ तर्हि? स्वरिते यण् स्वरितयण्, स्वरितयण इति। {उदात्तस्वरितयोर्यणः}।

अथवा मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि 'स्वरितस्य यण् स्वरितयण् तस्मात्'। तो क्या कह रहे हैं? मैं यहाँ ऐसा भी कह सकता हूँ—'स्वरिते यण् स्वरितयण् तस्मात्'। सूत्र में 'उदात्तस्वरितयोः' को सप्तमी मानेंगे। उदात्त को जो यण्, वह उदात्तविषयक होने से उदात्त में भी होगा। परन्तु 'स्वरिते' इसको पर सप्तमी मानेंगे, इससे प्रकृत में अर्थ यह आयेगा कि लौकिकप्रयोग में जो स्वरित, उस स्वरित के परे रहते जो यण्, उससे पर में अनुदात्तस्थानिक स्वरित साधु होता है। शास्त्रीय स्वरित के असिद्ध होने पर भी लौकिक स्वरित सिद्ध है, अतः 'दध्याशा मध्वाशा' इत्याकारक लौकिकप्रयोग में स्वरित परे रहते यण् से पर में अनुदात्त को स्वरित होगा। **{उदात्तस्वरितयोर्यणः}**।

स्वरितो वाऽनुदात्ते पदादौ ८.२.६

'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' ८.२.५ का अपवाद सूत्र है—'स्वरितो वाऽनुदात्ते पदादौ' ८.२.६।

सूत्रार्थ—'पूर्वस्थानिक उदात्त तथा परस्थानिक पदादि अनुदात्त के स्थान में एकादेश विकल्प से स्वरित हो'। जिस पक्ष में स्वरित नहीं होगा उस पक्ष में 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' ८.२.५ सूत्र से एकादेश उदात्त ही रहेगा। जैसे—'वीदं ज्योतिर्हृदये'। यहाँ पर 'वि' निपात है, अतः 'निपाता आद्युदात्ताः' (फि. सू.८0) से आद्युदात्त है। इदम् शब्द 'फिषोऽन्त उदात्तः' (फि.सू.१) से अन्तोदात्त है। 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' ६.१.१५८ सूत्र से इदम्घटक 'इ' अनुदात्त हुआ। 'वि' घटक 'इ' उदात्त तथा इदम् घटक 'इ' अनुदात्त है। उन दोनों के स्थान

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में एकादेश 'ई' को 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' ८.२.५ से नित्य उदात्त प्राप्त रहने पर 'स्वरितो वाऽनुदात्ते पदादौ' ८.२.६ के द्वारा विकल्प से स्वरित का विधान है। स्वरित के अभावपक्ष में पूर्व सूत्र से उदात्त ही रहेगा।

स्वरितग्रहणं शक्यमकर्त्तुम्। कथम्? 'अनुदात्ते परतः पदादौ वा उदात्त'[1] इत्येव सिद्धम्। केनेदानीं स्वरितो भविष्यति—गाङ्गेऽनूपे इति? आन्तर्यत उदात्तानुदात्तयोरेकादेशः स्वरितो भविष्यति। इदं तर्हि प्रयोजनं तेन वर्ज्यमानता मा भूदिति।

सूत्र में स्वरित पद का ग्रहण नहीं करना चाहिए। सूत्र में स्वरित पद का ग्रहण क्यों नहीं करना चाहिए? 'वाऽनुदात्ते पदादौ' इतना मात्र सूत्र पढने से ही लक्ष्यसिद्धि हो जा रही है, अतः स्वरितग्रहण नहीं करना चाहिए। अच्छा तो यदि सूत्र में स्वरितग्रहण नहीं करेंगे तो 'गाङ्गेऽनूपे' में किस सूत्र से स्वरित होगा? सूत्र में स्वरितपाठ से स्वरित सिद्धि हो रही है। जैसे— 'गङ्गाया इदं गाङ्गम्', में 'तस्येदम्' ४.३.१२० सूत्र से अण् करके उसको प्रत्ययस्वर के द्वारा अन्तोदात्त करेंगे। पुनः गाङ्ग पद से सप्तमी एकवचन ङि प्रत्यय लाकर गुण एकादेश हुआ है। ङि सुप् होने से 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' ३.१.४ सूत्र से अनुदात्त है। उदात्त 'अ' तथा अनुदात्त 'इ' के स्थान में जायमान एकादेश 'स्वरितो वाऽनुदात्ते पदादौ' ८.२.६ से स्वरित हो रहा है तथा विकल्प से अपरपक्ष में एकादेश उदात्त भी है। गाङ्गे+अनूपे यहाँ पर 'ए' को उदात्त तथा अनूपे घटक 'अ' को अनुदात्त होने से ए+अ के स्थान में 'एङः पदान्तादति' ६.१.१०९ सूत्र से एकादेश स्वरित होता है, यदि प्रकृत सूत्र में स्वरितग्रहण नहीं करेंगे तो यहाँ स्वरित कैसे होगा? अनूपघटक अकार अनुदात्त है। क्योंकि 'अपः अनुगतम् अनूपम्', यहाँ 'प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया' (ग.सू.२.२.१८) से प्रादिसमास है। 'तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाऽव्ययद्वितीया-कृत्याः' ६.२.२ सूत्र से पूर्वपदप्रकृतिस्वर प्राप्त था, उसको बाध कर 'अनोरप्रधान-कनीयसी' ६.२.१८९ सूत्र से अन्तोदात्त हुआ, एवं शेषनिघातस्वर हुआ।

स्वरितग्रहण के अभाव में 'गाङ्गेऽनूपे' यहाँ पर उदात्त और अनुदात्त के स्थान में जायमान एकादेश आन्तर्यतः स्वरित हो जायेगा। वह इस तरह कि स्थानी उदात्तत्वविशिष्ट तथा अनुदात्तत्वविशिष्ट है, उसके स्थान में जायमान आदेश भी उदात्तत्व-अनुदात्तत्वविशिष्ट होगा तथा वह स्वरित ही होता है, अतः सूत्र में स्वरितग्रहण नहीं करना चाहिए।

१. 'पदादावुदात्त' इति पाठो नागेशसम्मतः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अच्छा तो स्वरितग्रहण का फल यह है कि 'गाङ्गेऽनूपे' में आन्तरतम्यात् स्वरित सिद्ध होने पर भी 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' ६.१.१५८ सूत्र से शेषनिघात के द्वारा पे-घटक ए अनुदात्त हो रहा है, जबकि वह उदात्त इष्ट है, अतः पे-घटक ए को उदात्तविधान के लिए सूत्र में स्वरितग्रहण से वर्ज्यमानता दर्शायी गयी है। 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' ८.२.५ सूत्र की दृष्टि में 'स्वरितो वाऽनुदात्ते पदादौ' ८.२.६ असिद्ध होने से पे-घटक ए उदात्त हो जा रहा है।

अथ क्रियमाणेऽपि स्वरितग्रहणे यः सिद्धः स्वरितस्तेन वर्ज्यमानता कस्मान्न भवति—कन्याऽनूप इति? बहिरङ्गलक्षणत्वात्। असिद्धं बहिरङ्गम् अन्तरङ्ग इत्येवं न भविष्यति। यथैव तर्हि क्रियमाणे स्वरितग्रहणे यः सिद्धः स्वरितस्तेन वर्ज्यमानता न भवत्येवमक्रियमाणेऽपि न भविष्यति। तस्मान्नार्थः स्वरितग्रहणेन। 'असिद्धं बहिरङ्गलक्षणमन्तरङ्गलक्षण' इत्येव सिद्धम्।

अच्छा तो सूत्र में स्वरितग्रहण करने पर भी स्वरितग्रहण में जो सिद्ध स्वरित, उससे वर्ज्यमानता क्यों नहीं होती है? जैसे—कन्याऽनूपे। 'कन्याराजन्य-मनुष्याणामन्तः' फिट्सूत्र ४.७६ इससे कन्या शब्द अन्तस्वरित है। अनूप शब्द-घटक आ अनुदात्त है। दोनों के स्थान में दीर्घ एकादेश आन्तर्यतः स्वरित होता है। यहाँ स्वरित सिद्ध है; अतः वर्ज्यमान होने पर अनुदात्त और स्वरित का यौगपद्य सम्भव नहीं है। क्योंकि कोई भी स्वर अनुदात्तत्व और स्वरितत्वविशिष्ट नहीं होता है। फिर भी 'कन्याऽनूपे' स्थल में अनुदात्त और स्वरित के स्थान में एकादेश होने पर जैसे स्वरित-स्वर होता है, वैसे 'गाङ्गेऽनूपे' स्थल में भी स्वरितस्वर हो जायेगा। भाष्यकार का पूर्वपक्ष था कि 'कन्याऽनूपे' स्थल में वर्ज्यमानता क्यों नहीं है?

इसका उत्तर देते हैं—**बहिरङ्गलक्षणत्वादिति**। 'कन्याऽनूपे' स्थल में एकादेश पदद्वयनिमित्तक वर्णद्वयसापेक्ष होने से बहिरङ्ग है तथा उसी एकादेश को स्वरितस्वर प्राप्त होने से तदीयस्वरितस्वर भी बहिरङ्ग हुआ। उसकी अपेक्षा वर्ज्यमानता स्वरितत्वमात्रनिष्ठ होने से अन्तरङ्ग है, अतः 'कन्याऽनूपे' स्थल में स्वरितत्व अनुदात्त तथा स्वरितस्थानिक स्वरित का भेद नहीं हो सकेगा। अच्छा तो जैसे सूत्र में पढा गया स्वरित पद से वर्ज्यमानता गम्य नहीं है वैसे पद का पाठ न करने पर भी वर्ज्यमानता गम्य नहीं हो सकेगी, अतः स्वरित-ग्रहण का कोई प्रयोजन नहीं है। 'अन्तरङ्गशास्त्र की कर्तव्यता में बहिरङ्गशास्त्र असिद्ध हो जाता है', इस नियम से वर्ज्यमानता गम्य हो जायेगी, तदर्थ सूत्र

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में स्वरित पद का ग्रहण नहीं करना चाहिये।

* एकादेशस्वरोऽन्तरङ्गः अयवायावेकादेशशतृस्वरैकाननुदात्तसर्वानुदात्तार्थम् * **एकादेशस्वरोऽन्तरङ्गः सिद्धो वक्तव्यः। किं प्रयोजनम्?** * 'अयवायावेकादेशशतृस्वरैकानुदात्तसर्वानुदात्तार्थम्' * **अय्—वृक्ष इदम् प्लक्ष इदम्। उदात्तानुदात्तयोरेकादेशस्तस्यैकादेश उदात्तेनोदात्त इत्येतद् भवति। तस्य सिद्धत्वं वक्तव्यम्। आन्तर्यत उदात्तस्य उदात्तोऽयादेशो यथा स्यात्। अय्। अवादेशो नास्ति। आय्—कुमार्या इदम् किशोर्या इदम्। उदात्तानुदात्तयोरेकादेशस्तस्यैकादेश उदात्तेनोदात्त इत्येतद् भवति, तस्य सिद्धत्वं वक्तव्यम्। आन्तर्यत उदात्तस्य उदात्त आयादेशो यथा स्यात्। नैतदस्ति प्रयोजनम्, एकादेशे कृते 'उदात्तयणो हल्पूर्वा'दित्युदात्तो भविष्यति।**

अन्तरङ्ग एकादेशस्वर को सिद्ध कहना चाहिए। अन्तरङ्ग एकादेशस्वर को सिद्ध कहने का क्या प्रयोजन है? अन्तरङ्ग एकादेशस्वर को सिद्ध कहने का प्रयोजन—अय्, अव्, आय्, आव्, एकादेश, शतृस्वर, एकाननुदात्त और सर्वानुदात्त प्रयोजन है। जैसे **अय्**—वृक्षे+इदम् प्लक्षे+इदम्, यहाँ पर वृक्ष+ङि, प्लक्ष+ङि इस दशा में सुप् होने से ङि अनुदात्त है तथा वृक्ष प्लक्ष घटक अन्त्य अकार उदात्त। एकादेश दोनों के स्थान पर 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' ८.२.५ सूत्र से उदात्त ही होगा। उस उदात्त ए के स्थान पर जायमान अय् भी उदात्त होता है। उसको सिद्ध कहना चाहिए, जिससे आन्तर्यतः उदात्त के स्थान में उदात्त ही आदेश हो सके। अवादेश नहीं है।

आयादेश का उदाहरण देते हैं—कुमारी शब्द अन्तोदात्त है। चतुर्थी एकवचन ङे, आडागम यणादेश होने से 'उदात्तयणो हल्पूर्वात्' ६.१.१७४ सूत्र से आट् उदात्त हुआ। आट् उदात्त तथा ङे अनुदात्त को वृद्धि एकादेश उदात्त हुआ। उस ऐ के स्थान में आयादेश भी उदात्त ही हो इसके लिए एकादेशस्वर को सिद्ध कहना चाहिए, जिससे आन्तर्यत उदात्त के स्थान में उदात्त ही आदेश हो सके। यह प्रयोजन नहीं है। 'कुमारी+आट्+ङे' इस स्थिति में पहले एकादेश होकर ऐ हो जायेगा बाद में यण्णादेश होगा; तब 'उदात्तयणो हल्पूर्वात्' ६.१.१७४ सूत्र से ऐ को उदात्त होगा।

इदमिह संप्रधार्यम्—उदात्तत्वं क्रियतामेकादेश इति, किमत्र कर्त्तव्यम्? परत्वादुदात्तत्वम्। नित्य एकादेशः। कृतेऽप्युदात्तत्वे प्राप्नोत्यकृतेऽपि प्राप्नोति। एकादेशोऽप्यनित्यः। अन्यथास्वरस्य कृते उदात्तत्वे प्राप्नोत्यन्यथास्वरस्याऽकृते,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Funding: MIDF

'स्वरभिन्नस्य च प्राप्नुवन् विधिरनित्यो भवति'। अन्तरङ्गस्तर्ह्येकादेशः। काऽन्तरङ्गता? वर्णावाश्रित्यैकादेशः पदस्योदात्तत्वम्। एवं तर्हीदमिह संप्रधार्यम्—आट् क्रियतामुदात्तत्वमितिः किमत्र कर्त्तव्यम्? परत्वादाडागमः। नित्यमुदात्तत्वम्, कृतेऽप्याटि प्राप्नोत्यकृतेऽपि प्राप्नोति। आडपि नित्यः, कृतेऽप्युदात्तत्वे प्राप्नोत्यकृतेऽपि प्राप्नोति। अनित्य आट्। अन्यथास्वरस्य कृते उदात्तत्वे प्राप्नोत्यन्यथास्वरस्याऽकृते। 'स्वरभिन्नस्य च प्राप्नुवन् विधिरनित्यो भवति'। उदात्तत्वमप्यनित्यम्—अन्यस्य कृते आटि प्राप्नोत्यन्यस्याऽकृते प्राप्नोति। 'शब्दान्तरस्य च प्राप्नुवन् विधिरनित्यो भवति'। उभयोरनित्ययोः परत्वादाडागमः। आटि कृतेऽन्तरङ्ग एकादेशः। आयू।

अच्छा तो यहाँ पर विचारणीय है कि 'कुमारी+आट्+ङे' इस स्थिति में पहले उदात्त करें, अथवा एकादेश? यहाँ क्या करना चाहिए? एकादेश शास्त्र की अपेक्षा उदात्त शास्त्र पर है; अतः परत्वात् एकादेश को बाध कर उदात्त होगा। जी नहीं। पर की अपेक्षा नित्य बलवान् होता है। उदात्त की अपेक्षा एकादेश नित्य है। करने पर भी तथा न करने पर भी जो विधि हो, उसे नित्य कहते हैं। उदात्त करने पर भी एकादेश प्राप्त है तथा न करने पर भी एकादेश प्राप्त है। अतः एकादेश नित्य हुआ। जी नहीं, 'स्वरभिन्नस्य च प्राप्नुवन् विधिरनित्यः' अर्थात् स्वरभिन्न को प्राप्त विधि अनित्य होता है। उदात्त स्वर हो जाने पर एकादेश उदात्तविशिष्ट को प्राप्त है तथा न करने पर अन्यथा प्राप्त है, अतः एकादेश भी अनित्य हुआ। अच्छा तो एकादेश अन्तरङ्ग है। अन्तरङ्ग होने से उदात्त को बाध करेगा। 'कुमारी+आट्+ङे' इस स्थल में अन्तरङ्गता क्या है? यहाँ अन्तरङ्गता यह है कि केवल दो वर्णों को आश्रय मानकर एकादेश स्वर प्राप्त है तथा पदसंज्ञानिमित्तक उदात्तत्व है. अतः एकादेश अन्तरङ्ग हुआ तथा उदात्त बहिरङ्ग। अच्छा तो 'कुमार्यै' स्थल में पहले आप यह विचार करें कि यहाँ पर पहले आट् किया जाये 'कुमारी+आट्+ङे', अथवा पहले उदात्त किया जाये 'कुमारी+ए'? क्या करना चाहिए? यहाँ पर होने से पहले आट् ही करना चाहिए। जी नहीं, जैसे यहाँ पर होने से आट् प्राप्त है, वैसे नित्य होने से उदात्त भी प्राप्त है, क्योंकि आट् करने पर भी उदात्त प्राप्त है तथा आट् न करने पर भी उदात्त प्राप्त है, 'कृताऽकृतसम्बन्धी यो विधिः स नित्यः' इस नियम से उदात्त नित्य है, अतः नित्यत्वात् पहले उदात्त ही प्राप्त होगा। आप उदात्त को जैसे नित्य बता रहे हैं वैसे आट् भी नित्य है। क्योंकि उदात्त होने पर भी आट् प्राप्त है तथा उदात्त न होने पर भी आट्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्राप्त है। जी नहीं, आट् अनित्य है। इस पक्ष में परिभाषा है—भिन्नस्वर को प्राप्त विधि अनित्य होता है। उदात्त कर देने पर उदात्त से पर में आट् प्राप्त है तथा उदात्त न करने पर आट् अन्यथा हो रहा है; अतः आट् अनित्य हुआ। आप जैसे आट् को अनित्य कह रहे हैं वैसे उदात्त भी अनित्य है। आट् करने पर आट्-विशिष्ट कुमारी शब्द को उदात्त प्राप्त है तथा आट् न करने पर आट् रहित को; अतः 'शब्दान्तर को प्राप्त विधि के अनित्य होने से उदात्त भी अनित्य हो गया'। इस तरह दोनों के अनित्य होने से परत्वात् पहले आट् का आगम होगा तथा बाद में एकादेश होगा।

आव्—**वृक्षाविदम्। प्लक्षाविदम्। उदात्तानुदात्तयोरेकादेशः। तस्यैकादेश उदात्तेनोदात्त इत्येतद् भवति, तस्य सिद्धत्वं वक्तव्यम्। आन्तर्यत उदात्तस्योदात्त आवादेशो यथा स्यात्।** आव्।

आव्—'वृक्षाविदम्, प्लक्षाविदम्। वृक्ष+औ, प्लक्ष+औ', इस दशा में वृक्ष-घटक अ तथा प्लक्ष घटक अन्त्य अ उदात्त है। सुप् होने से 'औ' अनुदात्त है। इन दोनों के स्थान में जायमान वृद्धिरूप एकादेश भी उदात्त हुआ। 'वृक्षौ+इदम् प्लक्षौ+इदम्' इस दशा में उदात्त 'औ' को सिद्ध कहना चाहिए, जिससे उदात्त औ के स्थान में उदात्त आव् आदेश हो सके।

एकादेशस्वरः—**गाङ्गेऽनूप इति। उदात्तानुदात्तयोरेकादेशः। तस्यैकादेश उदात्तेनोदात्त इत्येतद् भवति, तस्य सिद्धत्वं वक्तव्यं, 'स्वरितो वानुदात्ते पदादा'वित्येष स्वरो यथा स्यात्।** एकादेशस्वरः।

एकादेश—'गाङ्गऽनूपे' यहाँ पर गाङ्गेघटक ए उदात्त है तथा अनूपेघटक 'अ' अनुदात्त, उन दोनों के स्थान में जायमान पूर्वरूप 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' ८.२.५ सूत्र से एकादेश उदात्त होता है, उसको सिद्ध कहना चाहिए। उस उदात्त के सिद्ध रहने से 'स्वरितो वाऽनुदात्ते पदादौ' ८.२.६ सूत्र का विकल्प से स्वरित होता है। यहाँ पर यदि एकार उदात्त को असिद्ध कर देंगे तो ए स्वरित होगा; फिर तो ए स्वरित तथा 'अ' अनुदात्त के स्थान में जायमान पूर्वरूप एकादेश आन्तर्यतः स्वरित ही होगा, उदात्त नहीं, अतः दोष हुआ। 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' ८.२.५ से जायमान एकादेश उदात्त को सिद्ध कहने से 'गाङ्गेऽनूपे' स्थल में स्वरित और उदात्त दोनों स्वर विकल्प से होते हैं जो इष्ट है, अतः दोष नहीं हुआ।

शतृस्वरः—**तुदती नुदती। उदात्तानुदात्तयोरेकादेशः, तस्यैकादेश**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदात्तेनोदात्त इत्येतद् भवति तस्य सिद्धत्वं वक्तव्यम्। 'शतुरनुमोऽनद्यजादिरन्तोदात्ता'दित्येष स्वरो यथा स्यात्। नैतदस्ति प्रयोजनम्- आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति 'सिद्ध एकादेशस्वरः शतृस्वरे' इति, यदयमनुम इति प्रतिषेधं शास्ति। कथं कृत्वा ज्ञापकम्? न ह्यन्तरेणोदात्तानुदात्तयोरेकादेशं शत्रन्तं सनुम्कमन्तोदात्तमस्ति।

शतृस्वर—तुदती, नुदती। तुद्+श+शतृ, नुद्+श+शतृ, इस दशा में 'श' प्रत्यय उदात्त है तथा 'तास्यनुदात्तेन्ङिददुपदेशाल्लसार्वधातुकमनुदात्तमह्न्विङोः' ६.१.१८६ सूत्र से शतृ अनुदात्त है। दोनों के स्थान में जायमान एकादेश स्वर 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' ८.२.५ सूत्र से उदात्त होता है; उसको सिद्ध कहना चाहिए। इस स्वर के सिद्ध कहने का फल यह है कि 'तुदती, नुदती' स्थल में अनुम् अन्तोदात्त शतृ प्रत्यय से पर में नदीसंज्ञक ङीप् को उदात्तस्वर हुआ। अच्छा तो एकादेशस्वर के सिद्ध कहने का तुदती नुदती में ङीप् को अनुदात्त करना प्रयोजन नहीं है।

आचार्य अपने आचरण से बताते हैं कि 'शतृस्वर की कर्तव्यता में एकादेश स्वर सिद्ध होता है'। इसी बात को बताने के लिए आचार्य ने 'शतुरनुमो नद्यजादी' ६.१.१७३ सूत्र में अनुम् ग्रहण किया है। यदि उदात्त असिद्ध होता तो उदात्तत्व न होने से तुदन्ती नुदन्ती इत्यादि सनुम्क स्थलों में उदात्त प्राप्त नहीं होना चाहिए था; फिर प्राप्ति नहीं तो निषेध कैसा? वह निषेध व्यर्थ पड कर कल्पना करेगा—'शतृप्रत्ययनिमित्तक स्वर की कर्तव्यता में एकादेशस्वर असिद्ध होता है'। यह अनुम् निषेध ज्ञापक कैसे होगा? वह इस तरह कि उदात्त और अनुदात्त के स्थान में जायमान एकादेश नुम्सहित को उदात्त किये विना अन्तोदात्त नहीं हो सकेगा। जब अन्तोदात्त नहीं होगा तो नदीसंज्ञक को उदात्त प्राप्त नहीं होगा, इस तरह अनुम् ग्रहण व्यर्थ होकर ज्ञापन करेगा— 'सिद्ध एकादेशस्वरः शतृस्वरे'।

ननु चेदमस्ति यान्ती वान्तीति। एतदपि निघाते कृते नाऽन्तरेणोदात्तानुदात्तयोरेकादेशं शत्रन्तं सनुम्कमन्तोदात्तं भवति। इहमिह संप्रधार्य— निघातः क्रियतामेकादेश इति, किमत्र कर्तव्यम्? परत्वान्निघातः। नित्य एकादेशः—कृतेऽपि निघाते प्राप्नोत्यकृतेऽपि प्राप्नोति।

अच्छा तो शतृस्वर का प्रयोजन 'यान्ती, वान्ती' है। या+शतृ वा+शतृ इस स्थिति में या और वा 'धातोः' ६.१.१६२ सूत्र से अन्तोदात्त है तथा शतृ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रत्यय 'तास्यनुदात्तेन्ङिददुपदेशाल्लसार्वधातुकमनुदात्तमह्न्विङोः' ६.१.१८६ सूत्र से शतृ अनुदात्त है। इन दोनों के स्थान में जायमान एकादेश उदात्त हुआ। इस तरह उदात्त हो जाने से पद को शेषनिघात होता है। अब यहाँ यह विचारणीय है कि यान्ती वान्ती इस दशा में 'धातोः' ६.१.१६२ सूत्र से जब धातु को अन्तोदात्त कर दिया तब शेषनिघात के द्वारा सनुम्क पद को निघात प्राप्त है तथा सनुम्क शतृ को उदात्त। शेषनिघात कर लेने पर उदात्त और अनुदात्त के स्थान में एकादेश किये विना सनुम्क शत्रन्त अन्तोदात्त नहीं होता है। अच्छा, 'यान्ती वान्ती' स्थल में धातु को अन्तोदात्त कर लेने पर शेषनिघात प्राप्त है तथा एकादेश भी प्राप्त है। अब यहाँ पर क्या करना चाहिए? शेषनिघात अथवा एकादेश? एकादेश शास्त्र की अपेक्षा शेषनिघात पर है, अतः परत्वात् शेषनिघात ही करना चाहिए। जी नहीं। पर की अपेक्षा नित्य बलवान् होता है। एकादेश शास्त्र नित्य है, अतः पर निघातशास्त्र को भी बाध लेगा—करने पर भी तथा न करने पर भी जो विधि हो, उसे नित्य कहते हैं। शेषनिघात की अपेक्षा एकादेश नित्य होने से शेषनिघात को बाध कर प्रथम प्रवृत्त हो जायेगा।

एकादेशोऽप्यनित्यः। अन्यथास्वरस्य कृते निघाते प्राप्नोत्यन्यथास्वरस्याऽकृते निघाते। 'स्वरभिन्नस्य च प्राप्नुवन् विधिरनित्यो भवति'। अन्तरङ्गस्तर्ह्येकादेशः। काऽन्तरङ्गता? वर्णावाश्रित्यैकादेशः पदस्य निघातः। निघातोऽप्यन्तरङ्गः। कथम्? उक्तमेतत्—'पदग्रहणं परिमाणार्थ'मिति। उभयोरन्तरङ्गयोः परत्वान्निघातो, निघाते कृते एतदपि नाऽन्तरेणोदात्तानुदात्तयोरेकादेशमन्तोदात्तं भवति। शतृस्वर।

जी नहीं। एकादेश भी अनित्य है। भिन्न स्वर को प्राप्त विधि अनित्य होता है। शेषनिघात कर देने पर शेषनिघातविशिष्ट स्थानी को एकादेश होगा तथा शेषनिघात नहीं होने की स्थिति में यदि एकादेश होता है तो शेषनिघात रहित को एकादेश होगा; अतः एकादेश भी अनित्य है। अच्छा तो एकादेश अन्तरङ्ग है तथा शेषनिघात बहिरङ्ग, अतः अन्तरङ्ग एकादेश की कर्तव्यता में बहिरङ्ग निघात का निषेध हो जायेगा। एकादेश अन्तरङ्ग कैसे है? इस तरह कि एकादेश वर्णद्वयाश्रित है, अतः अन्तरङ्ग है। उसकी अपेक्षा से निघात पदसंज्ञानिमित्तक होने से बहिरङ्ग है। ऐसी बात नहीं है। यदि आप अन्तरङ्ग-बहिरङ्गभाव लेंगे तो शेषनिघात भी अन्तरङ्ग होगा। वह कैसे? शेषनिघात अन्तरङ्ग कैसे है? इसे मैं इससे पूर्व अभी अभी बता आया हूँ—पदग्रहण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परिमाणार्थक है, अतः संज्ञा का आश्रय न करने से शेषनिघात भी अन्तरङ्ग हुआ। इस तरह दोनों के अन्तरङ्ग होने से समान बल हुआ, अतः परत्वात् निघात ही होगा। निघात कर लेने पर एकादेशस्वर की कर्तव्यता में उदात्त को सिद्ध कहे विना उदात्त और अनुदात्त के स्थान में एकादेश अन्तोदात्त नहीं हो पा रहा है।

एकानुदात्त—तुदन्ति लिखन्ति। उदात्तानुदात्तयोरेकादेशस्तस्य 'एकादेश उदात्तेनोदात्त' इत्येतद् भवति, तस्य सिद्धत्वं वक्तव्यं, तेन वर्ज्यमानता यथा स्यात्। एकानुदात्त। सर्वानुदात्त—ब्राह्मणास्तुदन्ति ब्राह्मणा लिखन्ति। उदात्तानुदात्तयोरेकादेशस्तस्य 'एकादेश उदात्तेनोदात्त' इत्येदतद् भवति, तस्य सिद्धत्वं वक्तव्यम्। किं प्रयोजनम्? 'तिङ्ङतिङः' इति निघातो यथा स्यात्। किमुच्यतेऽन्तरङ्ग इति? यो हि बहिरङ्गोऽसिद्ध एवासौ भवति— प्रपचतीति, सोमसुत्पचतीति। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। सर्वत्रैव नुम्प्रतिषेधो ज्ञापकः—'सिद्ध एकादेशस्वरोऽन्तरङ्ग' इति।

एकानुदात्त—जैसे 'तुदन्ति, लिखति'। 'तुद्+श+अन्ति, लिख्+श+अन्ति' यहाँ उभयत्र विकरण 'श' उदात्त है तथा 'तास्यनुदात्तेन्ङिददुपदेशाल्लसार्वधातुकम् अनुदात्तमह्न्विङोः' ६.१.१८६ सूत्र से लस्थानिक सार्वधातुक अनुदात्त है। पूर्वस्थानिक 'अ' उदात्त तथा पर स्थानिक 'अ' अनुदात्त के स्थान में जायमान पररूप एकादेश को 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' ८.२.५ सूत्र उदात्त आदेश करता है, उसको सिद्ध कहना चाहिए। अन्यथा धातुस्वर 'धातोः' ६.१.१६२ की दृष्टि में एकादेश स्वर के असिद्ध होने से शेषनिघात नहीं हो सकेगा, अतः धातु को भी अन्तोदात्तत्व ही रहेगा। यदि उदात्त के असिद्ध होने पर भी स्वरित के द्वारा वर्ज्यमानस्वर कहेंगे तो यह कह सकते हैं, वह इस तरह कि यदि स्वरित को उदात्त विहित है, तब स्वरित को वर्ज्यमान स्वर कहेंगे। परन्तु यदि 'स्वरित स्वर का अपवाद उदात्त है' यह पक्ष मानेंगे तब एकादेश को उदात्तत्व विहित है; उस एकादेश उदात्त को असिद्ध होने पर अन्य स्वर के अभाव में वर्ज्यमानता गम्य नहीं हो सकेगी। वह वर्ज्यमानता गम्य हो उसके लिए एकानुदात्त की कर्तव्यता में एकादेश स्वर को सिद्ध कहना चाहिए।

सर्वानुदात्तः—'ब्राह्मणास्तुदन्ति, ब्राह्मणा लिखन्ति', यहाँ पर 'तुद्+श+अन्ति, लिख्+श+अन्ति' इस स्थिति में एकादेश को 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' ८.२.५ सूत्र से उदात्त होता है, उस उदात्त को सिद्ध कहना चाहिए। 'ब्राह्मणास्तुदन्ति, ब्राह्मणा लिखन्ति', यहाँ पर एकादेश उदात्तस्वर को सिद्ध कहने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का क्या प्रयोजन है? इसका प्रयोजन यह है कि 'ब्राह्मणास्तुदन्ति, ब्राह्मणा लिखति' इस स्थल में 'तिङ्ङतिङः' ८.१.२८ सूत्र से तिङन्त को सर्वानुदात्त हो।

अच्छा तो आप 'एकादेशस्वरोऽन्तरङ्गः' यह वार्तिक क्यों पढ रहे हैं? वह इसलिए कि 'प्रपचतीति, सोमसुत्पचतीति' में बहिरङ्ग एकादेश स्वर असिद्ध होता है। यहाँ पर 'प्रपचति+इति=प्रपचतीति' एकादेश हुआ है। एकादेश के असिद्ध होने से 'तिङि चोदात्तवति' ८.१.७१ सूत्र से विधीयमानस्वर 'ई' को नहीं होता है। क्या 'एकादेशस्वरोऽन्तरङ्गः' यह वार्तिक पढना चाहिए। जी नहीं, 'एकादेशस्वरोऽन्तरङ्गः' वार्तिक पढने की आवश्यकता नहीं है। 'शतुरनुमो नद्यजादी' ६.१.१७३ सूत्र में आचार्य ने नुम्प्रतिषेध किया है; वह सर्वत्र ज्ञापन करेगा—अन्तरङ्ग एकादेशस्वर सिद्ध होता है।

* संयोगान्तलोपो रोरुत्त्वे हरिवो मेदिनं त्वा * **संयोगान्तलोपो रोरुत्त्वे सिद्धो वक्तव्यः। किं प्रयोजनम्? 'हरिवो मेदिनं त्वा'। संयोगान्तलोपस्याऽसिद्धत्वाद्धशीत्युत्त्वं न प्राप्नोति** * प्लुतिश्च * **प्लुतिश्चोत्त्वे सिद्धा वक्तव्या। 'सुस्रोता३अत्र न्वसी'त्यत्र प्लुतेरसिद्धत्वाद् अतोऽतीत्युत्त्वं प्राप्नोति। अप्लुतादप्लुत इत्येतन्न वक्तव्यं भवति। नैतदस्ति प्रयोजनं, क्रियते न्यास एव।**

रु के स्थान में उत्व की कर्तव्यता में संयोगान्तलोप को सिद्ध कहना चाहिए। रु के स्थान में उत्व की कर्तव्यता में संयोगान्तलोप को सिद्ध कहने का क्या प्रयोजन है? उसका प्रयोजन है—'हरिवो मेदिनं त्वा' में उत्वसिद्धि। अन्यथा संयोगान्तलोप के असिद्ध हो जाने से 'हशि च' ६.१.११४ से उत्व सिद्ध नहीं हो सकेगा। 'हरयः अस्य सन्ति' इस अर्थ में 'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्' ५.२.९४ सूत्र से प्रशंसा में मतुप् है 'छन्दसीरः' ८.२.१५ सूत्र से म के स्थान में व आदेश, प्रथमैकवचनान्त सुप्रत्यय, उगित् मानकर नुम्, हरिवन्त् सु इस स्थिति में सु का हल्ङ्यादिलोप तथा त् का संयोगान्तलोप है, एवं 'मतुवसो रु सम्बुद्धौ छन्दसि' ८.३.१ सूत्र से न् को रुत्व है। अब यहाँ 'हशि च' ६.१.११४ से उत्व की कर्तव्यता में 'संयागान्तस्य लोपः' ८.२.२३ त्रिपादी के असिद्ध हो जाने से उत्व नहीं हो सकेगा, अतः त्रिपादी संयोगान्तलोप को सिद्ध कहना चाहिए जिससे 'हशि च' ६.१.११४ से उत्व हो सके।

उत्व की कर्तव्यता में प्लुत को सिद्ध कहना चाहिए। 'हे सुस्रोता३अत्र न्वसि' यहाँ तघटक 'अ' प्लुत है। उत्व की कर्तव्यता में त्रिपादी होने से प्लुत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

असिद्ध हो जा रहा है। उसके असिद्ध होने से सुस्रोतस् घटक स् के स्थान में जायमान रुत्व को उत्व प्राप्त है, अतः उत्व की कर्तव्यता में प्लुत को सिद्ध कहना चाहिए। प्लुत के सिद्ध कहने से 'अतो रोरप्लुतादप्लुते' ६.१.११३ सूत्र में अप्लुतात् यह नहीं पढ़ना पडता है। 'प्लुतिश्च' इस वार्तिक की आवश्यकता नहीं है। सूत्र में 'अप्लुतादप्लुते' इस न्यास को ही हम रखेंगे।

* सिज्लोप एकादेशे सिद्धः * **सिज्लोप एकोदेशे सिद्धो वक्तव्यः। अलावीत्। अपावीत्। सिज्लोपस्याऽसिद्धत्वात् सवर्णदीर्घत्वं न प्राप्नोति। यदि पुनरिडादेः सिचो लोप उच्यते? नैवं शक्यमिह हि मा हि लावीत् मा हि पावीत्। यद्यत्र इण्न स्यादनुदात्तस्य ईटः श्रवणं प्रसज्येत। ईटि पुनः सत्युक्तमेतद् 'अर्थवत्तु चित्करणसामर्थ्याद्धीट उदात्तत्व'मिति। तत्रैकादेश उदात्तेनोदात्त इत्युदात्तत्वं सिद्धं भवति।**

एकादेश की कर्तव्यता में सिज्लोप को सिद्ध कहना चाहिए। जैसे 'अलावीत्=अलावि+स्+ईत् इस दशा में 'इट ईटि' ८.२.२८ सूत्र से सिच् का लोप हुआ हैं, एवम्-'अपावीत्=अपावि+सिच्+ईत्', यहाँ पर भी 'इट ईटि' ८.२.२८ सूत्र से सिच् का लोप है। लोप होने पर 'अकः सवर्णे दीर्घः' ६.१.१०१ की कर्तव्यता में सिज लोप असिद्ध हो रहा है, उसको सिद्ध कहना चाहिए। यदि 'रात्सस्य' ८.२.२४ सूत्र से सस्य का अनुवर्तन करके 'इटः सस्य लोपः' ऐसा अर्थ करेंगे तो 'इटः' एवं 'सस्य' इन दो षष्ठ्यन्त पदों का सामानाधिकरण्य असम्भव है; अतः 'इडादेः सस्य' ऐसा अर्थ करना चाहिए, इस अर्थ में भी इट् सहित स् का लोप प्राप्त होने से 'अलावीत्, अपावीत्' में दीर्घ करने की आवश्यकता नहीं है तथा 'सिज्लोप एकादेशे सिद्धः' यह वार्तिक नहीं पढना पडेगा। परन्तु 'इट ईटि' ८.२.२८ सूत्र में 'इट': को षष्ठी मानकर इट्-सहित स् का लोप करेंगे तो 'माहि लावीत्, मा हि पावीत्' स्थल में एकादेशस्वर 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' ८.२.५ सूत्र से इष्ट है, वह नहीं हो सकेगा; अपितु अनुदात्त ईट् का श्रवण होगा। जब कि ईट् परे रहते सिच् को चित्करणसामर्थ्य से उसका आगम इट् 'चितः' ६.१.१६३ सूत्र से उदात्त हुआ। तिप् पित् होने से अनुदात्त है; अतः उसका आगम् ईट् भी अनुदात्त हुआ। 'इट ईटि' ८.२.२८ सूत्र से सलोप होने से उदात्त इ तथा अनुदात्त 'ई' के स्थान पर जायमान एकादेश 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' ८.२.५ सूत्र से उदात्त होता है। यदि 'रात्सस्य' ८.२.२४ सूत्र से 'सस्य' का अनुवर्तन करके 'सस्य इटः' ऐसे अर्थ किया जाये तथा स-सहित 'इ' का लोप किया जाये तो दीर्घ एकादेश

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होगा तथा 'मा हि लावीत् मा हि पावीत्'स्थल में अनष्टि अनुदात्त का श्रवण होगा।

* संयोगादिलोपः संयोगान्तलोपे * **संयोगादिलोपः संयोगान्तस्य लोपे सिद्धो वक्तव्यः काष्ठतट्। कूटतट्। संयोगादिलोपस्याऽसिद्धत्वात् संयोगान्तलोपः प्राप्नोति। नैष दोषः। उक्तमेतत्-'अपवादो वचनप्रामाण्या'-दिति।**

संयोगान्तलोप की कर्तव्यता में संयोगादि लोप को सिद्ध कहना चाहिए। जैसे—'काष्ठं तक्षति इति काष्ठतट्, कूटं तक्षति इति कूटतट्', यहाँ उभयत्र 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' ८.२.२६ सूत्र से पदान्तसंयोगादि स् का लोप है, वह 'संयोगान्तस्य लोपः' ८.२.२३ की कर्तव्यता में असिद्ध हो रहा है, उसको सिद्ध कहना चाहिए। यदि यहाँ संयोगादिलोप को असिद्ध कर दिया जाये तो संयोगान्तलोप होने लगेगा जो इष्ट नहीं है, अतः संयोगान्तलोप की कर्तव्यता में संयोगादिलोप को सिद्ध कहा गया। यह कोई दोष नहीं हैं, यहाँ 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' ८.२.२६ इस वचन के आरम्भ मात्र से यह सूत्र 'संयोगान्तस्य लोपः' ८.२.२३ का अपवाद हो जायेगा, इस बात को पहले बताया जा चुका है।

* निष्ठादेशः षत्वस्वरप्रत्ययेड्विधिषु * **निष्ठादेशः षत्वस्वरप्रत्ययेड्विधिषु सिद्धो वक्तव्यः। वृक्णः वृक्णवान्। निष्ठादेशस्याऽसिद्धत्वाज्झलीति षत्वं प्राप्नोति। षत्व। स्वर—क्षीबः। निष्ठादेशस्यासिद्धत्वादिट्सहितस्य निष्ठातस्य निपातनलोपरूपत्वाद् 'निष्ठा च द्व्यजना'दित्येष स्वरो न प्राप्नोति। स्वर। प्रत्ययः—क्षीबेन तरति क्षीबिकः। निष्ठादेशस्याऽसिद्धत्वाद् द्व्यचष्ठन्निति ठन्न प्राप्नोति। प्रत्यय।**

षत्व, स्वर, प्रत्यय और इड्विधि की कर्तव्यता में निष्ठादेश को सिद्ध कहना चाहिए। जैसे—वृक्णः, वृक्णवान्। यहाँ पर ओव्रश्चू छेदने पा.धा. १२९२ से निष्ठा प्रत्यय क्त और क्तवतु है। कित् परे होने से 'ग्रहिज्या-' ६.१.१६ सूत्र से सम्प्रसारण, पूर्वरूप तथा झल् परे रहते 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' ८.२.२६ सूत्र से स्लोप करके 'चोः कुः' ८.२.३० से कुत्व तथा 'ओदितश्च' ८.२.४५ सूत्र से निष्ठा तकार को नकारविधान कर वृक्णः, वृक्ण-वान् रूप बना है। 'व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः' ८.२.३६ सूत्र की दृष्टि में 'ओदितश्च' ८.२.४५ सूत्र के असिद्ध हो जाने से झल्परक हो गया, अतः व्रश्चूघटक 'च' को षत्व प्राप्त होगा जो दोष है, अतः षत्व की कर्तव्यता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में निष्ठादेश को सिद्ध कहना चाहिए, जिससे यह दोष न हो।

स्वर—क्षीबः। क्षीबृ मदे धा.पा.३८२ इससे निष्ठा में क्त प्रत्यय लाकर उसको वलाद्यार्धधातुक इट् प्रत्यय करके इट्सहित निष्ठा 'त' का निपातन से लोप है। उसका प्रथमान्त रूप 'क्षीवः' द्व्यच्क है। उसको 'निष्ठा च द्व्यजनात्' ६.१.२०५ सूत्र से द्व्यच्क मान कर आद्युदात्त हैं। यदि निष्ठालोप को असिद्ध कर देंगे तो 'क्षीबः' द्व्यच्क नहीं रहेगा, अतः उसको 'निष्ठा च-' ६.१.२०५ स्वर प्राप्त नहीं हो सकेगा। उस स्वर की प्राप्ति के लिए निष्ठादेश को सिद्ध कहना चाहिए।

प्रत्यय की कर्तव्यता में निष्ठादेश को सिद्ध कहने का फल हैं—'क्षीबिकः। 'क्षीबेन तरतीति क्षीबिकः'। यहाँ द्व्यच्क से 'द्व्यचः' ४.१.१२१ सूत्र ठन् प्रत्यय करता है, यदि निष्ठादेश को असिद्ध कर देंगे तो द्व्यच्क नहीं होने ठन् नहीं हो सकेगा, अतः ठन् हो उसके लिए प्रत्यय की कर्तव्यता में निष्ठादेश को सिद्ध कहना चाहिए।

इड्विधिः—क्षीबः। निष्ठादेशस्याऽसिद्धत्वाद् वलादिलक्षण इट् प्राप्नोति। ननु च यः प्रत्ययविधौ सिद्धः सिद्धोऽसाविड्विधौ। इदं तर्हि प्रयोजननम्—ओलस्जी लग्नः। निष्ठादेशः सिद्धो वक्तव्यः। निष्ठादेशस्य सिद्धत्वाद् 'नेड्वशि कृती'तीट्प्रतिषेधो यथा स्यात्। ईदित्करणं न वक्तव्यं भवति। एतदपि नास्ति प्रयोजनं, क्रियते न्यास एव * वस्वादिषु दत्वं सौ दीर्घत्वे * **वस्वादिषु दत्वं सौ दीर्घत्वे सिद्धं वक्तव्यम्। उखास्रत्। पर्णध्वत्। दत्वस्याऽसिद्धत्वादत्वसन्तस्येति दीर्घत्वं प्राप्नोति। अधातोरिति न वक्तव्यं भवति। नैतदस्ति प्रयोजनं, क्रियते न्यास एव।**

इड्विधिः—क्षीबः। यहाँ पर निष्ठादेश के असिद्ध होने से वलादिलक्षण इट् प्राप्त हो रहा है, यहाँ पर इट् न हो इसके लिए निष्ठालोप को सिद्ध कहना चाहिए। अच्छा तो इड्विधि का उदाहरण क्षीबः नहीं हो सकता है; क्योंकि वह प्रत्ययविधि का उदाहरण है। वहाँ पर प्रत्यय की कर्तव्यता में निष्ठादेश को सिद्ध कहा है, उसी से इड्विधि में भी निष्ठादेश सिद्ध रहेगा। अच्छा तो इड्विधि का अन्य उदाहरण होगा—ओलस्जी धा.पा.१२६२, लग्नः। यहाँ 'ओदितश्च' ८.२.४५ सूत्र से निष्ठा तकार को नकार आदेश है। निष्ठादेश के सिद्ध होने से 'नेड् वशि कृति' ७.२.८ सूत्र से इट् का प्रतिषेध होता हैं। इससे 'श्वीदितो निष्ठायाम्' ७.२.१४ सूत्र में ईदिद् ग्रहण न करने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से लाघव भी होगा। यह भी इड्विधि का प्रयोजन नहीं है। 'वृत्तम्' इत्यादि की सिद्धि के लिए 'श्वीदितो निष्ठायाम्' ७.२.१४ सूत्र में ईदिद् ग्रहण अवश्य करना चाहिये।

'अत्वसन्तस्य चाऽधातोः' ६.४.१४ इस सूत्र से सु परे रहते अत्वन्त तथा असन्त धातु के उपधा को दीर्घ प्राप्त हैं वसु स्रंसु ध्वंसु आदि को जो 'वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः' ८.२.७२ सूत्र से दत्व हुआ है उसको उपधादीर्घ की कर्तव्यता में सिद्ध कहना चाहिए। अन्यथा दत्व के असिद्ध हो जाने से असन्त मानकर उपधा को दीर्घ होने लगेगा, जो इष्ट नहीं है। अथ च दत्व के सिद्ध कहने पर 'अधातोः' यह निषेधवचन भी नहीं पढ़ना पडता है। जी नहीं। 'अत्वसन्तस्य चाऽधातोः' ६.४.१४ सूत्र में 'अधातोः'ग्रहण को आप व्यर्थ नहीं कह सकते हैं। वह सूत्र में पढना ही पडेगा। जिनको दत्व नहीं है उनके लिए 'अधातोः' यह प्रतिषेधवचन आवश्यक होगा। जैसे—'चर्म वस्ते इति चर्मवः, पिण्डं ग्रसते इति पिण्डग्रः'। यहाँ पर 'चर्मवः' यह अत्वन्त तथा 'पिण्डग्रः' यह असन्त है, 'अधातोः' प्रतिषेध करने से इनके उपधा को दीर्घ नहीं होता है।

* अदस ईत्त्वोत्त्वे स्वरे बहिष्पदलक्षणे * **अदस ईत्त्वोत्त्वे स्वरे बहिष्पदलक्षणे सिद्धे वक्तव्ये। अमी अत्र। अमी आसते। अमू आसाते। ईत्त्वोत्त्वयोरसिद्धत्वोदेच इत्ययावेकादेशाः प्राप्नुवन्ति। किमुच्यते 'बहिष्पदलक्षण' इति? यो ह्यन्यः सोऽसिद्ध एवाऽसौ भवति। अमुया अमुयोरिति** * प्रगृह्यसंज्ञायां च * **प्रगृह्यसंज्ञायां च सिद्धे वक्तव्ये। अमी अत्र। अमी आसते। अमू अत्र। अमू आसाते। इत्त्वोत्त्वयोरसिद्धत्वाद्—'अदसो मा'दिति प्रगृह्यसंज्ञा न प्राप्नोति।**

स्वर की कर्तव्यता में 'अदसोऽसेर्दादुदोमः' ८.२.८० सूत्र से अदस्स्थानिक उत्त्व और ईत्त्व को सिद्ध कहना चाहिए। यहाँ स्वर पद से उदात्तादि नहीं लिये गये हैं, अपितु अच् का ग्रहण है। जैसे—अमी अत्र, अमी आसते यहाँ पर 'एचोऽयवायावः' ६.१.७८ की दृष्टि में 'एत ईद् बहुवचने' ८.२.८१ के असिद्ध होने से अयादेश प्राप्त है। एवम् 'अमू आसाते' यहाँ पर 'अदसोऽसेर्दादुदोमः' ८.२.८० सूत्र के असिद्ध होने से आवादेश प्राप्त है। ये अयादि न हो उसके लिए बहिष्पदलक्षण ईत्त्व उत्त्व को सिद्ध कहना चाहिए। यह बहिष्पदलक्षण ईत्त्व को सिद्ध क्यों कहा? वह इसलिए कि बहिष्पदलक्षण ईत्त्व उत्त्व से भिन्न जो ईत्त्व उत्त्व वह असिद्ध होता ही है। जैसे—अमुया अमुयोः। 'अदस्+टाप्+टा और अदस्+टाप्+ओस्' इस स्थिति में उभयत्र 'त्यदादीनामः' ७.२.१०२ से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अत्व 'अतो गुणे' ६.१.९७ से पररूप होकर यहाँ पर उत्त्व, मत्व एकपदनिमित्तक होने से अन्तरङ्ग है, वह उत्त्व 'आङि चापः' ७.३.१०५ से एत्त्व की कर्तव्यता में असिद्ध होता है तथा उसको अयादेश करके 'अमुया, अमुयोः' रूप होता है। 'अमू, अमी' यहाँ पर 'औ' के स्थान में 'ऊ' तथा 'ए' के स्थान में 'ई' आदेश है, वह वर्णद्वयाश्रित होने से बहिरङ्गलक्षण है, अतः स्वर अयादेश आदि की कर्तव्यता में सिद्ध रहेगा।

'अदसो मात्' १.१.१२ सूत्र से प्रगृह्यसंज्ञा की कर्तव्यता में भी अदस्-सम्बन्धी बहिष्पदलक्षण ईत् और ऊत् को सिद्ध कहना चाहिए। अन्यथा 'अमी अत्र, अमी आसते, अमू अत्र, अमू आसाते' इत्यादि स्थलों में ईत्व और ऊत्व के असिद्ध होने से 'अदसो मात्' १.१.१२ सूत्र से विहित प्रगृह्यसंज्ञा नहीं हो सकेगी।

किमर्थमिदमुभयमुच्यते न प्रगृह्यसंज्ञाया'मित्येव स्वरेऽपि बहिष्पदलक्षणे चोदितं स्यात्। पुरस्तादिदमाचार्येण दृष्टं, स्वरे बहिष्पदलक्षणे इति, तत्पठितम्। तत उत्तरकालमिदं दृष्टं 'प्रगृह्यसंज्ञायां चेति, तदपि पठितम्। न चेदानीमाचार्याः सूत्राणि कृत्वा निवर्तयन्ति।

अच्छा तो आपने दो वार्तिक पढा—'अदस ईत्त्वोत्त्वे स्वरे बहिष्पदलक्षणे' तथा 'प्रगृह्यसंज्ञायां च'। यहाँ पर 'प्रगृह्यसंज्ञायां च' यह एक ही वार्तिक पढते तो उसी से स्वर अयादि की कर्तव्यता में भी बहिष्पद लक्षण ईत्त्व उत्त्व सिद्ध हो, यह अर्थ हो जाता। जब एक ही से कार्य हो जा रहा था तब दो वार्तिक क्यों पढे गये? वह इसलिए कि आचार्य ने पहले 'स्वरे बहिष्पदलक्षणे' यह वार्तिक पढ दिया। बाद में उन्हें ज्ञान हुआ कि 'प्रगृह्यसंज्ञाया च' यह भी पढना चाहिए, तो वह भी पढ दिया। आचार्य का स्वभाव है कि सूत्र की रचना कर पुनः उसको बदलते या हटाते नहीं, अतः दोनों सूत्र रह गये।

*** प्लुतिस्तुग्विधौ च्छे च * प्लुतिस्तुग्विधौ च्छे च सिद्धा वक्तव्या। अग्ना३ इच्छत्रम्। पटा३ उच्छत्रम्। प्लुतेरसिद्धत्वाच्'छे चे'ति तुग्न प्राप्नोति। किमुच्यते छे चेति? यो ह्यन्योऽसिद्ध एवाऽसौ भवति—अग्निचीइत्। सोमसू३त् * श्चुत्वं धुट्त्वे * श्चुत्वं धुट्त्वे सिद्धं वक्तव्यम्। अट्श्च्योतति षट् श्च्योतति। श्चुत्वस्याऽसिद्धत्वाड्-'डः सि धु'डिति धुट् प्रसज्येत।**

'छे च' ६.१.७३ सूत्र से तुक् की कर्तव्यता में लुप्त को सिद्ध कहना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चाहिए। जैसे—अग्ना३ इच्छत्रम्, पटा३ उच्छत्रम्। यहाँ पर 'हे अग्ने छत्रम्' ऐसा वाक्य है। श्रुति में 'एचोऽप्रगृह्यस्यादूराद् धूते पूर्वस्यार्धस्याऽऽदुत्तरस्येदुतौ' ८.२.१०७ सूत्र से 'हे अग्ने' इस सम्बोधनान्त, घटक ए में आ+इ इस संयुक्ताक्षर तथा 'हे पटो' घटक ओ में आ+उ इस समुदाय का पूर्व अवयव आ प्लुत है तथा उत्तर अर्ध इत् तथा उत् है। यहाँ पर इत् उत् के असिद्ध हो जाने से एकाराश्रय व ओकाराश्रय प्राप्त है, वह न हो इसके लिए इत् उत् को सिद्ध कहना चाहिए। वार्तिक में प्लुति शब्द से इत उत् परिलक्षित है। यहाँ पर ह्रस्वाश्रय तुक् नित्य ही होगा। आप 'छे च' ६.१.७३ सूत्र से विहित तुक् को ही असिद्ध क्यों कह रहे हैं? वह इसलिए कि जो अन्य तुक् है वह होगा ही। जैसे—'अग्निची३त्, सोमसू३त्। अग्निं चिनोतीति अग्निचित् तस्य सम्बोधने हे अग्निची३त्, सोमं सुनोतीति सोमसुत् तस्य सम्बोधने हे सोमसू३त्'। यहाँ पर प्लुत के असिद्ध हो जाने से 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' ६.१.७१ सूत्र से उभयत्र तुक् होता है।

'ङः सि धुट्' ८.३.२९ की कर्तव्यता में 'स्तोः श्चुना श्चुः' ८.४.४० को सिद्ध कहना चाहिए। श्च्युतिर् क्षरणे धा.पा.४१, यह सकारादि धातु है उसके च-वर्ग के योग में श्चुत्व कर श् हुआ है। अट्श्च्योतति, षट् श्च्योतति, यहाँ पर श्चुत्व के असिद्ध होने से धुट् प्राप्त होगा, धुट् न हो उसके लिए श्चुत्व को सिद्ध कहना चाहिए।

*** अभ्यासजश्त्वचर्त्वमेत्त्वतुकोः * अभ्यासजश्त्वचर्त्वमेत्त्वतुकोः सिद्धं वक्तव्यम्। बभणतुः बभणुः। अभ्यासादेशस्याऽसिद्धत्वादेत्त्वं प्राप्नोति। उचिच्छिषति। अभ्यासादेशस्याऽसिद्धत्वाच्—'छे चे'ति तुक् प्राप्नोति।**

एत्व और तुक् की कर्तव्यता में अभ्यास जश्त्व और चर्त्व को सिद्ध कहना चाहिए। जैसे—'बभणतुः, बभणुः', यहाँ पर भण धा.पा.४४७ धातु से लिट् प्रथम पुरुष द्विवचन में 'बभणतुः' तथा बहुवचन में 'बभणुः' प्रयोग है। धातु को द्वित्व करके 'अभ्यासे चर्च' ८.४.५४ सूत्र से अभ्यासघटक भ को ब जश्त्व हुआ है। 'अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि' ६.४.१२० सूत्र की दृष्टि में 'अभ्यासे चर्च' ८.४.५४ के असिद्ध होने से अभ्यास को लोप तथा धातुस्थ अत् को एत् प्राप्त था। वह न हो उसके लिए अभ्यासजश्त्व को सिद्ध कहना चाहिए। अभ्यासचर्त्व का उदाहरण है—'उचिच्छिषति'। उछी विवासे धातु पा. १२९६, को 'छे च' ६.१.७३ से तुक्, श्चुत्व करके उच्छी धातु हुआ हैं, उससे इच्छार्थक सन् प्रत्यय करके 'सन्यङोः' ६.१.९ से सन्नन्त को द्वित्व होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अजादि होने से 'अजादेर्द्वितीयस्य' ६.१.२ द्वितीय एकाच् च्छि को द्वित्व करेगा। उच्छिच्छिष, 'शर्पूर्वाः खयः' ७.४.६१ सूत्र से खय् का शेष होने से उछिच्छिष रूप हुआ। 'अभ्यासे चर्च' ८.४.५४ सूत्र को छ् को चर्त्व च् होकर उचिच्छिषति रूप होता है। यहाँ 'छे च' ६.१.७३ सूत्र की दृष्टि में 'अभ्यासे चर्च' ८.४.५४ सूत्र के असिद्ध होने से अनिष्ट तुक् प्राप्त है, अतः यहाँ पर तुग् वारण करने के लिए तुक् की कर्तव्यता में अभ्यासचर्त्व को सिद्ध कहना चाहिए।

* द्विर्ववचने परसवर्णत्वम् * **द्विर्वचने परसवर्णत्वं सिद्धं वक्तव्यम्। सय्ँयन्ता। सव्ँवत्सरः तल्ँलोकं यल्ँलोकमिति। परसवर्णस्याऽसिद्धत्वाद्— 'यर' इति द्विर्वचनं न प्राप्नोति** * पदाधिकारश्चेल्लत्वघत्वढत्वनत्वरुत्वषत्वणत्वाऽनुनासिकच्छत्वानि * **पदाधिकारश्चेल्लत्वघत्वढत्वनत्वरुत्वषत्वणत्वाऽनुनासिकच्छत्वानि सिद्धानि वक्तव्यानि।** लत्व—**गरो गरः। गलो गलः।** लत्व।

एवम् द्विर्वचन की कर्तव्यता में परसवर्ण को सिद्ध कहना चाहिए। जैसे -सय्ँय्ँयन्ता। सव्ँव्ँवत्सरः। तल्ँल्ँलोकम्। यल्ँल्ँलोकम्। यहाँ 'अनचि च' ८.४.४७ सूत्र की दृष्टि में 'वा पदान्तस्य' ८.४.५९ के असिद्ध होने से 'अनचि च' ८.४.४७ का स्थानी यर् नहीं मिल सकेगा, जिसको द्वित्व हो सके, अतः द्वित्व की कर्तव्यता में परसवर्ण को सिद्ध कहना चाहिये; जिससे उपर्युक्त स्थलों में द्वित्व हो सके।

यदि 'पदस्य' ८.१.१६ को अधिकार मानेंगे तो लत्व, घत्व, ढत्व, नत्व, षत्व, अनुनासिक तथा छत्व को भी सिद्ध कहना चाहिए। जैसे लत्व— गलोगलः, गरोगरः। यहाँ 'अचि विभाषा' ८.२.२१ सूत्र से लत्व प्राप्त है, तथा पद को द्वित्व। द्वित्वविधायक शास्त्र की दृष्टि में लत्वविधायक 'अचि विभाषा' ८.२.२१ के असिद्ध होने से द्वित्व के अनन्तर लत्व होगा, जिससे 'गलो गलः' न होकर 'गरो गलः' यह अनिष्ट रूप होगा। वह न हो इसके लिए द्वित्व की दृष्टि में लत्व को सिद्ध कहना चाहिए।

घत्व—**द्रोग्धा-द्रोग्धा।** घत्व। ढत्व—**द्रोढा-द्रोढा।** ढत्व। नत्व—**नुन्नो-नुन्नः। नुत्तो नुत्तः।** नत्व। रुत्व—**अभिनोऽभिनः। अभिनदभिनत्।** रुत्व। षत्व—**मातुःष्वसा मातुःष्वसा। मातुःस्वसा मातुःस्वसा। पितुःष्वसा पितुःष्वसा, पितुःस्वसा पितुःस्वसा।** षत्व। णत्व—**माषवापाणि माषवापाणि।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

माषवापानि माषवापानि। णत्व। अनुनासिक—वाङ्नयनं वाङ्नयनम्। वाग्नयनं-वाग्नयनम्। अनुनासिक। छत्व—वाक्च्छयनं वाक्च्छयनम्। वाक्शयनं वाक्शयनम्। उभयथा चाऽयं दोषो यद्यपि स्थाने निर्वचनमथापि द्विःप्रयोगः। कथम्? यदि तावत्स्थाने द्विर्वचनं संप्रमुग्धत्वात् प्रकृतिप्रत्ययस्य लत्वाद्यभावः। तेनैष दोषः सिद्धः। अथ द्विःप्रयोगो द्विर्वचनमसिद्ध-त्वाल्लत्वादीनि निवर्तेरन्।

घत्व—द्रोग्धा-द्रोग्धा। यहाँ द्वित्व की दृष्टि में 'दादेर्धातोर्घः' ८.२.३२ सूत्र के असिद्ध होने से द्वित्व के बाद घत्व होने पर द्रोग्धा-द्रोग्धा न होकर द्रोस्ता-द्रोग्धा होगा जो इष्ट नहीं है, अतः द्वित्व की कर्तव्यता में घत्व को सिद्ध कहना चाहिए।

ढत्व—द्रोढा-द्रोढा। यहाँ द्रुह द्रोहे धा.पा.११९७ से तृच् 'हो ढः' ८.२.३१ से ह को ढ है। यदि द्वित्व की कर्तव्यता में ढत्व को असिद्ध करेंगे तो ढत्वविशिष्ट को द्वित्व न होकर ह-विशिष्ट को ही द्वित्व होगा, ढ-विशिष्ट को द्वित्व हो इसके लिए द्वित्व की कर्तव्यता में ढत्व को सिद्ध कहना चाहिए।

नत्व—णुद प्रेरणायाम् धा.पा.१४२७ से कर्म में क्त प्रत्यय कर 'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः' ८.२.४२ सूत्र से निष्ठातकार तथा धातु-दकार को नत्व है। द्वित्वप्रकरण की दृष्टि में नत्व के असिद्ध होने से 'नुन्नः नुन्नः' द्वित्व न होकर 'नुद्त नुद्त' द्वित्व होगा। 'नुन्नः नुन्नः' द्वित्व हो इसके लिए द्वित्व की कर्तव्यता में नत्व को सिद्ध कहना चाहिये।

षत्व—द्वित्व की कर्तव्यता में 'मातुःपितुर्भ्यामन्यतरस्याम् ८.३.८५ सूत्र को सिद्ध कहना चाहिए। अन्यथा षत्व के असिद्ध होने से द्वित्व 'मातुःस्वसा' को होगा; जिससे 'मातुःष्वसा-मातुःष्वसा' यह इष्ट रूप सिद्ध नही हो सकेगा। यदि द्वित्व की दृष्टि में षत्व को सिद्ध मानेंगे तो षत्व-विशिष्ट को द्वित्व होगा, जिससे 'मातुःष्वसा मातुःष्वसा, पितुःष्वसा-पितुःष्वसा' ये इष्टरूप सिद्ध हो जाते हैं।

णत्व—द्वित्व की कर्तव्यता में णत्व को सिद्ध कहना चाहिए। इससे 'माष-वापाणि-माषवापाणि' स्थल में णत्वविशिष्ट को द्वित्व होता है। यहाँ पर द्वित्व की दृष्टि में 'प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु च' ८.४.११ सूत्र सिद्ध रहा है।

अनुनासिक—द्वित्व की कर्तव्यता में 'यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा' ८.४.४५ सूत्र को सिद्ध कहना चाहिए। इससे 'वाङ्नयनं-वाङ्नसनम्' स्थल में अनुनासिक-विशिष्ट को द्वित्व होता है। अन्यथा 'वाग्नयनं-वाङ्नयनम्' ऐसा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनिष्ट रूप होता, वह न हो उसके लिए द्वित्व की कर्तव्यता में अनुनासिक को सिद्ध कहा है।

छत्व—द्वित्व की कर्तव्यता में 'शश्छोऽटि' ८.४.६३ सूत्र को सिद्ध कहना चाहिए। छत्व के सिद्ध होने से छत्वविशिष्ट को द्वित्व होता है—'वाक्च्छयनं-वाक्च्छयनम्'। अन्यथा-'वाक्च्शयनं-वाक्च्शयनम्', ऐसा अनिष्ट रूप होता, वह न हो उसके लिए द्वित्व की कर्तव्यता में छत्व को सिद्ध कहा है।

अब यहाँ उक्त वार्तिक पर यह ध्येय है कि यदि लत्वादि के प्रति 'पदस्य' ८.१.१६ की अपेक्षा करेंगे तो लत्वादि एवं द्विर्वचन दोनों ही समकक्ष होंगे, अतः द्विर्वचन की कर्तव्यता में लत्वादि को सिद्ध कहना आवश्यक होगा। परन्तु यदि लत्वादि के प्रति 'पदस्य' ८.१.१६ की अपेक्षा नहीं करेंगे तो द्विर्वचन बहिरङ्ग होगा तथा लत्वादि अन्तरङ्ग, इस तरह अन्तरङ्ग लत्वादि की कर्तव्यता में बहिरङ्ग द्वित्व के असिद्ध हो जाने से द्विर्वचन लत्वादिविशिष्ट को ही होंगे, अतः इस दशा में लत्वादि को सिद्ध कहने की आवश्यकता नहीं होगी।

यदि आप 'द्विःप्रयोगों द्विर्वचनम्' अथवा 'स्थाने द्विर्वचनम्' जो भी पक्ष मानें तो दोनों में दोष होगा। दोनों में दोष कैसे होगा? वह इस तरह कि यदि आप स्थानी के स्थान में आदेश मानेंगे तब भी प्रकृतिप्रत्यय के सम्प्रमुग्ध होने से लत्वादि नहीं हो सकेंगे, जिससे पूर्वोक्त दोष बना रहेगा, अतः 'गरो गलः गलो गरः' ऐसा अनिष्ट रूप की आपत्ति होगी।

अथवा 'द्विःप्रयोगो द्विर्वचनम्' इस पक्ष में शास्त्र के असिद्ध होने से लत्वादि नहीं हो सकेंगे, अतः द्वित्व लत्वादिविशिष्ट को नहीं हो सकेगा। इस तरह उभयथा दोष बना हुआ है, अतः उस दोष की निवृत्ति के लिए द्विर्वचन की कर्तव्यता में लत्वादि को सिद्ध कहा गया। {**स्वरितोवाऽनु**}।

नलोपः प्रातिपदिकान्तस्यः ८.२.७

नलोपेऽन्तग्रहणं किमर्थम्? * नलोपेऽन्तग्रहणं पदाधिकारस्य विशेषण-त्वात् * नलोपेऽन्तग्रहणं क्रियते। किं कारणम्? 'पदाधिकारस्य विशेषण-त्वात्'। पदाधिकारो विशेषणम्। कथम्? पदस्येति नैषा स्थानषष्ठी। का तर्हि? विशेषणषष्ठी।

सूत्र में 'न' और 'प्रातिपदिक' ये दोनों लुप्तषष्ठीक पद हैं, 'अन्तस्य' षष्ठ्यन्त उद्देशवचन है, 'लोपः' प्रथमैकवचनान्त विधेयवचन है। इस तरह यह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चार पदों का सूत्र है। सूत्रार्थ हुआ—'प्रातिपदिकसंज्ञक जो पद उस के तदन्त नकार का लोप हो'। जैसे—'चर्मभ्याम्, चर्मभिः'। यहाँ 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' १.४.१७ सूत्र से भ्यामादि हलादि विभक्ति परे रहते चर्मन् की पदसंज्ञा है, तदन्त नकार का लोप हुआ।

सूत्र में अन्तग्रहण क्यों किया गया? अन्तग्रहण के अभाव में सूत्रार्थ होता—'प्रातिपदिक नकार का लोप हो' 'चर्मभ्यां चर्मभिः' में नलोपसिद्धि हो जाती, पुनः सूत्र में अन्तग्रहण क्यों किया है? सूत्र में अन्तग्रहण का फल यह है कि वह 'पदस्य' का विशेषण बने। पदस्य का अधिकार प्रकृत सूत्र में होता है। विशेषण होने से अन्तग्रहण तदन्त अर्थ को कहेगा-पदान्त न का लोप हो। इससे 'चर्मभ्यां चर्मभिः' स्थल में ही नलोप होगा। 'पदस्य' यह स्थानषष्ठी नहीं है अपितु विशेषणषष्ठी है, अतः तदन्त अर्थ का लाभ होता है। इसका व्यावर्त्य 'नराभ्याम्' स्थल में नलोप वारण है। अन्यथा यहाँ पर प्रातिपदिक न का लोप प्राप्त होगा जिसका वारण के लिए सूत्रकार ने सूत्र में अन्तग्रहण किया है।

* अह्नो नलोपप्रतिषेधः * **अह्नो नलोपस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः। अहोभ्याम्। अहोभिरिति। स तर्हि प्रतिषेधो वक्तव्यः? न वक्तव्यः। रुरत्र बाधको भविष्यति। असिद्धो रुस्तस्याऽसिद्धत्वान्नलोपः प्राप्नोति। अनवकाशो रुर्नलोपं बाधिष्यते। साऽवकाशो रुः। कोऽवकाशः? अनन्त्योऽकारः।**

इस सूत्र की अतिव्याप्ति दिखाते हैं—**अह्न इति**। 'अहोभ्याम् अहोभिः' स्थल में 'अहन् भ्याम्, अहन् भिस्' इस स्थिति में प्रकृति की पदसंज्ञा होने से प्रातिपदिकान्त नलोप प्राप्त है, उसका निषेध करना चाहिए। तो क्या 'अहोभ्याम् अहोभिः' स्थल में नलोप का प्रतिषेध कहना होगा? नहीं, यहाँ अलग से प्रतिषेध कहने की आवश्यकता नहीं है। तो यहाँ नलोप क्यों नहीं होता है? वह इसलिए कि 'अहन् भ्याम्, अहन् भिस्' इस स्थिति में प्रातिपदिकान्त न का लोप भी प्राप्त है तथा 'अहन्' ८.२.६८ सूत्र से अहन् के न् को रुत्व भी प्राप्त है। एक ही स्थानी में दो-दो आदेश एक साथ प्राप्त है। रुत्व से नलोप का बाध हो जायेगा। जी नहीं, 'अहोभ्याम् अहोभिः' में नलोप का बाधक रुत्व नहीं होगा, क्योंकि नलोप पूर्वत्रिपादी है तथा रुत्व परत्रिपादी 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' ८.२.१ पूर्वत्रिपादी की दृष्टि में परत्रिपादी को असिद्ध कर देगा, अतः नलोप ही होगा। आप का यह तर्क ठीक नहीं है। रुत्व निरवकाश है तथा नलोप सावकाश, 'निरवकाशो विधिरपवादः' नियम से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नकारलोप का अपवाद रुत्व होगा, अतः नलोप को बाध कर रुत्व ही होगा। जी नहीं। रुत्व निरवकाश नहीं है, वह सावकाश है। कहाँ सावकाश है? 'अहोभ्याम् अहोभिः' में यदि नकारलोप हो जाये तो एकदेशविकृतन्याय से अहशब्द भी अहन् शब्द माना जायेगा, अतः अन्त्य अकार को रुत्व करके 'अहन्' ८.२.६८ सूत्र सावकाश हो जायेगा।

आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति—'नान्त्यस्य रुर्भवती'ति यदयमहन्ग्रहणं करोति * अहन्ग्रहणादिति चेत्सम्बुद्ध्यर्थवचनम् * **अहन्ग्रहणादिति चेत्सम्बुद्ध्यर्थमेतत् स्यात्। हेऽहरिति। यत्तर्हि रुत्वं शास्ति। एतदपि संबुद्ध्यर्थमेव स्यात्। हे दीर्घाहोऽत्र। यत्तर्हि रूपरात्रिरथन्तरेषूपसङ्ख्यानं करोति तज्ज्ञापयत्याचार्यो 'नानन्त्यस्य रुर्भवती'ति। कथं कृत्वा ज्ञापकम्? न ह्यस्ति विशेषो रूपरात्रिरथन्तरेष्वनन्त्यस्य रौ वा रे वा।** {नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य}।

यदि ऐसी बात है तो हम यहाँ पर आचार्य का आचरण देखेंगे। आचार्य अपने आचरण से बताते हैं कि अनन्त्य को रुत्व नहीं होता है। अतः 'अहन्' ८.२.६८ यह नकारान्त निर्देश किया है। नकारान्त निर्देश का तात्पर्य यह है कि स्थानिता नकारान्त में ही रहेगी, नकारान्तरहित में नही। अतः एकदेशविकृतन्याय से अनन्त्य अ स्थानी नहीं होगा।

यदि आप 'अहन्' ८.२.६८ यह नकारान्तनिर्देश से नान्त में स्थानिता कहते हैं तो यह ठीक नहीं है, क्योंकि सम्बुद्धि में 'न ङिसम्बुद्ध्योः' ८.२.८ नलोप का निषेध करेगा। यहाँ पर स्थानिता अदन्त में न होकर नान्त में होगी, तदर्थ 'अहन्' यह नान्तनिर्देश है। वहाँ नान्त को रुत्व करने से 'हे अहः' ऐसा रूप होता है। अच्छा तो आचार्य जो रुत्वविधान कर रहे हैं वह ज्ञापन करेगा कि स्थानिता नान्त में हो, अन्यथा रुत्व के स्थान पर रेफविधान करते। जी नहीं, यह रुत्वविधान भी सम्बुद्ध्यर्थ है—'हे दीर्घाहोऽत्र'। यदि यहाँ पर रेफविधान किया जाता तो उत्व नहीं होता, उदित् रु को ही उत्व विहित है, अनुदित रेफ को नहीं।

अच्छा तो 'रूपरात्रिरथन्तरेषु रुत्वं वाच्यम्' ऐसा वार्तिककार कहते हैं। इस कथन से वार्तिककार ज्ञापन करते हैं कि 'अनन्त्य रु नहीं होता है'। यह रुत्वविधान ज्ञापक कैसे होगा? वह ऐसे होगा कि रूप, रात्रि और रथन्तर शब्द परे रहते चाहे आप अकार से उत्तर में नकार को रुत्व करें अथवा रेफ करें, उसमें कोई विशेष नहीं है, अतः इससे नलोपाभाव का अनुमान किया जायेगा,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इससे नकार को ही रुत्व अथवा रेफ होना चाहिये अनन्त्य अकार को नहीं। {न लोपः प्राति}।

न ङिसम्बुद्ध्योः ८.२.८

*** न ङिसम्बुद्ध्योरनुत्तरपदे * न ङिसंबुद्ध्योरनुत्तरपद इति वक्तव्यम्। इह मा भूच्—चर्मणि तिला अस्य चर्मतिल इति। राजन् वृन्दारक राजवृन्दारकेति * वा नंपुसकानाम् * वा नपुंसकानामिति वक्तव्यम्। हे चर्म! हे चर्मन्!। हे वर्म! हे वर्मन्!**

'न' अव्यय पद निषेधवचन है तथा 'ङिसम्बुद्ध्योः' सप्तमीद्विवर्चन निमित्त-वचन है। यह दो पदों का सूत्र है। इसमें पूर्व सूत्र 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' की अनुवृत्ति होती है; अतः यह पूर्वशास्त्र का निषेधवचन है। सूत्रार्थ है—'ङि और सम्बुद्धि परे रहते प्रातिपदिकान्त नकार का लोप नहीं होता है'। जैसे सम्बुद्धि का उदाहरण 'हे दण्डिन्'। ङि परे रहते श्रुति में जहाँ 'सुपां सुलुक्पूर्व-सवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः' ७.१.३९ सूत्र से ङि का लुक् होगा वहाँ उदाहरण होगा। जैसे—'परमे व्यामन्'। यहाँ 'परमे व्योम्नि' इस अर्थ में 'परमे व्योमन्' यह प्रयोग है। निषेधसामर्थ्य से प्रत्ययलक्षण के द्वारा ङि ला कर नलोप का निषेध होता है।

अनुत्तरपद पर में रहते ङि और सम्बुद्धि परे रहते ही प्रातिपदिकान्त नलोप का निषेध कहना चाहिए। इस का फल है—'चर्मणि तिला अस्य असौ चर्मतिलः' यहाँ पर उत्तरपद तिल परे रहते ङि है, अतः 'प्रत्ययलोपे प्रत्यय-लक्षणम्' १.१.६२ सूत्र से ङ्यन्त मानकर नलोप का निषेध नहीं है। अथ च राजन् वृन्दारक राजवृन्दारक यह सम्बुद्ध्यन्त पदों का ही समास है। यहाँ भी उत्तरपद वृन्दारक परे रहते सम्बुद्धि सु है, उसको 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' १.१.६२ से लाकर नलोप का निषेध नहीं है।

नपुंसक प्रातिपदिकान्त नकार का सम्बुद्धि और ङि परे रहते विकल्प से लोप कहना चाहिए। जैसे—हे चर्मन्, हे चर्म। हे वर्मन्, हे वर्म।

तत्तर्ह्यनुत्तरपद इति वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। 'न ङिसंबुद्ध्यो'-रित्युच्यते न चाऽत्र ङिसंबुद्धी पश्यामः। प्रत्ययलक्षणेन। 'न लुमता तस्मि'न्निति प्रत्ययलक्षणप्रतिषेधः। न क्वचिन् ङिर्लोपेन लुप्यते, सर्वत्र लुमतैव। स यथैवेह भवति—आर्द्रे चर्मन् लोहिते चर्मन्नित्येवमिहापि स्यात्—चर्मणि तिला अस्य चर्मतिल इति। तस्मादुपसङ्ख्यानं कर्त्तव्यम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तो क्या 'न ङिसम्बुद्ध्योरनुत्तरदे' यह वार्तिक पढना चाहिए? जी नहीं। उक्त वार्तिक पढने की आवश्यकता नहीं है। यदि यह वार्तिक नहीं पढेंगे तो 'चर्मतिलः, राजवृन्दारक' में नलोप कैसे होगा? वहाँ नलोप ऐसे होगा कि आचार्य ङि और सम्बुद्धि परे रहते नलोप का निषेध करते हैं। 'चर्मतिलः' तथा 'राजवृन्दारक' यहाँ पर ङि तथा सम्बुद्धि नहीं है, अतः नलोप का निषेध नहीं हो सकेगा। जी; वहाँ 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' १.१.६२ सूत्र से ङि और सम्बुद्धि अतिदेश करेंगे, जिससे तन्निमित्तक निषेध प्राप्त होगा। जी नहीं। उक्त स्थल में 'न लुमता तस्मिन्' यह प्रत्ययलक्षण का प्रतिषेध कर देगा जिससे ङि और सम्बुद्धि नहीं आ सकेंगे, अतः नलोप का निषेध न होने से 'चर्मतिलः' तथा 'राजवृन्दारक' में नलोप हो जायेगा। जी नहीं। आप का उक्त कथन ठीक नहीं है। कहीं पर भी लोप शब्द से ङि का अदर्शन नहीं है, अपितु सर्वत्र लुक् शब्द से ही ङि का अदर्शन हैं। यदि 'न लुमता तस्मिन्' के द्वारा प्रत्ययलक्षण का निषेध कर देंगे तो ङि परे रहते कहीं भी उदाहरण नहीं मिलेगा, अतः वचनसामर्थ्यात् ङि का लुक् होने पर भी ङि के प्रत्ययलक्षण करने में 'न लुमता तस्मिन्' प्रवृत्त नहीं होगा, अतः स्थानिवद्भाव हो जाने से जैसे 'आर्द्रे चर्मन्, लोहिते चर्मन्' स्थल में ङि परे रहते नलोप निषिद्ध है, वैसे 'चर्मणि तिला अस्य चर्मतिलः' में भी नलोप का निषेध होने लगेगा, अतः उस निषेध का वारण करने के लिए 'न ङिसम्बुद्ध्योरनुत्तरपदे' यह वार्तिक पढना चाहिए।

एवं तर्हि ङ्यर्थेन तावन्नाऽर्थः * भत्वात्तु ङौ प्रतिषेधानर्थक्यम् * ङौ प्रतिषेधोऽनर्थकः। किं कारणम्? 'भत्वात्'। भसंज्ञाऽत्र भविष्यति। यदि तर्हि भसंज्ञाऽत्र भवति रथन्तरे सामन्नित्यत्र 'अल्लोपोऽन' इत्यल्लोपः प्राप्नोति। नैष दोषः। उक्तम्—'उभयसंज्ञान्यपि च्छन्दांसि दृश्यन्ते'। तद्यथा—स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन। पदत्वात्कुत्वं भत्वाज्जश्त्वं न भवति—एवमिहापि पदत्वाद्-'अल्लोपोऽन' इति लोपो न, भत्वान्नलोपो न भविष्यति। तस्मान्नाऽर्थो ङिग्रहणेन।

अच्छा तो 'न ङिसम्बुद्ध्योः' ८.२.८ सूत्र में ङि ग्रहण नहीं करना चाहिए। ङि परे रहते प्रातिपदिक की भसंज्ञा होगी। भसंज्ञा से पदसंज्ञा का बाध हो जाने से स्थानिवद्भाव करने पर भी नलोप प्राप्त नहीं है, फिर उसका निषेधवचन व्यर्थ है। अच्छा तो यदि ङि परे रहते आप भसंज्ञा करेंगे तथा भसंज्ञा से पदसंज्ञा का बाध करेंगे 'रथन्तरे सामन्' यहाँ पर 'साम्नि' इस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सप्तम्यन्तघटक ङि का लुक् करके सामन् बना है। प्रत्ययलक्षण से ङि का अतिदेश कर देने पर यहाँ भसंज्ञा होगी तथा भसंज्ञा से पदसंज्ञा का बाध होकर भसंज्ञक अन् के अकार का 'अल्लोपोऽनः' ६.४.१३४ सूत्र से लोप होगा। जी नहीं, सामन् में अल्लोप की आपत्तिरूप दोष नहीं है। इसके बारे में मैंने पहले ही बता दिया है—'उभयसंज्ञान्यपि च्छन्दसि दृश्यन्ते'। वेद में भसंज्ञा तथा पदसंज्ञा दोनों ही देखी जाती है। जैसे—'स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन' यहाँ पर पदसंज्ञा होने से ऋच् शब्द के चकार को 'चोः कुः; ८.२.३० सूत्र से कुत्व हुआ तथा भसंज्ञा होने से क् को जश्त्वाभाव हुआ, वैसे 'रथन्तरे सामन्' यहाँ पर भी पदसंज्ञा होने से ङि परे रहते अन् के अकार का लोपाभाव कहेंगे तथा भसंज्ञा होने से नलोप का अभाव कहेंगे, अतः सूत्र में ङिग्रहण का कोई प्रयोजन नहीं है।

संबुद्ध्यर्थेन चाऽपि नार्थः। कथम्? संबुद्ध्यन्तानामसमासो राजवृन्दारकेति। किं वक्तव्यमेतत्? न हि। कथमनुच्यमानं गंस्यते? इह तावत् समानार्थेन वाक्येन भवितव्यं समासेन च। यश्चेहाऽर्थो वाक्येन गम्यते नाऽसौ जातु चित्समासेन गम्यते। अवयवसम्बोधनं वाक्येंन गम्यते, समुदायसम्बोधनं समासेन। 'वा नपुंसकाना'मित्येतद् वक्तव्यमेव।

वार्तिक में सम्बुद्धिग्रहण भी नहीं करना चाहिए। 'राजवृन्दारक' में नलोप कैसे होगा? 'राजवृन्दारक' यह सम्बुद्ध्यन्तों का समास नहीं है। अभिमुखीकरण ही सम्बोधन हैं। दो सम्बुद्ध्यन्त पदों के अर्थों का परस्पर एकार्थीभावसामर्थ्य नहीं होता है। तो क्या 'राजवृन्दारक' यह दो सम्बोधनान्त पदों का समास कहना चाहिए? वाक्य और समास को समानार्थक होना आवश्यक है। 'हे राजन् वृन्दारक' इस वाक्य से जो अर्थ गम्य है, वह 'राजवृन्दारक' इस समस्त पद से गम्य नहीं है। एवं समास से जो अर्थ आता है, वह वाक्य से गम्य नहीं है। वाक्य से अवयवसम्बोधन गम्य है, तथा समास से समुदायसम्बोधन गम्य है अतः सम्बुद्ध्यन्त पदों का समास 'राजवृन्दारक' न होने से वार्तिक में सम्बुद्धिग्रहण का प्रयोजन सिद्ध नहीं है। {न ङिसम्बुद्ध्योः}।

मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः ८.२.९

रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः ८.२.४२

*** अनन्त्ययोरपि निष्ठामतुपोरादेशः * निष्ठामतुपोरादेशोऽनन्त्ययोरपीति वक्तव्यम्। भिन्नवन्तौ भिन्नवन्तः। वृक्षवन्तौ वृक्षवन्तः। न वक्तव्यम्।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वचनाद् भविष्यति। अस्ति वचने प्रयोजनम्। किम्? भिन्नवान्। छिन्नवान्। वृक्षवान्। प्लक्षवान् * नार्मते प्रतिषेधः * नार्मते प्रतिषेधो वक्तव्यः। नृमतोऽपत्यं नार्मत इति * उक्तं वा * उक्तं वा। किमुक्तम्? निष्ठामतुपोस्तावदुक्तं—'न वा पदाधिकारस्य विशेषणत्वा'दिति। नार्मतेऽप्युक्तं—'न वा बहिरङ्गलक्षणत्वा'दिति।

'यवादिवर्जित मवर्णान्त तथा अवर्णान्त एवं मवर्णोपध तथा अवर्णोपध से पर में मतुप् प्रत्यय के मकार को वकार आदेश हो' यह मादुपधायाश्च का अर्थ है। जैसे 'किंवान्, ज्ञानवान्, विद्यावान्, लक्ष्मीवान्, यशस्वान्, भास्वान्' इत्यादि। यदि यवादि है तो वहां मतुप् के म को व नहीं होगा। जैसे—यवमान्, भूमिमान्।

द्वितीय सूत्र रदाभ्याम् का अर्थ है—'रेफ और दकार से पर में निष्ठा तकार का नकार हो तथा निष्ठा से पूर्व द के स्थान में भी न हो।' जैसे रेफ से पर में—जीर्णम्, शीर्णम्। द से पर में—भिन्नं भिन्नवान्। छिन्नं छिन्नवान्।

अब यहाँ भाष्यकार कहते हैं—निष्ठा का तकार तथा मतुप् का मकार यदि **अनन्त्य**=मध्य अथवा आदि में भी हों तो भी म के स्थान पर व और निष्ठा त के स्थान पर न आदेश कहना चाहिए। जैसे—मतुप् का उदाहरण—'वृक्षवन्तौ, वृक्षवन्तः' एवं निष्ठा का उदाहरण—'भिन्नवन्तौ, भिन्नवन्तः'। मतुप् और निष्ठा से 'पदस्य' को विशेषित किया गया है, अतः पदान्त निष्ठा और पदान्त मतुप् को ही नत्व और वत्व प्राप्त है। 'भिन्नवन्तौ, भिन्नवतः' तथा 'वृक्षवन्तौ, वृक्षवन्तः' स्थल में पदान्तत्व विभक्ति पर बैठेगा, निष्ठा और मतुप् पर नहीं, अतः वहाँ निष्ठा त को नत्व तथा मतुप् के मकार को नत्व की प्राप्ति न होने की स्थिति में 'अनन्तयोरपि निष्ठामतुपोरादेशः, वार्तिक पढा गया है। तो क्या यह वार्तिक पढना चाहिये? जी नहीं। यह वार्तिकं पढने की आवश्यकता नहीं है। यदि यह वार्तिक नहीं पढेंगे तो 'भिन्नवन्तौ, वृक्षवन्तौ' में नत्व व वत्व कैसे होगा? यहाँ पर 'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः' ८.२.४२ इस वचन से ही हो जायेगा। जी नहीं। इस वचन का अन्यत्र 'भिन्नवान्, छिन्नवान्, वृक्षवान्, प्लक्षवान्' में प्रयोजन है। वह यह कि उक्त स्थलों में पदान्तं निष्ठा तथा पदान्त मतुप् को नत्व व वत्व हो, अतः अनन्त्य को नत्व तथा वत्वविधान के लिए वार्तिक पढना चाहिये।

नार्मत में मतुप् के मकार को नकार का प्रतिषेध कहना चाहिये। जैसे—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'ना अस्ति अस्य इति नृमान्, तस्य नृमतः अपत्यं पुमान् नार्मतः'। यहाँ नृ शब्द से मतुप् प्रत्यय करके पुनः मतुबन्त से अपत्यार्थक अण्, आदि अच् को वृद्धि, रपर कर 'नार्मतः' शब्द है। यहाँ वृद्धि और रेफ करने से नार्मत शब्दघटक नार् अवर्णोपध है, उससे पर में अनन्त्य मतुप् प्रत्ययघटक मकार को वकार प्राप्त है, उसका निषेध कहना चाहिये।

अथवा 'अनन्तयोरपि निष्ठामतुपोरादेशः' यह वार्तिक नहीं पढना चाहिये। यदि यह वार्तिक न पढा जाय तो 'भिन्नवन्तौ, वृक्षवन्तौ' में अनन्त्य निष्ठा त और मतुप्-घटक म को नत्व तथा वत्व कैसे होगा? इसके बारे में पहले बताया जा चुका है। क्या बताया जा चुका है? वह यह कि इस सूत्र में निष्ठा और मतुप् 'पदस्य' के विशेषण नहीं है, अपितु पदस्य विशेषण है, अतः पदान्त निष्ठा, पदान्त मतुप्—ऐसा अर्थ नहीं होगा। 'नार्मते प्रतिषेधः' यह वार्तिक भी नहीं पढना चाहिये। नार्मतः यहाँ पर वृद्धि बहिरङ्ग है तथा वत्व अन्तरङ्ग, अतः अन्तरङ्ग वत्व की कर्तव्यता में बहिरङ्ग वृद्धि के असिद्ध होने से 'नार्मतः' में वत्वापत्ति नहीं है। {मादुपधायाश्च, रदाभ्याम्}।

संज्ञायाम् ८.२.११

आसन्दीवदष्ठीवच्चक्रीवत्कक्षीवद्रुमण्वच्चर्मण्वती ८.२.१२

किमयमेकयोग आहो स्विन्नानायोगौ? किं चातः? यद्येकयोगः अहीवती कपीवती—अत्र न प्राप्नोति। अथ नानायोगौ—इक्षुमती द्रुमती—अत्रापि प्राप्नोति।

'संज्ञा गम्य होने पर मतुप् के मकार को वकार आदेश हो' यह 'संज्ञायाम्' का सूत्रार्थ है। जैसे—'अहिः अस्ति यस्याः सा अहीवती, मुनिः अस्ति यस्याः सा मुनीवती'। यहाँ उभयत्र 'शरादीनां च' ६.३.१२० सूत्र से दीर्घ है।

आसन्दीवत्, अष्ठीवत्, चक्रीवत्, कक्षीवत्, द्रुमवत् और चर्मण्वती ये छह का संज्ञा में निपातन है। सर्वत्र मतुप् प्रत्यय है तथा मतुप्-घटक मकार के स्थान में वकार आदेश हुआ है। आसन शब्द को आसन्दीभाव निपातन है। आसन्दीवान् ग्राम की संज्ञा हैं। संज्ञा से अन्यत्र आसनवान् रूप होगा। अस्थि शब्द को षष्ठीभाव निपातन है। संज्ञा से भिन्न अर्थ में अस्थिमान् होगा। चक्र शब्द का चक्रीभाव निपातन है, चक्रीवान् नाक के राजा की संज्ञा है। अन्यत्र चक्रवान् होगा। कक्ष्या शब्द को निपातनात् सम्प्रसारण, पूर्वरूप तथा 'हलः' ६.४.२ से सम्प्रसारण को दीर्घ है—कक्षीवान् महर्षिः। लवण शब्द को द्रुमण्भाव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निपातन है, द्रुमण्वान् पर्वतविशेष की संज्ञा है। अन्यत्र लवणवान् यही रूप होगा। इसी तरह चर्मन् शब्द को णत्व तथा नलोपाभाव निपातन है—चर्मण्वती-नदी की संज्ञा है। अन्यत्र चर्मवती यही रूप होगा।

अच्छा तो आप यह बताइये कि 'संज्ञायामासन्दीवदष्ठीववच्चक्रीवत्कक्षीवद्रुमण्वच्चर्मण्वती' ऐसा एक ही सूत्र मानेंगे, अथवा संज्ञायाम्, यह एक सूत्र तथा 'आन्दीवदष्ठीवच्चक्रीवत्कक्षीवद्द्रुमण्वच्चर्मण्वती' यह दूसरा सूत्र मान कर सूत्रभेद मानेंगे? यदि एक सूत्र मानेंगे तो अहीवती, कपीवती में मतुप्-घटक मकार के स्थान पर वत्व नहीं हो सकेगा, क्योंकि संज्ञा गम्य होने पर आसन्दीवत् आदि छह का ही निपात होगा, अहीवती कपीवती को वत्व नहीं हो सकेगा। यदि भिन्न-भिन्न दोनों को सूत्र मानेंगे तो जहाँ कहीं भी संज्ञा गम्य होगी वहाँ पर सर्वत्र मतुप्-घटक मकार के स्थान में वकार आदेश होगा। इस तरह इक्षुमती, द्रुमती, यहाँ भी संज्ञा गम्य है, अतः वत्वापत्ति होगी। इस तरह एक सूत्र मानने में अहीवती, कपीवती में अव्याप्ति तथा नाना सूत्र मानने में इक्षुमती द्रुमती में अतिव्याप्तिरूप दोष स्पष्ट है।

यथेच्छसि तथास्तु। अस्तु तावदेकयोगः। कथमहीवती कपीवती? आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति—'भवत्येवंजातीयकानां वत्व'मिति। यदयम्—'अन्तोऽवत्या' 'ईवत्या' इत्याह। अथवा पुनरस्तु नानायोगौ। ननु चोक्तम्—'इक्षुमती द्रुमती अत्रापि प्राप्नोती'ति। यवादिषु पाठः करिष्यते।

उभयपक्ष में दोष का उद्धार करते हैं—**यथेच्छसीति**। आपकी जैसी इच्छा हो वैसा मान लीजिए। एकयोग मानने में आप ने जो अहीवती कपीवती में अव्याप्तिरूप दोष दिया था, वह नहीं रहेगा। आचार्य की प्रवृत्ति ज्ञापन करती है कि 'अहीवती कपीवती'; इस तरह के शब्दों को वत्व होता ही है, अतः आचार्य ने अवत् को ईवत् शब्द से कहा है। अथवा उक्त सूत्र को आप नाना सूत्र मान लीजिए। नाना सूत्र मानने में आपने इक्षुमती, द्रुमती में अतिव्याप्ति दी थी, वह नहीं रहेगी। इक्षु और द्रु शब्द का पाठ 'मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः' ८.२.९ सूत्रघटक यवादिगण में करेंगे। अच्छा तो यवादिगण में इक्षु और द्रु शब्द का पाठ नहीं है, निषेध कैसे होगा? तो 'यवादिषु पाठः करिष्यते' इस भाष्य में भाष्यकार ने आदि पद का ग्रहण किया है जिससे 'यवादिराकृतिगणः' यह अर्थ आता है। {**संज्ञायाम्, आसन्दीवत्**}।

छन्दसीरः ८.२.१५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'छन्दसीर' इत्युच्यते तत्र 'ते विश्वकर्माणन्ते सप्तर्षिमन्तम्' इत्यत्रापि प्राप्नोति। नैष दोषो—नैवं विज्ञायते 'छन्दसि इर' इति। कथं तर्हि? छन्दसि—ईर इति। एवमपि—त्विषीमान् पतीमानित्यत्रापि प्राप्नोति। नैष दोषो-विहितविशेषणम् ईकारग्रहणम्—'ईकारान्ताद्यो विहित' इति। एवमपि 'सूर्य ते देवा पृथिवीमन्तम्' इत्यत्राऽपि प्राप्नोति। इह च न प्राप्नोति—'त्रिवतीर्याज्यानुवाक्या भवन्ती'ति।

'छन्दसि+इरः' ये दो पद है। 'छन्दसि' सप्तम्येकवचनान्तः है। 'इश्च र् च इत्यनयोः समाहारः इर् तस्मात् इरः' यह पञ्चमी-एकवचनान्त निमित्तवचन है। 'पदस्य' का अनुर्वतन होगा। विशेषण होने से तदन्त अर्थ उपस्थित है। सूत्रार्थ हुआ—'इवर्णान्त तथा रेफान्त से पर में मतुप्-घटक मकार को वेद में वकार आदेश हो' जैसे इवर्णान्त से पर में वत्व का हरिवते हर्यश्वाय। रेफ का गीर्वान्।

सूत्रपक्ष में भाष्यकार अतिव्याप्ति दिखाते हैं—**छन्दसीर इति**। आचार्य 'छन्दसीरः' ऐसा सूत्र पढते हैं। 'ते विश्वकर्माणस्ते सप्तर्षिमन्तम्' यहाँ पर इवर्ण से पर में मतुप् है, उस के मकार को वकार आदेश प्राप्त है। जी नहीं, यह कोई दोष नहीं है। 'छन्दसीरः' ऐसा सूत्र पढा गया है, उसका पदच्छेद 'छन्दसि+इरः' ऐसा न करके 'छन्दसि+ईरः' ऐसा करेंगे, अर्थ होगा ई से पर में म को व हो, अतः सप्तर्षिमन्तम् का दोष हट गया। अच्छा ते यदि आप 'छन्दसि+ईरः' ऐसा पदच्छेद करेंगे तो 'त्विषीमान् पतीमान्' यहाँ पर दीर्घ 'ई' से पर में मतुप् है, अतः यहाँ पर मकार के स्थान में वकार प्राप्त होगा। जी नहीं, यह दोष यहाँ पर नहीं रहेगा। हम विहितविशेषण देंगे—'ईकारान्त से विहित मतुप्-घटक मकार के स्थान मे वकार हो'। ऐसा कहने से 'त्विषीमान् पतीमान्' में दोष नहीं रहा। यहाँ इकार से मतुप् विहित है तथा बाद में 'शरादीनां च' ६.३.१२० से दीर्घ है। अच्छा तो विहित विशेषण देने में भी अतिव्याप्ति होगी—'सूर्य ते देवा पृथिवीमन्तम्' यहाँ पंर ईकार से विहित मतुप् है, अतः वत्वावत्ति होगी। एवम् ईकार से विहित मानने में अव्याप्ति भी होगी। जैसे—त्रिवती। यहाँ ओस्व से विहित है, अतः इष्ट वत्व प्राप्त नहीं हो सकेगा।

कहीं अतिव्याप्ति तथा कही अव्याप्तिरूप दोष आने से इन दोषों का निवारण के लिए भाष्यकार कहते हैं—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एवं तर्हि परिगणनं कर्त्तव्यम् * त्रिहर्यधिपत्यग्निरे * त्रि—त्रिवतीर्याज्यानुवाक्या भवन्ति। त्रि। हरि—हरिवो मेदिनं त्वा। हरि। अधिपति—अधिपतिवतीर्जुहोति। अधिपति। अग्नि—चतुराग्निवानिव। अग्नि। रे—आरेवानेतु नो विश इति। यदि तर्हि परिगणनं क्रियते सरस्वतीवान् भारतीवान् अपूपवान् दधिवांश्चरुरित्यत्र न प्राप्नोति। एवं तर्हि * छन्दसीरो बहुलम् * छन्दसीरो बहुलमिति वक्तव्यम्।

अच्छा तो परिगणना करना चाहिये—त्रि, हरि, अधिपति, अग्नि और रे से पर में विहित मतुप् के मकार को छन्द में मकार आदेश हो। जैसे त्रि—'त्रिवतीर्याज्यानुवाक्या भवन्ति'। **हरि**—हरिवो मेदिनं त्वा'। **अधिपति**—'अधिपतिवतीर्जुहोति'। **अग्नि**—'चतुरग्निवानिव'। **रे**—'आरेवानेतु नो विशः'। यदि परिगणन करेंगे तो उस पक्ष में भी सरस्वतीवान् भारतीवान् अपूपवान्, दधिवान् में वत्व नहीं हो सकेगा। यदि ऐसी बात है कि तो इन सम्पूर्ण दोषों को हटाने के लिए सूत्र में बहुलग्रहण करना चाहिये—छन्दसीरोबहुलम्। {**छन्दसीरः**}।

अनो नुट् ८.२.१६

यदि पुनरयं नुट् पूर्वान्तः क्रियेत—'अनो नु'गिति * अनो नुकि विनामरुविधिप्रतिषेधः * अनो नुकि सति विनामो विधेयः। अक्षण्वान् 'पदान्तस्य ने'ति निषेधः प्राप्नोति। रुश्च प्रतिषेध्यः—सुपथिन्तरः। 'नश्छव्य—प्रशा'निति रुः प्राप्नोति।

'अन्नन्त से विहित मतुप् को नुट् हो' यह सूत्रार्थ है। जैसे—'अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः। अस्थन्वन्तं यदनस्था'। यहाँ अन्नन्त अक्षन् व अस्थन् से विहित मतुप को नुट् है। 'अक्षि अस्ति अस्येति अक्षण्वान् तम्, अस्थि अस्त्यस्येति अस्थन्वान्, तम्'। उभयत्र 'अस्थिदधिशक्थ्यक्ष्णामनङ्ङुदात्तः' ६.३.७५ सूत्र से अक्षि को अक्षन् तथा अस्थि को अस्थन् आदेश है।

यहाँ श्रीदीक्षित जी 'छन्दसीरः' ८.२.१५ से छन्दसि का अनुवर्तन कर 'अनो नुट्' को छन्दोविषय मानते हैं, परन्तु यह पक्ष ठीक नहीं है, क्योंकि लोक में भी अन्नन्त से नुट् देखा गया है। जैसे—'अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः'। (श्रीमद्भा. महा., १०.२१.६१)।

अब यहाँ भाष्यकार शङ्का करते हैं कि 'अनो नुट्' से विहित नुट् को पूर्व समुदाय का अन्तावयव माना जाये अथवा पर समुदाय का आद्यवयव माना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जाये? यदि पूर्व समुदाय का अन्तावयव मानेंगे तो अनः यह षष्ठ्यन्त है, टित् आद्यवयवय होता है। उसको अन्तावयव कहने के लिए 'अनो नुट्' के स्थान पर 'अनो नुक्' ऐसा सूत्र पढना पडेगा, जिससे कित् होने से अन्तावयव हो सके। यदि 'अनो नुक्' सूत्र पढ कर नुक् का विधान करेंगे तो **विनाम**=णत्व का अलग से विधान करना पडेगा, क्योंकि पूर्वान्त होने से पदान्तत्व नुक् पर रहेगा तथा 'पदान्तस्य' ८.४.३७ सूत्र से नुक् को णत्व का निषेध प्राप्त होगा—जिसका अलग से आप को विधान करना होगा। **अक्षण्वानिति**। 'अक्षण्वान्' यहाँ पर नुक् के असिद्ध होने से पहले नलोप तथा बाद में नुक् होगा। 'सुपथिन्तरः' स्थल में 'नश्छव्यप्रशान्' ८.३.७ सूत्र से रुत्व प्राप्त है उसका अलग से निषेध कहना होगा।

अस्तु तर्हि परादिः * परादौ वत्वं प्रतिषेधोऽवग्रहश्च * **यदि परादिर्वत्वस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः। अक्षण्वानिति। 'मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्य' इति वत्वं प्राप्नोति। अवग्रहश्चाऽनिष्टे देशे प्राप्नोति—अक्षण्वानिति। अस्ति तर्हि पूर्वान्तः। ननु चोक्तम्—'अनो नुकि विनामरुविधिप्रतिषेध' इति** * भत्वात्सिद्धम् * **भत्वात् सिद्धमेतत्, भसंज्ञा वक्तव्या। यदि तर्हि भसंज्ञा 'अल्लोपोऽन' इत्यल्लोपः प्राप्नोति** * अनस्तु प्रकृतिभावे मतुब्ग्रहणं छन्दसि * **अनस्तु प्रकृतिभावे मतुब्ग्रहणं छन्दसि वक्तव्यम्।**

यदि पूर्वान्त मानने में दोष है तो परादि ही मानिये। परादि मानने में 'अनो नुट्' यही सूत्र रहेगा। टित् होने से नुट् आद्यवयव होगा। आगमिविशिष्ट आगम लिया जायेगा, अतः मतुप् के ग्रहण में नुड्विशिष्ट का ग्रहण होने से नुट् को अक्षण्वान् स्थल में वत्व प्राप्त होगा जिसका निषेध कहना होगा। एवं परादि मानने में अन्य दोष यह भी है कि अनिष्ट देश में अवग्रह 'अक्षन्नमान्' ऐसा प्राप्त होगा। अच्छा तो आप पूर्वान्त ही मानिये। पूर्वान्त मानने में आपने जो दोष विनाम=णत्व विधि का प्रतिषेध दिया था, वह दोष नहीं रहेगा। वह दोष कैसे नहीं रहेगा? इसको स्पष्ट करते हैं—

भत्वादिति। अक्षण्वान् और सुपथिन्तरः में भसंज्ञा से पद संज्ञा का बाध हो जाने से अक्षन् नुक् यहाँ पर पदान्त न नहीं मिलेगा, अतः 'पदान्तस्य' ८.४.३७ से णत्व का निषेध नही होगा। ठीक है, भसंज्ञा होने से णत्व के निषेध की आपत्ति तो आपने हटा दी, परन्तु भसंज्ञापक्ष में 'अक्षन् वान्' इस स्थिति में 'अल्लोपोऽनः' ६.४.१३४ सूत्र से अन् के अकार का लोप प्राप्त होगा। इस अल्लोप का वारण अन् को प्रकृतिभाव करके करेंगे—वेद में अन् को प्रकृति-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भाव करने में मतुप् का ग्रहण करना चाहिये, जिससे अक्षण्वान् आदि स्थलों में अन् के अकार का लोप न हो।

इह तर्हि सुपथिन्तरः—नान्तस्य टिस्तद्धिते लुप्यत इति लोपः प्राप्नोति *घग्रहणं च* घग्रहणं च कर्तव्यम्। तत्तर्हीदं बहु वक्तव्यं नुग्वक्तव्यो, भसंज्ञा च वक्तव्या, अनस्तु प्रकृतिभावे मतुब्ग्रहणं छन्दसि कर्त्तव्यं, घग्रहणं च कर्तव्यमिति। न कर्त्तव्यम्—यत्तावदुच्यते 'नुग्वक्तव्य' इति, नुक एष परिहारो 'भत्वात्सिद्ध'मिति। यदप्युच्यते—'भसंज्ञा वक्तव्ये'ति। क्रियते न्यास एव 'अयस्मयादीनिच्छन्दसी'ति। यदप्युच्यते 'अनस्तु प्रकृतिभावे मतुब्ग्रहणं च्छन्दसि घग्रहणं च कर्तव्य,मिति, न कर्तव्यम्।

अच्छा तो 'सुपथिन्तरः' यहाँ पर पूर्वान्त करने पर नान्त 'इन्' इस समुदाय की टिसंज्ञा होगी, तद्धित प्रत्यय परे रहते इन् इस टि का लोप प्राप्त होगा, उसका निषेध करना पडेगा। जी नहीं। यहाँ भी दोष नहीं है। इसके लिए हम-नुगन्त को प्रकृतिभाव की कर्तव्यता में घ ग्रहण करेंगे। 'तरप्तमपौ घः' १.१.२२ तरप् और तमप् घ-संज्ञक हैं, उसके परे नुगन्त को प्रकृतिभाव हो। ऐसा कहने से 'सुपथिन्तरः' में इन् का लोप प्राप्त नहीं हुआ।

अच्छा तो पूर्वान्त कहने पर आप को बहुत कुछ कहना पड रहा है—नुग् विधान कर सूत्रभेद, भसंज्ञा, छन्दः में अन् को प्रकृतिभाव की कर्तव्यता में मतुप् ग्रहण एवं घ-ग्रहण, इतने कहने पडे जिससे गौरव है। जी नहीं, हमें ये सब कुछ भी ग्रहण नहीं करना पड रहा है। जो आप ने कहा नुक् कहना पड रहा है, नुक् का परिहार यह है कि भसंज्ञा से सिद्ध हो जायेगा। आप ने जो कहा कि भसंज्ञा कहनी पड रही है, वह भी नहीं कहनी पडेगी। इसके लिए आचार्य ने सूत्र पढा है—'अयस्मयादीनि च्छन्दसि' १.४.२०। जो आप ने अन्य गौरव दिया था कि 'अन्' को प्रकृतिभाव की कर्तव्यता में मतुप् ग्रहण तथा घ-ग्रहण करना पड रहा है। यह भी नहीं करना पडेगा।

उभयसंज्ञान्यपि हि च्छन्दांसि दृश्यन्ते। तद्यथा—स सुष्टभा स ऋक्वता गणेन। पदत्वात् कुत्वं, भत्वाज्जश्त्वं न भवति। एवमिहापि पदत्वाद् अल्लोपटिलोपौ न, भत्वाद् विनामरुविधिप्रतिषेधौ भविष्यतः। सिध्यति—सूत्रं तर्हि भिद्यते। यथान्यासमेवाऽस्तु। ननु चोक्तं—'परादौ वत्वप्रतिषेधोऽवग्रहश्चे'ति। यत्तावदुच्यते'वत्वप्रतिषेध' इति। 'निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ती'त्येत्वं न भविष्यति। यस्तर्हि निर्दिश्यते तस्य न

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्राप्नोति। किं कारणम्? नुटा व्यवहितत्वात्। असिद्धो नुट्, तस्याऽसिद्धत्वाद् भविष्यति। अवग्रहेऽपि, न लक्षणेन पदकारा अनुवर्त्याः, पदकारैर्नाम लक्षणमनुवर्त्यम्। यथालक्षणं पदं कर्त्तव्यम्। {अनो नुट्}।

क्योंकि वेद में भसंज्ञा तथा पदसंज्ञा ये दोनों देखे जाते हैं। जैसे—'स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन' यहाँ पर ऋक्वता स्थल में पदसंज्ञा होने से कुत्व तथा भसंज्ञा होने से जश्त्वाभाव होता है। वैसे भी अक्षण्वान् तथा सुपथिन्तर में पदसंज्ञा होने से अल्लोप और टिल्लोप नहीं होंगे तथा भसंज्ञा होने से अक्षण्वान् में णत्व तथा सुपथिन्तर में रुत्व प्रतिषेध हो जायेगा। ठीक है, इस तरह लक्ष्य सिद्ध तो हो गया, परन्तु पूर्वान्त मानने में सूत्रभेद तो हो रहा है। यदि आप सूत्रभेद नहीं चाहते हैं तो 'अनो नुट्' जैसा पढा है वैसे ही सूत्र रहने दीजिए। इस पक्ष में नुट् को परादि मानने में आपने जो दोष दिया था—वत्व प्राप्त होगा, जिसका प्रतिषेध कहना पडेगा तथा अवग्रह में विशेष होगा। ये दोनों दोष नहीं आयेंगे। वत्वप्रतिषेध नहीं कहना पडेगा। वह इस तरह कि निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति' इस परिभाषा से मतुप् का आद्यवयव म को ही व होगा, नुट् को नहीं। अच्छा तो इस परिभाषा पक्ष में भी दोष होगा। वह इस तरह कि 'आदेः परस्य' १.१.५४ सूत्र से प्रकृति से अव्यवहितपरत्वविशिष्ट मतुप् का आद्यवयव को वत्व है। नुट् से व्यवधान हो जाने से अव्यवहितपरत्वविशिष्ट मतुप् न होने से इष्ट को वत्व नहीं हो सकेगा। जी नहीं, यह कोई दोष नहीं है। 'मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः' ८.२.९ सूत्र की दृष्टि में 'अनो नुट्' ८.२.१६ असिद्ध है, अतः नुट् के असिद्ध होने से प्रकृति से अव्यवहितपरत्वविशिष्ट मतुप् मिल जायेगा तथा उसी का आद्यवयव को वत्व होगा।

नुट् को परादि मानने में जो अवग्रह में दोष दिया था यह भी नहीं रहेगा। क्योंकि लक्षण के अनुसार वेद में प्रयोग नही किया जायेगा, अपितु वेदों में जैसे प्रयोग हैं वैसा ही लक्षण बनाना होगा। अवग्रह पौरुषेय है तथा वेद अपौरुषेय, अतः वेद में अक्षि को अक्षन् आदेश की जगह अक्ष ही आदेश करेंगे जिससे अवग्रह में दोष नहीं हुआ। {अनो नुट्}।

नाद्धस्य ८.२.१७

*** ईद्रथिनः * रथिन ईद् वक्तव्यः। रथीतरः * भूरिदाव्नस्तुट् * भूरिदाव्नस्तुड् वक्तव्यः। भूरिदावत्तरो जनः। {नाद्धस्य}।**

'नान्त से पर में घ-संज्ञक तरप् और तमप् को नुट् हो' यह सूत्रार्थ हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जैसे—'सुपथिन्तरः'। यहाँ पर सुपथि शब्द से पर में 'द्विवचनविभज्योपपदे-' ५.३.५७ सूत्र से तरप् प्रत्यय विहित है; उसको नुट् का आगम होकर सुपथिन्तरः रूप है।

ईद्—घसंज्ञक प्रत्यय परे रहते रथिन् शब्द को ईत् आदेश कहना चाहिये। जैसे—'रथीतरः। रथः अस्ति अस्य असौ रथी'। यहाँ 'अत इनिठनौ' ५.२.११५ सूत्र से प्रशंसा में इनि प्रत्यय है। उससे तरप् का विधान कर नलोप तथा इ को ई आदेश हुआ है।

भूरिदावन् शब्द से पर में विहित घसंज्ञक को तुट् का आगम कहना चाहिये। जैसे—'भूरि ददाति इति भूरिदावन्'। यहाँ 'आतो मनिन्क्वनिब्वनिपश्च' ३.२.७४ सूत्र से भूरि उपपद रहते दा धातु से वनिप् प्रत्यय करके भूरिदावन् शब्द है, उससे पर में तरप् विहित है उसको तुट् का आगम कर 'भूरिदावत्तरो जनः' ऐसा रूप हुआ है। {नाद्धस्य}।

कृपो रो लः ८.२.१८

* कृपणादीनां प्रतिषेधः * **कृपणादीनां प्रतिषेधो वक्तव्यः। कृपणः। कृपाणः। कृपा। कृपीटम्** * वालमूललघ्वलमङ्गुलीनां वा लो रत्वमापद्यते * **वालमूललघ्वलमङ्गुलीनां वा लो रत्वमापद्यत इति वक्तव्यम्।** वाल—**अश्ववारः। अश्ववालः।** वाल। **मूल—मूरदेवः। मूलदेवः।** मूल। लघु—**वरुणस्य लघुस्यदः। वरुणस्य रघुस्यदः।** लघु। अलम्—**अलं भक्ताय। अरं भक्ताय।** अलम्। अङ्गुलि—**सुबाहुः स्वङ्गुलिः। सुबाहुः स्वङ्गुरिः** * संज्ञाच्छन्दसोर्वा कपिलकादीनाम् * **संज्ञाच्छन्दसोर्वा कपिलकादीनामिति वक्तव्यम्। कपिरकः कपिलकः। तिल्पिलिकम् तिर्पिरिकम्। कल्मषम्। कर्मषम्। रोमाणि। लोमानि। पांसुलम्। पांसुरम्। कर्म। कल्म। शुक्रः। शुक्लः।**

'कृ उः रः लः' ऐसा पदच्छेद है। 'कृप' यह लुप्तषष्ठीविभक्तिक है। षष्ठ्येकवचनान्त ऋकार का 'उः' रूप है। 'कृप उः' इन दोनों पदों में अवयव-षष्ठी है। 'रः' यह स्थानषष्ठी है। 'कृप + उः' गुण एकादेश, 'कृपोर्+ रः' 'रो रि' ८.३.१४ सूत्र से रेफलोप है। 'लः' प्रथमैकवचनान्त विधेयवचन है। यह चार पदों का सूत्र है। यहाँ पर कृप इस लुप्त षष्ठी विभक्ति की आवृत्ति की जाती है। इस तरह यहाँ पर 'कृप रः लः' प्रथम वाक्य होता है, तथा 'कृप उः रः लः' दूसरा वाक्य होता है। प्रथम वाक्य का अर्थ है—'कृप के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रेफ को लत्व है'। इसका फल है—कृपू सामर्थ्ये धा.पा.७६२ से 'कल्पते' की रूप सिद्धि। द्वितीय वाक्य है—'कृप उः रः लः'। यहाँ पर कृप यह अवयवषष्ठी हैं उसका अन्वय 'उः' के साथ है। 'उः' यह भी अवयव षष्ठी है, इसका भी अन्वय रेफ के साथ है। इस तरह द्वितीय वाक्य का अर्थ हुआ—'कृप का अवयव जो ऋ उसका अवयव जो रेफ उसको लकार हो'। रेफ ऋकार का अवयव नहीं हो सकता है, अतः यहाँ पर रेफ का रेफ सदृश में लक्षणा की गयी है। यहाँ जो लत्व विधेय है वह भी लकारसदृश में लाक्षणिक है। द्वितीय वाक्यार्थ का फल है—कृपू सामर्थ्ये धा.पा.७६२ से लिट् लकार प्रथम पुरुष एक वचन में रेफसदृश को लकारसदृश विधान कर 'चक्लृपे' रूपसिद्धि।

अब यहाँ पर भाष्यकार कह रहे हैं कि 'कृपो रो लः' कि कर्तव्यता में कृपणादि का प्रतिषेध कहना चाहिये। कृपणादि—कृपण, कृपाण, कृपा, कृपीटम् हैं। उसका ऋ अथवा ऋघटक रेफसदृश को उक्त आदेश न होंगे।

वाल, मूल, लघु, अलम्, अङ्गुलि इन शब्दों का अवयव ल के स्थान में रत्वविकल्प से कहना चाहिये। जैसे **वाल**—अश्ववारः अश्ववालः। यहाँ ल को र विकल्प है। इसी तरह **मूल**—'मूरदेवः। मूलदेवः'। **लघु**—'वरुणस्य लघुस्यदः। वरुणस्य रघुस्यदः'। **अलम्**—'अलं भक्ताय। अरं भक्ताय'। **अङ्गुलि**—'सुबाहुः स्वङ्गुलिः। सुबाहुः स्वङ्गुरिः'। यहाँ उपर्युक्त उदाहरणों में सर्वत्र ल को र आदेश विकल्प से है।

कपिलकादिगणपठित शब्दों का अवयव लकार के स्थान में विकल्प से रत्व आदेश संज्ञा गम्य होने पर तथा छन्दोविषय में कहना चाहिये। जैसे 'कपिरकः, कपिलकः। तिल्पिलिकम्, तिर्पिरिकम्। कल्मषम्, कर्मषम्। रोमाणि, लोमानि। पांसुलम्, पांसुरम्। कर्म, कल्म। शुक्लः, शुक्रः'। यहाँ सर्वत्र ल को विकल्प से रत्वविधान है। {कृपो रो लः}।

उपसर्गस्यायतौ ८.२.१९

किमिदमयतिग्रहणं रेफविशेषणम्—'अयतिपरस्य रेफस्य लो भवति स चेदुपसर्गस्य भवती'ति, आहोस्विदुपसर्गविशेषणम्—'अयतिपरस्योपसर्गस्य यो रेफस्तस्य लो भवती'ति। कश्चात्र विशेषः? * रेफस्याऽयताविति चेत्परेरुपसङ्ख्यानम् * रेफस्याऽयताविति चेत्परेरुपसङ्ख्यानं कर्तव्यम्। पल्ययते। वचनाद् भविष्यति। अस्ति वचने प्रयोजनम्। किम्? प्लायते। पलायते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'उपसर्गस्य, अयतौ' यह पदच्छेद है। पूर्व सूत्र से 'रः लः' इन दो पदों का अनुर्वतन होता है। 'उपसर्गस्य' यह अवयवषष्ठी है। 'अयतौ' यह 'इकश्तिपौ धातुनिर्देशे' सूत्र ३.२.८५ पर श्तिप् निर्देश है। सूत्रार्थ हुआ—'उपसर्ग का अवयव रेफ को अय् धातु परे रहते लत्व हो।' जैसे—'प्र+अयते प्लयते, परा+अयते=पलायते'। निस् दुस् के रुत्व के असिद्ध होने से 'निरयते, दुरयते' में लत्व नहीं हुआ। परन्तु यदि निर् दुर् उपसर्ग का अय् के साथ योग होगा तो लत्व होगा ही—'निलयते, दुलयते'।

अब यहाँ भाष्यकार पूर्वपक्ष करते हैं—सूत्र में अयतिग्रहण किया है, क्या वह रेफ का विशेषण है, अथवा सूत्र में श्रुत उपसर्ग का? यदि रेफ का विशेषण होगा तो 'अयति परे रहते रेफ को लत्व हो, यदि वह रेफ उपसर्ग का अवयव हो तो' ऐसा अर्थ होगा। यदि उपसर्ग का विशेषण होगा—'अयति परे रहते उपसर्ग का जो रेफ उसको लत्व हो' ऐसा अर्थ होगा। अयति को उपसर्ग का विशेषण माना जाये अथवा रेफ का विशेषण माना जाये तो इसमें क्या विशेष है?

यदि अयति को रेफ का विशेषण मानेंगे तो परि को अलग से लत्व कहना पडेगा—'परि+अयते=पल्ययते'। यहाँ पर यण् हो जाने पर यकार का व्यवधान होने से अयति से अव्यवहितपरत्वविशिष्ट उपसर्ग नहीं मिलेगा जिससे उसके अवयव को लत्व प्राप्त नहीं है, उसको अलग से कहना होगा। जी नहीं। रेफविशेषण मानने में परि को अलग से लत्व नहीं कहना होगा। अयति परे रहते उपसर्ग का अवयव रेफ निर् और दुर् को छोड कर शेष सर्वत्र व्यवधान सहित ही होगा। आपने केवल परि में दोष दिया है; अतः अन्यत्र सर्वत्र लत्व विहित है। इसलिए 'येन नाव्यवधानं तेन व्यवहितेऽपि' इस वचन के सामर्थ्य से परि में उपसर्ग का अवयव रेफ के स्थान में लत्व हो जायेगा। जी नहीं। इस वचन का प्रयोजन अन्य है—'प्लायते पलायते' में लत्वसिद्धि।

अस्तु तर्हि उपसर्गविशेषणम् * उपसर्गस्येति चेदेकादेशेऽप्रसिद्धिः * **उपसर्गस्येति चेदेकादेशेऽप्रसिद्धिर्भवति। प्लायते पलायते। एकादेशे कृते व्यपवर्गाभावादयताविति लत्वं न प्राप्नोति। अन्तादिवद्भावेन व्यपवर्गः। उभयत आश्रयणे नान्तादिवत्। एवं तर्ह्येकादेशः पूर्वविधौ स्थानिवद् भवतीति स्थानिवद्भावाद् व्यपवर्गः। प्रतिषिध्यतेऽत्र स्थानिवद्भावः 'पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिव'दिति। दोषा एवैते तस्याः परिभाषायाः—'तस्य दोषः संयोगादिलोपलत्वणत्वे'ष्विति।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अच्छा तो यदि रेफविशेषण होने में दोष है तो अयतिग्रहण को उपसर्गविशेषण मान लीजिए। यदि उपसर्ग विशेषण मानेंगे तो एकादेश स्थल में यह सूत्र कहीं भी नहीं लग सकेगा। यदि आप यह कहें कि निर् दुर् में सूत्र चरितार्थ है, अतः इस सूत्र का विषय एकादेशस्थलीय उपसर्ग रेफ नहीं है तो यह उचित नहीं है, क्योंकि यदि निर्, दुर् ये दो ही इसके विषय होते तो आचार्य 'निर्दुरोरयतौ' ऐसा ही सूत्र पढते। परन्तु 'उपसर्गस्यायतौ' ऐसा सूत्र पढा है, अतः यह सूत्र प्रति को छोड कर रेफघटक अन्य उपसर्ग विषय भी है। एकादेश स्थल 'प्लायते, पलायते' में परादित्व होने से 'सर्वे सर्वपदादेशाः' पक्ष में अयतिग्रहण से ही 'प्रायते, परायते' का ग्रहण होगा, फिर यहाँ उपसर्ग न होने से उसका अवयव रेफ को लत्व प्राप्त नहीं होगा। यदि आप पूर्वान्तवद्भाव करेंगे तो 'प्रायते, परायते' में मात्र उपसर्गत्व ही जायेगा, अयतिपरकत्व नहीं होने से रेफ को लत्व सिद्ध नहीं हो सकेगा। यहाँ पर पूर्वान्तवद्भाव भी प्राप्त है तथा परादिवद्भाव भी प्राप्त है, अतः उभयतः आश्रयण करने से अन्तादिवद्भाव का निषेध हो जायेगा। अच्छा तो उक्त स्थल में मैं, 'अचः परस्मिन् पूर्वविधौ' १.१.५७ सूत्र से स्थानिवद्भाव कह आया हूँ। वहाँ पर 'पूर्वविधौ' इस पद में 'पूर्वस्य विधिः पूर्वविधिः पूर्वस्माद् विधिः पूर्वविधिः' यह द्विविधि समास है। यहाँ प्रथम समास का आश्रयण करूँगा। परनिमित्तक अजादेश=सवर्ण दीर्घ एकादेश से पूर्व रेफ को लत्व विधि की कर्तव्यता में आदेश स्थानिवद् होगा, 'स्थानी न निवृत्तः आदेशो न जातः' ऐसी बुद्धि होगी। अयति से पूर्व में उपसर्गत्व मिल जाने से उसका अवयव रेफ को लत्व हो जायेगा।

जी नही। आपका यह पक्ष उचित नही है। यहाँ 'अच् परस्मिन् पूर्वविधौः' १.१.५७ सूत्र से प्राप्त स्थानिवद्भाव का निषेध हो जायेगा 'पूर्वत्राऽसिद्धे न स्थानिवद्' पूर्वत्राऽसिद्धम् के विषय में स्थानिवद्भाव नहीं होता है।

आपका यहाँ पर स्थानिवद्भाव का निषेध कहना उचित नहीं है। 'पूर्वत्राऽसिद्धे न स्थानिवद्' इस निषेधविधि का दोष 'तस्य दोषः संयोगादिलोपलत्वणत्वेषु' में है। अर्थात् संयोगादिलोप, लत्व और णत्व को छोड कर 'पूर्वत्राऽसिद्धे न स्थानिवद्'निषेध करेगा, अतः उपसर्गविशेषण मानने में 'प्लायते पलायते' में लत्वसिद्धि हो गयी।

अथवा पुनरस्तु रेफविशेषणम्। ननु चोक्तं—'रेफस्यायताविति चेत्परेरुपसङ्ख्यान'मिति। वचनाद् भविष्यति। ननु चोक्तम्—'अस्ति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वचने प्रयोजनं, किं, प्लायते पलायत' इति। अत्राप्यकारेण व्यवहितत्वान्न प्राप्नोति। एकादेशे कृते नास्ति व्यवधानम्। एकादेशः पूर्वविधौ स्थानिवद् भवतीति स्थानिवद्भावाद् व्यवधानमेव। प्रतिषिध्यतेऽत्र स्थानिवद्भावः 'पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिव'दिति। दोषा एवैते तस्याः परिभाषायास्तस्य दोषः संयोगादिलोपलत्वणत्वेष्वति।

अथवा रेफविशेषण ही मानिये। उस पक्ष में जो दोष दिया था वह नहीं आयेगा। 'परि+अयते पल्ययते' में भी वचनसामर्थ्य से लत्व हो जायेगा। आपने वचन का अन्य प्रयोजन जो 'प्लायते पलायते' ऐसा दिया था, वह भी तो नहीं हो सकेगा, क्योंकि अयति से अव्यवहित पूर्वत्व विशिष्ट रेफ वहाँ भी नहीं है। वहाँ पर भी मध्य में अकार व्यवधायक है। यदि आप यह कहें कि 'प्लायते, पलायते' में एकादेश के द्वारा अकार का अपहार हो जाने से व्यवधान नहीं है तो यह भी उचित है क्योंकि पूर्वविधि की कर्तव्यता में स्थानिवद् भाव हो जाने से व्यवधान रहेगा ही। यदि आप 'पूर्वत्राऽसिद्धे न स्थानिवद्' से उक्त स्थल में स्थानिवद्भाव का निषेध करना चाहें तो भी यह उचित नहीं है, संयोगादिलोप, लत्व और णत्व के विषय को छोड कर 'पूर्वत्राऽसिद्धे न स्थानिवद्' लगता है। यहाँ पर लत्व की कर्तव्यता है, अतः स्थानिवद्भाव हो जायेगा; अतः अयति को चाहे रेफविशेषण मानें, अथवा उपसर्गविशेषण मानें दोनों में कोई दोष नहीं है। {उपसर्गस्यायतौ}।

अचि विभाषा ८.२.२१

*** णावुपसङ्ख्यानम् * णावुपसङ्ख्यानं कर्तव्यम्। इहापि यथा स्यात्— निगार्यते निगाल्यते। किं पुनः कारणं न सिध्यति? अचीत्युच्यते न चात्राऽजादिं पश्यामः। प्रत्ययलक्षणेन। 'वर्णाश्रये नास्ति प्रत्ययलक्षणम्'। एवं तर्हि स्थानिवद्भावाद् भविष्यति। प्रतिषिध्यतेऽत्र स्थानिवद्भावः 'पूर्वत्राऽसिद्धे न स्थानिव'दिति। अत उत्तरं पठति * गिरतेर्लत्वे णावुक्तम् * गिरतेर्लत्वे णावुक्तम्। किमुक्तम्? 'तस्य दोषः संयोगादिलोपलत्वणत्वेष्वि'ति। {अचि विभाषा}।**

यहाँ पूर्वसूत्र 'कृपो रो लः' ८.२.१८ से 'रः लः' का तथा 'ग्रो यङि'' ८.२.२० सूत्र से 'ग्रः' यह अवयवषष्ठी का अनुवर्तन है। गॄ निगरणे धा.पा. १४११ के रेफ को अजादि परे रहते विकल्प से लत्व हो' यह सूत्रार्थ है। जैसे—'गिरति, गिलति, जगार, जगाल। जगरिथ, जगलिथ। गरिता, गलिता' इत्यादि।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अब यहाँ भाष्यकार कहते हैं—णिच् परे रहते गृ के रेफ को भी लत्व कहना चाहिये। जैसे—'निगार्यते, निगाल्यते'। क्या कारण है कि 'निगार्यते, निगाल्यते' में लत्व सिद्ध नहीं होता? वह इसलिए कि अच् परे रहते लत्व कहा जा रहा है। उक्त स्थल में 'णेरनिटि' ६.४.५१ सूत्र से णिलोप हो जाने पर अच्परता न होने से लत्व नहीं हो पा रहा है, अतः णिपरे रहते लत्व कहना चाहिए। जी नहीं, 'णावुपसंख्यानम्' यह वार्तिक कहने की आवश्यकता नहीं है। 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' १.१.६२ सूत्र से उक्त स्थल में लत्व सिद्ध हो जायेगा। यह आपका कहना उचित नहीं है। 'अचि विभाषा' यह वर्णाश्रय विधि है। वर्णाश्रय विधि की कर्तव्यता में 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' १.१.६२ नहीं होता है। अच्छा तो 'निगाल्यते' में लत्वसिद्धि के लिए 'अचः परस्मिन् पूर्वविधौ' १.१.५७ सूत्र से णिलोप का स्थानिवद्भाव कर देंगे, अजादि पर होने से लत्व हो जायेगा तो यह भी आप का कहना ठीक नहीं है। क्योंकि 'पूर्वत्राऽ- सिद्धे न स्थानिवत्' यह निषेध कर देगा। अतः निगाल्यते में लत्वविधान के लिए उत्तर पढते हैं—णिच् परे रहते गृ सम्बन्धी रेफ को लत्व के विषय में पहले बताया जा चुका है कि 'तस्य दोषः संयोगादिलोपलत्वणत्वेषु'। अर्थात् संयोगादिलोप, लत्व और णत्व के विषय को छोड कर 'पूर्वत्राऽसिद्धे न स्थानिवत्' निषेध करेगा। {अचि विभाषा}।

परेश्च घाऽङ्कयोः ८.२.२२

योगे च **योगे चेति वक्तव्यम्। इहापि यथा स्यात्—परियोगः पलियोगः** *सङि लत्वसलोपसंयोगादिलोपकुत्वदीर्घत्वानि* **'सङी'ति प्रकृत्य लत्वसलोपसंयोगादिलोपकुत्वदीर्घत्वानि वक्तव्यानि। किं प्रयोजनम्?** *प्रयोजनं—गिरौ गिरः पयो धावति द्विष्टरां दृषत्स्थानं काष्ठशक्स्थाता क्रुञ्चा धुर्य इति* **प्रयोजनं गिरौ गिरः पयो धावति द्विष्टरां दृषत्स्थानं काष्ठशक्स्थाता क्रुञ्चा धुर्य इति। गिरौ गिर इत्यत्र 'अचि विभाषे'ति लत्वं प्राप्नोति—'सङी'ति वचनान्न भवति। नैतदस्ति प्रयोजनम्। उक्तमेतत्- 'धातोः स्वरूपग्रहणे तत्प्रत्यये कार्यविज्ञानात् सिद्ध'मिति।**

'घशब्द और अङ्कशब्द' परे रहते परि के रेफ को विकल्प से लत्व हो'—यह सूत्रार्थ है। यहाँ पर घसंज्ञा का ग्रहण नहीं है, अपितु घशब्द लिया गया है। इसमें आचार्यो का व्याख्यान प्रमाण है। जैसे—परिघः पलिघः। पर्यङ्कः, पल्यङ्कः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

योग शब्द परे रहते भी परि के रेफ को लत्वविकल्प कहना चाहिये। इससे परियोगः पलियोगः यह भी रूप सिद्ध हो जाता है।

सङ्प्रत्यय परे रहते ही लत्व, सलोप, संयोगादिलोप, कुत्व और दीर्घत्व कहना चाहिये। यहाँ पर 'गुप्तिज्किद्भ्यः सन्' ३.१.५ इस सूत्रघटक सन् से आरम्भ कर 'तिप्तस्झि ...... इङ्वहिमहिङ्' ३.४.७८ सूत्रघटक महिङ् तक विहित सम्पूर्ण प्रत्ययों का बोध कराने वाला सङ् प्रत्याहार का ग्रहण करते हैं। इस वाक्य का प्रयोजन 'गिरौ गिरः पयो धावति द्विष्टरां दृषत्स्थानं काष्ठशक्स्थाता क्रुञ्चा धूर्यः' है। जैसे—'गिरौ गिरः' यहाँ पर 'अचि विभाषा' ८.२.२१ से लत्व प्राप्त है, सङ्निमित्त कहेंगे तो 'गिरौ गिरः' में लत्व की आपत्ति हट गयी। जी नहीं। यहाँ यह दोष नहीं रहेगा। इसके विषय में मैंने पहले कहा है—धातु के स्वरूपग्रहण में धातु से विहित प्रत्यय ही लिये जायेंगे। 'गिरौ गिरः' यहाँ पर प्रत्यय धातु से विहित न होकर प्रातिपदिक से विहित हैं, अतः लत्व की आपत्ति नहीं रहेगी।

पयो धावतीत्यत्र 'धि चे'ति सलोपः प्राप्नोति—'सङी'ति वचनान्न भवति। एतदपि नास्ति प्रयोजनं वक्ष्यत्येतत्—'धिसकारे सिचो लोप'इति।

अच्छा तो 'पयो धावति' यहाँ पर 'धि च' ८.२.२५ सूत्र से सलोप प्राप्त होगा, उसको निषेध करने के लिए प्रत्यय परे ही सलोप कहना चाहिये। जी नहीं। इसके लिए भी सङ्ग्रहण की आवश्यकता नहीं है। इसके विषय में बताया जायेगा—धादि व सकारादि प्रत्यय परे रहते सिच् का लोप होता है। 'पयो धावति' में न तो धादिप्रत्यय है, नहीं सिज्घटक सकार; अतः लोप की आपत्ति निरस्त हो गयी।

द्विष्टरामित्यत्र 'ह्रस्वादङ्गा'दिति सलोपः प्राप्नोति 'सङी'ति वचनान्न भवति। एतदपि नास्ति प्रयोजनम्—अत्रापि सिच इत्येवाऽनुवर्तिष्यते।

अच्छा तो 'द्विष्टराम्' यहाँ पर दोष होगा। 'ह्रस्वादङ्गात्' ८.२.२७ सूत्र से यहाँ सलोप प्राप्त है; उसका निषेध करने के लिए सङ्ग्रहण करना चाहिये। जी नहीं। यह भी सङ्ग्रहण का प्रयोजन नहीं है। 'ह्रस्वादङ्गात्' ८.२.२७ सूत्र में 'सिचः' का अनुवर्तन होता है, अतः यह सूत्र भी ह्रस्वान्त अङ्ग से पर में सिच् लोप का ही विधान करेगा।

दृषत्स्थानमित्यत्र 'झलो झली'ति सलोपः प्राप्नोति 'सङी'ति वचनान्न भवति। एतदपि नास्ति प्रयोजनम्—अत्रापि 'सिच' इत्येवानुवर्तिष्यते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अच्छा तो 'दृषत्स्थानम्' यहाँ पर 'झलो झलि' ८.२.२६ सूत्र से सलोप प्राप्त है। सङि इस वचन से व्यावृत्त हो जाता है। जी नहीं। यह भी प्रयोजन नहीं हैं यहाँ भी 'सिचः' का अनुवर्तन होगा।

काष्ठषक्स्थातेत्यत्र 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते चे'ति ककारलोपः प्राप्नोति 'सङी'ति वचनान्न भवति। एतदपि नास्ति प्रयोजनं—काष्ठशगेव नास्ति कुतो यः काष्ठशकि तिष्ठेत?

अच्छा तो सङ्ग्रहण का प्रयोजन काष्ठशक्स्थाता है। यहाँ काष्ठशक् एक पद है, तथा स्थाता दूसरा। काष्ठशक्स्थाता स्थल में क् और स् संयोग है। पदान्त संयोग का आदि क् को 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' ८.२.२९ सूत्र से लोप प्राप्त होगा, उसका वारण के लिए सङ्ग्रहण करना चाहिये। जी नहीं। यह भी प्रयोजन नहीं है। काष्ठशक् यह शब्द नहीं है। फिर 'काष्ठशकि स्थाता इति काष्ठशक्स्थाता' यह समास कैसे होगा? अतः इस तरह का शब्द ही नहीं है जहाँ आप प्राप्ति दे सकेंगे, जिसका वारण के लिए मुझे सङ्ग्रहण करना पडेगा। इस तरह का प्रयोग न होने में प्रमाण यह है कि पूर्व सूत्र 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' ३.२.७५ से दृशि का अनुवर्तन 'क्विप् च' ३.२.७६ सूत्र में करके 'क्विप् चान्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' ऐसा अर्थ करेंगे। शच् धातु धा.पा.१६५ से क्विप् करके काष्ठशक्स्थाता रूप बनाया है। यहाँ यह ध्येय है कि वैयाकरण का शरण प्रयोग ही होता है। भाष्यकार कह रहे हैं कि 'काष्ठशगेव नास्ति कुतो यः काष्ठशकि तिष्ठते'? इससे चकारान्त धातुओं से क्विप् का अभावबोध करेंगे। शक्स्थाता स्थल में कुत्व के असिद्ध होने से संयोगादि ककार का लोप नहीं है।

क्रुञ्चेत्यत्र चोः कुर्झलीति कुत्वं प्राप्नोति 'सङी'ति वचनान्न भवति। एतदपि नास्ति प्रयोजनं, निपातनादेतत्सिद्धम्। किं निपातनम्? 'ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चा'मिति।

'क्रुञ्चा' यहाँ पर झल् पर होने से 'चोः कुः' ८.२.३० सूत्र से चकार को कुत्व प्राप्त होगा, उसको निषेध करने के लिए सङ्ग्रहण करना चाहिये। सङ्ग्रहण करने से क्रुञ्चा में कुत्व नहीं होता है। जी नहीं। सङ्ग्रहण का यह भी प्रयोजन नही है। यहाँ पर निपातन से कुत्व का अभाव कर लेंगे। 'ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिगञ्चुयुजिक्रुञ्चां च' सूत्र पर आचार्य ने क्रुञ्चा पद का ग्रहण किया हैं, उससे कुत्वाभाव का निपातन कर लेंगे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धुर्य इत्यत्र 'हलि चे'ति दीर्घत्वं प्राप्नोति 'सङी'ति वचनान्न भवति। एतदपि नास्ति प्रयोजनं 'न भकुर्छुरा'मिति प्रतिषेधो भविष्यति।

अच्छा तो धुर्यः स्थल में रेफान्त धातु की उपधा को 'हलि च' ८.२.७७ सूत्र से दीर्घ प्राप्त है, उसका निषेध करने के लिए सङ्ग्रहण करना चाहिए। जी नहीं, सङ्ग्रहण का यह भी प्रयोजन नहीं है। यहाँ पर दीर्घ का निषेध 'न भकुर्छुराम्' ८.२.७९ सूत्र से हो जायेगा। इस तरह भाष्यकार ने 'सङि लत्वसलोपसंयोगादिलोपकुत्वदीर्घत्वानि' इस वार्तिक का खण्डन कर दिया है। {**परेश्च घाङ्कयोः**}।

संयोगान्तस्य लोपः ८.२.२३

* सयोगान्तस्य लोपे यणः प्रतिषेधः * **संयोगान्तस्य लोपे यणः प्रतिषेधो वक्तव्यः। दध्यत्र मध्वत्रेति** * संयोगादिलोपे च काक्यर्थं वास्यर्थम् * **संयोगादिलोपे च यणः प्रतिषेधो वक्तव्यः। किमर्थम्? 'काक्यर्थं वास्यर्थम्'** * न वा झलो लोपात् * **न वा वक्तव्यम्। किं कारणम्? 'झलो लोपात्'। झलो लोपः संयोगान्तलोपो वक्तव्यः** * बहिरङ्गलक्षणत्वाद्वा * **अथवा बहिरङ्गो यण्णादेशोऽन्तरङ्गो लोपः। 'असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे'।**

'संयोगः अन्तः=अन्तावयवः अस्य तत् संयोगान्तम्, तस्य संयोगान्तस्य, संयोग है अन्तावयवय जिसका उस समुदाय का लोप हो।' यह सूत्रार्थ है। जैसे—भगवान्। भगवन्त् इस समुदाय का अन्तावयव संयोग न्त् है, अतः भगवन्त् इस समुदाय का लोप प्राप्त रहा। 'अलोऽन्त्यस्य' १.१.५२ सूत्र से षष्ठीनिर्दिष्ट संयोगान्तस्य का अन्त्य अल् त् का लोप हुआ।

संयोगान्तलोप की कर्तव्यता में यण्-आदेश का प्रतिषेध कहना चाहिये। जैसे—दध्यत्र, मध्वत्र। यहाँ यण्णादेश होने से संयोगान्त यण् का लोप प्राप्त है। उस यणादेश का निषेध कहना चाहिये। संयोगादिलोप की कर्तव्यता में भी यण् आदेश का प्रतिषेध कहना चाहिये। जिससे 'काक्यर्थम्, वास्यर्थम्' में 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' ८.२.२९ से संयोगादि ककार और सकार का लोप नहीं होता है। जी नहीं। 'संयोगान्तस्य लोपे यणः प्रतिषेधः' तथा 'संयोगादिलोपे' यह दोनों वार्तिक पढने की आवश्यकता नहीं है। 'झलो झलि' ८.२.२६ सूत्र से झलि इस सप्तम्यन्त निमित्तवचन का अपकर्षण करेंगे जिससे ये दोनों सूत्र झल् परे रहते ही संयोगान्तलोप तथा संयोगादिलोप का विधान करेंगे। मध्वत्र दध्यत्र में संयोगान्तलोप तथा संयोगादिलोप का वारण करने का अन्य भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपाय है—'तस्य दोषः संयोगादिलोपलत्वणत्वेषु'। अथवा उक्त स्थल में संयोगान्त-लोप तथा संयोगादिलोप का वारण करने के लिए भाष्यकार अन्य उपाय भी देते हैं—**बहिरङ्गलक्षणत्वादिति**। अथवा यण्णादेश बहिरङ्ग है तथा लोप अन्तरङ्ग है। अन्तरङ्ग लोप की कर्तव्यता में बहिरङ्ग यण्णादेश असिद्ध हो जायेगा। इस सम्बन्ध में परिभाषा भी पढी गयी है—'असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे'।

* संयोगान्तलोपे सग्रहणम् * **संयोगान्तलोपे सग्रहणं कर्त्तव्यम्। 'संयोगान्तलोपः सस्य चे'ति वक्तव्यम्। इहापि यथा स्यात्—श्रेयान् भूयान् ज्यायान्। किं पुनः कारणं न सिध्यति? परत्वाद्रुः प्राप्नोति। असिद्धो रुस्तस्याऽसिद्धत्वाल्लोपो भविष्यति। न सिध्यति। किं कारणम्?**

संयोगान्तलोप में स् का ग्रहण करना चहिये—संयोगान्त स् का लोप हो। इससे 'श्रेयन् स्, भूयन् स्, ज्यायन् स्' में संयोगान्त स् का लोप होकर 'श्रेयान्, भूयान् ज्यायान्' रूपसिद्धि होती है। क्या कारण है कि यहाँ पर स् का लोप सिद्ध नहीं होता है? वह इसलिए कि 'श्रेयन् स्' इस स्थिति में स् का लोप भी प्राप्त है तथा स् को 'ससजुषो रुः' ८.२.६६ से रुत्व भी प्राप्त है। रुत्व पर है तथा सलोप पूर्व। पर होने से रुत्व सलोप को बाध लेगा। जी नहीं। त्रिपादी में पूर्व के प्रति पर असिद्ध होता है, अतः सलोप के प्रति रुत्व असिद्ध हो जायेगा। जी नहीं। सलोप की कर्तव्यता में रुत्व असिद्ध नहीं है। इस का क्या कारण है? इसका कारण यह है कि—

* रुविधानस्याऽनवकाशत्वात् * **अनवकाशो रुर्लोपं बाधेत। सावकाशो रुः। कोऽवकाशः? पयः शिरः। ननु चात्रापि जश्त्वं प्राप्नोति, स यथैव रुर्जश्त्वं बाधते एवं लोपमपि बाधेत। न बाधते। किं कारणम्? येन नाऽप्राप्ते तस्य बाधनं भवति न चाऽप्राप्ते जश्त्वे रुरारभ्यते, लोपे पुनः प्राप्ते चाप्राप्ते च।**

रुविधि अनवकाश है तथा लोपविधि 'भाग्यवान्, विद्यावान्' स्थल में चरितार्थ है, अतः अनवकाश होने से रुविधि लोपविधि को बाध लेगा। जी नहीं। रुविधि भी सावकाश है। कहाँ सावकाश है? 'पयः शिरः' में रुविधि चरितार्थ है। अच्छा तो पयस् शिरस् यहाँ रुत्व और जश्त्व दोनों प्राप्त हैं। यहाँ जश्त्व को बाध कर जैसे रुत्व होता है वैसे रुत्व लोप को भी बाँध लेगा। जी नहीं। यहाँ रुत्व लोप को नहीं बाध सकेगा। इसका कारण यह है कि 'येन नाप्राप्ते यो विधिरारभ्यते स तस्य बाधको भवति'। जश्त्व के अवश्यम्प्राप्त होने पर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रुत्व का आरम्भ है, अतः जश्त्व रुत्व को बाध लेगा, परन्तु लोप के प्राप्त तथा अप्राप्त होने पर रुत्व का विधान है, अतः रुत्व लोप का बाधन नहीं कर सकेगा, अतः 'संयोगान्तलोपे संग्रहणम्' यह वार्तिक अवश्य पढना चाहिये।

*** अथवा योगविभागात् सिद्धम् * अथवा योगविभागः करिष्यते। एवं वक्ष्यामि—'संयोगान्तस्य लोपोऽरात्'। संयोगान्तस्य लोपो भवत्यरात्। ततः 'सस्य'। सस्य च लोपो भवति संयोगान्तस्य। किमर्थम्पुनरिदमुच्यते? 'प्रतिषिद्धार्थं रुबाधनार्थं च'।**

अथवा सूत्रविभाग करेंगे। 'संयोगान्तस्यलोपोरात्सस्य' ऐसा संहितापाठ है। उसका विभाग करेंगे 'संयोगान्तस्यलोपोऽरात्' एवं 'सस्य' ऐसा। 'संयोगान्त का लोप हो, रेफ से पर में हो तो न हो'। जैसे—'अर्क्, अमार्ट्'। द्वितीय सूत्र है—'सस्य'। पूर्व सूत्र से 'संयोगान्तस्य लोपः' का अनुवर्तन करेंगे। अर्थ होगा—'संयोगान्त स् का लोप हो' इस तरह 'श्रेयान्, भूयान्, ज्यायान्' स्थल में सलोप हो जायेगा। यह योगविभाग क्यों किया गया? वह इसलिए कि-अरात् इस प्रतिषेध को बाधने के लिए जैसे—'मातुः पितुः' में रेफ से पर में भी संयोगान्तलोप सिद्ध रहा तथा संयोगान्त स् लोप से रु को बाध भी हो गया वैसे—'मातुरस्, पितुरस्', यहाँ रु का बाध होकर स का संयोगान्त लोप है।

अब यहाँ शङ्का होती है कि भाष्यकार 'संयोगान्तस्य लोपोऽरात्' एवं 'सस्य' ऐसा योगविभाग करते हैं। 'अनन्तरस्य विधिर्भवति प्रतिषेधो वा' इस नियम से 'अरात्' इस प्रतिषेध का बाधन के लिए ही 'सस्य' यह योगविभाग होना चाहिये, रुत्वप्रतिषेध के लिए नहीं, अतः इस आशङ्का से भाष्यकार अन्य पक्ष का अवतरण करते हैं—

अथवा यदेतद्—'रात् सस्ये'ति सग्रहणं तत् पुरस्तादपक्रक्ष्यते—'संयोगान्तस्य लोपः'। ततः 'सस्य'। सस्य च संयोगान्तस्य लोपो भवति। ततः—'रात्'। रात् सस्यैव संयोगान्तस्य लोपो भवतीति। अथवा 'रात् सस्ये'त्यत्र 'संयोगान्तस्य लोप' इत्येतदनुवर्त्तिष्यते। {संयोगान्तस्य लोपः}।

अथवा 'सस्य' सूत्र में सग्रहण है। 'संयोगान्तस्य लोपः' सूत्र मे 'रात्सस्य' ८.२.२४ सूत्र से सस्य का अपकर्षण करेंगे। अर्थ होगा—संयोगान्त स् का लोप हो। इसके बाद दूसरा सूत्र होगा—'रात्सस्य'। पूर्व सूत्र से संयोगादिलोप का आरम्भ होने पर 'रात्सस्य' सूत्र का आरम्भ किया है, अतः वह नियाम होगा, 'रात् परस्य संयोगान्तस्य लोपश्चेत् सस्यैव' यह प्रथम वाक्य है। 'संयो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न्तस्य लोपः' यह द्वितीय वाक्य है। 'रात्सस्य' ८.२.२४ सूत्र में 'संयोगान्तस्य लोपः' का अनुवर्तन होगा। अर्थ होगा—रेफ से पर में स का लोप हो तो संयोगान्त का ही हो, अन्य का नहीं। {संयोगान्तस्य लोपः}।

धि च ८.२.२५

* धिसकारे सिचो लोपः * **धिसकारे सिचो लोपो वक्तव्यः। किं प्रयोजनम्?** * चकाद्धीति प्रयोजनम् * **इह मा भूत् सलोपः 'चकाद्धि पलितं शिर' इति। यदि तर्हि सिचो लोप इत्युच्यते** * आशाध्वं तु कथन्ते स्यात् * **आशाध्वं तु कथम्? आशाध्वमित्यत्र लोपो न प्राप्नोति** * जश्त्वं सस्य भविष्यति * **जश्त्वमत्र सकारस्य भविष्यति** * सर्वत्रैव प्रसिद्धं स्यात् * **सर्वत्रैव जश्त्वेन सिद्धं स्यात्। इहापि आयन्ध्वमारन्ध्वमिति, जश्त्वेनैव सिद्धम्।**

इस सूत्र में पूर्वसूत्र में 'सस्य' तथा 'लोपः' दो पदों का अनुवर्तन चकार के बल से होता है। सप्तम्यन्त अल्ग्रहण से तदादि अर्थ उपस्थित हुआ। अङ्गाधिकारी होने से अङ्ग से प्रत्यय का आक्षेप है। अतः सूत्रार्थ है—धादि-प्रत्यय परे रहते स का लोप हो। जैसे—एधिताध्वे।

धादि-प्रत्यय परे रहते सलोप की विषयता में सिच् का लोप कहना चाहिये। इसका फल है—'चकाद्धि पलितं शिरः' इस वाक्यघटक 'चकाद्धि' में सलोप का अभाव, चकासृ दीप्तौ धा.पा.१०७४ लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन सिप् को 'सेर्ह्यपिच्च' ३.४.८७ सूत्र से हि तथा 'हुझल्भ्यो हेर्धिः' ६.४.१०१ सूत्र से हि को धि आदेश है। धादि प्रत्यय परे रहते सलोप की विषयता में सिच् का लोप हो ऐसा कहने से यहाँ सलोप नहीं हुआ; अतः स् को जश्त्व आदेश कर 'चकाद्धि' रूप है। 'हे शिरः! पलितं चकाद्धि=शोभस्व' यह अर्थ है। इससे आयुः की कामना की गई है।

यदि धि परे रहते सिच् का ही लोप कहेंगे तो आङ्-उपसर्ग-विशिष्ट शासु अनुशिष्टौ धा.पा.१०२२, धातु से मध्यमपुरुष बहुवचनान्त ध्वम् प्रत्यय परे रहते सलोप हो कर आशाध्वम् रूप बना है। यदि सिच् का ही लोप कहेंगे तो 'आशाध्वम्' की सिद्धि कैसे होगी? यदि 'आशाध्वम्' में सलोप नहीं होगा तो 'आशास्+ध्वम्' ऐसी दशा में 'झलां जश् झशि' ८.४.५३ सूत्र से स् के स्थान में जश्त्व द प्राप्त होगा। रूप होगा—'आशाद्ध्वम्'। इस तरह जश्त्व के द्वारा स का अपहार हो जाने से दोष नहीं है। 'आयन्ध्वम्, आरन्ध्वम्'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस स्थल में भी जश्त्व से ही कार्य हो जायेगा। 'आयन्ध्वम्' में आङ् उपसर्ग यसु प्रयत्ने धा.पा.१२११ से लोट् लकार में ध्वम् प्रत्यय है। छान्दसत्वात् उपसर्ग से पर में होते हुए भी 'यसोऽनुपसर्गात्' ३.१.७१ सूत्र का बाध हो जाने से यस् को श्यन् आदेश नहीं हुआ, एवं छान्दसत्वात् धातु को नुम् है। यही प्रक्रिया 'आरन्ध्वम्' में भी रस शब्दे धा.पा.७१३ से समझनी चाहिए। यहाँ पर 'झलां जश् झशि' ८.४.५३ सूत्र से स को जश्त्व द करके 'आयन्द्ध्वम्' तथा 'आरन्द्ध्वम्' रूप हुआ है। इस तरह जश्त्व के द्वारा स् का अपहार हो जाने से 'आयन्ध्वम्' तथा 'आरन्ध्वम्' की भी सिद्धि हो जा रही है।

* श्रुतिश्चापि न भिद्यते * **श्रुतिकृतश्चापि न कश्चिद् भेदो भवति** * लुङश्चापि न मूद्र्धन्ये ग्रहणम् * **तत्रायमप्यर्थः इणः षीध्वं लुङ्लिटां धोऽङ्गादित्यत्र लुङ्ग्रहणं न कर्तव्यं भवति। इहापि अच्योड्ढ्वम् अल्पोड्ढ्वमिति षत्वे सिचो धस्य ष्टुत्वे च कृते जश्त्वेन सिद्धम्** * सेटि दुष्यति * **सेटि दोषो भवति। इदमेव रूपं स्याद्-अलविड्ढ्वमूइदं न स्यात्—अलविध्वमिति। तस्मात् सिचो ग्रहणं कर्तव्यम्।**

यदि आप यह कहें कि 'आशाध्वम्, आयन्ध्वम्, आरन्ध्वम्' इन स्थलों में स् को जश्त्व करने पर 'आशाद्ध्वम्, आयन्द्ध्वम्, आरन्द्ध्वम्' ऐसा रूप में विशेष होगा तो इसका उत्तर देते हैं—**श्रुतिश्चापि न भिद्यते**। एक अथवा अनेक व्यञ्जनपरक का **श्रुतौ**=श्रवण में कोई विशेष नही होता है। 'आशाध्वम्' का जैसे उच्चारण और श्रवण होगा, वैसा ही उच्चारण और श्रवण 'आशाद्ध्वम्' का भी होगा। एवम् 'आयन्ध्वम्' तथा 'आरन्ध्वम्' का जैसा उच्चारण और श्रवण होगा वैसा ही 'आयन्द्ध्वम्' और 'आरन्द्ध्वम्' का भी होगा, अतः श्रवण में कोई भेद न होने से जश्त्वविधान के द्वारा स का अपहार में कोई भेद नहीं है।

एवं धि परे रहते सकार का लोप के विषय में सिच् का लोप कहने में लाघव भी हैं। वह यह कि 'इणः षीध्वं लुङ्लिटां धोऽङ्गात्' ८.३.७८ सूत्र में लुङ्ग्रहण नहीं करना पडता है। च्युङ् गतौ धा.पा.९५५ तथा प्लुङ् गतौ धा.पा.९५८ से लुङ्, ध्वम्, धातु को अडागम, च्लि, सिच्, अङ् को गुण होकर 'अच्यो स् ध्वम्, अप्लोस् ध्वम्' हुआ। इस दशा में 'आदेशप्रत्यययोः' ८.३.५९ सूत्र से सिच् को षत्व करके 'अच्युष्ध्वम्, अप्लुष्ध्वम्' यहाँ पर 'ष्टुना ष्टुः' ८.४.४१ से ष्टुत्व कर ष् को जश्त्व हो कर 'अच्योड्ढ्वम्, अप्लोड्ढ्वम्, ऐसा रूप बन जायेगा। इस तरह सूत्र में लुङ्ग्रहण व्यर्थ हो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गया, यह भाष्य का आशय है। यहाँ यह ध्यान देना चाहिये कि उक्त सूत्र में यदि लुङ्ग्रहण न किया जाये तो 'अकृढ्वम्, अभृढ्वम्' में जहाँ पर 'ह्रस्वादङ्गात्' ८.२.२७ सूत्र से सिच् का लोप है वहाँ मूर्धन्यादेश प्राप्त नहीं हो सकेगा। फिर तो ष्टुत्व के अभाव में उक्त रूप सम्भव नहीं है, अतः यहाँ का भाष्य एकदेशी है, ऐसा समझना चाहिये।

अथ च जहाँ पर इडादि सिच् है, वहाँ पर दोष होगा। इडादि सिच् स्थल में 'अलविड्ढ्वम्' यही रूप बनेगा, परन्तु 'अलविध्वम्' यह नहीं हो सकेगा। 'अलविध्वम्' यह भी रूप बने, इसके लिए धादि प्रत्यय परे रहते सलोप के विषय में सिच् का लोप कहना चाहिये।

यदि तर्हि सिचो ग्रहणं क्रियते * घसिभस्योर्न सिध्येत्तु * **घसिभस्योर्न सिध्यति—'सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे,' 'बब्धां ते हरीधाना' इत्यत्र न प्राप्नोति** * तस्मात् सिज्ग्रहणं न तत् * **तस्माद्—'धि चे'त्यत्र सिचो ग्रहणं न कर्तव्यम्।**

यदि धादि प्रत्यय परे रहते सलोप के विषय में सिच् का ग्रहण करेंगे तो उस पक्ष में घस् की अव्याप्ति होगी, अर्थात् इसका इष्ट रूप सिद्ध नहीं हो सकेगा; जैसे 'सग्धिश्च में सपितिश्च में' यहाँ पर अद् भक्षणे धा.पा.१०११ से क्तिन् प्रत्यय हुआ है। 'बहुलं छन्दसि' २.४.३९ सूत्र से अद् को घस्लृ आदेश है तथा 'झषस्तथोर्धोऽधः' ८.२.४० सूत्र से त को ध आदेश है, 'घसिभसोर्हलि च' ६.४.१०० सूत्र से घस् के उपधा का लोप है। 'ध् स् धि' इस स्थिति में 'झलो झलि' ८.२.२६ सूत्र से सलोप इष्ट हैं। यदि सिच् का लोप कहेंगे तो 'सग्धिः' में सलोप प्राप्त नहीं हो सकेगा। एवम् भस् धा.पा.११०० से लोट् लकार में ताम्, श्लु 'श्लौ' ६.१.१० सूत्र से धातु को द्विर्वचन, हलादि शेष, अभ्यास को जश्त्व, रूप हुआ—बभस् ताम्', त को धत्व होकर 'ब भस् धाम्' इस स्थिति में 'घसिभसोर्हलि च' ६.४.१०० सूत्र से उपधा का लोप करके 'झलो झलि' ८.२.२६ से स् का लोप इष्ट है, जो नहीं हो सकेगा, अतः सिज्लोप कहने में उपर्युक्त दोष भी बना है, जिससे 'बब्धाम्' रूप सिद्ध नहीं हो पा रहा है।

कथं 'चकाद्धि पलितं शिर' इति? एवं तर्हि सिज्ग्रहणं कर्तव्यम्। कथं सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे बब्धां ते हरीधाना इति? नैष दोषः। इह तावत् सग्धिरिति, नैतद् घसे रूपम्। किं तर्हि? सघेरेतद्रूपम्। 'बब्धां

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ते हरीधाना' इति; नैतद् भसे रूपम्। किं तर्हि? बन्धेरतद्रूपम् * छान्दसो वर्णलोपो वा यथेष्कर्तारमध्वरे' * अथवा छान्दसो वर्णलोपो भविष्यति। 'यथेष्कर्तारमध्वरे'। तद्यथा—'तुभ्येदमग्ने'। तुभ्यमिदमग्न इति प्राप्ते। 'आम्बानां चरुः'। नाम्बानां चरुरिति प्राप्ते। 'आव्याधिनी रुगणाः। आव्याधिनीः सुगणा इति प्राप्ते। 'इष्कर्तारमध्वरस्य'। निष्कर्तारमिति प्राप्ते। 'शिवा उद्रस्य भेषजीः'। शिवा रुद्रस्य भेषजीरिति प्राप्ते। तस्मात् सिज्ग्रहणं कर्तव्यम्।

इस दोष का वारण तभी सम्भव है जब 'धि च' सूत्र में सिच् का ग्रहण न किया जाये। यदि सिच् ग्रहण नहीं करेंगे तो 'चकाद्धि पलितं शिरः' में चकाद्धि की रूपसिद्धि कैसे होगी? अच्छा तो 'चकाद्धि' की रूपसिद्धि के लिए सिज् ग्रहण करना चाहिए। सिज् ग्रहण करने में 'सग्धिश्च मे' बब्धां ते हरीधाना' की सिद्धि कैसे होगी? 'सग्धिः' यह अद् को घस् आदेश करके नहीं है, अपितु सघ का ही रूप है। एवं 'बब्धाम्' यह भी भस् का रूप नही है, अपितु बन्ध धातु का रूप है। अथवा 'सग्धिश्च' एवं 'बब्धाम्' में छान्दसत्वात् सलोप मान लिया जायेगा, जैसे—'इष्कर्तारमध्वरे'। यहाँ पर 'इष्कर्तारमध्वरस्य' का एकदेश 'इष्कर्तारम् अध्वरे' ऐसा है तथा उससे सप्तमी है। जैसे—'तुभ्यमिदमग्ने' इस रूप की प्राप्ति में छान्दसत्वात् वर्णलोप करके 'तुभ्येदमग्ने' ऐसा रूप है। एवं 'नाम्बानां चरुः' इस रूप की प्राप्ति में 'आम्बानां चरुः' यह रूप है। यहाँ भी नलोप छान्दस है। एवम् 'आव्याधिनी सुगणाः' इस रूप की प्राप्ति में 'आव्याधिनी रुगणाः' यह रूप है। वैसे 'निष्कर्तारमध्वरस्य' की प्राप्ति में 'इष्कर्तारमध्वरस्य' यह रूप हैं। यहाँ पर नलोप छान्दस है। एवं 'शिवा रुद्रस्य भेषजी' इस रूप की प्राप्ति में 'शिवा उद्रस्य भेषजीः' यह रूप है, तथा यहाँ पर रेफ का लोप छान्दस है, अतः 'सग्धिः' तथा 'बब्धाम्' स्थल में भी घस् और भस् का सलोप छान्दस मान लेना चाहिये एवं 'चकाद्धि' में सलोपाभाव के लिए 'धि च' सूत्र में सिच् का ग्रहण करना चाहिये।

न कर्तव्यम्। यदेतद्—'रात् सस्ये'ति सकारग्रहणं तत् सिचो ग्रहणं विज्ञास्यते। कथम्? 'रात् सस्ये'त्युच्यते न चान्यो रेफात् परः सकारोऽस्त्यन्यदतः सिचः।

जी नहीं। 'धि च' सूत्र में सिच् का ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है। 'रात्सस्य' ८.२.२४ सूत्र में जो सस्य का ग्रहण किया है उसी को सिच्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का ग्रहण मान लेंगे। वहाँ सस्य से सिच् का ग्रहण कैसे होगा? वह इस तरह कि 'रात्सस्य' ८.२.२४ ऐसा सूत्र कहा है। रेफ से पर में कहीं अन्य सकार सिच् को छोड कर है नहीं, अतः सस्य से सिच् का ग्रहण हो जायेगा।

ननु चायमस्ति 'मातुः' 'पितु'रिति तस्मात् सिचो ग्रहणं कर्तव्यम्। न कर्तव्यम्। कस्मान्न भवति 'चकाद्धि पलितं शिर' इति? इष्टमेवैतत् सङ्गृहीतं, 'चकाधी,त्येव' भवितव्यम्।

*** धिसकारे सिचो लोपश्चकाद्धीति प्रयोजनम्।**
आशाध्वं तु कथं ते स्याज्जश्त्वं सस्य भविष्यति।।१।।
सर्वत्रैवं प्रसिद्धं स्याच्छ्रुतिश्चापि न भिद्यते।
लुङश्चापि न मूर्द्धन्ये ग्रहणं सेटि दुष्यति।। २।।
घसिभस्योर्न सिध्येत्तु तस्मात्सिज्ग्रहणं न तत्।
छान्दसो वर्णलोपो वा यथेष्कर्तारमध्वरे।। ३।। *

आप कैसे कहते हैं कि रेफ से पर में कहीं सिच् को छोड कर अन्य सकार नहीं है? मातुर्स्=पितुरस् पञ्चमी, षष्ठी एकवचन में रेफ से पर में सकार तो मिल गया, अतः उसका लोप 'रात्सस्य' ८.२.२४ से होगा, अतः 'धि च' सूत्र से सिच् का ग्रहण करना ही चाहिये। जी नहीं। 'धि च' सूत्र में सिच् का ग्रहण नहीं करना चाहिये। फिर 'चकाद्धि' में सलोप क्यों नहीं होता है? 'चकाद्धि' यह रूप उचित नहीं है। 'चकाधि' यही इष्ट रूप है।

अब तक जिन वार्तिकों की व्याख्या कर आये हैं उन्हीं को श्लोकमुखेन संग्रह किया है, अतः पृथक् इनकी व्याख्या आवश्यक नहीं है। {धि च}।

दादेर्धातोर्घः ८.२.३२

इह दोग्धा दोग्धुमिति घत्वस्यासिद्धत्वाड्ढ्त्वं प्राप्नोति। नैष दोषः। उक्तमेतद्—'अपवादो वचनप्रामाण्या'दिति। अथ वैवं वक्ष्यामि—'होढोऽदादेः'। हो ढो भवत्यदादेः। ततो 'धातोर्घः' इति। 'दादे'रित्यनुवर्तते 'ने'ति निवृत्तम्। एवमपि 'घो' दादे'रित्युच्यते तत्रेदं न सिध्यति—अधोक्। क्व तर्हि स्यात्? मा स्म धोक्। नैष दोषः।

यहाँ पूर्व सूत्र से 'हः' षष्ठ्यन्त तथा 'झलि', 'पदस्य' और 'अन्ते' की अनुवृत्ति होती है। 'दादेः' इस षष्ठ्यन्त पद की आवृत्ति होती है—'दादेः दादेः'। एक 'दादेः' पद से औपदेशिक अर्थ आयेगा, दूसरा 'दादेः' सामानाधिकरण्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के अनुरोध से 'धातोः' में अन्वित होगा। 'धातोः' यह अवयव षष्ठी है। धातु का अवयव हकार ऐसा अर्थ होगा। 'दादेः' यहाँ पर 'द आदिः अस्य असौ दादिः, तस्य', ऐसा बहुव्रीहि समास है। सूत्रार्थ है—'औपदेशिक दादि धातु के ह को ध हो झलि परे रहते, अथवा पदान्त में।' औपदेशिक दादि धातु कहने से दुह प्रपूरणे धा.पा.१०१४ धातु को लङ्लकार प्रथम पुरुष एकवचन में 'अधोक्' रूप है। यहाँ दादि धातु का अवयव ह के स्थान में घ आदेश हुआ है। औपदेशिक दादि कहने का व्यावर्त्य है—'दामलिहमात्मनः इच्छति, दामलिह्यति, दामलिह्यति इति दामलिट्', यहाँ पर 'सन्नाद्यन्ता धातवः' ३.१.३२ से दामलिह् की धातुसंज्ञा होने पर भी औपदेशिक दादि नहीं होने से ह के स्थान में घ आदेश नहीं हुआ।

'हो ढः' ८.२.३१ सूत्र की दृष्टि में 'दादेर्धातोर्घः' ८.२.३२ असिद्ध है, अतः 'दोग्धा, दोग्धुम्' यहाँ पर घत्व के असिद्ध होने से एत्व होने लगेगा। जी नहीं, 'दोग्धा, दोग्धुम्' में ढत्वप्राप्तिरूप दोष नहीं है। इसके विषय में बताया जा चुका है—आरम्भसामर्थ्य से 'दादेर्धातोर्घः' ८.२.३२ 'हो ढः' ८.२.३१ का अपवाद होगा। अथवा 'होढोदादेर्धातोर्घः' ऐसा संहितापाठ है। मैं उसका न्यास—'होढोऽदादेः' एवं 'धातोर्घः' ऐसा करूँगा। प्रथम न्यास का अर्थ होगा—'दादिभिन्न के ह को ढ हो'। द्वितीय न्यास में 'दादेः' की अनुवृत्ति करेंगे। न इस पद की निवृत्ति हो जायेगी। अर्थ होगा—'दादि धातु के ह को घ हो'। इस तरह योगन्यासपूर्वक अर्थ में दुह धातु दादि है, अतः 'दोग्धा, दोग्धुम्' में ढत्व की आपत्ति निरस्त हो गयी। परन्तु इस तरह के न्यास से 'अधोक्' में घत्व सिद्ध नहीं होगा। यहाँ लङ् परे धातु को अडागम है। यदागमपरिभाषा के बल पर आगमविशिष्ट आगमी का ग्रहण है, अतः दादि नहीं होने से 'अधोक्' में कुत्व प्राप्त नहीं होगा। अपितु 'मा स्म धोक्' यहीं पर घत्व होगा। जिससे सूत्र की अव्याप्ति हो रही है।

'धातो'रिति नैषा दादिसमानाधिकरणा षष्ठी 'दादेर्धातो'रिति। का तर्हि? अवयवयोगैषा षष्ठी—'धातोर्यो दादिरवयव' इति। सा चावश्यमवयवयोगा षष्ठी विज्ञेयोत्तरार्था। किं प्रयोजनम्? 'एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वो'रिति, इहापि यथा स्याद्—गर्दभयतेरप्रत्ययो गर्धबिति। यद्यवयवयोगा षष्ठी, दोग्धा दोग्धुम् इत्यत्र न प्राप्नोति। एषोऽपि व्यपदेशिवद्भावेन धातोर्दादिरवयवो भवति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह दोष नहीं है। यहाँ दोष न होने में हेतु देते हैं—**धातोरिति नैषेति**। 'दादेर्धातोः' यहाँ पर दादेः यह दादिसमानाधिकरण स्थानषष्ठी नहीं है, अपितु अवयवयोगा षष्ठी है—धातु का जो दादि अवयव। 'धातोः' को स्थानषष्ठी न मानकर अवयवयोगा षष्ठी ही मानना चाहिये। 'धातोः' को अवयवषष्ठी मानने का अन्य प्रयोजन 'एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः' ८.२.३७ सूत्र भी है। 'दादेर्धातोर्घः' ८.२.३२ सूत्र से 'धातोः' की अनुवृत्ति, 'एकाचो बशः' ८.२.३७ सूत्र से होती है तथा वहाँ भी धातु का अवयव जो एकाच् झषन्त ऐसा अर्थ होता है। यदि यहाँ पर धातु का अवयव जो एकाच् ऐसा वैयधिकरण्येन अन्वय न करके सामानाधिकरण्येन अन्वय किया जाता तो 'गर्धब्' में बश् को भष् नहीं होता। 'गर्दभमाचष्टे इति गर्दभयति, 'तत्करोति तदाचष्टे' (गणसूत्र २०४) सूत्र से णिच्, 'गर्धभयति' इति 'गर्धब्, क्विप्', णिलोप होकर धातु का अवयव एकाच् के बश् को भष् आदेश हुआ है।

यदि 'दादेर्धातोर्घः' ८.२.३२ सूत्रघटक धातोः को अवयव षष्ठी मानेंगे तो दोग्धा दोग्धुम् में घत्व सिद्ध नहीं हो सकेगा; क्योंकि दुह् एकाच्क है, धातु का अवयव एकाच् नही है, वहाँ पर ह को घ नही हो सकेगा। जी नहीं। असहाय में व्यपदेशिवद् होता है, अतः व्यवदेशिवद्भाव से दुह् भी धातु का अवयव एकाच् हो जायेगा तथा उसको घत्व सिद्ध हो जायेगा।

* हृग्रहोर्भश्छन्दसि हस्य * **हृग्रहोश्छन्दसि हस्य भत्वं वक्तव्यम्। गर्दभेन संभरति। मरुदस्य गृभ्णाति। सामिधेन्यो जभ्रिरे। उद्ग्राभञ्च निग्राभञ्च ब्रह्म देवा अवीवृधन्।** {दादेधोतोर्घः}।

हृ और ग्रह धातु का अवयव ह के स्थान में छन्दोविषय होने पर भ आदेश कहना चाहिए। जैसे—'गर्दभेन संभरति' यहाँ पर संहरति इस प्रयोग में ह को भ आदेश है। 'मेरुदस्य गृभ्णाति'। 'गृह्णाति' की प्राप्ति में ह को भ होकर 'गृभ्णाति' ऐसा रूप है। 'सामिधेन्यो जभ्रिरे', यहाँ पर 'जह्रिरे' की प्राप्ति में ह को भत्व होकर 'जभ्रिरे' रूप है। 'उद्ग्राभञ्च निग्राभञ्च ब्रह्म देवा अवीवृधन्'। यहाँ 'उद्ग्राहञ्च निग्राहञ्च' की प्राप्ति में ह को भत्व होकर 'उद्ग्राभञ्च निग्राभञ्च' हुआ है। {**दादेर्धातोर्घः**}।

दधस्तथोश्च ८.२.३८

किमर्थश्चकारः? * चकारस्स्ध्वोरनुकर्षणार्थः * **स्ध्वोरित्येतदनुकृष्यते। नैतदस्ति प्रयोजनं—सिद्धं स्ध्वोः पूर्वेणैव। न सिध्यति।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कृतद्वित्व डुधाञ् धारणपोषणयोः' धा.पा.१०९२ का दधः यह षष्ठी एकवचनान्त रूप है। त् और थ का इतरेतरयोग द्वन्द्व होकर 'तथोः' सप्तमी द्विवचनान्त है। पूर्व सूत्र 'एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः' ८.२.३७ से 'झषः बशः' तथा 'भष्' से तीन पद अनुवृत्त हैं। चकार से 'स्ध्वोः' का समुच्चय किया गया है। सूत्रार्थ हुआ—'द्विरुक्त झषन्त धाञ् धातु के बश् को भष् आदेश हो त, थ, स और ध्व शब्द परे रहते'। जैसे—'धत्तः, धत्थः, धत्से, धद्ध्वे'। यदि यहाँ पर आलोप को स्थानिवद्भाव करके झषन्त का अभाव कहा जाये तो यह 'दधस्तथोश्च' सूत्रारम्भ सामर्थ्य से नहीं कह सकेंगे, अन्यथा सूत्र ही व्यर्थ हो जायेगा।

सूत्र में चकारग्रहण क्यों किया है? वह इसलिए कि चकार से स् और ध्व का अनुर्षण किया जा सके। चकार का यह प्रयोजन नहीं है। पूर्व सूत्र में 'स्ध्वोः' पढा है। विना चकार पढे भी वहाँ से 'स्ध्वोः' का अनुकर्षण हो जायेगा। जी नहीं, विना चकार पढे 'स्ध्वोः' नहीं आयेगा।

किं कारणम्? अबशादित्वात्। ननु च जश्त्वे कृते बशादिः। असिद्धं जश्त्वं, तस्याऽसिद्धत्वान्न बशादिः। एवं तर्हि सिद्धकाण्डे पठितम्—'अभ्यासजश्त्वचर्त्वमेत्त्वतुको'रिति। एत्त्वतुकोर्ग्रहणं न करिष्यते। 'अभ्यासजश्त्वचर्त्वं सिद्ध'मित्येव। एवमप्यझषन्तत्वान्न प्राप्नोति। लोपे कृते झषन्तः। स्थानिवद्भावान्न झषन्तः। अत उत्तरं पठति—

इसका क्या कारण है? इसका कारण यह है कि धाञ् धातु बशादि नहीं है। बशादि धातु के बश् को भष् विधान करने में ही 'स्ध्वोः' का साहचर्य है। धा धातु के बशादि न होने से उसका अवयव को भष् की कर्तव्यता में 'स्ध्वोः' का अनुकर्षण नहीं हो सकेगा, अतः उसके अनुकर्षणार्थ सूत्र में च ग्रहण किया गया है। आप का यह कथन कि धातु बशादि नहीं है तो जब द्वित्व करके अभ्यास को जश्त्व करेंगे तब भी बशादि हो जायेगा। जी नहीं। 'दधस्तथोश्च' सूत्र की दृष्टि में 'अभ्यासे चर्च' ८.४.५४ सूत्र असिद्ध है, अतः जश्त्व के असिद्ध हो जाने से बशादि नहीं रहेगा। अच्छा तो सिद्ध काण्ड में 'अभ्यासजश्त्वचर्त्वमेत्वतुकोः' ऐसा पढा है। वहाँ पर 'एत्वतुकोः' का पाठ नहीं करेंगे। मात्र अभ्यासजश्त्व, चर्त्व सिद्ध हो इतना ही पढेंगे। एत्व और तुक् के सिद्धान्त के विषय में 'फलिभजित्रपश्च' सूत्र में फलि, भजि ग्रहण प्रमाण हो जायेगा, अतः अभ्यासजश्त्व और चर्त्व का सिद्धत्व ही कहेंगे। ठीक है, अभ्यास जश्त्व का सिद्धत्व कहने पर दध् के बशादि होने पर भी झषन्तत्व

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का अभाव रहेगा। झषन्त न होने से 'स्ध्वोः' का अनुकर्षण नहीं हो सकेगा। अच्छा तो दधा को झषन्तत्व के लिए हम आ का लोप करेंगे। आ का लोप हो जाने पर दध् झषन्त हो गया। अन्य आचार्य-लोप के बाद 'अचः परस्मिन् पूर्वविधौ' १.१.५७ सूत्र से स्थानिवद्भाव के द्वारा लोप का स्थानी आ को ला देंगे, जिससे दध् झषन्त नहीं रहेगा, अतः उत्तर पढते हैं—

* दधस्तथोरनुकर्षणानर्थक्यं स्थानिवत्प्रतिषेधात् * **दधस्तथोरनुकर्षणमनर्थकम्। किं कारणम्? 'स्थानिवत्प्रतिषेधात्'। प्रतिषिध्यतेऽत्र स्थानिवद्भावः 'पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिव'दिति। स चावश्यं प्रतिषेध आश्रयितव्यः** * इतरथा ह्यलोपे प्रतिषेधः * **यो हि मन्यतेऽनुकर्षणसामर्थ्यान्मेऽत्र भवति, अलोपे तेन प्रतिषेधो वक्तव्यः स्याद्—दधाति दधासि। तथोश्चापि ग्रहणं शक्यमकर्तुम्। कथम्? 'झलि झषन्तस्ये'त्युच्यते तथोश्चाऽयं झलि झषन्तो भवति नान्यत्र।**

'दधस्तथोः' सूत्र में 'स्ध्वोः' का अनुकर्षण स्थानिवत् का निषेध होने से व्यर्थ है। दध् में आल्लोप का स्थानी आ को स्थानिवद्भाव करने में स्थानिवद् का निषेध होता है—'पूर्वत्राऽसिद्धे न स्थानिवत्' यह प्रतिषेध अवश्य करना चाहिये। जो लोग अनुकर्षण के सामर्थ्य से दध् में स्थानिवद्भाव का निषेध करते हैं, उन लोगों को अलोप के विषय में स्थानिवद्भाव का प्रतिषेध कहना होगा। जैसे—'दधाति, दधासि'। दा, धा, धातु से पर में शप् को श्लु है। उसका स्थानिवद्भाव उन लोगों का कहना होगा। सूत्र में जो 'तथोः' ग्रहण किया है, वह ग्रहण भी नहीं करना चाहिये। वह इस तरह कि पूर्व सूत्र से झषन्तग्रहण की अनुवृत्ति होगी। झलि के अभाव में झषन्त अन्यथा अनुपपन्न होगा; अतः अर्थापत्तिप्रमाण[1] से झषन्त का आक्षेप होगा। झषन्त झल् परे ही होगा, अन्यत्र नहीं, अतः तथोः ग्रहण भी नहीं करना चाहिये।

अथाप्येतन्नास्ति पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिव'दिति, एवमपि नैवाऽर्थोऽनुकर्षणार्थेन चकारेण, नापि तथोर्ग्रहणेन। आनन्तर्यमिहाश्रीयते—झलि झषन्तस्ये'ति। क्वचिच्च सन्निपातकृतम् आनन्तर्यं शास्त्रकृतमनानन्तर्यं,

---

१. अनुपपद्यमान वस्तु को देख कर उसके उपपादकीभूत अन्य वस्तु की कल्पना अर्थापत्ति है। जैसे 'पीनोऽयं देवदत्तः दिवा न भुङ्क्ते' में भोजन के अभाव में पीनत्व की अन्यथा अननुपपत्ति होने से उसके उपपपादकीभूत रात्रिभोजन की कल्पना की जाती है। इसे वैंयाकरणों तथा मीमांसकों ने प्रमाण माना है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्वचिन्नैव सन्निपातकृतं नापि शास्त्रकृतम्। लोपे सन्निपातकृतमानन्तर्यं, शास्त्रकृतम् अनानन्तर्यम्, अलोपे नैव सन्निपातकृतं नापि शास्त्रकृतम्। यत्र कुतश्चिदेवानन्तर्यं तदाश्रयिष्यामः। {दधस्तथोश्च}।

यदि 'पूर्वत्राऽसिद्धे न स्थानिवत्' इस पक्ष को नहीं भी माना जाये तब भी चकार से 'स्ध्वोः' का अनुकर्षण नहीं करना चाहिये तथा सूत्र में 'तथोः' का भी ग्रहण नहीं करना चाहिये। 'झलि झषन्तस्य' इस अर्थ में झल् से अव्यवहितपूर्वत्वविशिष्ट ऐसा आनन्तर्य अपेक्षित है। वह कहीं पर सन्निपातकृत आनन्तर्य लिया जायेगा तथा शास्त्रकृत **अनानन्तर्य**=व्यवधान। कहीं पर न तो सन्निपातकृत आनन्तर्य लिया जायेगा, न तो शास्त्रकृत ही आनन्तर्य लिया जायेगा। आ का लोप हो जाने पर 'धत्तः' आदि में सन्निपातकृत आनन्तर्य है तथा शास्त्रकृत अनानन्तर्य है। परन्तु ददाति, 'दधाति' में जहाँ अलोप है वहाँ पर न तो सन्निपातकृत आनन्तर्य है तथा शास्त्रकृत भी अनानन्तर्य नहीं है, अतः जहाँ कहीं से ही आनन्तर्य का आश्रयण होगा। इसका भाव यह है कि 'झलि झषन्तस्य' ऐसा कहने पर आलोप के स्थानिवत् होने से झषन्त और झल् का शास्त्रकृत व्यवधान होने से 'धत्त' में कार्यनिर्वाह के लिए अर्थापत्तिप्रमाण से झषन्तत्वान्यथाऽनुपपत्ति के द्वारा श्रुतिकृत आनन्तर्य लिया जायेगा। स्थानिवद्भावकृत व्यवधायकत्व 'दध' इस आरम्भसामर्थ्य से नहीं होगा। इस तरह 'तथोश्च' का प्रत्याख्यान हो गया। {**दधस्तथोश्च**}।

झषस्तथोर्धोऽधः ८.२.४०.

'अध' इति किमर्थम्? धत्तः। धत्थः * 'अध' इति शक्यमवक्तुम् * कस्मान्न भवति—धत्तः धत्थ इति?

* जश्त्वे योगविभागः * **जश्त्वे योगविभागः करिष्यते। इदमस्ति 'दधस्तथोश्चे'ति। ततो वक्ष्यामि—'झलां जशः'। झलां जशो भवन्ति दधस्तथोः। ततः 'अन्ते'। अन्ते च झलां जशो भवन्तीति। तत्र जश्त्वे कृतेऽझषन्तत्वान्न भविष्यति।**

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरणमहाभाष्ये
अष्टमाध्यायस्य द्वितीयपादे प्रथममाह्निकम्

●

'धा धातु को छोड कर झष् से पर में त और थ को ध आदेश हो'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह सूत्रार्थ है। जैसे षिधू शात्रे माङ्गल्ये च धा.पा.४८ से लुट्, तिप्, तास् 'सेद्धा' रूपसिद्धि है। यहाँ झष् से पर में त को ध आदेश है।

सूत्र में 'अधः' यह निषेधवचन क्यों पढा है? वह इसलिए कि—'धत्तः धत्थः' स्थल में त और थ को ध आदेश न हो। अच्छा तो सूत्र में 'अधः' यह निषेधवचन नहीं पढना चाहिये। यदि निषेध नहीं पढेंगे तो 'धत्तः धत्थः' में त और थ को ध क्यों नहीं होता है?

वह इस तरह कि जश्त्व की कर्तव्यता में हम योगविभाग करेंगे। प्रथम सूत्र है—'दधस्तथोश्च'। इसके बाद सूत्र रखेंगे 'झलां जशः'='झलों को जश् हो, दध् को भी त और थ परे रहते जश् हो'। इसके बाद सूत्र करेंगे 'अन्ते'। अर्थ होगा—'अन्त में झलों को जश् हो'। दध्-घटक झल् ध् को जश्त्व द् कर देने पर झषन्त न होने से धा धातु को ध् प्राप्त नहीं होगा।

श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिमुनिविरचित व्याकरणमहाभाष्य
अष्टम अध्याय द्वितीय पाद प्रथम आह्निक पर
डॉ. हरिनारायण तिवारी द्वारा रचित
'ज्योत्स्ना' हिन्दी टीका पूर्ण हुई

●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

❁ द्वितीय पादे द्वितीयमाह्निकम् ❁

रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च् दः ८.२.४२

रदाभ्यामिति किमर्थम्? चरितं मुदितम्। ननु च 'रदाभ्या' मित्युच्यमानेऽप्यत्र प्राप्नोति। अत्रापि हि रेफदकाराभ्यां परा निष्ठा। न रेफदकाराभ्यां निष्ठा विशेष्यते। किं तर्हि? तकारो विशेष्यते— 'रेफदकाराभ्यामुत्तरस्य तकारस्य नो भवति स चेन्निष्ठाया' इति।

'निष्ठायाः त् निष्ठात् तस्यनिष्ठातः' यह स्थानषष्ठी हैं। 'रदाभ्याम्' को पञ्चम्यन्त होने से अव्यवहितपरत्वविशिष्ट निष्ठा तकार को नकार हो एवं निष्ठा की अपेक्षा से पूर्व जो धातु का अवयव दकार, उसको नकार हो', यह सूत्रार्थ है। जैसे—'जीर्णम्, जीर्णवान्। छिन्नम्, छिन्नवान्'। बहिरङ्गा वृद्धि के असिद्ध हो जाने से 'कृतस्य अपत्यं पुमान् कार्तिः' में निष्ठातकार को नत्व नहीं हुआ।

सूत्र में 'रदाभ्याम्' यह पञ्चम्यन्तग्रहण क्यों किया है? वह इसलिए कि धात्ववयव रेफ और दकार से पर में ही निष्ठातकार को नकार हो, 'चरित्रम्, मुदितम्' में जहाँ इट् का व्यवधान है वहाँ निष्ठा तकार को नकार न हो। जी नहीं, 'रदाभ्याम्' यह पञ्चम्यन्त पाठ करने पर भी 'चरित्रम्, मुदितम्' में निष्ठातकार को दकार प्राप्त होगा। यहाँ पूर्वपक्षी 'निष्ठातः' पद को असमस्त मान कर पूर्वपक्ष कर रहा है—'निष्ठा यह असमस्त लुप्तषष्ठीक पद है, अतः र और द से पर में जो निष्ठा उस के तकार को नकार हो'। 'चरित्रम् मुदितम्' में भी रेफ और नकार से पर में निष्ठा है। यदि रेफ और दकार के साथ निष्ठा को विशेषित किया जाये तब तो आप रेफ और दकार से पर 'चरितम् मुदितम्' में निष्ठा कह सकते हैं, परन्तु सूत्र में रेफ और दकार से निष्ठा को विशेषित नही करेंगे। तो क्या करेंगे? तकार को विशेषित करेंगे 'रेफ और दकार से पर में तकार को नत्व हो यदि वह निष्ठा का हो तो'।

अथ निष्ठादेशे पूर्वग्रहणं किमर्थम् * निष्ठादेशे पूर्वग्रहणं परस्यादेशप्रति-षेधार्थम् * **निष्ठादेशे पूर्वग्रहणं क्रियते। किं प्रयोजनम्? परस्यादेशप्रति-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

षेधार्थम्। परस्यादेशो मा भूदिति। भिन्नवद्भ्याम्। भिन्नवद्भिः। छिन्नवद्भ्याम्। छिन्नवद्भिः।

अच्छा तो निष्ठादेश में पूर्वस्य पद का ग्रहण क्यों किया गया? निष्ठादेश में पूर्वग्रहण इसलिए किया गया कि पर के आदेश का प्रतिषेध हो। जैसे— 'भिन्नवद्भ्याम्, भिन्नवद्भिः'। यहाँ पर क्तवतुघटक पर तकार को पदान्त में जश्त्व हो जाने से निष्ठा का पर दकार भी है, उसको नत्व न हो, इसलिए पूर्वग्रहण किया गया। जी नहीं। आप का यह पक्ष उचित नहीं है। 'भिन्नवद्भ्याम्' में पर दकार लाक्षणिक है तथा बहिरङ्ग भी, अतः पर दकार को नत्व प्राप्त नहीं होगा, पुनः सूत्र में पूर्वग्रहण क्यों किया है? आपका यह प्रश्न उचित नहीं है। 'रदाभ्याम्' यह पञ्चम्यन्त निर्देश है। पञ्चमीनिर्देश होने से 'तस्मादित्युत्तरस्य' १.१.६७ सूत्र से अव्यवहितपरत्व अर्थ उपस्थित होगा। यदि पूर्वग्रहण नहीं करेंगे तो पाठक्रम से निष्ठा ही उपस्थित होगी, अतः निष्ठा के दकार को ही नकार होगा, धातु के दकार को नहीं। एवं जो आप ने 'छिन्नवद्भ्याम्' इत्यादि में दकार को लाक्षणिक और बहिरङ्ग बताया वहाँ पर यह हेतु नहीं होगा। पदस्य का अधिकार होने से पूर्वपद के अभाव में पदावयव दकार को नकार कहना होगा; जिससे दकार को बहिरङ्ग नहीं कहा जा सकेगा। एवं दकार को आप ने जो लाक्षणिक कहा वहाँ भी उक्त स्थल में सम्भव नहीं है। वह इसलिए कि केवल वर्ण का उपदेश सम्भव न होने से वर्णग्रहण में लक्षणप्रतिपदोक्तपरिभाषा नहीं लगती है, अतः 'भिन्नवद्भ्याम्' इत्यादि में निष्ठादकार को नत्वव्यावृत्ति के लिए पूर्वग्रहण आवश्यक है।

* पञ्चमीनिर्दिष्टाद्धि परस्य * **'पञ्चमीनिर्दिष्टाद्धि परस्ये'ति परस्य प्राप्नोति** * वृद्धिनिमित्तात् प्रतिषेधः * **वृद्धिनिमित्तात् प्रतिषेधो वक्तव्यः। किं प्रयोजनम्?** * प्रयोजनं कार्तिक्षैतिफौल्लयः * **प्रयोजनं कार्तिक्षैतिफौल्लयः। कार्तिरिति वृद्धौ कृतायां 'रदाभ्या'मिति नत्वं प्राप्नोति। क्षैतिरिति वृद्धौ कृतायां 'क्षियो दीर्घा'दिति नत्वं प्राप्नोति। फौल्लिरिति वृद्धौ कृतायामुदुपधत्वसन्नियोगेन लत्वमुच्यमानं न प्राप्नोति। अथोच्यमानेऽपि प्रतिषेधे 'वृद्धिनिमित्ता'दिति कथमिदं विज्ञायते, वृद्धिरेव निमित्तं वृद्धिनिमित्तं, वृद्धिनिमित्तादिति, आहोस्विद् वृद्धिनिमित्तमस्य सोऽयं वृद्धिनिमित्तः, वृद्धिनिमित्तादिति? किं चातः? यदि विज्ञायते वृद्धिरेव निमित्तं वृद्धिनिमित्तं वृद्धिनिमित्ताद् इति, क्षैतिः सङ्गृहीतः कार्तिरसंगृहीतः। अथ विज्ञायते**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वृद्धिर्निमित्तम् अस्य सोऽयं वृद्धिनिमित्तः, वृद्धिनिमित्तादिति, कार्तिः सङ्गृहीतः क्षैतिरसङ्गृहीतः। उभयथा च फौल्लिरसङ्गृहीतः।

वृद्धिनिमित्त से पर में निष्ठातकार को नकार का प्रतिषेध कहना चाहिये। इसका प्रयोजन है—'कार्तिः क्षैतिः' में निष्ठातकार को नत्व का निषेध तथा 'फौल्लिः' में उदुपधत्वसन्नियोग से लत्व की प्राप्ति। 'कृतस्यापत्यं पुमान् कार्तिः' में 'अत इञ्' ४.१.९५ सूत्र से अपत्यार्थक इञ् प्रत्यय, आदिवृद्धि और रपर होकर रेफ से पर में यहाँ निष्ठातकार है, उसको नत्व प्राप्त होगा, अतः वृद्धिनिमित्तक रेफ से पर में निष्ठा तकार को नत्व का प्रतिषेध कहना चाहिये। इसी तरह क्षि क्षये धा.पा.२३६, तथा क्षि हिंसायाम् धा.पा.१२७७ से निष्ठा क्त प्रत्यय करके क्षित शब्द हुआ, इससे अपत्यार्थक इञ् प्रत्यय तथा ञित्वात् आदि अच् को वृद्धि करने पर 'क्षैतिः' रूप है। यहाँ 'क्षियो दीर्घात्' ८.२.४६ सूत्र से निष्ठातकार को नकार प्राप्त है, उसका निषेध कहना चाहिये। ञिफला विसरणे धा.पा.५१६ से निष्ठा क्त, उदुपधत्वसन्नियोग से निष्ठा के तकार को लकार 'अनुपसर्गात् फुल्लक्षीबकृशोल्लाघाः ८.२.५५ सूत्र से हुआ है। 'फुल्लस्य अपत्यं पुमान् फौल्लिः' यहाँ पर वृद्धि कर देने पर उदुपधत्व का विघात है, अतः निष्ठा तकार को लकार नहीं हो सकेगा, अतः वृद्धिनिमित्त से पर में प्रतिषध कहना चाहिये। अच्छा तो 'वृद्धिनिमित्तात्' ऐसा कहने पर भी कैसे जाना जायेगा कि-'वृद्धिरेव निमित्तं वृद्धिनिमित्तं तस्मात्'=वृद्धि ही निमित्त है उससे पर में। अथवा वृद्धि निमित्त है। जिसका वह वृद्धिनिमित्त, उससे पर में? इस तरह कि शङ्का में हेतु क्या है? यदि वृद्धि ही निमित्त है तादृशवृद्धिनिमित्त से पर में निषेध कहेंगे तो 'क्षैतिः' संगृहीत हो जायेगा परन्तु 'कार्तिः' असंगृहीत होगा। यदि बहुव्रीहि मानेंगे तो 'कार्तिः' संगृहीत होगा तथा 'क्षैतिः' असंगृहीत, एवं दोनों तरह का समास मानने में 'फौल्लिः' का संग्रह नहीं हो पा रहा है।

यथेच्छसि तथाऽस्तु। अस्तु तावद्—'वृद्धिरेव निमित्तं वृद्धिनिमित्तं, वृद्धिनिमित्ता'दिति। ननु चोक्तं—'क्षैतिः संगृहीतः कार्तिरसङ्गृहीत' इति। कार्तिश्च संगृहीतः। कथम्? वृद्धिर्भवति गुणो भवतीति रेफशिरा गुणवृद्धिसंज्ञकोऽभिनिर्वर्त्तते। अथवा पुनरस्तु—वृद्धिनिमित्तम् अस्य सोऽयं वृद्धिनिमित्तः, वृद्धिनिमित्तादिति। ननु चोक्तं—'कार्तिः सङ्गृहीतः क्षैतिरसङ्गृहीत' इति। क्षैतिश्च सङ्गृहीतः। कथम्? यत्तद् वृद्धिशास्त्रं तस्मिन् वृद्धिशब्दो वर्तते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जी नहीं। जैसे चाहते हैं वैसा कर लीजिए। आपने जो कहा कि— 'वृद्धिरेव निमित्तं वृद्धिनिमित्तं तस्मात्' एवम् इस पक्ष में आपने जो कहा कि क्षैतिः संगृहीत है तथा कार्तिः असंगृहीत, ऐसी बात नहीं है। ऋ के स्थान में होने वाला गुण और वृद्धि रेफशिरा होता है, अतः वहाँ यदागमपरिभाषा के बल से पर रेफशिरा ही गुण और वृद्धि माने जायेंगे, अतः वहाँ पर दोष नहीं है। यदि यह कहा जाये कि वृद्धिसंज्ञा अक्तपरिमाण है, वह आ की ही होगी, आर् की नहीं तो फिर 'रेफशिरा गुणवृद्धिसंज्ञकोऽभिनिर्वर्तते' इस भाष्यवचन का क्या होगा? यदि प्रसक्त अण् को रपर न माना जाये, अपितु अण् से उत्तर काल में रपर का विधान किया जाये तो तब भी रेफ के भाक्त होने से 'कार्तिः' संगृहीत हो जायेगा। इस तरह 'वृद्धिरेव निमित्तं वृद्धिनिमित्तम् तस्माद् वृद्धिनिमित्तात्' इस पक्ष में 'कार्तिः' का असंगृहीतत्व नहीं है। अथवा 'वृद्धिर्निमित्तमस्य सोऽयं वृद्धिनिमित्तस्तस्मात्' इसी पक्ष को मानिये। इस पक्ष में आप ने जो कहा था कि 'कार्तिः' संगृहीत है तथा 'क्षैतिः' असंगृहीत, ऐसी बात नहीं है। बहुव्रीहि मानने में 'क्षैतिः' भी संगृहीत हो जायेगा। वह इस तरह की वृद्धि शब्द का वृद्धिशास्त्र में जो संज्ञा है, उसका ग्रहण होगा, प्रयोगस्थ वृद्धि का नहीं, अतः 'क्षैतिः' घटक ऐ प्रयोगस्थ वृद्धि है, उससे पर में निष्ठादेश का निषेध हो जायेगा।

स तर्हि प्रतिषेधो वक्तव्यः? * न वा बहिरङ्गलक्षणत्वात् * **न वा वक्तव्यः। किं कारणम्? 'बहिरङ्गलक्षणत्वात्'। बहिरङ्गा वृद्धिरन्तरङ्गं तत्वम्। 'असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे'। एवं च कृत्वा लत्वमपि सिद्धं भवति फौल्लिरिति।** {रदाभ्यां निष्ठातः}।

तो क्या 'वृद्धिनिमित्तत् प्रतिषेधः' यह वार्तिक पढना चाहिये? जी नहीं। यह निषेधवार्तिक पढने की आवश्यकता नहीं हैं। इसका क्या कारण है? इसका कारण यह है कि वृद्धि बहिरङ्ग है तथा नत्व अन्तरङ्ग है। अन्तरङ्ग नत्व की कर्तव्यता में बहिरङ्ग वृद्धि असिद्ध हो जायेगी, अतः 'कार्तिः' तथा 'क्षैतिः' में निष्ठा तकार को नकार नहीं होगा। 'फौल्लिः' में उदुपध लत्व की कर्तव्यता में वृद्धि असिद्ध हो जायेगी, अतः लत्व सिद्ध हो जायेगा। **{रदाभ्यां निष्ठातः}**।

ल्वादिभ्यश्च ८.२.४४

* ऋकारल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावत् * **ऋकारल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद् भवतीति वक्तव्यम्। कीर्णिः गीर्णिः लूनिः धूनिः** * दुग्वोर्दीर्घश्च *

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दुग्वोर्दीर्घश्चेति वक्तव्यम् । आदूनः विगूनः * पूञो विनाशे * पूञो विनाश इति वक्तव्यम् । पूना यवाः । विनाश इति किमर्थम्? पूतं धान्यम् * सिनोतेर्ग्रासकर्मकर्तृकस्य * सिनोतेर्ग्रासकर्मकर्तृकस्येति वक्तव्यम् । सिनो ग्रासः स्वयमेव । ग्रासकर्मकर्तृकस्येति किमर्थम्? सिता पाशेन सूकरी । {ल्वादिभ्यः} ।

'ल्वादिगणपठित धातुओं से पर में निष्ठातकार को नकार होता है'—यह सूत्रार्थ है । जैसे—लूनम्, नूलवान् इत्यादि ।

दीर्घ ॠ और ल्वादि से पर में क्तिन् प्रत्यय को निष्ठावत् अतिदेश कहना चाहिये । उसका फल है—कीर्णिः, गीर्णिः, लूनिः, धूनिः, में क्तिन् के तकार को नकारादेश । यहाँ कॄ धा.पा. १४१०, १४६७ तथा कॄञ् १४८६ का रूप कीर्णिः है । गॄ धा.पा. १४११ व १४६६ का गीर्णिः रूप है । उभयत्र 'ॠत इद् धातोः' ७.१.१०० सूत्र से ॠ को इ, 'उरण् रपरः' १.१.५१ से रपर तथा 'र्वोरुपधाया दीर्घ इकः' ८.२.७६ से उपधा को दीर्घ होकर 'कीर्णिः गीर्णिः' रूपसिद्धि है । लूञ् धा.पा. १४८४ का लूनिः तथा धूञ् धा.पा.३६६, १४८८ तथा १८३६ का धूनिः रूप है ।

'दुश्च गुश्च इति दुगू तयोः दुग्वोः', दु और गु धातु से पर में निष्ठातकार को दकार तथा प्रकृति को दीर्घ कहना चाहिये । यहाँ पर दु धा.पा.६४४ तथा द्रु धा.पा.६४५ गतौ का ही ग्रहण है, टुदु उपतापे धा.पा.१२५७ का नहीं । इसका कारण यह है कि निरनुबन्धक दु द्रु गतौ के ग्रहण में सानुबन्धक टुदु उपतापे का ग्रहण नहीं होगा । 'आदूनः, विगूनः' यहाँ उक्त वार्तिक से निष्ठातकार को नत्व तथा प्रकृति को दीर्घ है ।

विनाश अर्थ में विद्यमान पूञ् धातु से पर में निष्ठा त को न हो । जैसे—'पूना यवाः=विनष्टा इत्यर्थः' । विनाश से भिन्न अर्थ में उक्त नत्व नहीं होगा । जैसे—'पूतं धान्यम्=पवित्रमित्यर्थः' । ग्रासकर्मकर्तृक सिनोति से पर में निष्ठा त को न कहना चाहिये । जैसे—'सिनो ग्रासः स्वमेव' । जहाँ ग्रासकर्मकर्तृक नहीं है वहाँ नत्व नहीं होगा । जैसे—'सिता पाशेन सूकरी' । प्रकृत में षिञ् बन्धने धा.पा.१२४६, १४७६ का ग्रहण है । बन्धनक्रिया में आनुकूल्य होने से सिनोतिकर्मा ग्राम की कर्तृत्वेन विवक्षा होने से-'सिनो ग्रासः स्वमेव' ऐसा कहा है । {ल्वादिभ्यश्च} ।

क्षियो दीर्घात् ८.२.४६

दीर्घादिति किमर्थम्? अक्षितमसि मा मे क्षेष्ठाः । दीर्घादिति शक्यमकर्त्तुम्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कस्मान्न भवति—अक्षितमसि मा मे क्षेष्ठा इति? निर्देशादेवेदमभिव्यक्तं दीर्घस्य ग्रहणमिति। यदि ह्रस्वस्य ग्रहणं स्यात् 'क्षे'रित्येव ब्रूयात्। नाऽत्र निर्देशः प्रमाणं शक्यं कर्तुम्। यथैवाऽत्राऽप्राप्ता विभक्तिरेवमियङादेशोऽपि। नाऽत्राऽप्राप्ता विभक्तिः, सिद्धाऽत्र विभक्तिः 'प्रातिपदिका'दिति। कथं प्रातिपदिकसंज्ञा? 'अर्थवत्प्रातिपदिक'मिति।

'दीर्घ क्षी धातु से पर में निष्ठा के तकार को नकार आदेश हो'—यह सूत्रार्थ है। जैसे—क्षीणवान्। क्षि धा.पा.१२७७, २३६ धातु से कर्ता अर्थ में क्तवतु प्रत्यय है। 'निष्ठायामण्यदर्थे' ६.४.६० सूत्र से धातु को दीर्घ है।

सूत्र में दीर्घात्-ग्रहण इसलिये किया गया है कि 'अक्षितमसि मा मे क्षेष्ठाः' यहाँ पर 'अक्षितम्' इस ह्रस्वघटित प्रयोग में क्षि से पर निष्ठातकार को नत्व न हो। सूत्र में दीर्घात् इस पद को नहीं भी किया जा सकता हैं। यदि सूत्र में दीर्घात् यह पद नहीं किया जायेगा तो 'अक्षितमसि मा मे क्षेष्ठाः' इस वाक्यघटक अक्षित का अवयव निष्ठातकार को नत्व क्यों नहीं होता है? वह इसलिये कि आचार्य ने 'क्षियः' यह षष्ठ्यन्त पाठ किया है। वह दीर्घघटित क्षी का ही पञ्चमी-एकवचन में रूप होगा। उसी से निश्चय कर लेंगे कि दीर्घ क्षी से पर में ही निष्ठातकार को नत्व होता है। यदि ह्रस्व से पर में आचार्य को नत्व इष्ट होता तो ह्रस्वान्त इस क्षि शब्द का पञ्चमी एकवचन में 'क्षेः' ऐसा कहते। जी, ऐसी बात नहीं है। 'क्षियः' यह निर्देश ह्रस्वग्रहण में प्रमाण नहीं हो सकता है, जैसे क्षी इस दीर्घान्तधातु से विभक्ति अप्राप्त है, वैसे इयङ् आदेश भी अप्राप्त होगा। जी नहीं। यहाँ पर विभक्ति अप्राप्त नहीं है, अपितु विभक्ति सिद्ध है। क्षी यह प्रातिपदिक है, तथा 'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' ४.१.१ के अधिकार में विहित स्वादि विभक्तियाँ क्षी से हो जायेगी। क्षी की प्रातिपदिकसंज्ञा कैसे होगी? इसकी प्रातिपदिक संज्ञा 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' १.१.४५ से होगी।

ननु चाऽधातुरिति प्रतिषेधः प्राप्नोति। नैष धातुर्धातोरेषोऽनुकरणम्। यद्यनुकरणमियङादेशो न प्राप्नोति। 'प्रकृतिवदनुकरणं भवती'तीयङादेशो भविष्यति। यदि 'प्रकृतिवदनुकरणं भवती'त्युच्यते स्वाद्युत्पत्तिर्न प्राप्नोति। एवं तर्ह्यातिदेशिकानां स्वाश्रयाण्यपि न निवर्तन्ते इति। अथाऽप्येतन्नास्ति 'आतिदेशिकानां स्वाश्रयाण्यपि न निवर्तन्ते' इत्येवमपि न दोषः। अवश्यमत्र सर्वतो नैर्देशिकी विभक्तिर्वक्तव्या। तद्यथा—'नेर्विशः' 'परिव्यवेभ्यः क्रियः'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'विपराभ्यां जे'रिति। अथाऽप्येतन्नास्ति 'प्रकृतिवदनुकरणं भवती'त्येवमपि न दोषः। धातोरजादौ यद्रूपं तदनुक्रियते। {क्षियो दीर्घात्}।

जी, अर्थवदधातुः १.२.४५ सूत्र में 'अधातुः' यह निषेधवचन है। धातु की प्रातिपदिकसंज्ञा न होने से धातु से पर में स्वादि विभक्तियाँ कैसे होंगी? यह धातु नहीं है, अपितु धातु का अनुकरण है। यदि अनुकरण है तब तो इयङादेश नहीं होना चाहिये, क्योंकि इयङ् धातु को विहित है, अनुकरण होने से यह धातु नहीं रहा। ऐसी बात नहीं है। अनुकरण में प्रकृति का अतिदेश होने से प्रकृति को प्राप्त इयङादेश अनुकरण को भी हो जायेगा। यदि अनुकरण में प्रकृति का अतिदेश करेंगे तो धातु होने से अधातुः निषेध होगा, जिससे प्रातिपदिकसंज्ञा न होने से स्वादि की उत्पत्ति नहीं हो सकेगी। यदि ऐसी बात है तो आतिदेशिक को स्वाश्रय कार्य भी होते हैं तथा स्थानी के कार्य भी आदेश में होंगे। अनुकरण का स्थानी यहाँ पर यद्यपि धातु है तथा प्रातिपदिकसंज्ञा की कर्तव्यता में वहाँ वार्तिक से पर अधातुपर्युदास है तथा (अतिदेशः प्रयोजनं येषां तानि आतिदेशिकानि) अतिदेश का प्रयोजन यही है कि स्थानी में जो कार्य व व्यवहार है वे सभी आदेश में हों तथापि आदेश में स्वाश्रयसिद्धकार्य की सर्वथा निवृत्ति नहीं होती है, अतः अनुकार्य और अनुकरण में भेदविवक्षा होने से 'अधातुः' निषेध नहीं लगेगा, जिससे स्वादि की उत्पत्ति हो जायेगी तथा अभेद होने से धातु मानकर इयङ् आदेश होगा।

धातु की प्रातिपदिकसंज्ञा निषिद्ध है, अतः धातु से पर में कहीं पर भी स्वादि नहीं मिलेगा, एवं जो अव्यय नि, परि, वि, अव, परा आदि हैं उनसे विभक्ति उत्पन्न होती हुई भी 'अव्ययादाप्सुपः' २.४.८२ से लुप्त हो जायेगी, अतः उनसे कोई अर्थबोध सम्भव नहीं हो सकेगा कि ये पद किस विभक्ति के हैं? अतः धातु व अव्यय से अवश्य ही विभक्ति का निर्देश करना चाहिये, जिससे स्पष्ट बोध हो सके कि यह पञ्चम्यन्त है या षष्ठ्यन्त, अथवा अन्य विभक्त्यन्त? जहाँ यह निर्देश किया गया है वहाँ बोध स्पष्ट हो जाता है। जैसे—नेर्विशः १.३.१७ नि से पर में विश आत्मनेपदी हो—'निविशते सन्मार्गम्'। 'परिव्यवेभ्यः क्रियः' १.३.१८ परि, वि और अव से पर में क्री धातु आत्मनेपदी हो। जैसे—'परिक्रीणीते, विक्रीणीते, अवक्रीणीते'। एवं 'विपराभ्यां जेः' १.३.१९ वि और परा से पर में जि धातु आत्मनेपदी होता है। जैसे—'विजयते, पराजयते'। यहाँ सर्वत्र सूत्रों में विभक्ति का निर्देश किया गया है। जिसे पञ्चम्यन्त होने से अव्यवहितपरत्व अर्थ की उपस्थिति होती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जी। फिर भी ऐसी बात नहीं है। अनुकरण सामान्य और विशेष दोनों का होता है। अनुकर्ता कहीं पर तो सामान्य का अनुकरण करता है तथा कहीं पर विशेष का। यदि सामान्य का अनुकरण करता है तो विशेष निबन्ध कार्य का सामान्य में अतिदेश नहीं होता हैं जो कार्य प्रकृति में नहीं देखे जाते हैं। उनका अनुकरण में भी अभाव रहेगा। परन्तु यदि विशेष का अनुकरण करेगा तो विशेष में होने वाला सम्पूर्ण कार्य अनुकरण में होंगे। अब प्रकृत को देखिये। यदि धातु अधातु सामान्य क्षिमात्र का अनुकरण करेगा, तब इयङ् की प्राप्ति नहीं होगी। धातु अधातु सामान्य 'चिक्षियतुः'घटक क्षि है, उसका अनुकरण किया गया है, क्षि धातु का नहीं, अतः सूत्र में दीर्घग्रहण करना ही चाहिये। यही अनुकरण दीर्घग्रहण में प्रमाण है। अनुकरण को क्षियः ऐसा सविभक्तिक निर्देश यह ज्ञापन करता है कि अतिदेश अनित्य होता है। यदि यहाँ यह पक्ष उठाया जाये कि 'चिक्षियतुः' इस शब्दरूप का अनुकरण क्षि है, वह धातु नहीं है। निष्ठाप्रत्यय धातु के अधिकार में विहित है, अतः इस अनुकरण क्षि से निष्ठाप्रत्यय कैसे होगा? जब कि इस तरह के अनुकरण को न तो धातु कह सकते हैं न तो क्षि रूपता ही कहेंगे, तो यहाँ पर यही कहा जा सकता है कि आचार्य ने दीघात् पद का ग्रहण किया है तथा 'क्षि': यह दीर्घविधान किया है, उसके सामर्थ्य से क्षि अनुकरण का अनुकार्य 'चिक्षियतुः' का मूल क्षि का ग्रहण उपर्युक्त ज्ञान से करेंगे, जिससे कोई दोष नहीं है। {**क्षियो दीर्घात्**}।

अञ्चोऽनपादाने ८.२.४८

सूत्रार्थ—'अञ्च गतिपूजनयोः धा.पा.१८८ से पर में निष्ठा तकार को नकार हो, परन्तु अपादान में न हो'। जैसे—'समक्नः'।

* अञ्चेर्नत्वे व्यक्तप्रतिषेधः * **अञ्चेर्नत्वे व्यक्तस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः। व्यक्तमनृतं कथयतीति** * अञ्जिविज्ञानात् सिद्धम् * **अञ्जिविज्ञानात् सिद्धमेतत्। नैतदञ्चे रूपम्। अञ्जेरेतद् रूपम्। अञ्चत्यर्थो वै गम्यते। कः पुनरञ्चत्यर्थः? अञ्चतिः प्रकाशने वर्तते। अञ्चितं गच्छति, प्रकाशयत्यात्मानमिति गम्यते। न वै लोकेऽञ्चितं गच्छतीति प्रकाशनं गम्यते। किं तर्हि? समाधानं गम्यते। समाहितो भूत्वा गच्छतीति।**

अञ्चु धातु के प्रकाश अर्थ में विद्यमान होने पर इस सूत्र की अतिव्याप्ति हो रही है। उसका निषेध करते हैं—**अञ्चेरिति**। अञ्चु धातु से पर में व्यक्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का निषेध कहना चाहिये। 'वि+अञ्चु+क्त=व्यक्त' यहाँ पर निष्ठातकार को नकार नहीं हुआ—'व्यक्तमनृतं कथयति'।

'अञ्चेर्नत्वे व्यक्तप्रतिषेधः' यह वार्तिक नहीं पढना चाहिये। 'व्यक्तम्' यह अञ्चु धातु का रूप नहीं है, अपितु अजि आप्याययने धा.पा.१७८५ धातु का रूप है। आप ने कहा—'व्यक्तम्' में अजि धातु है, परन्तु यहाँ अर्थ अञ्चु धातु के अर्थ का ही ज्ञान हो रहा है। प्रकाशन अर्थ में अञ्चु धातु है। 'अञ्चितं गच्छति' इस वाक्य से 'आत्मानं प्रकाशयति' यही अर्थ आता है। 'अञ्चितं गच्छति' इस वाक्य में 'अञ्चितम्' यह क्रियाविशेषण है। यहाँ पर प्रकाशत्वेन गमन पूज्य है, अतः पूजानिबन्धन नलोप तथा इट् का निषेध है। 'अञ्चितं गच्छति' इस वाक्य से लोक में प्रकाशन अर्थ ज्ञात नहीं होता है। तब कौन सा अर्थ ज्ञात होता है। वहाँ अञ्चु धातु से **समाधान**=गमन की व्याकुलता ही ज्ञात होती है—'समाहितो भूत्वा गच्छति'।

एवं तर्ह्यञ्चतेरङ्कः, अङ्कश्च प्रकाशनम्। अङ्किता गाव इत्युच्यते, अन्याभ्यो गोभ्यः प्रकाश्यन्ते * अञ्चत्यर्थ इति चेदञ्जेस्तदर्थत्वात् सिद्धम् * **अञ्चत्यर्थ इति चेदञ्जिरप्यञ्चत्यर्थे वर्तते।**

पुनः अञ्चु धातु का प्रकाशनार्थत्व सिद्ध करने के लिए अगला भाष्य का आरम्भ करते हैं—**एवं तर्हीति**। अच्छा तो अञ्चु धातु का ही 'अङ्कः' रूप बनता है। लोक में अङ्क पद से प्रकाशन अर्थ जाना जाता है। 'अङ्किता गावः' ऐसा कहा जाता है तथा 'इन गायों का अन्य गायों से प्रकाशित होना' अर्थ जाना जाता है। यदि 'अङ्किता गावः' इस वाक्य में प्रकाशन अर्थ है, तब जैसे अञ्चु धातु से 'अङ्कितः' रूपसिद्धि है, वैसे अजि धातु का भी 'अङ्कितः' रूप होता है। दोनों शब्द समान हैं तथा दोनों से प्रकाशन अर्थ ही ज्ञात होता है, अतः 'अङ्किता गावः' इस वाक्य से 'अङ्किताः' यह रूप अजि धातु का भी समझा जायेगा।

कथं पुनरन्यो नामाऽन्यस्याऽर्थे वर्तते? कथमञ्जिरप्यञ्चत्यर्थे वर्तते? अनेकार्था अपि धातवो भवन्तीति। अस्ति पुनः क्वचिद् अन्यत्राऽप्यञ्जिरप्यञ्चत्यर्थे वर्तते? अस्तीत्याह। अञ्जेरञ्जनम्, अञ्जनं च प्रकाशनम्। 'अङ्क्तेऽक्षिणी' इत्युच्यते यत् तत् सितं चाऽसितं चैतत् प्रकाशयति। तथाऽञ्जेर्व्यञ्जनं, व्यञ्जनं च प्रकाशनम्। यत् तत् स्नेहेन मधुरेण च जडीकृतानामिन्द्रियाणां स्वस्मिन्नात्मनि व्यवस्थापनं स रागस्तद् व्यञ्जनम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्वर्थं खल्वपि निर्वचनं 'व्यज्यतेऽनेनेति व्यञ्जन'मिति। {अञ्चोऽनपा}।

अच्छा तो आप यह बतायें कि अन्य शब्द अन्य अर्थ में कैसे होता है? अर्थात् अजि धातु अञ्चु धातु के अर्थ में क्यों होता है? वह इसलिए कि धातु अनेकार्थक भी होते हैं, अतः अजि धातु अनेकार्थत्वात् अञ्चु के अर्थ में भी है। तो क्या 'अङ्किता गावः' इस प्रयोग से भिन्न भी कहीं अजि धातु अञ्चु धातु के अर्थ में है? हाँ, इससे अन्यत्र भी अजि धातु अञ्चु के अर्थ में है। जैसे अजि धातु से ल्युट् करने पर 'अञ्जनम्' रूप होता है। 'अञ्जनम्' का अर्थ प्रकाशन है, अतः 'अङ्किता गावः' इस प्रयोग से अन्यत्र भी प्रकाशन अर्थ में अजि धातु का प्रयोग होता है। 'अङ्क्तेऽक्षिणी' ऐसा कहा जाता है। (इस वाक्य में 'अङ्क्ते' यह क्रियापद है) इस वाक्य से सित और असित का सुतरां विभाग होने से प्रकाशन अर्थ गम्य है। अजि धातु का ही 'व्यञ्जनम्' रूप है तथा **व्यञ्जनम्**=प्रकाशन है। तथा च 'व्यज्यते रसोऽनेनेति व्यञ्जनम्'। जिससे मधुर आदि रस प्रकाशित हों, उसे व्यञ्जन कहते हैं। एवं '**रज्यते**=प्रकाश्यतेऽनेनेति रागः'। स्नेह और मधुर करण से जडीकृत इन्द्रियों का उन्हीं में व्यवस्थापन राग है, राग ही व्यञ्जन है। अथ च लोक में व्यञ्जनपद से जो अर्थ प्रसिद्ध है, व्युत्पत्ति से भी वही अर्थ आता है, अतः 'व्यञ्जनम्', यह अन्वर्थसंज्ञा है। {**अञ्चोऽनपादाने**}।

निर्वाणोऽवाते ८.२.५०

इस सूत्र में 'अवाते' ऐसा पदच्छेद करना चाहिये।

सूत्रार्थ—'नि पूर्वक वा गतिगन्धनयोः धा.पा.१०५० से पर में वात के कर्ता नहीं होने पर निष्ठातकार को नकार आदेश हो'। जैसे—'निर्वाणोऽग्निर्मुनिर्वा'। वात कर्ता होने पर नत्व नहीं होगा। जैसे—'निर्वातो वातः'।

*** अवाताऽभिधाने * अवाताऽभिधान इति वक्तव्यम्। इहापि यथा स्याद्—निर्वाणोऽग्निर्वातेन। निर्वाणः प्रदीपो वातेनेति। {निर्वाणोऽवाते}।**

वात से भिन्न अभिधान में निष्ठातकार को नत्व कहना चाहिये, जिससे 'निर्वाणोऽग्निर्वातेन'; 'निर्वाणः प्रदीपो वातेन' यह भी रूपसिद्धि हो सके। यहाँ पर यह ध्येय है कि भाष्यकार ने जो उदाहरण दिया है, उसमें 'वातेन' यह करण में तृतीया है, कर्ता में नहीं। अन्यथा कर्ता में तृतीया मान लेने पर नत्व नहीं हो सकेगा।

यहाँ वार्तिककार का आशय यह है कि जहाँ पर निष्ठाप्रत्यय से वात

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अभिधेय है, वहाँ पर 'निर्वातो वातः' स्थल में नत्वनिषेध होगा; परन्तु जहाँ भाव में क्त प्रत्यय है, वहाँ वातकर्तृक होने पर भी नत्व होगा। जैसे 'निर्वाणो वातेन'।

यहाँ अन्य मत यह भी है कि यदि क्त प्रत्यय होने से वातकर्तृक वाच्य हो अथवा भाव वातकृर्तक हो तो वहाँ पर सर्वत्र नत्व का निषेध होगा— 'निर्वाणो वातः' निर्वातं वातेन'। भाष्यकार ने 'निर्वाणः प्रदीपो वातेन' यह जो उदाहरण दिया है, वहाँ पर वातकरणक नत्व का निषेध नहीं होगा। {**निर्वाणोऽवाते**}।

अनुपसर्गात् फुल्लक्षीबकृशोल्लाघाः ८.२.५५

अनुपसर्ग से पर में ञिफला विसरणे धा.पा.५१६, क्षीबृ मदे धा.पा.३८२, कृश तनुकरणे धा.पा.१२२७, लाघृ सामर्थ्ये धा.पा.११३ से पर में निष्ठा में फुल्ल, क्षब, कृश और उल्लाघ निपातित है। 'फुल्लः' में निष्ठातकार को लत्व निपातित है। यहाँ क्तवतु का एकदेश क्त का भी ग्रहण होने से 'फुल्लवान्' यह भी रूप होता है। क्षबादि में मात्र क्त प्रत्यय का ही ग्रहण होता है तथा निपातनात् त् शब्द का लोप है। इडागम की कर्तव्यता में तलोप के असिद्ध होने से निपातनात् इट् का ही अभाव समझना चाहिये।

अनुपसर्गादित्युच्यते तत्रेदं न सिध्यति—परिकृशमिति * कृशेः क एष विहित इगुपधात् * **नैतद् निष्ठान्तम्। किं तर्हि? कृश एष इगुपधात् को विहितः। नैवं शक्यम्** * स्वरे हि दोषो भवति परिकृशे * **नैवं शक्यम्। इह हि परिकृश इति, स्वरे दोषः स्यात्। 'अन्तः' 'थाथघञ्क्ताजबित्रकाणा'मित्येष स्वरः प्रसज्येत** * पदस्य लोपो विहित इति मतम् * **एवं तर्हि पदस्य लोपोऽत्र द्रष्टव्यः। पर्यागतः कार्श्येन परिकृशः।**

सूत्र में अनुपसर्ग से पर में क्षीबादि से पर में निष्ठा त् का लोप निपातित करते हैं, अतः 'परिकृशम्' यहाँ उपसर्ग से पर में है जिस से लोप प्राप्त नही हो सकेगा। इसका उत्तर देते हैं—**कृशेरिति**। यहाँ पर 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः' ३.१.१३५ सूत्र से 'क' प्रत्यय हुआ है, क्त प्रत्यय नहीं। जी नहीं, आप यहाँ 'क' प्रत्यय नहीं कह सकते हैं। यदि 'क' प्रत्यय मानेंगे तो 'परिकृशः' यहाँ पर स्वर में दोष होगा। तनूकरणार्थक कृश धातु से पर में निष्ठासंज्ञक क्त प्रत्यय करने पर 'गतिरनन्तरः' ६.२.४६ से आद्युदात्त होता है—'इह हि परिकृश इति'। यदि तनूभवन अर्थ में कृश को मानेंगे तथा उससे पर में क्त करेंगे तो 'अन्तः' ६.२.६२ के अधिकार में विहित 'थाऽथघञ्क्ताजबित्रकाणाम्'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

६.२.१४४ से अन्तोदात्त होगा। अच्छा तो इस दोष का निवारण करने के लिए 'परिकृशः' में मध्यमपदलोपीसमास मानेंगे—'पर्यागतः कार्श्येन इति परिकृशः'। इस विग्रहवाक्य में 'परि' का योग गम् धातु के साथ है, समास में गत शब्द का लोप होने से अप्रयोग है। इस तरह 'परिकृशः' में गम्लृ धातु के प्रति 'परि' की उपसर्गसंज्ञा है, कृश धातु के प्रति नहीं; अतः अनुपसर्ग 'परि' से पर में निष्ठान्त कृश शब्द है। 'तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्ययद्वितीयाकृत्याः' ६.२.२ सूत्र से अव्ययस्वर प्राप्त होने से उसको आद्युदात्त होगा।

* जगत्यनूना भवति हि रुचिरा * **जगत्यनूना भवति हि रुचिरा** * फलेर्लत्वे उत्पूर्वस्योपसंख्यानम् * **फलेर्लत्वे उत्पूर्वस्योपसंख्यानं कर्तव्यम्। उत्फुल्लोऽनृतं कथयति। अत्यल्पमिदमुच्यते उत्पूर्वादिति** * उत्फुल्लसम्फुल्लयोरिति वक्तव्यम् * **उत्फुल्लः। सम्फुल्लः।**

कृशेः क एष हि विहित इगुपधात्,
स्वरे हि दोषो भवति परिकृशे।
पदस्य लोपो विहित इति मतं,
जगत्यनूना भवति हि रुचिरा।।१।।

जो परिकृश शब्द की व्युत्पत्ति दिखायी गयी है, वह रुचिरा एवं स्वर तथा रूप में दोष न होने से **अनूना**=परिपूर्ण है।

ञिफला धातु से पर में निष्ठा त को लत्व की कर्तव्यता में उत्पूर्वक फुल से पर क्त को भी लत्व कहना चाहिये। जैसे—'उत्फुल्लोऽनृतं कथयति'।

उत् से पर में फुल धातु से विहित क्त को लत्वविधान में आप ने जो बताया वह न्यून है। आप को उत्पूर्वक तथा सम्पूर्वक फुल से विहित क्त को लत्व कहना चाहिये। जैसे—'उत्फुल्लः सम्फुल्लः'।

श्लोकवार्तिकार्थ—'कृश धातु से 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः' ३.१.१३५ सूत्र से 'क' प्रत्यय का विधान करने में 'परिकृंशः' में स्वरदोष होगा, अतः 'परिकृंशः' में क्त प्रत्यय ही कीजिये तथा मध्यमपद का लोप करके 'परिकृंशः' समझिये, इस में कोई दोष नहीं है। {अनुपसर्गात् फुल्ल-}।

नुदविदोन्दत्राघ्राह्रीभ्योऽन्यतरस्याम् ८.२.५६

सूत्रार्थ—'नुद, विद, उन्द, त्रा, घ्रा और ह्री धातु से पर में निष्ठा तकार को विकल्प से नत्व हो'। यहाँ सहचरितन्याय के द्वारा उन्दी के साहचर्य से रौधादि प्रकरण में पठित विद धातु का ग्रहण है। णुद प्रेरणे धा.पा.१२८२ एवं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

णुद प्रेरणे धा.पा.१४२६, विद विचारणे धा.पा.१४५०, उन्दी क्लेदने धा.पा. १४५७, त्रैङ् पालने धा.पा.६६५, घ्रा गन्धोपादाने धा.पा.६२६ से निष्ठा त को नित्य नत्व प्राप्त होने पर तथा ह्री लज्जायाम् धा.पा.१०८५ से पर में निष्ठा तकार को नकार अप्राप्त होने पर इस सूत्र से निष्ठा तकार को नत्वविकल्प किया गया है। जैसे—'नुन्नः-नुत्तः। विन्नः-वित्तः। उन्नः-उत्तः। त्राणः-त्रातः। घ्राणः-घ्रातः। ह्रीणः-ह्रीतः।

किमयं विधिराहोस्वित् प्रतिषेधः? किं चातः? यदि तावद् विधिर्नकारग्रहणं कर्तव्यम्। न कर्तव्यम्। प्रकृतमनुवर्त्तते। क्व प्रकृतम्? 'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च द' इति। तद्वा अनेकेन निपातनेन व्यवच्छिन्नं न शक्यमनुवर्त्तयितुम्। अथ प्रतिषेधो, ह्रीग्रहणमनर्थकं, न ह्येतस्माद् विधिरस्तीति।

क्या प्रकृतसूत्र विधि है, अथवा निषेध है। यह विधि हो, अथवा निषेध हो, इस में आप को क्या भेद लगता है, अर्थात् प्रश्न में हेतु क्या है? आपत्ति यह है कि यदि यह विधिसूत्र होगा तो नकार का ग्रहण करना होगा। यदि इसे प्रतिषेध मानेंगे तो नकार का ग्रहण नहीं करना होगा। 'नुदादि से पर में निष्ठा तकार को जो प्राप्त है, वह न हो', यह नकारग्रहण के अभाव में भी अर्थ लब्ध होगा। वह इस तरह कि प्रकरण प्रतिषेध का है, अतः प्रकरण से प्रतिषेधपक्ष में 'न' का ग्रहण हो जायेगा। जी नहीं, विधिसूत्रपक्ष में नकार का ग्रहण नहीं करना पडेगा। पूर्वसूत्र 'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः' ८. २.२४ में 'न' का ग्रहण किया गया है, उसका अनुवर्त्तन हो जायेगा। अथवा अनेक निपात से व्यवच्छिन्न 'न' पद का अनुवर्तन किया जा सकता है; अतः विधिसूत्रपक्ष में अलग से सूत्र पढने की आवश्यकता नहीं है।

यदि नुदादि सूत्र को प्रतिषेधसूत्र मानेंगे तो उस पक्ष में ह्रग्रहण व्यर्थ होगा, क्योंकि उसी का निषेध किया जाता है, जिसकी विधि होती है। ह्री से पर में निष्ठा तकार को किसी भी सूत्र से नत्व विहित नहीं है, जिसका निषेध करेंगे।

यथेच्छसि तथाऽस्तु। अस्तु तावद् विधिः। ननु चोक्तं—'नकारग्रहणं कर्तव्यम्। न कर्तव्यम्। प्रकृतमनुवर्त्तते। क्व प्रकृतम्? 'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च द' इति। तद्वा अनेकेन निपातनेन व्यवच्छिन्नं न शक्यमनुवर्त्तयितु'मिति। सम्बन्धमनुवर्तिष्यते। अथवा क्रियते न्यास एव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्विनकारको निर्देशः । 'नुदविदोन्दत्राघ्राह्रीभ्योऽन्यतरस्यां न्रध्याख्यापॄमूर्च्छिमदा'-मिति ।

अच्छा तो आप की जैसी इच्छा हो वैसा मान लीजिये । विधिसूत्र मानने में आप ने कहा था कि नकारग्रहण करना पडेगा । यह दोष नहीं होगा । विधि मानने में नकार का ग्रहण नहीं करना पडेगा । पूर्व सूत्र 'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः' ८.२.२४ में 'न' का ग्रहण किया गया है, उसका अनुवर्त्तन हो जायेगा । अथवा अनेक निपात से व्यवच्छिन्न 'न' पद का अनुवर्तन किया जा सकता है; इस तरह सम्बन्ध का अनुवर्तन होगा । अथवा सूत्र में ही नकार का ग्रहण है । आचार्य ने संहितापाठ में 'नुदविदोन्दत्राघ्राह्रीभ्योऽन्यतरस्यान्नध्या-ख्यापॄमूर्च्छिमदाम्' ऐसा दो नकार का निर्देश किया है, अतः विधिसूत्रपक्ष में नकार का ग्रहण नहीं करना पडेगा ।

अथवा पुनरस्तु प्रतिषेधः । ननु चोक्तं—'ह्रीग्रहणमनर्थकं, न ह्येतस्माद् विधिरस्ती'ति । नानर्थकम् । एतदेव ज्ञापयत्याचार्यो—'भवत्येतस्माद् विधि'-रिति यदयं ह्रीग्रहणं करोति ।

अथवा प्रतिषेधपक्ष ही मानिये । इस पक्ष में आप ने जो दोष दिया था कि ह्रीग्रहण अनर्थक हो जायेगा, क्योंकि ह्री से पर में निष्ठा तकार को विधि नहीं है । यह कोई दोष नहीं है । प्रतिषेधपक्ष में ह्रीग्रहण अनर्थक नहीं होगा । सूत्र में यही ह्रीग्रहण ज्ञापन करेगा—'ह्री धातु से पर में भी निष्ठा तकार को नत्व होता है' । {नुदविदोन्दत्राघ्राह्रीभ्योऽ-} ।

वित्तो भोगप्रत्यययोः ८.२.५८

सूत्रार्थ—'भोग और प्रतीति अर्थ में 'वित्तः' यह निपातन है' ।

बहव इमे विदयः पठ्यन्ते तत्र न ज्ञायते कस्य नित्यं नत्वं कस्य विभाषा कस्य प्रतिषेधः कस्य इडिति? अत उत्तरं पठति—* यस्य विदेः श्नशकौ 'त'परत्वे तनवचने तदु वा-प्रतिषेधौ * श्नविकरणस्य विभाषा, शविकरणस्य प्रतिषेधः ।

अब यहाँ शङ्का करते हैं कि-धातुपाठ में बहुत से विद धातु पढे गये हैं । जैसे—१०६४, ११७१, १४५०, १४३२, १७०६ । यहाँ यह निश्चय नहीं हो पा रहा है कि किस विद धातु से पर में निष्ठा तकार को नित्य नत्व विहित है, किसको विकल्प से विहित है तथा किस को प्रतिषेध है एवं किसको इड्विधि है?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अब इसका उत्तरपक्ष कहते हैं—'नुदविदोन्द--' यहाँ पर रुधादिगणपठित उन्दी के साहचर्य से विद विचारणे यह रुधाद्रि धातु ही लिया जाता है। रुधादि श्नम् विकरण है, अतः रुधादिगणपठित विद धातु से पर में निष्ठा तकार को विकल्प से नत्व निपातित है। यद्यपि नुद तौदादिक है तथा उसका साहचर्य विद धातु को प्राप्त है, तुदादिगण में विद भी पढा गया है, तथापि नुद तौदादिक है तथा उसका साहचर्य विद धातु को प्राप्त है। तुदादिगण में विद भी पढा गया है। तथापि शब्दपरविप्रतिषेध के द्वारा उन्दी का ही साहचर्य लिया जायेगा, नुद का नहीं। विदृ लाभे धातु से पर में विहित क्त को भोग और प्रत्यय अर्थ में नत्व का निषेध है तथा अन्यत्र नत्व है। विद सत्तायाम् इस धातु से पर में निष्ठा तकार को नकार है। विद ज्ञाने धातु से पर में विहित क्त प्रत्यय का इट् से व्यवधान होने पर नत्व नहीं होता है। जैसे—'विदितम्'। तुदादिगणपठित विद धातु का वसु प्रत्यय पर रहते 'विभाषा गमहनविदविशाम्' ७.२.६८ से विकल्प से इट् विहित है, उसको 'यस्य विभाषा' ७.२.१५ से निष्ठा में इट् का निषेध है।

* श्यन्विकरणान्नविधिश्छिदितुल्यः * **श्यन्विकरणाद् विदेर्नविधिश्छिदिना तुल्यः** * लुग्विकरणो वलि पर्यवपन्नः * **लुग्विकरणो विदिर्वलादौ पर्यवपन्नः। एष एवाऽर्थः—**

ययोर्विद्योः श्नशावुक्तौ तयोर्नत्वस्य वानञौ।
ययोस्तु श्यल्लुकौ ताभ्यां छिदिवच्चेड्वदिष्यते।।

छिदि के तुल्य श्यन्विकरण विद धातु से पर में निष्ठा तकार को नत्व है। जैसे—छिदिर् धातु से निष्ठा तकार को नित्य नत्व होता है, वैसे विद धातु से पर में निष्ठा तकार को नित्य नत्व होगा—''विन्नः'। जो लुग्विकरण विद धातु, अर्थात् विद ज्ञाने अदादिगणपठित विद धातु से पर में वलाद्यार्द्धधातुक क्त को इट् का आगम होता है। इसी अर्थ को श्लोकवार्तिक से कहते हैं—

जिस विद धातु से श्नम् विहित है, उससे पर में क्त को विकल्प से नत्व होगा, जिस विद धातु से श विकरण विहित है, उससे पर में निष्ठा 'त' को नत्व का निषेध होगा। जिससे श्यन् विहित है उससे पर मे विहित क्त प्रत्यय को विछिवत् नित्य नत्व होगा, जिस विद धातु से पर में शप् का लुक् है, उससे पर में विहित क्त को इट् का आगम होगा।

अपर आह—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

*** वेत्तेस्तु विदितो निष्ठा विद्यतेर्विन्न इष्यते।**
विन्त्तेर्विन्नश्च वित्तश्च वित्तो भोगेषु विन्दते।। *

दूसरे आचार्य कहते हैं—विद ज्ञाने धातु से पर में क्त को इडागम करके 'विदितः', विद विचारणे धातु से क्त का विधान कर 'विन्नः', विद्लृ लाभे धातु से प्रतीति एवं भोग अर्थ में 'वित्तः' तथा प्रतीति एवं भोग से भिन्न अर्थ में 'विन्नः' यह रूप होगा। {**वित्तो भोगप्रत्यययोः**}।

भित्तं शकलम् ८.२.५९

सूत्रार्थ—'शकल=खण्ड-खण्ड अर्थ में भिदिर् विदारणे धा.पा.१४४० से विहित क्त प्रत्यय को नत्वाभाव निपातित है'—'भित्तम्' ऐसा। शकल से भिन्न अर्थ में निष्ठा तकार को नत्व हो कर 'भिन्नम्' यह रूप बनेगा।

'भित्तं शकल'मित्युच्यते तत्रेदं न सिध्यति-भित्तं भिन्नमिति। नैष दोषः—सर्वत्रैवाऽत्र भिदिर्विदारणसामान्ये वर्तते, तत्राऽवश्यं विशेषार्थिना विशेषोऽनुप्रयोक्तव्यः-भिन्नम्। किं तर्हि? भित्तमिति।

*** तत्वमभिधायकं चेच्छकलस्याऽनर्थकः प्रयोगः स्यात्।**
शकलेच चाऽप्यभिहिते न भवति तत्वं निगमयामः।। *

सूत्र में शकलार्थक भित्त शब्द का सामानाधिकरण्य नत्वघटित भिन्न शब्द भी है, अतः भिन्न शब्द के शकलार्थक होने से नत्वाऽभाव की आपत्ति होगी, जिससे 'भित्तं भित्तम्' यही रूप होगा, 'भित्तं भिन्नम्' यह रूप नहीं हो सकेगा। 'भित्तं भिन्नम्' यह भी रूप हो सके,, इसके लिए अलग से वचन कहना होगा।

यह कोई दोष नहीं है। शकल, पट आदि अनेक अर्थों में भिदिर् विदारणे धातु है। भित्त शब्द को सामान्य अर्थ में संस्कार करेंगे; पुनः शब्दान्तर-प्रयोगसमधिगम्य शकलार्थक भिन्न शब्द बहिरङ्ग होने से नत्वाभाव का निमित्त नहीं हो सकेगा। इस तरह जब सामान्य अर्थ में पद का संस्कार किया जायेगा, तब उस शब्द से विशेष अर्थ वाच्य नहीं होगा तथा जबं विशेष अर्थ में शब्द का संस्कार किया जायेगा, तब उससे सामान्य अर्थ वाच्य नहीं होगा।

विशेष अर्थ में संस्क्रियमाण भित्त शब्द शकल अर्थ में रूढ है, अतः रूढ स्थल में भिदि क्रिया मात्र व्युत्पत्तिनिमित्त होगी, प्रवृत्तिनिमित्त नहीं। अथवा जिस विदारणक्रिया से शकल उत्पन्न होता है, उस विदारणक्रिया को ही भित्त शब्द उत्पन्न करता है; परन्तु अनेक क्रियासम्बन्ध सम्भव होने पर भी सम्पन्न शकल की अन्य विदारण क्रिया का प्रतिपादन तथा क्रियान्तर का व्यवच्छेद के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लिए भिन्न शब्द का प्रयोग में कोई विरोध नहीं है। यदि कोई विशेष अर्थ का बोध कराना चाहता है तो उसके लिए विशेषार्थवाचक विशेष शब्द का भी प्रयोग करना चाहिये। जैसे क्रियाप्रवृत्तिनिमित्त विदारण अर्थ का बोध कराना हो तो 'भिन्नम्' तथा शकलार्थप्रवृत्तिनिमित्त का बोध कराना हो तो "भित्तं भिन्नम्' का प्रयोग करना चाहिये।

तत्त्वमिति। यदि भित्त शब्द शकल अर्थ को कह रहा हो तो वहाँ पर शकल शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहिये। यदि किया जाता है तो दोनों ही पद व्यर्थ हो जाते हैं। यदि शकल पद से कहीं पर भित्त अर्थ उक्त हो रहा हो तो वहाँ पर उसी अर्थ में भित्त शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहिये। {भित्तं शकलम्}।

क्विन्प्रत्ययस्य कुः ८.२.६२

'क्विन् प्रत्ययो यस्मादसौ क्विन्प्रत्ययस्तस्य क्विन्प्रत्ययस्य' ऐसा बहुव्रीहिघटित अर्थ है।

सूत्रार्थ—'जिसे क्विन् प्रत्यय विहित है उसको कवर्ग अन्तादेश हो'। जैसे युजिर् योगे धा.पा.१४४५ से 'युनक्ति इति युङ्'।

प्रत्ययग्रहणं किमर्थं, न 'क्विनः कु'रित्येवोच्येत? 'क्विनः कु'रितीयत्युच्यमाने वकारस्यैव तु कुत्वं प्रसज्येत। ननु च लोपे कृते न भविष्यति। अनवकाशं कुत्वं लोपं बाधेत। सावकाशं कुत्वम्। कोऽवकाशः? अनन्त्यः। कथं पुनः सत्यन्त्येऽनन्त्यस्य कुत्वं स्यात्?

क्विन् मात्र प्रत्यय है, उसका कहीं पर भी अन्य नहीं होने से कोई व्यभिचार नहीं है, अतः 'क्विनः' इतना ही सूत्र पढ देते, इससे प्रत्यय ही क्विन् लिया जाता, पुनः सूत्र में प्रत्ययग्रहण किस लिए है? यदि 'क्विनः कुः' इतना मात्र सूत्र पढते तो 'क्विनः' यह स्थानषष्ठी होती, अतः 'क्विन् प्रत्यय को ही कुत्व हो', ऐसा अर्थ होने पर लोप के द्वारा अनुबन्ध का अपहार हो जाने से शेषभाग 'व' बँचेगा, उसी को कुत्व होने लगेगा, जो इष्ट नहीं है। जी नहीं, 'क्विनः कुः' ऐसा सूत्र पढने पर वकार को कुत्व भी प्राप्त होगा, तथा 'वेरपृक्तस्य' ६.१.६७ से अन्तरङ्ग लोप भी प्राप्त होगा। वकारलोप कुत्व का बाध कर लेगा, जिससे वकोर को कुत्व नहीं हो सकेगा, अतः प्रत्ययग्रहण किया गया है।

अच्छा तो यहाँ पर वलोप भी प्राप्त है तथा कुत्व भी प्राप्त है, परन्तु

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निरवकाश होने से कुत्व वलोप का बाध कर लेगा। जी नहीं, कुत्व सावकाश है। कहाँ सावकाश है? क्विन् प्रत्यय की अपेक्षा अनन्त्य प्रकृति में कुत्व चरितार्थ होगा, इस सूत्र में 'पदस्य' का अनुवर्तन होने से पद के अन्त्य को समझना चाहिये। यदि 'पदस्य' को स्थानषष्ठी मानेंगे तो अन्त्य अर्थ की उपस्थिति होने से पद के अन्त्य को ही कुत्व होगा, परन्तु यदि 'पदस्य' यहाँ पर अवयवषष्ठी मानेंगे तो 'घृतं स्पृशति इति घृतस्पृक्' यहाँ पर भी कुत्व होने लगेगा। अच्छा तो यदि अन्त्य में कुत्व सम्भव है तो अन्त्य को छोड कर आप अनन्त्य को क्यों कुत्व करना चाहते हैं?

आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति-'नान्त्यस्य कुत्वं भवती'ति यदयं 'क्विनः कु'रिति कवर्गनिर्देशं करोति। इतरथा हि तद्गुणमेवाऽयं निर्दिशेत्। इदं तर्हि प्रयोजनं—येभ्यः क्विन् प्रत्ययो विधीयते तेषामन्यप्रत्ययान्तानाम् अपि पदान्ते कुत्वं यथा स्याद्—मानो अस्राक्। मानो अद्राक्।

क्विनः कुरिति वक्तव्ये प्रत्ययग्रहणं कृतम्।
क्विन्प्रत्ययस्य सर्वत्र पदान्ते कुत्वमिष्यते।।१।।

आचार्य अपने आचारण से बताते हैं कि 'अन्त्य को कुत्व नहीं होता है', इसलिए आचार्य ने 'क्विनः कुः' यहाँ पर 'कुः' यह कवर्ग का निर्देश किया है। अनेक स्थानी के स्थान पर अनेक आदेश करने के लिए वर्गग्रहण है। यदि वकार स्थानी को घकार आदेश इष्ट होता तो 'क्विनः कुः' ऐसा सूत्र न करके 'क्विनः घः' ऐसा सूत्र करते। इस तरह 'वर्गाणां तृतीयचतुर्थाः' इस शिक्षाग्रन्थ में वकार और घकार का गुणसाम्य प्रतिपादन होने से वकार के स्थान पर घकार का विधान हो जाता, पुनः आचार्य ने जो यह वर्गग्रहण किया है, उससे बताते हैं कि-'अन्त्य को कुत्व नहीं होता है'।

अच्छा तो प्रत्ययग्रहण का यह प्रयोजन है कि जिससे क्विन् प्रत्यय विहित है, उस प्रत्ययान्त प्रकृति के क्विन् प्रत्यय परे रहते अथवा क्विन् के लोप हो जाने पर भी पदान्त में कुत्व हो। जैसे—'मा नो अस्राक्। मा नो अद्राक्'। यहाँ पर सृज विसर्गे धा.पा.१४१५ तथा दृशिर् प्रेक्षणे धा.पा.९८८ से माङ् उपपद रहते लुङ्, तिप्, 'बहुलं छन्दसि' ७.३.९७ इस सूत्र से सिच् को इट् का अभाव है। 'सृजिदृशोर्झल्यमकिति' ६.१.५८ से धातु को अडागम, यण् है। लुङ्ङन्त से क्विन् प्रत्यय करके 'न माङ्योगे' ६.४.७४ से लुङ् के योग में अडागम का निषेध होने पर भी 'बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि' ६.४.७५ से अडागम, संयोगान्तलोप, 'व्रश्चभ्रस्जसृजमृज-' ८.२.३६ से षत्व प्राप्त होने पर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुत्व के द्वारा ज को ग तथा श को ख आदेश हुआ है। 'वाऽवसाने' ८.४.५६ से गकार को चर्त्व कर 'क' आदेश है। सूत्र में प्रत्ययसामर्थ्य से षत्व की कर्तव्यता में 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' ८.२.१ के द्वारा कुत्व का असिद्धत्व नहीं है, अपितु कुत्व ही प्रत्ययग्रहणसामर्थ्य से षत्व का अपवाद होगा।

'क्विनः कुः' की कर्तव्यता में आचार्य ने प्रत्ययग्रहण किया है, इसका अभिप्राय यह है कि सर्वत्र पदान्त में क्विन्प्रत्यय की प्रकृति को कुत्व हो'। {**क्विन्प्रत्ययस्य कुः**}।

अहन् ८.२.६८

'अहन्' यह लुप्तषष्ठीक पद होने से स्थानी है। यह एक पद का सूत्र है।

सूत्रार्थ—'पदान्त में अहन् शब्द को रुत्व हो'। जैसे—'अहोभ्याम्, अहोभिः'।

* रुत्वविधावह्नो रूपरात्रिरथन्तरेषूपसंख्यानम् * **रुत्वविधावह्नो रूपरात्रिरथन्तरेषूपसंख्यानं कर्तव्यम्। अहोरूपम् अहोरात्रः। अहोरथन्तरं साम।** {अहन्}।

रुत्वविधि में अहन् शब्द को रूप, रात्रि और रथन्तर शब्द पर रहते रुत्व कहना चाहिये। जिससे 'अहोरूपम्, अहोरात्रः, अहोरथन्तरम्' में भी अहन् को रुत्व हो सके। 'अहोरूपम्' यहाँ पर 'अह्नो रूपम्' ऐसा षष्ठीसमास है। 'अहश्च रात्रिश्च' इस विग्रह में 'अहोरात्रः' यह रूप है। 'अहःसर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेः' ५.४.८७ से समासान्त 'अ' प्रत्यय करके इकार का लोप है। एकदेशविकृतन्याय से रात्रशब्द भी रात्रि शब्द है। उसके पर रहते अहन् को रुत्व हुआ है। {**अहन्**}।

रोऽसुपि ८.२.६९

यहाँ पूर्व सूत्र से स्थानी 'अहन्' की अनुवृत्ति है। 'रः' प्रथमैकवचनान्त आदेशवचन है। 'असुपि' निषेधवचन है।

सूत्रार्थ—'अहन् शब्द को रुत्व हो, सुप् पर रहते'। जैसे 'अहरहः, अहर्गणः'।

* असुपि रादेशे उपसर्जनसमासे प्रतिषेधोऽलुकि * **असुपि रादेशे उपसर्जनसमासे अलुकि प्रतिषेधो वक्तव्यः। दीर्घाहा निदाघ इति** * सिद्धं तु सुपि प्रतिषेधात् * **सिद्धमेतत्। कथम्? 'सुपि प्रतिषेधात्'। प्रसज्याऽयं प्रतिषेधः—'सुपि ने'ति। इहापि तर्हि न प्राप्नोति अहर्ददाति अहर्भुङ्क्त इति** * लुपि चोक्तम् * **लुपि चोक्तम्। किमुक्तम्? 'अह्नो रविधौ**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लुमता लुप्ते प्रत्ययग्रहणं न भवती'ति।

सूत्र में 'असुपि' को पर्युदासार्थक मान कर पूर्वपक्ष वार्तिक का अवतरण करते हैं—**असुपि रादेशे इति**। पर्युदासार्थक 'असुपि' के होने से सुप्भिन्न सुप्सदृश पर रहते अहन् शब्द को रेफादेश हो', यह अर्थ है। 'दीर्घम् अहो यस्मिन्नसौ दीर्घाहा निदाघः'। यहाँ पर अहन् पद उपसर्जन है। यहाँ सुप्सदृश हल् पर में है, अतः अहन् शब्द को रेफादेश प्रसंग होगा, जब कि यहाँ रुत्व अभीष्ट है, यहाँ रेफादेश न हो, इसके लिए 'अलुकि' ऐसा प्रतिषेध कहना चाहिये।

उपसर्जन समास 'दीर्घम् अहो यस्मिन्नसौ दीर्घाहा निदाघः' में रेफादेश का वारण करने के लिए 'अलुकि' यह निषेधवचन पढने की आवश्यकता नहीं है। सूत्र में सुप् पर रहते रेफादेश का निषेध किया गया है। उसी से उपसर्जन-समास में भी रेफादेश का वारण हो जायेगा। 'असुपि' में नञ् पर्युदासार्थक नहीं है, अपितु प्रसज्यार्थक है, अतः 'सुपि रेफादेश न' यही अर्थ होगा। इस तरह निषेधार्थक होने से उपसर्जन समास 'दीर्घाहा निदाघः' में रेफादेश निषिद्ध हो जायेगा।

यदि 'असुपि' में प्रसज्यार्थक नञ् मानेंगे तो 'अहर्ददाति, अहर्भुङ्क्ते' यहाँ पर भी सुप् पर होने से रेफादेश नहीं होना चाहिये, परन्तु यहाँ रेफादेश इष्ट है। उत्तरभाष्य-लुक् के विषय में बताया जा चुका है। समास स्थल में 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' २.४.७१ सू सुप् का लुक् हुआ है। लुमान् शब्द से जिसका अभाव बताया जायेगा, उसको प्रत्ययलक्षण की कर्तव्यता में 'न लुमताऽङ्गस्य' १.१.६३ निषेध कर देगा, अतः जहाँ लुमान् शब्द के द्वारा अहन् से पर में विहित सुप् का लुक् होगा, वहाँ पर रेफादेश की कर्तव्यता में प्रत्ययलक्षण का निषेध हो जायेगा, अतः 'दीर्घाहा निदाघः' में लुक् होने से प्रत्ययलक्षण के द्वारा सुप् नहीं आयेगा, जिससे रेफादेश प्राप्त नहीं है। 'अहर्ददाति, अहर्भुङ्क्ते' में लुप्शब्द के द्वारा सुप् का अपहार है, अतः यहाँ भी प्रत्ययलक्षण न होने से 'असुपि' निषेध नहीं होगा, जिससे रेफादेश सिद्ध हो जा रहा है। {रोऽसुपि}।

अम्नरूधरवरित्युभयथा छन्दसि ८.२.७०

सूत्रार्थ—'अम्नन्, रूधर और अवर शब्द को वेद में उभयथा=रुत्व और रेफादेश, दोनों विकल्प से हो'। जैसे रुत्व आदेश होने पर 'अम्न एव', रेफादेश होने पर 'अम्नरेव' रूप होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

* छन्दसि भाषायां च प्रचेतसो राजन्युपसंख्यानम् * **छन्दसि भाषायां च प्रचेतसो राजन्युपसंख्यानं कर्तव्यम्। प्रचेतो राजन्। प्रचेता राजन्**
* अहरादीनां पत्यादिषूपसंख्यानम् * **अहरादीनां पत्यादिषूपसंख्यानं कर्तव्यम्। अहर्पतिः। अहः पतिः। अह ≍ पतिः। अहर्पुत्रः। अहःपुत्रः। अह ≍ पुत्रः। गीर्पतिः। गीः पतिः। गी ≍ पतिः। धूर्पतिः धूःपतिः। धू ≍ पतिः।** {अम्नरूधरवरि}।

वेद और लोक में भी राजन् शब्द पर रहते प्रचेतस् शब्द को रुत्व और रेफादेश कहना चाहिये। जैसे रुत्व होने पर 'प्रचेतो राजन्', तथा रेफादेश होने पर 'प्रचेता राजन्' रूप होगा।

अहरादिगणपठित शब्दों को पत्यादिगणपठितशब्दों के पर रहते विकल्प से रुत्व तथा रेफादेश कहना चाहिये। जैसे रेफादेश होने पर 'अहर्पतिः', रुत्व होने पर 'अहः पतिः' रूप होगा। 'कुप्वोः ≍कः ≍पौ च' ८.३.३७ सूत्र से एक पक्ष में विसर्ग को उपध्मानीय होने से 'अह पतिः' यह भी रूप होगा। इसी तरह 'अहर्पुत्रः, अहः पुत्रः, अह पुत्रः। गीर्पतिः, गीः पतिः, गीं पतिः। धूर्पतिः, धूः पतिः धू पतिः' रूप होगा। **{अम्नरूधरवरि}**।

वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां ८.२.७२

'वसु' प्रत्यय है, अतः प्रत्यय के ग्रहण में तदन्त का ग्रहण होगा। स्रंसु धा.पा.७५४, ध्वंसु धा.पा.७५५ अवस्रंसन अर्थ में धातु है। 'ससजुषो रुः' ८.२.६६ सूत्र से लुप्तषष्ठीक 'स' पद का अनुवर्तन होता है तथा वह वसु का विशेषण होता है। 'अनडुह्' यह प्रातिपदिक का ग्रहण है। इस तरह सूत्रार्थ हुआ—'सान्त वस्वन्त तथा स्रंसादि को पदान्त में दत्व हो'। जैसे 'विद्वद्भ्याम्'। यहाँ ज्ञानार्थक विद धातु से वसु प्रत्यय है। 'स्रंसते इति स्रत्, ध्वंसते इति ध्वत्। अनडुद्भ्याम्, अनडुद्भिः'।

इह कस्मान्न भवति—पपिवान् तस्थिवानिति? 'सस्ये'ति वर्तते। एवमप्यत्र प्राप्नोति। लोपे कृते न भविष्यति। अनवकाशं दत्वं लोपं बाधेत। सावकाशं दत्वम्। कोऽवकाशः? पपिवद्भ्यां पपिवद्भिरिति। नैषोऽस्त्यस्याऽवकाशः—अत्रापि रुः प्राप्नोति, तद्यथैव रुं बाधते एवं लोपमपि बाधेत। न बाधते। किं कारणम्? येन नाऽप्राप्ते तस्य बाधनं भवति, न चाऽप्राप्ते रौ दत्वमारभ्यते, लोपे पुनः प्राप्ते चाऽप्राप्ते च यदि तर्हि 'सस्ये'ति वर्तते—अनडुद्भ्याम् अनडुद्भिरित्यत्र न प्राप्नोति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वचनाद् अनडुहि भविष्यति। यद्येवम्—

अब भाष्यकार पक्ष उठाते हैं—'पपिवान्, तस्थिवान्' भी वसुप्रत्ययान्त है। पदान्त भी है। यहाँ नकार को दत्व क्यों नहीं होता है? वह इसलिए कि पूर्व सूत्र 'ससजुषो रुः' ८.२.६६ से लुप्तषष्ठीक 'स' पद की अनुवृत्ति होती है। सान्त वस्वन्त को ही दत्व विहित है। 'पपिवान् तस्थिवान्' में वस्वन्त होने पर भी सान्त नहीं है, अतः 'न' को दत्व नहीं होता है। यदि 'स' का अनुवर्तन कर सान्त वस्वन्त लेंगे, तब भी 'पपिवान् तस्थिवान्' में दत्व होगा। 'पपि व न् स्' इस स्थिति में संयासेगान्तलोप प्राप्त है तथा दत्व भी प्राप्त है। 'स' की अनुवृत्ति होने पर दत्व से संयोगान्तलोप का बाध हो जायेगा, अतः दत्व ही होगा, संयोगान्तलोप नहीं।

यदि आप संयोगान्तलोप होने पर सकार के अभाव में दत्व का अभाव कहेंगे तो यह ठीक नहीं है, अनवकाश होने से दत्व के द्वारा संयोगान्तलोप का बाध हो जायेगा। जी नहीं, दत्व निरकाश नहीं है, वह 'पपिवद्भ्याम् तस्थिवद्भ्याम्' में चरितार्थ है, अतः 'पपि व न् स्, तस्थि व न् स्' इस स्थिति में संयोगान्त लोप का बाध नहीं कर सकेगा। जी नहीं, 'पपिवद्भ्याम् तस्थिवद्-भ्याम्' में भी दत्व चरितार्थ है। यहाँ रुत्व प्राप्त है और दत्व भी प्राप्त है। यहाँ पर दत्व जैसे रुत्व का बाध करेगा, वैसे संयोगान्त लोप का भी बाध करेगा। जी नहीं, दत्व संयोगादि लोप का बाध नहीं करेगा। इसका क्या कारण है? बाध का नियम है—'येन नाऽप्राप्ते यो विधिरारभ्यते स तस्य बाधको भवति'='जिसके अवश्यम्प्राप्त होने पर जिस विधि का आरम्भ होता है, वह उसका बाधक होता है'। रुत्व की अवश्यम्प्राप्ति होने पर दत्व का विधान है, अतः दत्व से रुत्व का बाध नहीं होगा। परन्तु लोप के प्राप्त तथा अप्राप्त होने पर दत्व का आरम्भ है, अतः दत्व संयोगान्तलोप का बाध नहीं करेगा। इस तरह 'पपिवान् तस्थिवान्' में दत्व की आपत्ति हट गयी।

* अनडुहो दत्वे नकारप्रतिषेधः * **अनडुहो दत्वे नकारस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः। अनड्वान्** * सिद्धं तु प्रतिपदविधानान्नुमः * **सिद्धमेतत्। कथम्? 'प्रतिपदविधानान्नुमः'। नुमः प्रतिपदविधानसामर्थ्याद् दत्वं न भविष्यति। यदि तर्हि यद्यद् अनडुहः प्राप्तं तत्तन्नुमः प्रतिपदविधानसामर्थ्याद् बाध्यते रुत्वमपि न प्राप्नोति—अनड्वांस्तत्रेति। नैष दोषः। 'यं विधिं प्रत्युपदेशोऽनर्थकः स विधिर्बाध्यते यस्य पुनर्विधेर्निमित्तमेव नाऽसौ बाध्यते'।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दत्वं च प्रति नुमः प्रतिपदविधिरनर्थको, रोः पुनर्निमित्तमेव। {वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः}।

अच्छा तो पूर्व सूत्र से 'सस्य' की अनुवृत्ति करने पर 'अनडुद्भ्याम्, अनडुद्भिः' यहाँ पर दत्व नहीं हो सकेगा, क्योंकि यह हान्त प्रातिपदिक है, सान्त नहीं। अच्छा तो यहाँ पर सूत्रारम्भसामर्थ्य से 'अहडुह्' में स का अन्वय नहीं करेंगे, अतः अनडुह् शब्द को पदान्त में दत्व हो जायेगा। यदि अनडुह् शब्द को पदान्त में दत्व कहेंगे तो दत्व की कर्तव्यता में नकार के दत्व का निषेध कहना होगा, अन्यथा 'अनड्वान्' यहाँ पर नकार को दत्व होने लगेगा। जी नहीं, दत्व की कर्तव्यता में नकार का प्रतिषेध नहीं कहना पडेगा। 'सावनडुहः' ७.१.८२ सूत्र से 'सु' पर रहते अनडुह् को नुम् का आगम हुआ है। यदि नकार को दत्व कर देंगे तो नुम्विधि व्यर्थ हो जायेगा, अतः हकार को ही दत्व होगा, नकार को नहीं।

यदि विधानसामर्थ्य से नकार के दत्वविधान का बाध करेंगे तो सर्वत्र नुम् को विधानसामर्थ्य से अविकृत ही रहना चाहिये, इस तरह 'अनड्वाँस्तत्र' में नुम् को रुत्व का भी बाध हो जाना चाहिये। यह कोई दोष नहीं है। जिस विधि के प्रति उपदेश अनर्थक होता है, उसी विधि का बाध किया जायेगा, परन्तु जिसके प्रति उपदेश अनर्थक नहीं है, अपितु उपदेश जिस विधि के प्रति निमित्त है, उस विधि का बाध नहीं होता है। नकार को दत्व करने में नुम्विधि अनर्थक हो रहा है, अतः नुम् से दत्व का बाध होगा, परन्तु रुत्व के प्रति नकार निमित्त है, अतः नुम्सामर्थ्य से रुत्व का बाध नहीं होगा। {वसुस्रंसुध्वंसु-}।

उपधायां च ८.२.७८

सूत्रार्थ—'हल् पर रहते धातु का उपधाभूत रेफ और वकार से से पूर्व इक् को दीर्घ हो'। जैसे—उर्द माने क्रीडायां च धा.पा.२० 'ऊर्दते'। इसी तरह कुर्द धा.पा.२१ खुर्द धा.पा.२२, गुर्द धा.पा.२३ से भी 'कूर्दते, खूर्दते, गूर्दते' रूप है। ये सभी धातु क्रीडार्थक हैं।

किमर्थमिदमुच्यते न 'हली'त्येव सिद्धम्? न सिध्यति। 'धोतो'रिति तत्र वर्तते' तत्र रेफवकाराभ्यां धातुर्विशेष्यते-रेफवकारान्तस्य 'धातो'रिति। किं पुनः कारणं पूर्वस्मिन् योगे रेफवकाराभ्यां धातुर्विशेष्यते न पुनः पदं विशेष्यते? नैवं शक्यम्। इहापि प्रसज्येत—अग्निर्वायुरिति। एवं तर्हि पूर्वस्मिन् योगे यद् धातुग्रहणं तदुत्तरत्र निवृत्तम्। एवमपि 'कुर्कुरः'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'मुर्मुर' इत्यत्रापि प्राप्नोति। एवं तर्हि अनुवर्त्तते तत्र धातुग्रहणं, न तु रेफवकाराभ्यां धातुर्विशेष्यते। किं तर्हि? इग् विशेष्यते—'रेफवकारान्तस्येको धातो'रिति। एवमपि कुर्कुरीयति मुर्मुरीयतीत्यत्रापि प्राप्नोति। तस्माद् धातु-रेव विशेष्यः। धातौ च विशेष्यमाणे उपधायां चेति वक्तव्यम्।

प्रश्नभाष्य—**किमर्थमिति**। 'हलि च' ८.२.७७ से ही हल् पर रहते धातु का उपधाभूत रेफ और वकार से पूर्व इक् को दीर्घ हो जायेगा, पुनः 'उपधायां च' इस सूत्र का आरम्भ क्यों करते हैं?

उत्तरभाष्य—**नेति**। 'हलि च' ८.२.७७ से 'उपधायां च' के विषय में हल् पर रहते धातु का उपधाभूत रेफ और वकार से पूर्व इक् को दीर्घ नहीं हो सकेगा। 'सिपि धातो रुर्वा' ८.२.७४ से 'धातोः' की अनुवृत्ति 'हलि च' ८.२.७७ में होती है। 'हलि च' ८.२.७७ सूत्र में रेफ और वकार से धातु को विशेषित करते हैं। अर्थ होता है—रेफान्त और वकारान्त धातु की उपधा इक् को दीर्घ हो'।

प्रश्नभाष्य—**किं पुनरिति**। क्या कारण है कि पूर्व योग 'र्वोरुपधाया दीर्घ इकः' ८.२.७६ सूत्र में रेफ और वकार धातु का विशेषण है, रेफ और वकार से पद को विशेषित क्यों नहीं किया जाता है?

उत्तरभाष्य—**नैवमिति**। यह सम्भव नहीं है। पूर्व योग 'र्वोरुपधाया दीर्घ इकः' ८.२.७६ सूत्र में रेफ और वकार से पद को विशेषित किया जाये तो 'अग्निर्वायुरिति' इस पद में भी रेफ से उपधा में इक् को दीर्घ की अतिव्याप्ति होगी, अतः रेफ और वकार से पद को विशेषित नहीं किया गया है। अच्छा तो पूर्व योग 'र्वोरुपधाया दीर्घ इकः' ८.२.७६ सूत्र में जो धातुग्रहण है, वह उत्तर सूत्र 'हलि च' ८.२.७७ में अनुवृत्त नहीं होगा। यदि उत्तर सूत्र 'हलि च' ८.२.७७ में 'धातोः' की अनुवृत्ति नही मानेंगे तो पद का अवयव रेफ की उपधा इक् को दीर्घ विहित होने से 'कुर्कुरः मुर्मुरः' में भी दीर्घ की आपत्ति होने लगेगी। अच्छा तो 'हलि च' ८.२.७७ में पूर्व सूत्र से 'धातोः' की अनुवृत्ति होगी, परन्तु रेफ और वकार से धातु को विशेषित नहीं करेंगे। अपितु इक् को विशेषित करेंगे-'रेफान्त और वकारान्त धातु का अवयव उपधा इक् को दीर्घ हो'। यहाँ भाष्य में अन्त शब्द समीपवाची है, अतः सूत्रार्थ होगा—'हल्परक रेफ और वकार की उपधा धात्ववयव इक् को दीर्घ हो'। इससे 'कूर्दते, खूर्दते, गूर्दते' यहीं पर दीर्घ होगा। 'कुर्कुरः, मुर्मुरः' में दीर्घ नहीं होगा। रेफ और वकार से इक् को विशेषित करने पर भी 'कुकुरं करोतीति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुर्कुरीयति, मुर्मुरं करोतीति मुर्मुरीयति' यहाँ पर 'सन्नाद्यन्ता धातवः' ३.१.३२ से धातुसंज्ञा होने से धात्ववयव रेफ की उपधा को दीर्घ प्राप्त होगा। यह दोष न हो, इसके लिए रेफ और वकार से धातु को विशेषित करना चाहिये। धातु को विशेषित करने पर 'उपधायां च' ८.२.७८ सूत्र का पढना अनिवार्य हो गया। अर्थ होगा—'धातु का उपधा जो रेफ और वकार, उससे उपधा इक् को दीर्घ हो'।

* उपधादीर्घत्वेऽभ्यासजिव्रिचतुर्णां प्रतिषेधः * **उपधादीर्घत्वेऽभ्यास-जिव्रिचतुर्णां प्रतिषेधो वक्तव्यः।** अभ्यास—**रियतुः रिर्युः। संविव्यतुः संविव्युः।** अभ्यास। जिव्रि—**चतुर्यिता चतुर्यितुम्** * उणादिप्रतिषेधश्च * **उणादीनां च प्रतिषेधो वक्तव्यः। किर्योः गिर्योरिति।**

उपधादीर्घ की विषयता में अभ्यास, जिव्रि, एवं चतुर् शब्द को दीर्घ का निषेध कहना चाहिये। अभ्यास को उपधा दीर्घ का निषेध जैसे—'रिर्यतुः रिर्युः'। 'संविव्यतुः संविव्युः'। जिव्रि शब्द 'जीर्यतेः क्रिन् रश्च वः' उ.सू.७२७ सूत्र से जॄ वयोहानौ धा.पा.१४९५ से औणादिक क्रिन् प्रत्यय हुआ है तथा धातु के रेफ को वकारादेश है। 'ॠत इद् धातोः' ६.१.१११ सूत्र से ॠत् को इत्त्व-रपरत्व होकर रेफ को वकारादेश है। 'जिव्रिः' यहाँ पर धातु का उपधा वकार से उपधा इक् को दीर्घ प्राप्त है, उसका निषेध कहना होगा। इसी तरह 'चतुर्यिता चतुर्यितुम्' में भी इक् को दीर्घ प्राप्त होगा जिसका निषेध कहना होगा। 'जिव्रिः' में उत्तरवार्तिक 'उणादिप्रतिषेधश्च' से निषेध प्राप्त है। पुनः पूर्व वार्तिक में 'जिव्रिः' का ग्रहण प्रपञ्चार्थ है। उणादि का निषेध कहना चाहिये। जैसे—'किर्योः गिर्योः', यहाँ पर किरि, गिरि यह औणादिक है। ओस् पर रहते 'किर्योः गिर्योः' रूप है। यहाँ हल् पर रहते रेफ की उपधा को दीर्घ प्राप्त है, उसका निषेध कहना चाहिये।

अभ्यासप्रतिषेधस्तावन्न वक्तव्यः। 'हली'त्युच्यते न चाऽत्र हलादिं पश्यामः। यणादेशे कृते प्राप्नोति। स्थानिवद्भावान्न भविष्यति। प्रतिषिध्य-तेऽत्र स्थानिवद्भावो 'दीर्घविधिं प्रति न स्थानिव'दिति। नैषोऽस्ति प्रतिषेधः। उक्तमेतत्—'प्रतिषेधे स्वरदीर्घयलोपेषु लोपाऽजादेश' इति। जिव्रिप्रतिषेधश्च न वक्तव्यः। 'उणादयोऽव्युत्पन्नानि प्रातिपदिकानि'। चतुर्यिता चतुर्यितुमिति—'सुपि ने'ति वर्तते। यद्येवं गीर्भ्यां गीर्भिरित्यप्रसिद्धिः। न सुपो विभक्तिविपरिणामाद् गीर्भ्यां गीर्भिरित्यदोषः। उणादिप्रतिषेधो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वक्तव्य' इति—परिहृतमेतद्, 'उणादयोऽव्युत्पन्नानि प्रातिपदिकानी'ति। {उपधायां च}।

अभ्यासप्रतिषेध जो पूर्व वार्तिक में किया था, उसे नहीं कहना चाहिये। हल् पर रहते रेफ और वकार की उपधा को दीर्घ कहा है। 'रिरि अतुस्, रिरि उस्', एवं 'संविवि अतुस्, संविवि उस्' यहाँ पर हल् पर में नहीं है, अतः दीर्घ की प्राप्ति न होने से उसका निषेध व्यर्थ है। यदि यणादेश हो जाने पर 'रिर्यतुः, संविव्यतुः' में हल्परता कहेंगे तो स्थानिवद्भाव से हल्परता का निषेध हो जायेगा। जी!, यहाँ पर दीर्घविधि के प्रति स्थानिवद्भाव का निषेध हो जाने पर हल्परता हो जायेगी। जी!, नहीं, यहाँ पर स्थानिवद्भाव का निषेध नहीं है। स्वर, दीर्घ, यलोप और लोपाजादेश की कर्तव्यता में प्रतिषेध नहीं होता है। अर्थात् 'पूर्वत्राऽसिद्धे न स्थानिवत्' से स्थानिवद्भाव का निषेध होने से दीर्घ प्राप्त है, अतः अभ्यास का प्रतिषेध कहना चाहिये। जिव्रि को दीर्घ का निषेध नहीं कहना चाहिये। वह इसलिए कि उणादि अव्युत्पन्न प्राति-पदिक होते हैं। वहाँ प्रकृतिप्रत्यय का विभाग नहीं है। 'चतुर्यिता चतुर्यितुम्' में भी दीर्घ का निषेध नहीं कहना चाहिये। इसके लिए 'सुपि न' यह निषेध है। सुप् पर रहते रेफ और वकार की उपधा इक् को अर्थात् सुबन्तावयवक इक् को दीर्घ नहीं होता है। यदि 'सुपि न' इस तरह का निषेध नहीं मानेंगे तो 'गीर्भ्यां, गीर्भिः' यहाँ पर भी दीर्घ का निषेध होना चाहिये, परन्तु यहाँ दीर्घ का निषेध कहीं पर भी प्रसिद्ध नहीं है। अच्छा तो 'गीर्भ्यां गीर्भिः' का दोष हटाने के लिए 'सुपि न' का विभक्तिविपरिणामं 'न सुपः' ऐसा पञ्चम्यन्त करेंगे। अर्थ होगा—'सुप् पर रहते जो हल्, उसके पर रहते रेफ और वकार की उपधा को दीर्घ न हो'। इससे 'गीर्भ्यां गीर्भिः' में दोष नहीं होगा। उणादिनिषेध का समाधान—'उणादि अव्युत्पन्नानि प्रातिपदिक होते हैं' से किया जा चुका है। {उपधायां च}।

अदसोसेर्दादु दो मः ८.२.८०

'अदसः असेः दात् उ दः मः' ऐसा पदच्छेद है। 'उश्च ऊश्च इत्यनयोः समाहारः उ' यह ह्रस्व और दीर्घ, दोनों का समाहार है। 'न विद्यते सिः यस्य असौ असिः, तस्य असेः'। यहाँ इकार उच्चारणार्थक है। 'दात्' यह दिग्योग में पञ्चमी है। 'परस्य' का अध्याहार करना चाहिये।

सूत्रार्थ—'सान्तभिन्न अदस् के दकार को से पर में उत् और ऊत् आदेश हो तथा दकार को मकार हो'। आन्तरतम्यात् ह्रस्व को ह्रस्व तथा दीर्घ को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दीर्घ आदेश होगा। जैसे—'अमू, अमुना' इत्यादि।

* अदसोऽनोस्रेः * **अदसोऽनोस्रेरिति वक्तव्यम्। किमिदमनोऽस्रेरिति? अनोकारस्य, असकारस्य, अरेफस्येति। अनोकारस्य—अदोऽत्र। असकारस्य—अदस्यति। अरेफस्य—अदः।**

अदस्सम्बन्धी उत्व, दत्व की कर्तव्यता में अनोस्र कहना चाहिये। अनोस्र क्या है? ओ, अस् और अर् का प्रतिषेध अनोस्र है। जैसे अदस्सम्बधी ओ का प्रतिषेध—'अदोऽत्र'। यहाँ अदस्सम्बन्धी स् को रुत्व, उत्व, गुण होकर 'अत्र' के योग में पूर्वरूप एकादेश करके 'अदोऽत्र' रूप है। यदि ओ को उत्व का प्रतिषेध नहीं कहेंगे तो ओ को ऊत्व तथा ऊत्वसाहचर्य से द को म होगा, जिससे 'अमूत्र' ऐसा अनिष्ट रूप होने लगेगा। असकार का प्रतिषेध करना चाहिये। 'अदः आन्मनः इच्छतीति अदस्यति' में 'सुप आत्मनः क्यच्' ३.१.८ से क्यच् प्रत्यय होकर नामधातु है। यहाँ पर अदस् असन्त है। उसको उत्व, मत्व होने पर 'अमुस्यति' ऐसा अनिष्ट रूप होने लगेगा। रेफ का प्रतिषेध कहना चाहिये। जैसे—'अदः'। क्लीब में स् को रुत्व होकर विसर्ग के असिद्ध होने से 'अदर्' ऐसा रूप है। यदि यहाँ उत्व, मत्व होगा तो 'अमुः' ऐसा अनिष्ट रूप होने लगेगा, अतः ओ स् और रेफान्त अदर्(स्) को उत्व, मत्व का प्रतिषेध कहना चाहिये।

तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। क्रियते न्यास एव। अविभक्तिको निर्देशः—'अदस्-ओ असे'रिति। ओकारात् परः प्रतिषेधः पूर्वभूतः। ततः सकारः। ततो रेफ इति।

तो क्या 'अनोऽस्रेः' यह वार्तिक पढना चाहिये? यह वार्तिक पढने की आवश्यकता नहीं है। सूत्र में 'अदस् ओ असेर्' यह वार्तिक निर्देश है। वैसा ही न्यास करेंगे। अर्थ होगा—'ओकार के साथ पूर्वरूप को प्राप्त को उत्व, मत्व न हो। इस न्यास में 'ओ' यह लुप्तषष्ठीक पद है। 'असेर्' यह रेफान्त है। इकार उच्चारणार्थक है। 'असेर्' यह असमर्थसमास है। 'ओकारान्त, सकारान्त और रेफान्त अदस् को उत्व, मत्व नहीं होता है' यह सूत्र के न्यास से ही अर्थ आ जायेगा, अतः पृथक् 'अदसोऽनोस्रेः' वार्तिक पढने की आवश्यकता नहीं है।

अथवा नैवं विज्ञायते—'अदसोऽसकारस्ये'ति कथं तर्हि? अकारोऽस्य सकारस्य सोऽयमसिः, असेरिति। यद्येवममुमुयङ्ङिति न सिध्यति,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अदद्र्यङ्ङिति प्राप्नोति। अदमुयङ्ङिति भवितव्यम् 'अनन्तविकारेऽन्त्यसदेशस्य कार्यं भवती'ति।

अथवा यह नहीं कहा जा रहा है कि असन्त अदस् को उत्व, मत्व हो। तब आप क्या कहेंगे? 'अः=अकारोऽस्य सकारस्य सोऽयमसिः, तस्य असेः' ऐसा अर्थ करेंगे। (यहाँ यह ध्यान देने की वात है कि भाष्यकार व्यधिकरण-बहुव्रीहि कर रहे हैं। 'सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ' २.२.३५ सूत्र से भी व्यधिकरण-पदबहुव्रीहि होना सिद्ध है।) अच्छा तो इस विग्रह में 'अमुमुयङ्' की सिद्धि नहीं हो सकेगी, 'अदद्र्यङ्' यही रूप रह जायेगा। 'अमुम् अञ्चति' इस विग्रह में क्विन्, उपपदसमास, सुब्लुक् होकर 'अदस् अञ्च्' इस स्थिति में 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति' ६.४.२४ के द्वारा 'न्' का लोप है। 'विष्वग्देवयोश्च टेरद्र्यञ्चतावप्रत्यये' ६.२.९२ से सर्वनाम अदस् के टि अस् को अद्रि आदेश है। 'अदद्रि अच्' इस स्थिति में यण् आदेश होकर दकार को मत्व तथा पर में क्रमशः अकार और रेफ को उत्व आदेश होकर 'अमुमुयङ्' रूप बनता है। यदि आप असन्त अदस् को ही उत्व, मत्व कहेंगे तो 'अदद्र्यङ्' अथवा 'अदद्रि अच्' इस स्थिति में अदस् असन्त नहीं है, उसको उत्व, मत्व इष्ट है, जो असन्त अदस् को स्थानी मानने में सम्पन्न नहीं हो पा रहा है।

एवं दूसरा पक्ष यह भी है कि जो लोग 'अदस् को अवयवषष्ठी नहीं मानते हैं, उनके यहाँ 'अदसः' यह स्थानषष्ठी होगी। स्थानषष्ठी होने से 'अलोऽन्त्यस्य' १.१.५२ यह परिभाषासूत्र उपस्थित होगा। अर्थ होगा—'असन्त अदस् के द से पर अन्त्य को उत्व हो'। परन्तु द से पर में अदस्घटक स् अन्त्य नहीं है, अपितु अद्रि आदेश कर देने पर इकार अन्त्य होगा; वह भी द से पर में नहीं है। इस तरह 'अलोऽन्त्यस्य' १.१.५२ यह परिभाषासूत्र की प्रवृत्ति नहीं होने से अन्त्य का बाध हो गया, जिससे अन्त्य के समीप को द से पर में कार्यी माना जायेगा, यह मतान्तर है। इस मत में भी 'अदमुयङ्' रूप इष्ट है। यदि आप अदसन्त को कार्यी मानेंगे तो 'अनन्त्यविकारेऽन्त्यसदेशस्य कार्यं भवति' इस पक्ष को मानने वाले के मत में 'अदमुयङ्' यह इष्ट रूप सिद्ध नहीं हो सकेगा।

* अदसोऽद्रेः पृथङ् मुत्वं केचिदिच्छन्ति लत्ववत्।
केचिदन्त्यसदेशस्य नेत्येकेऽसेर्हि दृश्यते।। *

कारिकार्थ—अदस् के टि को अद्रि आदेश करने पर 'अदद्र्यङ्' इस स्थिति में लत्व की तरह प्रथम और द्वितीय दकार को मकार तथा द से उत्तर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वर्ण अवर्ण और रेफ को युगपत् उत्व मानते हैं, ऐसा एक आचार्य का मत है। जैसे कृपू समर्थे धा.पा.७६२ से यङ्न्त 'चरीकृप्यते' इस स्थिति में 'कृपो रो लः' ८.२.१८ से रेफ और ऋकार को युगपत् लत्व होकर 'चलीक्लृप्यते' रूप होता है, वैसे 'अदद्र्यङ्' स्थल में दकार को मकार तथा दकार से उत्तर अकार और रेफ को युगपत् उत्व होकर 'अमुमुयङ्' रूप होगा।

दूसरे आचार्य अन्त्य का बाध होने पर अन्त्य के समीप को कार्यी मानते हैं। उनके मत में 'अदमुयङ्' रूप होगा। तीसरे कहते हैं कि सूत्र में 'असेः' निर्देश है। वहाँ 'अः सेः=सस्य स्थाने सः असिः तस्य' ऐसा व्यधिकरण बहुव्रीहि होने से असन्त अदस् ही लिया जायेगा, अतः 'अदद्र्यङ्'स्थल में असन्त न होने से उत्व, मत्व नहीं होगा, जिससे 'अदद्र्यङ्' यही रूप रहेगा।

* तत्र पदाधिकारादपदान्तस्याऽप्राप्तिः * **तत्र पदाधिकारादपदान्तस्य न प्राप्नोति—अमुया अमुयोरिति** * सिद्धन्तु सकारप्रतिषेधात् * **सिद्धमेतत्। कथम्? 'सकारप्रतिषेधात्'। यदयमसेरिति प्रतिषेधं शास्ति तज्ज्ञापयत्याचार्यो'ऽपदान्तस्याऽपि भवती'ति।**

'पदस्य' ८.१.१६ का अधिकार होने से पदान्त असन्त को उत्व, मत्व प्राप्त होगा। इस तरह अपदान्त 'अमुया अमुयोः' में उत्व, मत्व की प्राप्ति नहीं होने से सूत्र में अव्याप्ति दोष हुआ।

प्रकृतसूत्र में 'पदस्य' ८.१.१६ का अधिकार होने पर भी उक्त दोष नहीं होगा, इसे स्पष्ट करते हैं—**सिद्धन्त्विति**। सूत्र में 'असेः' कह कर सकार का प्रतिषेध किया है। इससे आचार्य बताते हैं कि अपदान्त को भी उत्व, मत्व होता है। 'नः क्ये' १.४.१५ सूत्र से क्यच् और क्यङ् पर रहते नान्त को ही पद होता, अतः सान्त होने से 'अदः आत्मनः इच्छति इति अदस्यति' में पदसंज्ञा नहीं होने से उत्व, मत्व नहीं हो सकेगा, 'असेः' इस निषेध से क्या प्रयोजन है। परन्तु 'असेः' यह निषेध किया जा रहा है; अतः निषेधसामर्थ्य से अपद अदस् को भी उत्व, मत्व होता है, यह ज्ञापन से आयेगा। इसका फल यह है कि 'अमुया अमुयोः' में भी उत्व, मत्व की सिद्धि हो जाती है।

अथ दाद्ग्रहणं किमर्थम्? * दाद्ग्रहणमन्त्यप्रतिषेधार्थम् * **दाद्ग्रहणं क्रियते। किं प्रयोजनम्? 'अन्त्यप्रतिषेधार्थम्'। अलोऽन्त्यस्य मा भूत्। अमुया अमुयोरिति।** {अदसोऽसेर्दादु दो मः}।

सूत्र में 'दाद्' यह पञ्चम्यन्त पद का ग्रहण क्यों किया है? 'अलोऽन्त्यस्य'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१.१.५२ सूत्र से अन्त्य को विधि न हो, द से पर में विद्यमान को ही उत्व हो, यह बताने के लिए सूत्र में 'दात्'ग्रहण किया गया है। इसका फल यह है कि 'अमुया अमुयोः' में यकार को उत्व नहीं होता है। {अदसोर्सेदादु दो मः}।

एत ईद् बहुवचने ८.२.८१

'बहुवचने' यह विषयसप्तमी है।

सूत्रार्थ—'बहुवचन गम्य होने पर अदस्सम्बन्धी द से पर में एत् को ईत् आदेश हो'। अमी, अमीभिः।

* ईत्त्वं बहुवचनान्तस्य * **ईत्त्वं बहुवचनान्तस्येति वक्तव्यम्। 'बहुवचन' इतीयत्युच्यमाने इहैव स्याद्—अमीभिः अमीषु। इह न स्याद्—अमी अत्र, अमी आसते इति। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। नेदं पारिभाषिकस्य बहुवचनस्य ग्रहणम्। किं तर्हि? अन्वर्थग्रहणमेतत्। बहूनामर्थानां वचनं बहुवचनं, बहुवचन इति।** {एत ईद् बहु}।

बहुवचनान्त को ईत्त्व कहना चाहिये। यदि 'बहुवचने' ऐसा कहेंगे तो बहुवचन पर रहते एत् के स्थान में ईत्त्व हो' यही अर्थ होगा। इस तरह 'अमीभिः अमीषु' में ही ईत्त्व होगा। 'अमी अत्र, अमी आसते' में ईत्त्व नहीं हो सकेगा। 'अमी अत्र, अमी आसते' में ईत्त्व हो, इसके लिए 'बहुवचनान्तस्य' ऐसा कहना चाहिये। तो क्या 'ईत्त्वं बहुवचनान्तस्य' यह वार्तिक पढा जाना चाहिये? नहीं, इसकी आवश्यकता नहीं है। यहाँ पारिभाषिक बहुवचन का ग्रहण नहीं है। अर्थात् पूर्वपक्षी ने यह मान कर पूर्वपक्ष किया था कि 'कृत्रिमाऽकृत्रिमयोः कृत्रिमे कार्यसम्प्रत्ययः' इस नियम से प्रत्यय बहुवचन का ग्रहण होगा। 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' १.१.६६ इस परिभाषासूत्र से 'बहुवचन पर रहते एत् को ईत् हो' यह सूत्रार्थ होगा, अतः 'अमीभिः, अमीषु' में ईत्त्व होगा, 'अमी' में नहीं। उसका प्रत्याख्यान कर रहे हैं—**नेदमिति**। यहाँ पारिभाषिक बहुवचन का ग्रहण नहीं है, अपितु इस शास्त्र में 'उभयगतिरिह भवति' यह न्याय है। इस तरह यहाँ पर 'बहुवचन अर्थ का ग्रहण होने से बहुत्व अर्थ गम्य होने पर एत् को ईत् हो', यह अर्थ होगा। इससे 'अमी अत्र, अमी आसते' की भी सिद्धि हो जायेगी। अन्वर्थग्रहण होने से 'बहूनामर्थानां वचनं बहुवचनं, तस्मिन् बहुवचने वाच्ये सति' ऐसा अर्थ लिया जायेगा। {एत ईद् बहुवचने}।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः ८.२.८२

वाक्याधिकारः किमर्थः? * वाक्याधिकारः पदनिवृत्त्यर्थः * वाक्याधिकारः क्रियते। किं प्रयोजनम्? 'पदनिवृत्त्यर्थः'। पदाधिकारो निवर्त्त्यते। न हि काको वाश्यत इत्यधिकारा निवर्त्तन्ते। दोषः खल्वपि स्याद् यदि वाक्याधिकारः पदाधिकारं निवर्तयेत्। इष्यन्त एवोत्तरत्र पदकार्याणि, तानि न सिध्यन्ति—'नश्छव्यप्रशा'निति।

यह अधिकारसूत्र है। यहाँ वाक्याधिकार किसलिए है? यहाँ वाक्याधिकार किया जा रहा है। उसका क्या प्रयोजन है? पदाधिकार की निवृत्ति के लिए। वाक्याधिकार इसलिए किया गया कि पदाधिकार निवृत्त हो जाये।

आक्षेपभाष्य—**न हीति**। ऐसा नहीं देख गया है कि एक अधिकार दूसरे अधिकार को निवृत्त करा दे, अतः यहाँ भी वाक्याधिकार से पदाधिकार की निवृत्ति नहीं होनी चाहिये। जैसे यात्रा पर प्रस्थित व्यक्ति की यात्रा मध्य में कौवा के बोल देने से काकरुति से निवृत्त नहीं होती है, वैसे ही मध्य में किया गया वाक्याधिकार पदाधिकार के द्वारा निवृत्त नहीं किया जा सकता है। यदि वाक्याधिकार पदाधिकार की निवृत्ति करा देगा तो दोष भी होगा। अपरञ्च जो भी कार्य हैं, वे पद को ही होते हैं, वाक्य को नहीं। एवं वाक्य में भी पद ही होते हैं, अतः पद का ही कार्य इष्ट है, वाक्य को नहीं। यदि वाक्य को कार्य मानेंगे तो 'नश्छव्यप्रशान्' ८.३.७ यहाँ पर प्रशान् शब्द को छोड कर अम्परक छव् पर रहते नकारान्त पद को रुत्व होता है। यदि वाक्य को रुत्व कहेंगे तो वह असम्भव होने से नहीं हो सकेगा। अथ च 'हन्ति' यहाँ पर अपदान्त नकार को रुत्व नहीं होता है। यदि वाक्य को रुत्व कहेंगे तो वाक्य में असम्भव होने से वाक्य का अवयव पद और वर्ण को रुत्व होने लगेगा, जिससे 'हन्ति' के नकार को रुत्वापत्ति दुर्निवार होगी, अतः वाक्याधिकार से पदाधिकार की निवृत्ति नहीं समझनी चाहिये।

पदनिवृत्त्यर्थमिति नैवं विज्ञायते—पदस्य निवृत्त्यर्थं पदनिवृत्त्यर्थमिति। किं तर्हि? पदे निवृत्त्यर्थं पदनिवृत्त्यर्थमिति। वाक्ये यावन्ति पदानि तेषां सर्वेषां टेः प्लुतः प्राप्नोति, इष्यते च वाक्यपदयोरन्त्यस्य स्यादिति, तच्चान्तरेण यत्नं न सिध्यतीत्येवमर्थो वाक्याधिकारः।

'पदनिवृत्त्यर्थम्' इस पद से मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि 'पदस्य निवृत्त्यर्थं पदनिवृत्त्यर्थम्'='पदाधिकार की निवृत्ति के लिए' ऐसा। तब आप इससे क्या

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कह रहे हैं? 'पदे निवृत्त्यर्थं पदनिवृत्त्यर्थम्'='पद में उदात्त की निवृत्ति हो, यह मेरा आशय है। वाक्य में जितने भी पद हैं, उन सभी पदों के टि को प्लुत प्राप्त है, जब कि वाक्य और पद के टि को ही प्लुत इष्ट है, वह कोई यत्न किये विना सिद्ध नहीं हो सकता है, इसलिए वाक्याधिकार किया गया है। इससे यह आया कि 'पदस्य' ८.१.१६ का अधिकार आगे भी होगा तथा प्रकृतसूत्र में भी होगा।

अथ टिग्रहणं किमर्थम्? * टिग्रहणमलोन्त्यनियमे व्यञ्जनान्तार्थम् * टिग्रहणं क्रियते। किं प्रयोजनम्? 'अलोन्त्यनियमे व्यञ्जनान्तार्थम्'। अलोन्त्यनियमे व्यञ्जनान्तस्यापि यथा स्याद्-अग्निचीऽ३त् सोमसूऽ३त्। अस्ति प्रयोजनमेतत्। किं तर्हीति?

अच्छा तो टि का ग्रहण किसलिए है? टिग्रहण का प्रयोजन यह है कि हलन्त स्थल 'अग्निचीऽ३त् सोमसूऽ३त्' में भी टि को प्लुत हो। अन्यथा टि ग्रहण के अभाव में प्लुतश्रुति से 'अचश्च' १.२.२८ सूत्र उपस्थित होगा। तदन्तविधि होने से अच् के द्वारा अजन्त वाक्य में ही 'अलोऽन्त्यस्य' १.१.५२ से अन्त्य अच् को प्लुत होगा। जब कि टिग्रहण करने पर टि के सामर्थ्य से टि के द्वारा अच् को विशेषित करेंगे, अच् से टि को नहीं, अतः हलन्त को भी प्लुत सिद्ध हो जा रहा है।

*** सर्वादिशप्रसङ्गस्तु * सर्वादिशस्तु टेः प्लुतः प्राप्नोति। किं कारणम्? 'अच' इति वचनादन्त्यस्य न, 'अन्त्यस्ये'ति वचनादचो न, उच्यते च प्लुतः। स सर्वादिशः प्राप्नोति * उक्तं वा * उक्तं वा। किमुक्तम्? 'ह्रस्वो दीर्घः प्लुत इति यत्र ब्रूयादच इत्येतत् तत्रोपस्थितं द्रटष्व्य'मिति। {वाक्यस्य टेः प्लुतः}।**

अच्छा तो 'अचश्च' १.२.२८ यह सूत्र 'अलोऽन्त्यस्य' १.१.५२ का अपवाद है, अतः टि को सर्वादेश प्लुत प्राप्त होता है। इसका क्या कारण है? इसका कारण यह है कि प्लुतश्रुति से 'अचश्च' १.२.२८ सूत्र उपस्थित होगा। 'अचश्च' १.२.२८ इस सूत्र के उपस्थित होने से अन्त्य को नहीं हो सकेगा। यदि यहाँ पर 'अलोऽन्त्यस्य' १.१.५२ की उपस्थिति मानेंगे तो अन्त्य को प्लुतश्रुति होने से अच् को नहीं हो सकेगा। सूत्रकार ने प्लुत कहा है, अतः वह सम्पूर्ण टि को प्लुत होने लगेगा, जिससे 'अग्निचीऽ३त् सोमसूऽ३त्' में व्यञ्जन भी गृहीत हो जायेगा जो दोषावह है, क्योंकि व्यञ्जन अर्द्धमात्रिक होते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं; अतः उनको प्लुतश्रुति नहीं होती है। अच्छा तो यह कोई दोष नहीं है। इस विषय में मैं पहले ही कह आया हूँ कि जहाँ पर आचार्य ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत बोलेंगे वहाँ 'अचश्च' १.२.२८ सूत्र उपस्थित होगा, अतः 'वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः' में 'अचश्च' १.२.२८ के उपस्थित होने से इससे सर्वादेश की आपत्ति निरस्त हो गयी। {**वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः**}।

प्रत्यभिवादेऽशूद्रे ८.२.८३

सूत्रार्थ—'अशूद्रविषयक प्रत्यभिवादन में वाक्य के टि को प्लुत हो तथा वह उदात्त हो'।

अशूद्र इति किमर्थम्? कुशल्यसि तुषजक!। अत्यल्पमिदमुच्यते 'अशूद्र' इति। अशूद्रस्त्र्यसूयकेष्विति वक्तव्यम्। तत्र शूद्र उदाहृतम्। स्त्रियां—गार्ग्यहं भोः, आयुष्मती भव गार्गि!। असूयके—स्थाल्यहं भोः, आयुष्मानेधि स्थाली३न्। नैषा मम संज्ञा स्थालीति। किं तर्हि? दण्डिन्यायो मम विवक्षितः। स वक्तव्यः। स्थाल्यहं भोः, आयुष्मानेधि स्थालिन्। न मम दण्डिन्यायो विवक्षितः। किं तर्हि? संज्ञा ममैषा। असूयकस्त्वमसि जाल्म न त्वं प्रत्यभिवादमर्हसि भिद्यस्व वृषल! स्थालिन्!।

सूत्र में अशूद्रग्रहण क्यों किया है? यदि अशूद्रग्रहण नहीं करेंगे तो 'प्रत्यभिवादे' इतना मात्र सूत्र होगा। इस का अर्थ होगा—'प्रत्यभिवादन होने वा वाक्य के टि को प्लुत हो, तथा वह उदात्त हो'। इससे 'कुशल्यसि तुषजक!' इस शूद्रविषयक प्रत्यभिवादन में भी वाक्य के टि को प्लुतश्रुति होने लगेगी, जो इष्ट नहीं है। अशूद्रग्रहण करने पर 'कुशल्यसि तुषजक!' इस शूद्रविषयक प्रत्यभिवादन में भी वाक्य के टि को प्लुतश्रुति नहीं होती है। अशूद्र यह न्यून कहा है। शूद्र, स्त्री और असूयकविषयक प्रत्यभिवादन में वाक्य के टि को प्लुतश्रुति का निषेध कहना चाहिये। शूद्रविषयक प्रत्यभिवादन का उदाहरण दिया जा चुका है, अतः स्त्रीविषयक प्रत्यभिवादन का उदाहरण दे रहे हैं—**स्त्रियामिति**। 'गार्ग्यहं भोः' यह स्त्रीकर्तृक अभिवादन है। इसका अभिप्राय-'आयुष्मती भव गार्गि' में 'अस्त्रियाम्' यह निषेध लग जाने से वाक्य के टि को प्लुत नहीं हुआ। इसी तरह असूयक- विषयक अभिवादन का-'स्थाल्यहं भोः' प्रत्यभिवादन—'आयुष्मानेधि स्थालिन्!' में भी वाक्य के टि को प्लुत नहीं हुआ। जी!, 'स्थाली' यह मेरी संज्ञा नहीं है। प्रत्यभिवादन में वाक्य का टि संज्ञाघटक होना चाहिये जिसको प्लुत इष्ट है। यदि 'स्थाली' यह आप की संज्ञा नहीं है, तो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्या है? 'स्थाली' यह मेरे विषय में दण्डिन्याय विवक्षित है। यदि कोई दण्डधारण करने से दण्डी कहा जाने लगा, परन्तु दण्डधारण से पूर्व कोई उसकी संज्ञा होती है। दण्डधारण अवस्था में वह यद्यपि दण्डी है, तथापि उसकी पूर्व संज्ञा निवृत्त नहीं होती है; वैसे स्थालीधारण करने से मुझे लोग स्थाली समझते हैं। परन्तु मेरा वास्तविक नाम और है, अतः जब अभिवायिता 'स्थाल्यहं भोः!' ऐसा अभिवादन करे तो, प्रत्यभिवादयिता अभिवायिता को 'आयुष्मानेधि स्थालिन्!' ऐसा वाक्य के टि को प्लुतरहित प्रयोग करके कहे। यदि यहाँ पर दण्डिन्याय विवक्षित नहीं है, अपितु 'स्थालिन्' यह असूयक की संज्ञा है, तो 'स्थाल्यहं भोः!' असूयककर्तृक इस अभिवादन के प्रति 'असूयकस्त्वमसि जाल्म न त्वं प्रत्यभिवादमर्हसि भिद्यस्व वृषल! स्थालिन्!।' इस प्रत्यभिवादन में वाक्य के टि को प्लुत नहीं होता है। 'भिद्यस्व' यह कर्मकर्ता में आत्मनेपद है।

* भो राजन्यविशां वा * **भो राजन्यविशां वेति वक्तव्यम्। देवदत्तोऽहं भोः, आयुष्मानेधि देवदत्त भोः३ आयुष्मानेधि देवदत्त भोः।** भोः। राजन्य—**इन्द्रवर्माऽहं भोः। आयुष्मानेधीन्द्रवर्म३न्!। आयुष्मानेधीन्द्रवर्मन्!।** राजन्य। विट्—**इन्द्रपालितोऽहं भोः। आयुष्मानेधीन्द्रपालिता३! आयुष्मानेधीन्द्रपालित।**

भो, राजन्य और विट् को विकल्प से आत्मनेपद कहना चाहिये। जैसे—'देवदत्तोऽहं भोः, आयुष्मानेधि देवदत्त भोः३ आयुष्मानेधि देवदत्त भोः'। यहाँ पर विकल्प से वाक्य के टि को प्लुत है। अपर पक्ष में 'आयुष्मानेधि देवदत्त भोः' यह प्लुतरहित भी वाक्य होगा। इसी तरह राजन्य का उदाहरण—'इन्द्रवर्माऽहं भोः' इस अभिवादन का प्रत्यभिवादन वाक्य—'आयुष्मानेधीन्द्रवर्म३न्!' यह प्लुत होने पर होगा। दसके अभाव में 'आयुष्मानेधीन्द्रवर्मन्!' यह भी वाक्य होगा। विट् का उदाहरण—'इन्द्रपालितोऽहं भोः' इस अभिवादन का प्रत्यभिवादन वाक्य—'आयुष्मानेधीन्द्रपालिता३!' में विकल्प से प्लुत तथा उसके नहीं होने पर 'आयुष्मानेधीन्द्रपालित' में प्लुत का अभाव रहेगा।

अपर आह—* सर्वस्यैव नाम्नः प्रत्यभिवादे भोःशब्द आदेशो वा वक्तव्यः * देवदत्तोऽहं भोः। आयुष्मानेधि भोः। आयुष्मानेधि देवदत्ता३ इति वा। इह कस्मान्न भवति—देवदत्त कुशल्यसीति? इह किञ्चिदुच्यते किञ्चित् प्रत्युच्यते। प्रधानम् उच्यतेऽप्रधानं प्रत्युच्यते। तत्र प्रधानथस्य च टिसंज्ञकस्य प्लुत्या भवितव्यं न चाऽत्र प्रधानस्थं टिसंज्ञम्। इहापि तर्हि न प्राप्नोति—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आधेयोऽग्नी३र्नाधेया३ इति। नैतद् विचार्यते—'आधेयोऽनाधेयोऽग्निश्चेद् भवतीति। किं तर्हि? इहाऽग्निसाधना क्रिया विचार्यते—आधेयोऽग्निर्नाधेय' इति। यद्येवं द्वितीयोऽग्निशब्दस्य प्रयोगः प्राप्नोति। 'उक्तार्थानामप्रयोग' इति न भविष्यति।

दूसरे आचार्य कहते हैं—प्रत्यभिवादन में सम्पूर्ण नाम को 'भोः' आदेश विकल्प से कहना चाहिये। 'देवदत्तोऽहं भोः' इसका प्रत्यभिवादन 'आयुष्मानेधि भोः' होगा। यहाँ विकल्प से देवदत्त को 'भोः' आदेश हुआ है। अपर पक्ष में 'आयुष्मानेधि देवदत्ता३' यह भी होगा। 'देवदत्त कुशल्यसि' इस प्रत्यभिवादन में वाक्य के टि को प्लुत क्यों नहीं होता है? वह इसलिए कि प्रधान संस्कार्य देवदत्त आदि पद यहाँ पर पहले कह दिया गया है तथा अप्रधान संस्कारक 'कुशली असि' **प्रत्युच्यते**=बाद में कहा जा रहा है। इस तरह वाक्य के अन्त में प्रधान देवदत्त आदि पद के टि का अभाव होने से 'देवदत्त कुशल्यसि' में वाक्य के टि को प्लुत नहीं होता है। 'देवदत्त कुशल्यसि' में वाक्य में साध्य-क्रिया संस्कारक के रूप में विवक्षित है, अतः अप्रधान है, उसकी अपेक्षा देवदत्त प्रधान है। तब कि संस्कार प्रधान में करना है। वह वाक्य का अन्त पद नहीं है, अतः उसको टिसंज्ञक नहीं होने से प्लुतश्रुति नहीं होगी। यदि आप द्रव्य को ही प्रधान मानते हैं, तब 'आधेयोऽग्नी३र्नाधेया३' यहाँ पर 'आधेया३' यह प्लुत नहीं होना चाहिये, क्योंकि यहाँ पर भी प्रधान द्रव्यवचन अग्नि का पूर्वनिपात है तथा अप्रधान आधेय क्रिया का अन्त्य निपात है। इस तरह वाक्य का टि आधेयघटक 'अ' के होने से उसको प्लुतश्रुति नहीं होनी चाहिये। जी नहीं, यहाँ यह दोष नहीं है। 'आधेयोऽग्निः' यहाँ पर दपार्थत्रितय है। १. अग्निशब्द का वाच्य द्रव्य, २. धातुवाच्या क्रिया, तथा ३. प्रत्ययवाच्य कर्म। इन तीनों में यहाँ धातुवाच्या क्रिया का ही विचार किया जा रहा है, द्रव्यवचन और कर्मवचन नहीं हैं। क्या यहाँ पर आधान करना चाहिये, अथवा नहीं करना चाहिये? इसी पर प्रकृत में विचार है, अतः धातुवाच्या आधानक्रिया के ही प्रकृत में प्रधान होने से अन्त्य टि को प्लुतश्रुति सिद्ध हो गयी। यदि प्रकृत में आधेय और अनाधेय का विचार मानेंगे तो द्वितीय अग्निशब्द का भी प्रयोग प्राप्त होगा। जैसे—'आधेयोऽग्निः, अग्निराधेयः' ऐसा। प्रकत में यह आपत्ति नहीं होगी। 'उक्तार्थानामप्रयोगः' इस न्याय से अन्य अग्निशब्द का प्रयोग प्राप्त नहीं होगा।

यद्येवमाधेयशब्दस्याऽपि तर्हि द्वितीयस्य प्रयोगो न प्राप्नोति—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'उक्तार्थानामप्रयोगो भवती'ति। नैष दोषः। उक्तार्थानामपि प्रयोगो दृश्यते। तद्यथा—'अपूपौ द्वावानय' 'ब्राह्मणौ द्वावानये'ति। {प्रत्यभिवादेऽशूद्रे}।

यदि आप 'उक्तार्थानामप्रयोगः' न्याय मानते हैं तो द्वितीय आधेय शब्द का प्रयोग भी नहीं होना चाहिये। 'आधेयोऽग्निर्न वा' ऐसा ही प्रयोग होना चाहिये। जी नहीं, ऐसी कोई वात नहीं है। उक्तार्थों का भी प्रयोग देखा जाता है। जैसे 'अपूपौ द्वावानय' 'ब्राह्मणौ द्वावानय' यहाँ पर 'औ' प्रत्यय से द्वित्व उक्त था, पुनः उसी द्वित्व को द्विप्रातिपदिक से कहा जा रहा है। अथवा द्वि पद से द्वित्व उक्त था, उसी पुनः 'औ' प्रत्यय से कहा जा रहा है। वैसे 'आधेयोऽग्नी३र्नाधेया३' यह भी उक्तार्थ का प्रयोग समझना चाहिये। **{प्रत्यभिवादेऽशूद्रे}**।

दूराद्धूते च ८.२.८४

'हूते' यह विषयसप्तमी है।

सूत्रार्थ—'दूर से समबोधविषय में जो वाक्य, उसके टि को प्लुत हो'। 'सक्तून् पिब देवदत्ता३'।

दूराद्धूत इत्युच्यते दूरशब्दश्चाऽयमनवस्थितपदार्थकस्तदेव हि कञ्चित् प्रति दूरं कञ्चित् प्रत्यन्तिकं भवति। एवं हि कश्चित् कञ्चिदाह—'एष पार्श्वतः करकस्तमेनमानये'ति। स आह—'उत्थाय गृहाण, दूरं न शक्ष्यामी'ति।

सूत्र में 'दूराद्धूते' ऐसा कहा जा रहा है। दूर शब्द अनवस्थितपदार्थक है। वही **कञ्चित् प्रति**=किसी वक्ता के लिए दूर होता है, तथा **कञ्चित् प्रति**=श्रोता के प्रति समीप ेता है। वक्ता ने श्रोता से कहा—'एष पार्श्वतः करकस्तमेनमानय'='यह पात्र तुम्हारे पास है, इसे ले आवो'। यह **करक**=पात्रविशेष वक्ता से दूर है, परन्तु श्रोता के समीप है। श्रोता वक्ता से कहता है—'उत्थाय गृहाण, दूरं न शक्ष्यामि'='उठ का ले लो, मैं इसे दूर नहीं देख रहा हूँ' इससे यह आया कि जो किसी के प्रति दूर होता है, वह किसी के प्रति समीप भी होता है।

अपर आह—'दूरं मधुरायाः पाटलिपुत्र'मिति। स आह—'न दूरमन्तिक'मिति। एवमेष दूरशब्दोऽनवस्थितपदार्थकस्तस्याऽनवस्थित-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पदार्थकत्वान्न ज्ञायते—'कस्यामवस्थायां प्लुत्या भवितव्य'मिति। एवं तर्हि ह्वयतिनाऽयं निर्देशः क्रियते—'ह्वयतिप्रसङ्गे यद् दूरम्'। किं पुनस्तत्? यत्र प्राकृतात् प्रत्ययात् प्रयत्नविशेषेऽनुपादीयमाने सन्देहो भवति, 'श्रोष्यति न श्रोष्यती'ति, तद् दूरमिहाऽवगम्यते। {दूराद्धूते च}।

दूसरे वक्ता ने कहा—'मधुरा से पाटलिपुत्र दूर है' श्रोता ने कहा—'मधुरा से पाटलिपुत्र दूर नही है, समीप है' इस तरह दूर शब्द अनवस्थितपदार्थक है, अतः यह निश्चय नहीं हो पा रहा है कि किस अवस्था में प्लुत होगा? इस तरह संशय होने पर कहते हैं—हु धा.पा.१०८३ के द्वारा आचार्य निर्देश कर रहे हैं। ह्वानक्रिया की अपेक्षा से प्रकृत में दूरत्व लिया जायेगा, श्रोता आदि पुरुष की अपेक्षा से दूरत्व नहीं लिया जायेगा। प्राकृतप्रयत्न से प्रयत्नविशेष न देने पर सन्देह होता है—'यह सुनेगा, या नहीं' वह दूर प्रकृत में लिया जायेगा। {**दूराद्धूते च**}।

हैहेप्रयोगे हैहयोः ८.२.८५

पूर्व सूत्र 'दूराद्धूते च' ८.२.८४ से हूयमानार्थ वाक्यान्त पद के टि को प्लुत विहित है। वह 'है' और 'हे' को प्राप्त नहीं है, अतः 'है' और 'हे' को प्लुतविधान के लिए आचार्य ने सूत्र का अवतरण किया है—'हैहेप्रयोगे हैहयोः' ऐसा।

सूत्रार्थ—'है' और 'हे' का प्रयोग होने पर दूर से आह्वान करने में जो वाक्य, उस में 'है' और 'हे' को ही प्लुत हो'। 'है३ राम!' 'राम हे३!';

हैहेग्रहणं किमर्थम्? * हैहेप्रयोगे हैहेग्रहणं हैहयोः प्लुत्याद्यर्थम् * **हैहेप्रयोगे हैहेग्रहणं क्रियते। किमर्थम्? 'हैहयोः प्लुत्याद्यर्थम्'। हैहयोः प्लुतिर्यथा स्यात्। देवदत्त है३। देवदत्त हे३। अक्रियमाणे हि हैहेग्रहणे तयोः प्रयोगोऽन्यस्य स्यात्।**

हैहेग्रहण किस लिए किया गया है? वह इसलिए है कि 'है' और 'हे' का प्रयोग होने पर 'है' और 'हे' को प्लुत हो, इसके लिए सूत्र में 'है' और 'हे' का ग्रहण किया गया है। यदि सूत्र में 'है' और 'हे' का ग्रहण नहीं करते तो आरम्भसामर्थ्य से हूयमानवाची अनन्त्य को भी प्लुत ही होता। 'है' और 'हे' का ग्रहण करते हैं तो 'है' और 'हे' का प्रयोग होने पर 'है' और 'हे' को ही प्लुत होता है, यह हैहेग्रहण का प्रयोजन है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ प्रयोगग्रहणं किमर्थम्? * प्रयोगग्रहणमर्थवद्ग्रहणेऽनर्थकार्थम् * **प्रयोगग्रहणं क्रियते। किं प्रयोजनम्? 'अर्थवद्ग्रहणेऽनर्थकार्थम्'। अर्थवद्ग्रहणेऽनर्थकयोरपि यथा स्यात्। देवदत्त है३। देवदत्त हे३।**

अच्छा तो सूत्र में प्रयोगपद का ग्रहण किस लिए किया गया है? प्रयोगपद का ग्रहण इसलिए किया गया है कि अर्थवान् के ग्रहण में अनर्थक का भी ग्रहण हो सके। अर्थात् कहीं पर यदि अनर्थक भी 'है' और 'हे' हो तो उसको भी प्लुत हो सके, इसके लिए सूत्र में प्रयोगपद का ग्रहण किया गया है। जैसे 'देवदत्त है३। देवदत्त हे३' यदि पहले सम्बोध पद का प्रयोग किया जायेगा तथा बाद में 'है' और 'हे' का प्रयोग किया जायेगा तो वहाँ पर 'है' और 'हे' का सम्बोधन पद से पूर्वप्रयोग होगा तो वहाँ पर 'है' और 'हे' द्योत्य अर्थ न होने से निरर्थक होंगे। जैसे 'देवदत्त है३ देवदत्त हे३' परन्तु यदि 'है' और 'हे' का सम्बोधन पद से पूर्वप्रयोग होगा तो वहाँ पर 'है' और 'हे' अर्थवान् होगा। जैसे—'है देवदत्त!, हे देवदत्त!'। प्रयोगपदग्रहणसामर्थ्य से अनर्थक 'है' और 'हे' को भी प्लुत होता है।

अथ पुनर्हैहेग्रहणं किमर्थम्? * पुनर्हैहेग्रहणमनन्त्यार्थम् * **पुनर्हैहेग्रहणं क्रियते। किं प्रयोजनम्? 'अनन्त्यार्थम्'। अनन्त्ययोरपि यथा स्यात्। है३ देवदत्त। हे३ देवदत्तेति। {हैहेप्रयोगे}।**

प्रश्नभाष्य—**अथेति**। 'हैहेप्रयोगे' में एक वार हैहेग्रहण करने के बाद दूबारा हैहेग्रहण किस लिए किया गया है, यहाँ आचार्य 'हैहेप्रयोगे' इतना ही सूत्र क्यों नहीं पढते हैं? पूर्वसूत्र 'हैहेप्रयोगे' से विहित को प्लुत रहेगा ही, इससे 'है' और 'हे' को ही प्लुत होगा, पुनः सूत्र में 'हैहयोः' यह षष्ठीद्विवचनान्त का ग्रहण किसलिए किया गया है, यह ग्रन्थ का भाव है।

उत्तरभाष्य—**पुनरिति**। 'हैहेप्रयोगे' में हैहे का ग्रहण होने पर भी पुनः 'हैहयोः' इस षष्ठीद्विवचनान्त का ग्रहण इसलिए किया गया है कि **अनन्त्य**=आदि और मध्य 'है' और 'हे' शब्द को भी प्लुत हो। अन्यथा 'वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः' ८.२.८२ सूत्र का अधिकार होने से वाक्य का टि को ही प्लुत होता, अनन्त्य 'है' और 'हे' को नहीं होता। अनन्त्य 'है' और 'हे' को 'है देवदत्त!, हे देवदत्त!' आदि में भी प्लुत हो, इसके लिए पुनः हैहेग्रहण किया गया है। {हैहेप्रयोगे-}।

गुरोरनृतोऽनन्त्यस्याप्येकैकस्य प्राचाम् ८.२.८६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः' ८.२.८२ सूत्र का अधिकार है। 'दूराद्धूते च' ८.२.८४ सम्पूर्ण सूत्र अनुवृत्त होता है। सूत्र में 'अपि' पद का ग्रहण है। उससे 'टेः' का समुच्चय होगा। इस तरह सूत्रार्थ हुआ—'दूर से सम्बोधनविषयक जो वाक्य, उस वाक्य में सम्बोधनान्त जो पद, उसका अवयव ऋकारभिन्न अनन्त्य गुरु वर्ण को प्लुत हो, परन्तु अन्त्य टि चाहे वह गुरु हो, अथवा अगुरु हो, उसको भी प्लुत हो'। जैसे 'या३ज्ञदत्त!, यज्ञदा३त्त! यज्ञदत्ता३!' इत्यादि।

* गरोः प्लुतविधाने लघोरन्त्यस्य प्लुतप्रसङ्गोऽन्येन विहितत्वात् * **गरोः प्लुतविधाने लघोरन्त्यस्य प्लुतः प्राप्नोति। दे३वदत्त!। किं कारणम्? 'अन्येन विहितत्वात्'। अन्येन हि लक्षणेन लघोरन्यत्स्य प्लुतो विधीयते 'दूराद्धूते चे'ति।**

प्रकृत सूत्र में गुरुसंज्ञक वर्ण को प्लुत विहित है। देवदत्त में 'दे'घटक 'ए' गुरु है, अतः 'दे३वदत्त!' ऐसा गुरु को प्लुतविधान होने पर अन्त्य वर्ण दत्तघटक 'अ' को भी अन्त्य सूत्र 'दूराद्धूते च' ८.२.८४ से प्लुत प्राप्त होगा। जी!, यह कोई दोष नहीं है। अनन्त्य गुरु को प्लुत विहित होने पर अन्त्य लघु को भी अन्य सूत्र 'दूराद्धूते च' ८.२.८४ से प्लुत होगा ही; इसका कारण यह है कि सूत्रकार 'अनन्त्यस्याऽपि' ऐसा 'अपि' ग्रहण करते हैं।

* न वाऽनन्त्यस्यापीति वचनमुभयनिर्देशार्थम् * **न वैष दोषः। किं कारणम्? 'अनन्त्यस्यापीति वचनमुभयनिर्देशार्थम्'। अनन्त्यस्यापीति वचनमुभयनिर्देशार्थं भविष्यति 'अनन्त्यस्यापि गुरोरन्त्यस्यापि टे'रिति।**

जी!, नहीं, 'अनन्त्यस्याऽपि' यह सूत्रनिर्देश उभयनिर्देश के लिए है—'अनन्त्य गुरु को प्लुत हो तथा अनन्त्य टि को भी प्लुत हो', अतः 'दे३वदत्त' में अन्त्य लघु टि को भी 'दूराद्धूते च' ८.२.८४ से प्लुत होगा, वह इष्ट भी है, अतः इस में कोई दोष नहीं है।

ननु चैतद् गुर्वपेक्षं स्याद्—अनन्त्यस्यापि गुरोरन्त्यस्यापि टे'रिति। नेत्याह। व्यपेक्षमेतत्। अनन्त्यस्यापि गुरोरन्त्यस्यापि टे'रिति।

अच्छा तो यदि मैं 'अनन्त्यस्याऽपि' इस निर्देश को उभयार्थक मान भी लूँ, तो 'अनन्त्य और अन्त्य गुरु को प्लुत हो' ऐसा अर्थ क्यों नहीं समझा जायेगा? 'अनन्त्य गुरु तथा अन्त्य टि लघु' यही अर्थ क्यों न मान लिया जायेगा? इसमें प्रमाण यह है कि अन्त्य टि की अपेक्षा कर रहा है, गुरु की नहीं, अतः 'अनन्त्य गुरु तथा अन्त्य टि को प्लुत हो', यही अर्थ समझा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जायेगा। अन्त्य टि लघु भी हो सकता है तथा गुरु भी हो सकता है।

अथ प्राग्वचनं किमर्थम्? * प्राग्वचनं विभाषार्थम् * प्राग्वचनं क्रियते। किं प्रयोजनम्? 'विभाषार्थम्'। विभाषा यथा स्यात् * प्राग्वचनानर्थक्यं चैकैकस्येति वचनात् * प्राग्वचनमनर्थकम्। किं कारणम्? 'चैकैकस्येति वचनात्'। एकैकग्रहणं क्रियते तद् विभाषार्थम् भविष्यति। अस्त्यदेकैकग्रहणस्य प्रयोजनम्। किम्? युगपत् षष्ठी मा भूदिति। 'अनुदात्तं पदमेकवर्ज'मिति वचनान्नास्ति यौगपद्येन सम्भवः। असिद्धः प्लुतस्तस्याऽसिद्धत्वाद् नियमो न प्राप्नोति।

सूत्र में 'प्राचाम्' पद का निर्देश किया है, उसका क्या प्रयोजन है? प्राग्वचन का प्रयोजन यह है कि प्रकृत सूत्र से विहित प्लुत विकल्प से हो। जी, सूत्र में एकैकपद का ग्रहण किया है, वह विकल्पार्थक होगा। उसी से विकल्प अर्थ का लाभ हो जायेगा। पुनः उसी विकल्प अर्थ को बताने के लिए आचार्य प्राग्वचन क्यों कर रहे हैं? जी नहीं, एकैकपद का ग्रहण विभाषार्थक नहीं है। उसका अन्य प्रयोजन यह है कि 'देवदत्त' यहाँ पर ए, अ, और अ इस सम्पूर्ण को एक साथ प्लुत न हो, अपितु बारी-बारी से प्लतु हो। एक काल में कोई एक ही प्लुत रहेगा तथा अन्य का प्लुतत्वाऽभाव रहेगा। अजी, यदि एक साथ सभी को प्लुत सम्भव होगा, तभी तो सभी को प्लुत होगा। एक साथ सभी को प्लुत सम्भपव नहीं है। इस में प्रमाण है—'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' ६.१.५८। जहाँ किसी एक को उदात्त अथवा स्वरित विहित है, उसको छोड कर शेष को अनुदात्त होता है। प्लुत उदात्त होता है, अतः शेष अनुदात्त होंगे। यदि सभी को एक साथ प्लुत करेंगे तो सभी उदात्त हो जायेंगे। इस तरह 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' ६.१.५८ सूत्र से विरोध होगा, अतः एक काल में किसी एक काल में ही प्लुत कहना होगा, जिसको उदात्त होगा तथा शेष को निघात होगा। यदि सभी को एक साथ प्लुत करेंगे तो 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' ६.१.५८ सूत्र से विरोध होगा, अतः इस विरोध का परिहार के लिए युगपत् प्लुत न मान कर एक काल में एक को ही प्लुत मानना पडेगा। इस तरह 'एकैकस्य' से विभाषा अर्थ उपस्थित नहीं हो रहा है जिसे बताने के लिए प्राग्वचन किया गया है। यदि आप कहते हैं कि-'अनुदात्तं पदमेक-वर्जम्' ६.१.५८ की दृष्टि में प्लुतविधायकसूत्रों का अभाव है, अतः प्लुत के विषय में 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' ६.१.५८ यह नियम सम्भव नहीं है,

नैष दोषः। यद्यपीदं तत्राऽसिद्धं तत्त्विह सिद्धम्। कथम्? 'कार्यकालं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संज्ञापरिभाष'मिति । यत्र कार्यं तत्रोपस्थितं द्रष्टव्यम् । 'गुरोरनृतोऽनन्त्यस्याप्येकैकस्य प्राचाम्' । उपस्थितमिदं भवत्यनुदात्तं पदमेकवर्जमिति ।

तो यह दोष यहाँ नहीं रहेगा। यथोद्देशपक्ष में त्रिपादी संज्ञासूत्र सपादसप्ताध्यायी के क्षेत्र में असिद्ध हैं, परन्तु 'कार्यकालं संज्ञापरिभाषम्' पक्ष में सपादसप्ताध्यायीसंज्ञासूत्र भी विधिप्रदेश में उपस्थित होंगे। विधिप्रदेश का देश ही संज्ञासूत्रों का देश होगा, अतः कार्यकालपक्ष में 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' ६.१.५८ सूत्र 'गुरोरनृतोऽनन्त्यस्याऽप्येकैकस्य प्राचाम्' के देश में उपस्थित होने से त्रिपादी होगा। इस तरह कार्यकालपक्ष में संज्ञासूत्रों का स्वदेशपरित्याग होने से सपादसप्ताध्यायी की दृष्टि में त्रिपादी का असिद्धत्व नहीं रहा। इस तरह प्लुतविधायकसूत्र सिद्ध रहा।

इहापि तर्हि समावेशो न प्राप्नोति—देवदत्ता३ । सिद्धाऽसिद्धावेतौ । यौ हि सिद्धावेव असिद्धावेव वा तयोर्नियमः । यस्तर्हि स्वरितः प्लुतस्तेन समावेशः प्राप्नोति—'स्वरितमाम्रेडितेऽसूयासम्मतिकोपकुत्सने'ष्विति । स्वरितेऽप्युदात्तोऽस्ति । यस्तर्ह्यनुदात्ते प्लुतस्तेन समावेशः प्राप्नोति । 'अनुदात्तं प्रश्नान्ताभिपूजितयो'रिति । तस्मात् प्राग्वचनं कर्तव्यम् । {गुरोरनृतो} ।

अच्छा तो यदि ऐसी वात है तो 'देवदत्ता३' यहाँ पर समावेश प्राप्त नहीं हो सकेगा। 'देवदत्ता३!' यह सम्बुद्ध्यन्त रूप है। 'आमन्त्रितस्य च' ६.१.१९८ सूत्र से आदि उदात्त प्राप्त है, उसको वर्ज्यमानस्वर का प्रसङ्ग होने से प्लुतोदात्त के साथ समावेश नहीं हो सकेगा। यहाँ यह शङ्का हो सकती है कि 'देवदत्ता३!' इत्यादि में 'एकश्रुतिः दुरात् सम्बुद्धौ' १.२.३३ का प्रसंग है, वह षष्ठिक उदात्त कैसे बनेगा? तो यहाँ यह कहा जा सकता है कि-जब 'आम एकान्तरमामन्त्रितमनन्तिके' ८.१.५५ सूत्र से निघात एकश्रुति का निषेध होगा, तब 'देवदत्ता३!' यह 'आम् पचसि देवदत्ता३!' इत्यादि में उदाहरण बन सकेगा। अन्यथा सम्भव नहीं है।

परन्तु श्री नागेश जी का मत है कि यहाँ भिन्न तरह का है। वे कहते हैं कि 'आम एकान्तरमामन्त्रितमनन्तिके' ८.१.५५ सूत्र में प्लुत की प्रवृत्ति नहीं है, अतः दूर से सम्बोधन न होने की स्थिति में 'गुरोरनृतः-' सूत्र का उदाहरण दिया गया है। पूर्व सूत्र 'दूराद्धूते च' ८.२.८४ का अनुवर्तन होने पर भी 'दूरात्' यह पद प्रकृत सूत्र में उपलक्षणविधया बोध मात्र करायेगा। इसलिए जहाँ दूर से सम्बोधन नहीं है, वहाँ 'प्रत्यभिवादेऽशूद्रे' ८.२.८३ सूत्र के विषय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में भी 'गुरोरनृतोऽनन्त्यस्याऽपि-' सूत्र की प्रवृत्ति होगी, अतः 'देवदत्ता३!' यहाँ पर सर्वानुदात्त नहीं हुआ।

नियम उन्हीं का होता है जो या तो किसी से सिद्ध हों तथा सूत्रान्तर से उनका पुनः सिद्धत्वविधान किया जाये। अथवा किसी से असिद्ध होने पर पुनः उसी को सूत्रान्तर से असिद्धत्वबोधन कराया जाये, तो वे दोनों ही आरम्भ नियामक होते हैं। अच्छा तो 'देवदत्ता३!' यहाँ पर 'आमन्त्रितस्य च' ६.१.१९८ सूत्र से प्राप्त आदि उदात्त का प्लुतोदात्त के साथ समावेश न होने पर भी 'स्वरितमाम्रेडितेऽसूयासम्मतिकोपकुत्सनेषु' सूत्र से जो स्वरितप्लुत प्राप्त है, उसका समावेश प्राप्त होगा। जी नहीं, यह कोई दोष नहीं है। स्वरित में भी उदात्त है। 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' ६.१.५८ सूत्र में जो अनुदात्त गृहीत है, उसका अर्थ है—'अविद्यमानः उदात्तः अनुदात्तः'। विद्यमान पद का लोप होकर बहुव्रीहि है। इस तरह 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' ६.१.५८ सूत्र में अविद्य-मानोदात्तरूप अनुदात्त का आश्रयण किया गया है, पारिभाषिक उदात्त का ग्रहण नहीं किया गया है, अपितु 'उभयगतिरिह भवति' इस नियम से सूत्र में उदात्तत्वधर्म लिया गया है। उदात्तत्वविशिष्ट उदात्त भी है, तथा स्वरित भी। इस तरह एक साथ उदात्तत्व तथा स्वरित, दोनों रह सकें, यह सम्भव नहीं हो सकता है।

अच्छा तो जो 'अनुदात्तं प्रश्नान्ताभिपूजितयोः' ८.२.१०० सूत्र से अनुदात्त प्राप्त है, उसी को प्लुत होने से अनुदात्त और प्लुत का समावेश होगा। इस तरह अनुदात्त, प्लुत उदात्त का समावेश प्राप्त हो रहा है। उस समावेश की निवृत्ति के लिए सूत्र में प्राग्वचन कहना चाहिये। इससे विभाषा अर्थ उपस्थित होने से अनुदात्त, प्लुत उदात्त का एकत्र समावेश नहीं हो सकेगा। {गुरोर-नृतो-}।

ये यज्ञकर्मणि ८.२.८८

सूत्रार्थ—'ये' इस पद को यज्ञकर्म में प्लुत हो'। जैसे 'ये३ यजामहे'।

*** ये यज्ञकर्मणीत्यतिप्रसङ्गः *** ये यज्ञकर्मणीत्यतिप्रसङ्गो भवति। इहापि प्राप्नोति—ये देवासो दिव्येकादशस्थेति *** सिद्धं तु ये यजामह इति ब्रूह्यादिषूपसङ्ख्यानात् *** सिद्धमेतत्। कथम्? 'ये यजामह इति ब्रूह्यादिषूपसङ्ख्यानात्'। ये यजामहेशब्दो ब्रूह्यादिषूपसङ्ख्येयः।

यदि 'ये यज्ञकर्मणि' ऐसा सूत्र पढेंगे तो 'ये देवासो दिव्येकादशस्थ' यहाँ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पर भी यज्ञकर्म है, अतः 'ये' को प्लुत होने से अतिव्याप्ति होगी। इस अतिव्याप्ति का वारण करने के लिए भाष्यकार कहते हैं—ब्रूह्यादिगण में 'ये' शब्द का पाठ करना चाहिये इससे 'ये यजामहे' इस मन्त्र को 'ब्रूहिप्रेष्य श्रौषड्वौषडावहानादेः' ८.२.९१ सूत्र में पाठ कर देंगे। इससे 'ये देवासो दिव्येकादशस्थ' में 'ये' के प्लुत की अतिव्याप्ति समाप्त हो जायेगी। इस भाष्य से यह आया कि 'ये यज्ञकर्मणि' यह सूत्र नहीं करना चाहिये। {**ये यज्ञकर्मणि**}।

प्रणवष्टेः ८.२.८९

सूत्रार्थ—'यज्ञकर्म में टि को ओम् आदेश हो'। जैसे—'अपां रेतांसि जिन्वतोम्'। यहाँ पूर्वसूत्र से 'टेः' का अनुवर्तन हो रहा था, पुनः सूत्र में जो टिग्रहण किया, उसका फल यह है कि हलन्त्य में अन्त्य को न हो।

'प्रणव' इत्युच्यते, कः प्रणवो नाम? पादस्य वाऽर्द्धर्चस्य वाऽन्त्यमक्षरमुपसंहृत्य तदाद्यक्षरशेषस्य स्थाने त्रिमात्रमोङ्कारं त्रिमात्रमोकारं वा विदधति तं 'प्रणव' इत्याचक्षते'।

सूत्र में 'प्रणवः' ऐसा कहते हैं, प्रणव क्या है? पाद को अथवा मन्त्रार्द्ध को अथवा अन्त्य अक्षर को उपसंहार करके उसके स्थान पर **तदाद्यक्षरशेषस्य**=टि के स्थान पर तीन मात्रा का ओम् अथवा तीन मात्रा का 'ओ' का विधान करते हैं, वही प्रणव है।

अथ टिग्रहणं किमर्थम्? * टिग्रहणं सर्वादेशार्थम् * **टिग्रहणं क्रियते। किं प्रयोजनम्? 'सर्वादेशार्थम्'। यदा ओकारस्तदा सर्वादेशो यथा स्यात्। यदा हि ओँकारस्तदाऽनेकाल् शित् सर्वस्येति सर्वादेशो भविष्यति।** {प्रणवष्टेः}।

सूत्र में टिग्रहण किस लिए किया गया है? टिग्रहण का प्रयोजन सर्वादेश है। यदि ओकर आदेश होगा तो वह टिग्रहणसामर्थ्य से सम्पूर्ण टि के स्थान पर होगा। यदि टि के स्थान पर ओम् आदेश होगा तो आदेश के अनेकाल् होने से सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर सर्वादेश होगा। {**प्रणवष्टेः**}।

याज्याऽन्तः ८.२.९०

सूत्रार्थ—'जो याज्य मन्त्र हैं, उनके टि को यज्ञकर्म में प्लुत हो'। यहाँ पर याज्याशब्द से याज्याकाण्ड में पठित मन्त्र का ग्रहण है। जैसे—'जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवहा३म्'।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्तग्रहणं किमर्थम्? याज्या नामर्चो वाक्यसमुदायस्तत्र यावन्ति वाक्यानि सर्वेषां टेः प्लुतः प्राप्नोति, इष्यते चाऽन्त्यस्य स्यादिति। तच्चाऽन्तरेण यत्नं न सिध्यतीत्येवमर्थमन्तग्रहणम्। {याज्याऽन्तः}।

'याज्या' इतना ही सूत्र रखते, पूर्व सूत्र से 'टेः' की अनुवृत्ति होगी। अर्थ होगा—'याज्याकाण्ड में पठित मन्त्रों का टि प्लुत हो'। इससे 'जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवहा३म्' की सिद्धि हो जाती, पुनः इस सूत्र में अन्तग्रहण किसलिए करते हैं? यदि सूत्र में अन्तग्रहण नहीं करेंगे तो प्रत्येक वर्ण के टि को प्लुत होने लगेगा। मन्त्रों के समुदाय को याज्या कहते हैं। इस तरह वाक्यसमुदाय याज्या है। उस वाक्य समुदाय में जितने भी पद हैं, उन सभी पदों के टि को प्लुत होने लगेगा, जब कि वाक्यसमुदाय अन्त्य टि को प्लुत इष्ट है। वह विना किसी उपाय के सिद्ध नहीं हो सकेगा। वाक्यसमुदाय के अन्त्य टि को प्लुत हो, इसके लिए अन्तग्रहण किया गया है। **{याज्यान्तः}**।

अग्नीत्प्रेषणे परस्य च ८.२.९२

'अग्नीध्' ऋत्विग्विशेष है। 'अग्नीधः प्रेषणम् अग्नीत्प्रेषणम्' यह कर्मषष्ठी के साथ समास है।

सूत्रार्थ—'अग्नीत्कर्मक अध्वर्युकर्तृक प्रेषण वाच्य होने पर आदि को प्लुत हो तथा आदि से पर में द्वितीय अच् को भी प्लुत हो'।

* अग्नीत्प्रेषण इत्यतिप्रसङ्गः * **अग्नीत्प्रेषण इत्यतिप्रसङ्गो भवति। इहापि प्राप्नोति—अग्नीदग्नीन् विहर** * सिद्धं त्वोश्रावये परस्य चेति वचनात् * **सिद्धमेतत्। कथम्? 'ओश्रावये परस्य चेति वचनात्'। ओश्रावये परस्येति वक्तव्यम्। ओ३श्रा३वय।**

'अग्नीत्प्रेषणे परस्य च' इस सूत्र की अतिव्याप्ति हो रही है। यह सूत्र यहाँ भी प्राप्त हो रहा है 'अग्नीदग्नीन् विहर' में। अर्थात् यहाँ पर भी आदि तथा उससे पर को प्लुत प्राप्त हो रहा है, जो इष्ट नहीं है। जी, यहाँ पर अतिव्याप्ति नहीं होगी। यहाँ की अतिव्याप्ति 'ओश्रावय' में **परस्य**=पर अच् तथा आदि अच् को प्लुतवचन से दूर हो जायेगी—'ओ३श्रा३वयव इति।

अपर आह—ओश्रावयाश्रावययोरिति वक्तव्यम्। ओ३श्रा३वय। ओ३श्रा३वय * बहुलमन्यत्र * **बहुलमन्यत्रेति वक्तव्यम्। उद्धरा३ उद्धर। आहरा३ आहर। तत्तर्हि वक्तव्यम्। न वक्तव्यम्। योगविभागः करिष्यते—**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'अग्नीत्प्रेषणे परस्य च विभाषा'। ततः 'पृष्टप्रतिवचने हेः'। 'विभाषे'त्येव।

दूसरे आचार्य कहते हैं—'ओश्रावय'' और 'ओश्रावय' का आदि अच् और आदि से पर अच् को पूर्वाक्त अर्थ में प्लुत कहना चाहिये। जैसे—'ओ३श्रा३वय। ओ३श्रा३वय'। 'ओश्रावय'' और 'ओश्रावय' से अन्यत्र 'अग्नीत्प्रेषणे परस्य च' यह बहुल से प्लुतविधान करेगा। यहाँ बहुलविधानसामर्थ्य से आदि अच् तथा आदि से पर अच् को प्लुत नहीं करेगा; अपितु अन्त्य को प्लुत करेगा। जैसे—'उद्धरा३ उद्धर'। 'आहरा३ आहर'। यहाँ चापल अर्थ गम्य होने पर क्रिया को द्वित्व है। 'उद्धरा३ उद्धर' इत्यादि में पूर्व के अन्त्य को प्लुत है। तो क्या 'बहुलमन्यत्र' यह वार्तिक पढना चाहिये? नहीं 'बहुलमन्यत्र' यह वार्तिक नहीं पढना चाहिये। 'अग्नीत्प्रेषणेपरस्यचविभाषापृष्टप्रतिवचनेहेः' यह संहितापाठ है। इसका योगविभाग करेंगे। 'अग्नीत्प्रेषणेपरस्य च विभाषा' यह एक योग होगा तथा 'पृष्टप्रतिवचनेहेः' यह द्वितीय योग होगा। इस तरह 'अग्नीत्प्रेषणेपरस्यचविभाषा' के विकल्पार्थक होने से 'ओश्रावय'' और 'ओश्रावय' से अन्यत्र अन्त्य को विकल्प से प्लुत होगा, अतः कोई दोष नहीं होने से 'बहुलमन्यत्र' यह वार्तिक पढने की आवश्यकता नहीं है।

अपर आह—* सर्व एव प्लुतः साहसमनिच्छता विभाषा वक्तव्यः * {अग्नीत्प्रेषणे}।

दूसरे कहते हैं—**साहसम्**=शास्त्रत्याग **अनिच्छता**=की इच्छा न रखने वाले को सभी प्लुत विकल्प से कहना चाहिये। सभी प्लुत विकल्प से होते हैं, यह 'गुरोरनृतोऽनन्त्यस्याऽप्येकैकस्य प्राचाम्' ८.२.८६ सूत्र में 'प्राचाम्' ग्रहण से सिद्ध है। {**अग्नीत्प्रेषणे**}।

आम्रेडितं भर्त्सने ८.२.९५

* भर्त्सने पर्यायेण * **भर्त्सने पर्यायेणेति वक्तव्यम्। चौरा३ चौर। चौर चौरा३। कुशीला३ कुशील। कुशील कुशीला३।**

यहाँ 'आम्रेडित' पद से उपलक्षणविधया द्विरुक्त अर्थ का बोध होता है।

सूत्रार्थ—'भर्त्सन गम्य होने पर द्विरुक्त को प्लुत हो'। परन्तु भर्त्सन अर्थ में पर्याय का ग्रहण कहना चाहिये। अर्थात् भर्त्सन अर्थ गम्य होने पर पर्याय से द्विरुक्त के टि को प्लुत कहना चाहिये। जैसे—चौरा३ चौर। चौर चौरा३। कुशीला३ कुशील। कुशील कुशीला३'। {**आम्रेडितम्-**}।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वरितमाम्रेडितेऽसूयासम्मतिकोपकुत्सनेषु ८.२.१०३

सूत्रार्थ—'असूया आदि अर्थ गम्य होने पर आम्रेडित पर रहते स्वरित प्लुत हो'। जैसे असूया गम्य होने पर 'अभिरूपका३ अभिरूपक रिक्तं ते आभिरूप्यम्'। सम्मति गम्य होने पर 'अभिरूपका३ अभिरूपक शोभनोऽसि'। 'अविनीतका३ अविनीतक इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म!'। कुत्सन गम्य होने पर 'शाक्तिका३ शाक्तिक रिक्ता ते शक्तिः'।

*** असूयादिषु वावचनम् * असूयादिषु वेति वक्तव्यम्। कन्ये३ कन्ये। कन्ये कन्ये। शक्तिके३ शक्तिके। शक्तिके शक्तिके।**

असूया आदि में 'वा'वचन कहना चाहिये। अर्थात् आमन्त्रित पर रहते असूया आदि गम्य होने पर विकल्प से स्वरित होता है। जैसे प्लुत होने पर 'कन्ये३ कन्ये। शक्तिके३ शक्तिके'। प्लुत का अभाव होने पर 'कन्ये कन्ये। शक्तिके शक्तिके'। {स्वरितमाम्रेडिते-}।

प्लुतावैच इदुतौ ८.२.१०६

सूत्रार्थ—'दूराद्धूतादि वाच्य होने पर जो प्लुत को कहा है, वह यदि ऐच् को प्लुत प्राप्त हो तो ऐच् अवयव इत् उत् को प्लुत हो'। इस तरह 'ऐ३तिकायन, औ३पगव' में ऐच् की तीन अथवा चार मात्रा है। 'ऐच्' यह अवर्ण-इवर्ण तथा अवर्ण-उवर्ण का समाहारवर्ण है, अतः उत्तरार्द्ध इत् उत् को त्रिमात्रिक प्लुत हो जाने से अकार के साथ यहाँ पर ऐच् चार मात्र अथवा पक्षान्तर में तीन मात्रा वाला है। 'ऐ३तिकायन, औ३पगव' इस उदाहरण में 'गुरोरनृतोऽनन्त्यस्याऽप्येकैकस्य प्राचाम्' ८.२.८६ सूत्र से प्लुत है।

किमर्थमिदमुच्यते? * ऐचोरुभयविवृद्धिप्रसङ्गादिदुतोः प्लुतवचनम् * ऐचोरुभयविवृद्धिप्रसङ्गादिदुतोः प्लुत उच्यते। किमुच्यते 'उभयविवृद्धिप्रसङ्गा'दिति? यदा नित्याः शब्दाः। नित्येषु च शब्देषु कूटस्थैरविचालिभिर्वर्णैर्भवितव्यमनपायोपजनविकारिभिः।

अब यहाँ भाष्यकार सम्पूर्ण सूत्र पर पूर्वपक्ष करते हैं—'प्लुतावैच इदुतौ' यह सूत्र क्यों पढा गया है। यदि यह वचन नहीं भी पढा जायेगा, तब भी पूर्व सूत्र 'गुरोरनृतोऽनन्त्यस्याऽप्येकैकस्य प्राचाम्' ८.२.८६ सूत्र से प्लुत सिद्ध हो जा रहा है। उसी को प्लुत करने के लिए पृथक् 'प्लुतावैच इदुतौ' सूत्र का आरम्भ क्यों किया गया है? वह इसलिए आरम्भ किया गया है कि ऐच्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के उत्तरार्द्ध का अवयव इत्, उत् को प्लुत हो सके।

ऐच् में अवर्ण-इवर्ण तथा अवर्ण-उवर्ण, ये दो वर्ण हैं। दोनों को प्लुत होने से दोनों को **विवृद्धि**=संवर्द्धन प्राप्त है, अर्थात् दोनों को प्लुत होने से यहाँ प्लुत छह मात्रा का हो जायेगा। वह न हो, इसके लिए सूत्रकार ने मात्र ऐच् का अवयव इत्, उत् को ही प्लुत कहा है।

आप ने 'उभयविवृद्धिप्रसङ्गात्' ऐसा क्या कह दिया? 'शब्द नित्य हैं। नित्य शब्दों में वर्ण **कूटस्थ**=स्वभाव का परित्याग न करने वाला, **अविचाली**=नित्य अवयवरहित होते हैं। नित्य शब्दों में वर्ण वृद्धि, ह्रास और विकार से रहित होते हैं। यदि ऐच् को अवर्ण-इवर्ण, एवम् अवर्ण-उवर्ण ऐसा भिन्न-भिन्न अवयव वाला मान लिया जाये तथा ऐच् का एकदेश इत्, उत् को प्लुतविवृद्धि माना जाये तो वर्णों के उपचय अपचय होने से अवयवी शब्द में अनित्यतापत्ति होगी।

नैष दोषः। 'उभयविवृद्धिप्रसङ्गा'दिति नैवें विज्ञायते—'उभयोर्विवृद्धिः उभयविवृद्धिः उभयविवृद्धिप्रसङ्गा'दिति। कथं तर्हि? उभयोः विवृद्धिरस्मिन् सोऽयमुभयविववृद्धिः, उभयविवृद्धिप्रसङ्गादिति। इमावैचौ समाहारवर्णौ, मात्राऽवर्णस्य मात्रोवर्णोवर्णयोरिति तयोः प्लुत उच्यमान उभयविवृद्धिः प्राप्नोति। तद्यथा—गर्भो वर्द्धमानः सर्वाङ्गपरिपूर्णो वर्द्धते। अस्ति प्रयोजनमेतत्? किं तर्हि? * तत्राऽयथेष्टप्रसङ्गः * **तत्राऽयथेष्टं प्रसज्येत। चतुर्मात्रः प्लुतः प्राप्नोति।**

जी, यह कोई दोष नहीं है। 'उभयविवृद्धिप्रसङ्गात्' से मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि 'उभययेर्विवृद्धिरुभयविवृद्धिरुभयविवृद्धिप्रसङ्गात्' ऐसा। अर्थात् 'दोनों का संवर्द्धन होना', ऐसा मेरा आशय नहीं है। तब आप 'उभयविवृद्धिप्रसङ्गात्' इस पद से क्या बताना चाहते हैं? 'उभयोः विवृद्धिरस्मिन् सोऽयमुभयविववृद्धिः, उभयविवृद्धिप्रसङ्गात्' मैं ऐसा कह रहा हूँ। अवर्ण-इवर्ण तथा अवर्ण-उवर्ण का समाहारवर्ण ऐच् है, उन दोनों वर्णों को ऐच् में ही प्लुत कह रहा हूँ। जैसे गर्भ संवर्द्धन को प्राप्त होता हुआ सर्वाङ्ग परिपूर्ण बढता है। भाष्यकार ने 'उभयोः विवृद्धिरस्मिन् सोऽयमुभयविववृद्धिः, उभयविवृद्धिप्रसङ्गात्' ऐसा बहुव्रीहि माना है। गर्भ में अवयवों का सर्वाङ्गसंवर्द्धन मानने पर भी अवयवों का किं वा अवयवी का उपचय प्राप्त हो रहा है।

इसी तरह यदि ऐच् में सर्वाङ्गसंवर्द्धन मान लिया जाये तो शब्द में वर्णो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के उपचय होने से नित्य शब्द में अनित्यतापत्ति होगी, जैसा कि इस भाष्य का आशय श्री कैयट जी ने भी लगाया है। परन्तु यहाँ श्री कैयट जी का पक्ष उचित नहीं है। अपितु बहुव्रीहि-आश्रयणसामर्थ्य से 'गर्भो विवर्द्धमानः पूर्वगर्भसदृशः सर्वाङ्गपरिपूर्णः' गर्भान्तरं वर्द्धते' ऐसा भाष्य का आशय समझना चाहिये। इस पक्ष में सर्वाङ्गपरिपूर्ण पूर्वगर्भ भी निन्त्य है तथा गर्भान्तर भी नित्य रहेगा। वैसे ही द्विमात्र ऐच् भी नित्य है, तथा ऐच् के सदृश विवर्द्धमान प्लुतविशिष्ट ऐच् भी नित्य रहेगा, अतः इस पक्ष में शब्दनित्यत्व की रक्षा रह गयी।

तो क्या 'उभयविवृद्धिप्रसङ्गात्' का यह प्रयोजन है? 'उभयविवृद्धिप्रसङ्गात्' का यह प्रयोजन मानने में आप को क्या आपत्ति है? आपत्ति यह है कि ऐच् में अयथेष्टप्रसंग होगा। 'ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः' १.२.२६ सूत्र से आचार्य ने एकमात्रिक की ह्रस्वसंज्ञा, द्विमात्रिक की दीर्घसंज्ञा तथा त्रिमात्रिक की प्लुतसंज्ञा की है। यदि आप ऐच् का एकदेश इत्, उत् को प्लुत करेंगे तो ऐच् चतुर्मात्रिक होने लगेगा।

*** सिद्धं त्विदुतोर्दीघवचनात् * सिद्धमेतत्। कथम्? 'इदुतोर्दीघवचनात्'। इदुतोर्दीघो भवतीति वक्तव्यम्। तदेतत् कथं कृत्वा सिद्धं भवति? यदि समः प्रविभागो—मात्राऽवर्णस्य मात्रेवर्णोवर्णयोः।**

यह कोई दोष नहीं रहेगा। ऐच् को जो प्लुत कहा है, उसका उत्तरभाग इत्, उत् को दीर्घविधान कर देंगे। इससे प्लुत होने पर भी ऐच् त्रिमात्रिक ही रहेगा, चतुर्मात्रिक नहीं। यह कैसे सम्भव है? वह इस तरह कि ऐच् द्विमात्रिक है। उसका समानविभाग-अवर्ण एक मात्रा तथा इवर्ण उवर्ण एक-एक मात्रा करेंगे। उत्तरभाग एकमात्रिक अवर्ण तथा एकमात्रिक उवर्ण को दीर्घ करेंगे। एकमात्रिक अवर्ण के साथ मिल कर ऐच् त्रिमात्रिक ही रहेगा, चतुर्मात्रिक नहीं होगा। यदि चतुर्मात्रिक प्लुत नहीं है तो भाष्यकार कैसे कहते हैं—'चतुमार्त्रिकः प्लतुः प्राप्नोति'? वह इस तरह कि प्लुत का अवयव होने से 'चतुर्मात्रः प्लुतः' ऐसा कहते हैं। वस्तुतः त्रिमात्र ही प्लुत होता है, जैसा कि 'ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः' १.२.२६ सूत्र से स्पष्ट है। ऐच् को प्लुत करने पर भाष्यकार ऐच् के उत्तरभाग को दीर्घ का विधान कर ऐच् को त्रिमात्रिक कहते हैं। यहाँ भी विभाग सम किया है। तब कि वार्तिककार ने इससे पूर्व प्रत्याहाराह्निकभाष्य में 'ऐचोश्चोत्तरभयस्त्वात्' ऐसा कह कर ऐच् के उत्तर को भूयान् बताया है, अतः वार्तिककार ऐच् का समप्रविभाग नही मानते हैं; यह भाष्यकार और वार्तिककार में मतभेद है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ ह्यर्द्धमात्राऽवर्णस्याऽध्यर्द्धमात्रेवर्णोवर्णयोरर्द्धतृतीयमात्रः प्राप्नोति। अथ हि ह्यर्द्धमात्राऽवर्णस्याऽध्यर्द्धमात्रेवर्णोवर्णयोरर्द्धचतुर्थमात्रः प्राप्नोति। सूत्रं च भिद्यते। यथान्यासमेवास्तु। ननु चोक्तं—'तत्राऽथेष्टप्रसङ्ग' इति। तत्र सौर्यभागवतोक्तमनिष्टिज्ञो वाडवः पठति। इष्यत एव चतुर्मात्रः प्लुतः। {प्लुतावैच इदुतौ}।

'ऐचोश्चोत्तरभयस्त्वात्' इस वार्तिकपक्ष में कहते हैं कि ऐच् में पूर्वार्द्ध अवर्ण अर्द्धमात्रा है तथा उत्तरभाव इवर्ण और उवर्ण सार्द्धमात्रा है। इस पक्ष में यदि उत्तरभाग को त्रिमात्रिक प्लुत किया जाये तो ऐच् सार्द्धचतस्र मात्रा का होगा। परन्तु ऐच् प्लुत को वार्तिक मत में सार्द्धचतस मात्रा होने को प्लुत करने पर सूत्रभेद हो जायेगा। जी नहीं, सूत्रभेद नहीं होगा। सूत्र जैसा है, वैसा ही रहने दीजिये। वैसा ही सूत्रपक्ष में जो आप ने कहा था कि 'तत्राऽयथेष्टप्रसङ्गः', यह भी दोष नहीं रहेगा। **सौर्य**=देशविशेष के निवासी **भागवत**[1]=वार्तिककार आचार्य ने 'ऐचोश्चोत्तरभयस्त्वात्' ऐसा वार्तिक पढा है। परन्तु इस पक्ष में निष्ट मानने वाले वार्तिककार वाडव अन्य वार्तिक 'इदुतौ' पढते हैं जिनका अनुसरण कर आचार्य पाणिनि 'प्लुतावैच इदुतौ' ऐसा सूत्र पढते हैं। उनके मत में अच् एकमात्रिक, द्विमात्रिक तथा त्रिमात्रिक ही नहीं होते हैं; अपितु चतुर्मात्रिक अच् भी वाडवाचार्य के मत में होता है, जिसको अच्कार्य भी होंगे। जैसे 'प्रत्यङ्ङे४तिकायन!' यहाँ पर 'ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम्' ८.३.३२ से ङुट् का आगम, 'ग्लौ४त्त्रात!' यहाँ पर चतुर्मात्रिक अच् से पर में तकार को 'अनचि च' ८.४.४७ से द्वित्व होता है। **{प्लुतावैच इदुतौ}**।

एचोऽप्रगृह्यस्यादूराद्धूते पूर्वस्यादुत्तरस्येदुतौ ८.२.१०७

सूत्रार्थ—'दूर से आवाहन न होने की स्थिति में अप्रगृह्यसंज्ञक एच् के पूर्वार्द्ध अकार को प्लुत हो तथा उत्तरार्द्ध को इत्, उत् हो'। जैसे 'होतव्यं दीक्षितस्य गृहा३इ'। यहाँ अप्रगृह्यसंज्ञक 'गृहे'घटक 'ए पूर्वार्द्ध 'अ' को प्लुत है तथा उत्तरार्द्ध को 'इ' है। इसी तरह 'भद्रं करोषि पटा३उ'। यहाँ पर 'पटो' को 'पटा३उ' है।

---

१. इससे अनेक वार्तिककार का होना सिद्ध है। वार्तिकग्रन्थ किसी एक आचार्य का नहीं है। अपितु अनेक आचार्यों द्वारा रचित वार्तिकों का संग्रह वार्तिक है। कुछ वार्तिक भाष्यकार के हैं, कुछ कात्यायन जी के हैं, कुछ सौर्यभागवत रचित हैं, कुछ वाडवाचार्य द्वारा रचित हैं, तथा कुछ अन्य आचार्यों द्वारा रचे गये हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एचः प्लुतविकारे पदान्तग्रहणम् **एचः प्लुतविकारे पदान्तग्रहणं कर्तव्यम्। इह मा भूद्—भद्रं करोषि गौ३रिति** *विषयपरिगणनं च* **विषयपरिगणनं च कर्तव्यम्।** 'प्रश्नान्ताभिपूजितविचार्यमाणप्रत्यभिवादयाज्यान्ते'-**ष्विति वक्तव्यम्।** प्रश्नान्त—**अगमा३ः पूर्वा३न् ग्रामा३नग्निभूता३इ? पटा३उ?** प्रश्नान्त। अभिपूजित—**सिद्धोऽसि माणवकाग्निभूता३इ। पटा३उ।** अभिपूजित। विचार्यमाण—**होतव्यं दीक्षितस्य गृहा३इ।** विचार्यमाण। प्रत्यभिवाद—**आयुष्मानेधि अग्निभूता३इ।** प्रत्यभिवाद। याज्यान्त—**उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे स्तोमैर्विधेयेमाग्नया३इ।**

एच् को प्लुतविकार की विषयता में पदान्तग्रहण करना चाहिये। पदान्तग्रहण करने का व्यावर्त्य विषय है—'भद्रं करोषि गौ३ः'। 'स्वादिष्वसर्वनाम- स्थानेयचिभम्' इस संहितापाठ को भाष्यकार ने 'स्वादिष्वसर्वनामस्थानेयचि' एक योग तथा 'भम्' यह द्वितीय योग पढा है। पूर्व सूत्र से 'असर्वनामस्थानेयचि' का अनुवर्तन करके अजादि सर्वनामस्थान से भिन्न अजादि प्रत्यय पर रहते भसंज्ञा का विधान है। 'सु' प्रत्यय अजादि नहीं है। 'स्वादिष्वसर्वनामस्थानेयचि' सूत्र से भी अजादि सर्वनामस्थान से भिन्न स्वादि प्रत्यय पर रहते प्रकृतिभाग की पदसंज्ञा होगी। इस तरह भाष्यकार ने 'सावपि पदं भवति' यह पक्ष प्रतिपादन किया है। इस नियम के अनुसार 'भद्रं करोषि गौ३ः' यहाँ पर 'गौः'घटक 'औ' के पदान्त न होने से पूर्वार्द्ध 'अ' को प्लुत तथा उत्तरार्द्ध को 'उ' क्यों नहीं होता है? तो इसका उत्तर यह होगा कि प्रकृत सूत्र में 'पदस्य' ८.१.१६ तथा 'वाक्यस्य टेः प्लुत उदात्तः' ८.२.८२ सूत्र का अधिकार होने से वाक्य और पद का अन्त्य कार्यी होगा। 'गौः' इस पद का अन्त्य विसर्ग है, 'औ' नहीं, अतः 'भद्रं करोषि गा३उः' ऐसा रूप नहीं हुआ।

इस सूत्र के विषयों का परिगणन करना चाहिये—प्रश्नान्त, अभिपूजित, विचार्यमाण, प्रत्यभिवाद एवं याज्यान्त अर्थ गम्य होने पर ही अप्रगृह्यसंज्ञक एच् के पूर्वार्द्ध 'अ' को प्लुत तथा उत्तरार्द्ध को इत्, उत् कहना चाहिये। जैसे **प्रश्नान्त**—'अगमा३ः पूर्वा३न् ग्रामा३नग्निभूता३इ? पटा३उ?'। यहाँ 'अग्निभूते' में 'ए' को 'आ३इ' है। 'पटो'घटक 'ओ' को 'अ३उ' है। **अभिपूजित**—'सिद्धोऽसि माणवकाग्निभूता३इ। पटा३उ'। यहाँ भी 'अग्निभूते' में 'ए' को 'आ३इ' तथा 'पटो'घटक 'ओ' को 'अ३उ' पूर्ववत् समझना चाहिये। **विचार्यमाण**—'होतव्यं दीक्षितस्य गृहा३इ'। यहाँ 'गृहे'घटक 'ए' को 'आ३इ' है। **प्रत्यभिवाद**—'आयुष्मानेधि अग्निभूता३इ'। यहाँ 'अग्निभूते'घटक 'ए' को 'आ३इ'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। **याज्यान्त**—'उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे स्तोमैर्विधेयेमाग्नया३इ'। यहाँ 'अग्नये' को 'अग्नया३इ' है।

* आमन्त्रिते छन्दस्युपसङ्ख्यानम् * **आमन्त्रिते छन्दस्युपसङ्ख्यानं कर्तव्यम्। अग्ना३इ पतीर्वा३ः सजूर्देवेन त्वष्ट्रा सोमं पिब।** {एचोऽप्रगृह्यस्यादूरा}।

वेदविषय होने पर **आमन्त्रित**=सम्बोधन में प्रथमा एकवचन के अप्रगृह्यसंज्ञक एच् के पूर्वार्द्ध अकार को प्लुत तथा उत्तरार्द्ध को इत्, उत् कहना चाहिये। जैसे—'अग्ना३इ पतीर्वा३ः सजूर्देवेन त्वष्ट्रा सोमं पिब'। यहाँ पर आमन्त्रित 'अग्ने'घटक 'ए' का पूर्वार्द्ध 'अ' को प्लुत तथा उत्तर को इत् है। वाक्यघटक पदान्त न होने से भाष्यकार ने इसे अलग से वार्तिक पढ कर विधान किया है। {एचोऽप्रगृह्यस्यादूरा-}।

तयोर्य्वावचि संहितायाम् ८.२.१०८

सूत्रार्थ—'एचोऽप्रगृह्यस्यादूराद्धूते पूर्वस्यादुत्तरस्येदुतौ ८.२.१०७ से प्लुतस्थल में एच् के उत्तर को विहित इत्, उत् को अच् पर रहते संहिता के विषय में य् व् आदेश हो'। जैसे—'अग्ना३याशा। अग्ना३यिन्द्रम्'। यहाँ 'अग्ने आशा' 'अग्ने इन्द्रम्' ऐसा पदच्छेद करना चाहिये। 'पटा३वाशा, पटा३वुदकम्'। यहाँ 'पटो आशा पटो उदकम्' ऐसा पदच्छेद है।

अथ कयोरिमौ य्वावुच्येते? 'इदुतो'रित्याह। तदिदुतोर्ग्रहणं कर्तव्यम्। न कर्तव्यम्। प्रकृतमनुवर्तते। क्व प्रकृतम्? 'पूर्वस्यार्द्धस्याद् उत्तरस्येदुता'विति। तद्वै प्रथमानिर्दिष्टं षष्ठीनिर्दिष्टेन चेहाऽर्थः। 'अची'त्येषा सप्तमीदुताविति प्रथमायाः षष्ठीं प्रकल्पयिष्यति—'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्ये'ति।

सूत्र में 'य्वौ' ऐसा आदेशवचन कहा है, उसका स्थानी क्या है? इसकी जिज्ञासा करते हैं—**अथ कयोरिति**।

उत्तर देते हैं—**इदुतोरिति**। इत्, उत् को 'य्वौ' आदेश किया जा रहा है। तो क्या सूत्र में 'इदुतोः' ऐसा सूत्रपाठ करना पडेगा? इसकी आवश्यकता नहीं है। इससे पूर्व सूत्र 'एचोऽप्रगृह्यस्याऽदूराद्धूते पूर्वस्यादुत्तरस्येदुतौ ८.२.१०७ में एच् के उत्तरभाग को इत्, उत् विधान किया है, वहीं से प्रकृत सूत्र में 'इदुतौ' का अनुवर्तन्न कर लेंगे। अच्छा तो पूर्व सूत्र में 'इदुतौ' यह प्रथमान्तनिर्दिष्ट

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। प्रकृत में भी प्रथमान्त 'इदुतौ' का ही अनुवर्तन होगा। यह 'य्वौ' का स्थानी कैसे बनेगा? स्थानी उद्देश्यवचन को षष्ठ्यन्त होना चाहिये। यह कोई समस्या नहीं है। 'तयोर्य्वावचि संहितायाम्' सूत्र में 'अचि' यह निमित्तसप्तम्यन्त पाठ है। निमित्तसप्तमी का स्वभाव है कि वह अपने से पूर्व को षष्ठी की प्रकल्पना करा देती है—'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' १.१.६६ के द्वारा। अतः पूर्व सूत्र से अनुवृत्त 'इदुतौ' को सप्तमी षष्ठी की परिकल्पना करा देगी, जिससे वह 'इदुतोः' ऐसा हो जायेगा।

किमर्थमिदमुच्यते नेको यणचीत्येव सिद्धम्? न सिध्यति। असिद्धः प्लुतः, प्लुतविकारौ चेमौ। सिद्धः प्लुतः स्वरसन्धिषु। कथं ज्ञायते? यदयं 'प्लुतप्रगृह्या अची'ति प्लुतस्य प्रकृतिभावं शास्ति। कथं कृत्वा ज्ञापकम्? सतो हि कार्यिणः कार्येण भवितव्यम्।

यदि इत्, उत् को यण् य् व् विधेय है तो वह 'इको यणचि' ६.१.७७ से ही हो जाता, उसके लिए 'तयोर्य्वावचि संहितायाम्' सूत्र पढने की आवश्यकता क्या थी? जी, यहाँ पर 'इको यणचि' ६.१.७७ सपादसप्ताध्यायी है तथा प्लुतसंज्ञक शास्त्र त्रिपादी है। सपादसप्ताध्यायी की दृष्टि में त्रिपादीशास्त्रों का अभाव है। यहाँ जिस इत्, उत् को 'य्वौ' विधान किया जा रहा है, वह प्लुतविकार है। यण्विधायक शास्त्र की दृष्टि में प्लुतशास्त्र के असिद्ध होने जाने से प्लुत का विकार इत्, उत् नहीं मिलेगा, जिसको 'इको यण्णचि' ६.१.७७ से यण् किया जा सके, अतः इस सूत्र से लक्ष्य सिद्ध नहीं होने की स्थिति में 'तयोर्य्वावचि संहितायाम्' का आरम्भ आवश्यक हो गया।

जी नहीं, आप का यह पक्ष उचित नहीं है। 'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्' ६.१.१२५ सूत्र प्लुत को प्रकृतिभाव का विधान करता है। यदि प्लुत को असिद्ध माना जाये तो स्वरसन्धि की कर्तव्यता में प्लुत को प्रकृतिभाव करने का कोई प्रयोजन नहीं था, अतः इस प्रकृतिभाव से ज्ञापन होता है कि-'सिद्धः प्लुतः स्वरसन्धिषु'='स्वरसन्धि की कर्तव्यता में प्लुत सिद्ध होता है'। इस तरह 'इको यण्णचि' ६.१.७७ से यण् आदेश सिद्ध हो ही रहा था, पुनः उसी के लिए 'तयोर्य्वावचि संहितायाम्' का आरम्भ क्यों किया गया है?

इदं तर्हि—* प्रयोजनं-दीर्घशाकलप्रतिषेधार्थम् * दीर्घशाकलप्रतिषेधार्थम् प्रयोजनम्। दीर्घत्वं शाकलं च मा भूदिति। अग्ना३यिन्द्रम्। पटा३वुदकम्।

अब भाष्यकार इस सूत्र का अन्य प्रयोजन देते हैं—**इदं तर्हीति**। इसका

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रयोजन दीर्घनिषेध तथा शाकलनिषेध है। दीर्घनिषेध जैसे—'अग्ना यिन्द्रम्'। यहाँ ऐच् का पूर्व अवयव अवर्ण को प्लुत तथा उत्तरभाग को इत् करने पर वाक्य में 'अग्ना३इ+इन्द्रम्' ऐसी स्थिति है। यहाँ 'अकः सवर्णे दीर्घः' ६.१.१०१ से सवर्णदीर्घ-एकादेश प्राप्त है। यहाँ प्रकृतसूत्र से 'य्वौ'विधान किया है; तत्सामर्थ्य से सवर्णदीर्घ-एकादेश का बाध होता है। इसी तरह 'पटा३वुदकम्' में भी शाकलनिषेध सवर्णदीर्घ-एकादेश की प्राप्ति है। एतत्सूत्रसामर्थ्य से उसका बाध हो जाता है। उपर्युक्त दोनों उदाहरणों में अवर्णपूर्वक पदान्त य् व् को अश्परक होने से लोप प्राप्त है। 'य्वौ'विधानसामर्थ्य से 'लोपः शाकल्यस्य' ८.३.१९ का बाध हो जाता है।

एतदपि नास्ति प्रयोजनम्। आरभ्यते प्लुतपूर्वस्य 'यणादेशः प्लुतपूर्वस्य च दीर्घशाकलप्रतिषेधार्थ'मिति; तन्न वक्तव्यं भवति। अवश्यं तद् वक्तव्यं यौ प्लुतपूर्वाविदुतावप्लुतविकारौ तदर्थ—भो३यिन्द्र भो३यिडेति।

जी, इस सूत्र का दीर्घप्रतिषेध और शाकलप्रतिषेध भी प्रयोजन नहीं है। 'अग्ना३यिन्द्रम्, पटा३वुदकम्' यहाँ पर दीर्घप्रतिषेध और शाकलप्रतिषेध के लिए वार्तिककार ने 'यणादेशः प्लुतपूर्वस्य च दीर्घशाकलप्रतिषेधार्थम्' यह वार्तिक पढा है, 'तयोर्य्वावचि संहितायाम्' इस सूत्र के पढ देने से दीर्घप्रतिषेधार्थ तथा शाकलप्रतिषेधार्थ उक्त वार्तिक पढने की आवश्यकता नहीं रह जाती है। यह लाघव ही प्रयोजन है। इस सूत्र के आरम्भ से यण्सिद्धि के साथ-साथ दीर्घप्रतिषेध और शाकलप्रतिषेध भी प्रयोजन है। 'तयोर्य्वावचि संहितायाम्' सूत्र अवश्य पढना चाहिये। इस सूत्र का प्रयोजन प्लुतपूर्वक इत्, उत् विकार है, उसके लिए सूत्र पढना चाहिये। जैसे—'भो३यिन्द्र, भो३यिड'। यहाँ पर 'इ' शब्द निपात होने से प्रगृह्यसंज्ञक है, अतः उसको प्रकृतिभाव प्राप्त होगा, जिसे बाधने के लिए यण्विधायक सूत्रारम्भ आवश्य करना चाहिये। यहाँ पर वर्णव्यत्यय होने से अनन्त्य होने के कारण छान्दस प्लुत है। अच्छा तो 'यणादेशः प्लुतपूर्वस्य च दीर्घशाकलप्रतिषेधार्थम्' वार्तिक का बाध करने के लिए आप ने 'तयोर्य्वावचि संहितायाम्' सूत्र का आरम्भ किया। यह सूत्र नहीं पढिये। 'इको यणचि' ६.१.७७ से ही यण् आदेश होने दीजिये तथा 'यणादेशः प्लुतपूर्वस्य च दीर्घशाकलप्रतिषेधार्थम्' वार्तिक से दीर्घप्रतिषेध और शाकलप्रतिषेध होने दीजिये। इससे पृथक् एक सूत्र के न पढने से गौरव नहीं होगा, अतः 'इको यणचि' ६.१.७७ सूत्र को ही रहने दिया जाये, 'तयोर्य्वावचि संहितायाम्' सूत्र को न पढा जाये। जी नहीं, 'तयोर्य्वावचि संहितायाम्' यह अवश्य पढना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चाहिये। इसका प्रयोजन स्वरसिद्धि है। 'इको यणचि' ६.१.७७ से यदि कहीं पर उदात्त और स्वरित इक् के स्थान पर यण् आदेश होता है तो उस यण् से पर में अनुदात्त को स्वरितस्वर सिद्ध होता है। जब कि 'उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य' ८.२.४ की दृष्टि में 'तयोर्य्वावचि संहितायाम्' के असिद्ध होने से उदात्त और स्वरित इक्स्थानिक यण् से पर में अनुदात्त को स्वरित स्वर नहीं होता है।

यदि तर्हि तस्य निबन्धनमस्ति तदेव वक्तव्यमिदं न वक्तव्यम्। इदमप्यवश्यं वक्तव्यं स्वरार्थम्। तेन हि सति 'उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्ये'त्येष स्वरः प्रसज्येत, अनेन पुनः सत्यसिद्धत्वान्न भविष्यति। यदि तर्ह्यस्य निबन्धनमस्तीदमेव वक्तव्यं तन्न वक्तव्यम्। ननु चोक्तं—'तदप्यवश्यं वक्तव्यं, यौ प्लुतपूर्वाविदुतावप्लुतविकारौ तदर्थं—भो३इ इन्द्र! भो३यिडे'ति। छान्दसमेतत्, दृष्टानुविधिश्छन्दसि भवति। यत्तर्हि न छान्दसं—भो३इन्द्रं भो३यिन्द्रं साम गायति? एषोऽपि च्छन्दसि दृष्टस्यानुप्रयोग इति।

अच्छा तो यदि 'तयोर्य्वावचि संहितायाम्' सूत्र का 'य्वौ'विधान दीर्घ और शाकललोप का निबन्धन है तो इसी सूत्र को रखिये, शाकललोप और सवर्णदीर्घ का प्रतिषेधक उक्त वार्तिक पढने की आवश्यकता नहीं है। जी, आप का यह कहना उचित नहीं है। जो प्लुतपूर्व इत्, उत् विकार है, जैसे 'भो३इ इन्द्र, भो३इड' उसके लिए। 'यणादेशः प्लुतपूर्वस्य च दीर्घशाकलप्रतिषेधार्थम्' यह वार्तिक अवश्य पढना चाहिये। जी, इसके लिए भी वार्तिक पढने की आवश्यकता नहीं है। 'भो३इ इन्द्र! भो३यिड' यह छान्दस प्रयोग है। छन्दः में जैसा देखा गया है, वैसा ही विधान किया जाता है, अतः उसके लिए वार्तिक आवश्य नहीं है। अच्छा तो जो छान्दस नहीं है, जैसे—'भो३इन्द्रं भो३यिन्द्रं साम गायति' उसके लिए वार्तिक अवश्य पढना चाहिये। जी नहीं, यह भी सामवेद के मन्त्र का भाग में दृष्ट का अनुप्रयोग है, अतः यहाँ भी छान्दसत्वात् समाधान कर लेना चाहिये।

किन्तु यणा भवतीह न सिद्धं
य्वाविदुतोर्यदयं विदधाति।
तौ च मम स्वरसन्धिषु सिद्धौ
शाकलदीर्घविधी नु निवर्त्यौ।।१।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इक्तु यदा भवति प्लुतपूर्वस्तस्य यणं विदधात्यपवादम्।
तेन तयोश्च न शाकलदीर्घौ यण्स्वरबाधनमेव तु हेतुः।।२।।

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरणमहाभाष्ये
अष्टमाध्यायस्य द्वितीयपादे द्वितीयमाह्निकम्

●

कारिकार्थ—'इको यण्णचि' ६.१.७७ से यण् सिद्ध नहीं हो रहा है, अतः इत्, उत् को 'य्वौ'विधान किया गया है। प्रकृत सूत्र से विहित 'य्वौ' स्वरसन्धि में सिद्ध है, तथा 'य्वौ'विधानसामर्थ्य से 'लोपः शाकल्यस्य' ८.३.१६ तथा 'अकः सवर्णे दीर्घः' ६.१.१०१ सूत्र की निवृत्ति हो जाने से शाकललोप तथा सवर्णदीर्घ का प्रतिषेध हो जाता है।। १।।

प्लुतपूर्व इक् होने से अपवाद होने से इक् को यण् का विधान करता है, अतः उस 'य्वौ' का लोप नही होता है तथा 'उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य' ८.२.४ सूत्र का बाध हो जाता है, अतः यण् से पर में अनुदात्त को स्वरित नहीं होता है।। २।।

श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिमुनिविरचित व्याकरणमहाभाष्य
अष्टम अध्याय द्वितीय पाद द्वितीय आह्निक पर
डॉ. हरिनारायण तिवारी द्वारा रचित
'ज्योत्स्ना' हिन्दी टीका पूर्ण हुई

द्वितीय पाद भी पूर्व हुआ

●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

❀ तृतीय पादे प्रथममाह्निकम् ❀

मतुवसो रु सम्बुद्धौ छन्दसि ८.३.१

'रु' यह अविभक्तिक प्रथमानिर्देश है। मतुप् और वसु प्रत्यय होने से तदन्त अर्थ को कहेंगे, अतः सूत्रार्थ होगा—'वेद में मत्वन्त और वस्वन्त को सम्बुद्धि पर रहते रु हो' 'इन्द्रं मरुत्व इ॒ह पा॑हि॒ सोम॑म्। हरिवो मे॒दिनं॑ त्वा'। यहाँ मरुत्वन् तथा हरिवन् सम्बुद्ध्येकवचनान्त मतुबन्त हैं। 'छन्दसीरः' ८.२.१५ से म को व आदेश है।

* मतुवसोरादेशे वन उपसङ्ख्यानम् * मतुवसोरादेशे वन उपसङ्ख्यानं कर्तव्यम्। यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वः * विभाषा भवद्भगवदघवतामोच्चाऽवस्य * छन्दसि भाषायाञ्च 'भवत्' 'भगवत्' 'अघवत्' इत्येतेषां विभाषा रुर्वक्तव्यः, ओच्चाऽवस्य वक्तव्यः! भोः। भवन्। भगोः। भगवन्। अघोः। अघवन्निति। सम्बुद्धावित्युच्यते तत्रेदं न सिध्यति—भो ब्राह्मणा इति। तथा 'विभक्तौ लिङ्गविशिष्टग्रहणं ने'तीह न प्राप्नोति भो ब्राह्मणि!। नैष दोषः। अव्ययमेष भोःशब्दो नैषा भवतः प्रकृतिः। कथमव्ययत्वम्। 'विभक्तिस्वरप्रतिरूपकाश्च निपाता भवन्ती'ति निपातसंज्ञा। 'निपातोऽव्यय'मित्यव्ययसंज्ञा। {मतुवसो रु}।

मतुप् और वसु के आदेश की विषयता में वन् को भी रुत्वादेश कहना चाहिये। यहाँ वार्तिक में वन् से क्वनिप् और वनिप् का सामान्यग्रहण है। जैसे—'यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वः' इस उदाहरण में 'प्रातरित्वः' यह क्वनिबन्तप्रयोग है—'प्रातरेतीति प्रातरित्वः'। 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' ३.३.१३० से इण् गतौ धा.पा.१०४५ धातु से क्वनिप् होकर 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' ६.१.७१ से धातु को तुक् का आगम तथा प्रत्ययघटक नकार को रुत्व होकर वेद में 'प्रातरित्वः' रूप है।

भवत्, भगवत् और अघवत् शब्द को लोक और वेद में उभयत्र रुत्व कहना चाहिये तथा अव को ओ आदेश कहना चाहिये। यहाँ भी 'अलोऽन्त्यस्य' १.१.५२ के द्वारा अन्त्य को रुत्व होगा। यह रुत्वविधान विकल्प से है, अतः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रुत्वसहचरित अव को ओ आदेश भी विकल्प से होगा। यह सम्पूर्ण आदेश सम्बुद्धि में होगा। जैसे—'भोः! भगोः! मघोः! यह भावपक्ष का रूप है। एवम् अभावपक्ष में भवन्! भगवन्! मघवन्! ऐसा ही रूप होगा। भवत्, भगवत् और अघवत् शब्द को सम्बुद्धिनिमित्तक एत्व और अव को ओ कहा गया है। सम्बोधन में प्रथमा-एकवचन को सम्बुद्धि कहते हैं। जहाँ बहुवचनान्त 'भो ब्राह्मणाः' ऐसा प्रयोग है, वहाँ पर सम्बुद्धि न होने से रुत्व और अव को ओ सिद्ध नहीं हो सकेगा। पुनः इस तरह के प्रयोगों की साधुता कैसे होगी? एवं विभक्तिग्रहण में लिङ्गविशिष्ट का ग्रहण नहीं होने से 'भो ब्राह्मणि!' यह स्त्रीलिङ्ग में भवत् शब्द को रुत्व और अव को 'ओ'घटित रूप कैसे होगा? 'भवति ब्राह्मणि!' इस सम्बुद्ध्यन्त 'भवति' के इकार को ही 'अलोऽन्त्यस्य' १.१.५२ परिभाषासूत्र के बल से रुत्व तथा अव को ओ आदेश हो जाने पर भी संयोगान्तलोप की कर्तव्यता में रुत्व असिद्ध हो जायेगा, अतः 'भवति ब्राह्मणि!' वाक्यघटक 'भोः' की सिद्धि नहीं हो सकेगी।

जी!, यह कोई दोष नहीं है। यह अव्यय भोःशब्द है, भवत्शब्द का 'भोः!' रूप नहीं है, अतः शब्दान्तर होने से दोष निवृत्त हो गया। अच्छा तो 'भोः!' शब्द अव्यय कैसे है? विभक्तिप्रतिरूपक तथा स्वरप्रतिरूपक निपातसंज्ञक होते हैं। इसको वार्तिककार ने-'विभक्तिस्वरप्रतिरूपकाश्च निपाता भवन्ति' ऐसा कहा है। निपातों की अव्ययसंज्ञा होती है, अतः 'भोः ब्राह्मणि!' यहाँ पर 'भोः' शब्दान्तर निपात होने से अव्यय है, भवत् शब्द का रूप नहीं। {**मतुवसो रु-**}।

समः सुटि ८.३.५
पुमः खय्यम्परे ८.३.६
कानाम्रेडिते ८.३.१२

रुत्वप्रकरण का सूत्र होने से ये तीनों रुत्व का विधान करते हैं। 'कानाम्रेडते' सूत्र में 'कान्' शब्द पुल्लिङ्ग द्वितीयाबहुवचनान्त का अनुकरण लुप्तषष्ठीकं स्थानिवचन है। अर्थ होगा—'सम् शब्द को सुट् पर रहते, पुम् शब्द को अम्परक खय् पर रहते तथा कान् शब्द को आम्रेडित पर रहते रुत्व हो'। षष्ठीनिर्देश होने से सर्वत्र अन्त्य अल् को रुत्व होगा। उदाहरण आगे स्पष्ट होगा—

* सम्पुंकानां सत्वम् * सम्पुंकानां सत्वं वक्तव्यम्। सँस्स्कर्ता। पुँस्कामा। काँस्कानिति * रुविधौ हि ह्यनिष्टप्रसङ्गः * रुविधौ हि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सत्यनिष्टं प्रसज्येत। इह तावत्—सँस्स्कर्त्तेति, 'वा शरी'ति प्रसज्येत। पुँस्कामेति, 'इदुदुपधस्ये'ति षत्वं प्रसज्येत। 'काँस्का'निति, 'कुप्वोः ≍ क ≍ पा'विति कः प्रसज्येत। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। क्रियते न्यास एव—'समः स्सुटी'ति द्विसकारको निर्देशः। समः स्सुटि सकारो भवति। तत्प्रकृतम् उत्तरत्राऽनुवर्तिष्यते। यदि तदनुवर्तते, 'नश्छव्यप्रशान्' इत्यत्रापि प्राप्नोति, 'भवाँस्तत्रे'ति। सम्बन्धमनुवर्तिष्यते। समः सुटि। 'पुमः खय्यम्परे'। सो भवति। 'नश्छव्यप्रशान्'। रुर्भवति 'पुमः खय्यम्परे' सकारः। 'उभयथर्क्षु'। 'दीर्घादटि समानपादे' 'नॄन्पे' 'स्वतवान्पायौ'। रुर्भवति, 'पुमः खय्यम्परे सकारः'। 'कानाम्रेडिते' सकारः। 'पुमः खय्यम्पर' इति निवृत्तम् * समो वा लोपमेके * समो वा लोपमेक इच्छन्ति। संस्कर्ता। सँस्कर्ता। {समः सुटि}।

सम्, पुम् और कान् शब्द के विसर्ग को सत्व कहना चाहिये। जैसे—'सँस्स्कर्ता। पुंस्कोकिलः। काँस्कान्। सम्पूर्वक कृ धातु को 'सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे' ६.१.१३७ सू सुडागम विहित है, अतः 'सम्+कर्ता' इस स्थिति में सम् के मकार को रुत्व, विसर्ग, सत्व तथा रुत्व से पूर्व को अनुनासिक और अनुस्वार विकल्प से विधान कर 'सँस्स्कर्ता' शब्द के १०८ रूप होते हैं, जिसको श्रीभट्टोजीदीक्षित जी ने वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी में स्पष्ट किया है। विशेष जिज्ञासु इन रूपों को वहीं समझेंगे। ग्रन्थविस्तार के भय से इन रूपों का यहाँ उल्लेख नहीं कर रहा हूँ। रुत्वविधि में अनिष्ट का प्रसङ्ग है। वह इस तरह कि 'सँस्स्कर्ता'स्थल में 'वा शरि' ८.३.३६ से शर् पर रहते विकल्प से विसर्जनीय को विसर्ग ही रह जायेगा। एवं 'पुँस्कामः' यहाँ पर 'इदुदुपधस्य चाऽप्रत्ययस्य' ८.३.४१ से उदुपध रहते प्रत्ययभिन्न विसर्ग को षत्व प्राप्त होगा, तथा 'काँस्कान्' स्थल में 'कुप्वोः ≍ क ≍ पौ च' ८.३.३७ के द्वारा कवर्ग पर रहते विसर्जनीय को जिह्वामूलीय प्राप्त होगा। ये रुत्वपक्ष में अनिष्ट प्राप्त हुये। आप को इसका निषेध भी कहना होगा।

जी!, नहीं, ये अनिष्ट रूप प्राप्त नहीं होंगे। यहाँ अनिष्ट प्राप्त न हो, इसके लिए मैं सूत्र का न्यास करूँगा—'समः स्सुटि'। अर्थात् यहाँ दो सकार वाला उच्चारण है। अर्थ होगा—'स्सुट् पर रहते सम् के विसर्ग को सकार हो'। इससे 'सँस्स्कर्ता' में पाक्षिक विसर्जनीय का दोष निरस्त हो गया। 'समः स्सुटि' सूत्र में जो दो सकार का निर्देश है, उसी का आगे अनुवर्तन होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इससे आगे के सूत्रों का भी अर्थ करेंगे—'अम्परक खय् पर रहते पुम्सम्बन्धी विसर्ग को सत्व हो', एवम् आम्रेडित पर रहते कानूसम्बन्धी विसर्ग को सत्व हो'। ऐसा अर्थ होने से 'पुँस्कामः' स्थल में षत्व तथा 'काँस्कान्' स्थल में जीह्वामूलीय की अनिष्टापत्ति निरस्त हो गयी।

यदि आप 'समः स्सुटि' ऐसा द्विसकारक निर्देश करके उसका आगे के सूत्रों में निर्देश करेंगे तो 'नश्छव्यप्रशान्' ८.३.७ इस सूत्र में भी सत्व का अनुवर्तन होने से 'भवाँस्तत्र' यहाँ पर भी पदान्त नकारसम्बन्धी विसर्जनीय को एक पक्ष में विसर्जनीय ही रह जायेगा; जिससे 'भवाँस्तत्र' के स्थान पर 'भवाँः तत्र' ऐसा रूप की अनिष्टापत्ति होगी।

अच्छा तो 'समः स्सुटि' ऐसा द्विसकारक निर्देश करके सकार की अनुवृत्ति करने से 'नश्छव्यप्रशान्' में सत्व की अतिव्याप्ति हो रही है, अतः सत्व का अनुवर्तन नहीं करके मैं सम्बन्धमात्र का अनुवर्तन करूँगा। सम्बन्धमात्र का आगे के सूत्रों में अनुवर्तन होगा। जहाँ सत्व इष्ट है वहाँ सत्व तथा जहाँ मात्र रुत्व इष्ट है वहाँ सम्बन्धी को मात्र रुत्व ही होगा। पूर्व सूत्र 'मतुवसो रु सम्बुद्धौ छन्दसि' ८.३.१ से 'रु' का भी अनुवर्तन है, अतः लक्ष्यानुसारी कहीं पर सत्व तथा कहीं पर रुत्व मात्र का ही विधान होगा। कहाँ पर सत्व तथा कहाँ पर रुत्व का विधान होगा? इस विषय को भाष्यकार ने स्वयं स्पष्ट किया है—'समः सुटि' 'पुमः खय्यम्परे' में सत्व होगा। 'नश्छव्यप्रशान्' में रुत्व होगा। 'उभयथर्क्षु' ८.३.८ 'दीर्घादटि समानपादे' ८.३.९ 'नॄन् पे' ८.३.१० 'स्वतवान् पायौ' ८.३.११ सूत्रों में मात्र रुत्व होगा। 'पुमः खय्यम्परे' में सत्व होगा। 'कानाम्रेडिते' में भी सत्व होगा। 'पुमः खय्यम्परे' का सत्व 'कानाम्रेडिते' से आगे निवृत्त हो जायेगा।

अन्य आचार्य सम् का लोप चाहते हैं। उनके मत में 'संस्कर्ता सँस्कर्ता' यही रूप होगा। {समः सुटि}।

ढो ढे लोपः ८.३.१३

'ढः' षष्ठ्यन्त उद्देश्यवचन, 'ढे' सप्तम्यन्त निमित्तवचन, 'लोपः' प्रथमान्त विधेयवचन होने से यह त्रिपद सूत्र है।

सूत्रार्थ—'ढ पर रहते ढ का लोप हो'। 'तृढ्+ढ=तृढः। वृढ्+ढ=वृढः'।

*** ढेलोपेऽपदान्तग्रहणम् *** ढेलोपेऽपदान्तग्रहणं कर्तव्यम्। इह मा भूत्—श्वलिड्ढौकते गुडलिड्ढौकते। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जश्त्वमत्र बाधकं भविष्यति।

ढलोप में अपदान्त का ग्रहण करना चाहिये, जिससे पदान्त ढ् का लोप न हो सके। जैसे—'गुलिढ्+ढौकते=गुलिड्ढौकते', श्वलिढ्+ढौकते=श्वलिड्ढौकते'। यहाँ पदान्त होने से गुलिढ् और श्वलिढ्घटक ढ् का लोप न हो, उसके लिए अपदान्त ढ् का लोप कहना चाहिये। जी, 'ढेलोपेऽपदान्तग्रहणम्' यह वार्तिक नहीं पढना चाहिये। क्योंकि 'गुलिढ्+ढौकते=गुलिड्ढौकते', श्वलिढ्+ढौकते= श्वलिड्ढौकते' इस स्थिति में 'झलां जशोऽन्ते' ८.२.३९ से जश्त्व भी प्राप्त है। जश्त्व से ढलोप का बाध हो जायेगा, अतः उक्त वार्तिक की आवश्यकता नहीं है। अब यहाँ यह शङ्का होती है कि ढलोप त्रिपादी है, तथा जश्त्व परत्रिपादी। 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' ८.२.१ से ढलोप की कर्तव्यता में जश्त्व का असिद्धत्व होना चाहिये, जश्त्व से ढलोप का बाध भाष्यकार ने कैसे कह दिया? तो यहाँ रहस्य इस तरह समझना चाहिये—

यहाँ पर ढलोप से असिद्धत्व का बाध किया जायेगा। इसका हेतु यह है कि 'तृढः वृढः' में एक ही पूर्वत्राऽसिद्धत्व जश्त्व है; परन्तु 'गुलिढ्+ढौकते= गुलिड्ढौकते', श्वलिढ्+ढौकते=श्वलिड्ढौकते' में जश्त्व तथा जश्त्व की अपेक्षा पदद्वयनिमित्तक वर्णद्वयसापेक्ष होने से बहिरङ्ग ढलोप, इन दोनों का असिद्धत्व है, परन्तु इन दोनों का बाध नहीं होने से यहाँ इस पक्ष में 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' ८.२.१ सूत्र का ही बाध हो गया। इस तरह जश्त्व करने पर 'गुलिढ्+ढौकते= गुलिड्ढौकते', श्वलिढ्+ढौकते=श्वलिड्ढौकते' यहाँ जश्त्व के असिद्धत्वाऽभाव=सिद्ध नहीं होने से न तो उच्चारणक्रियाकृत नहीं श्रवणक्रियाकृत ही आनन्तर्य है; नहीं शास्त्रकृत ही आनन्तर्य है, अतः लोप का विषय 'गुलिड्ढौकते', श्वलिड्ढौकते' नहीं है।

* जश्वत्वादिति चेदुत्तरत्र ढस्याऽभावादपवादप्रसङ्गः * **जश्वत्वादिति चेदुत्तरत्र ढकारस्याऽभावादसिद्धत्वादपवादोऽयं विज्ञायेत। कस्य? जश्वत्वस्य**
* तस्मात् सिद्धवचनम् * **तस्मात् सिद्धत्वं वक्तव्यम्। कस्य? ष्टुत्वस्य।**

जश्भाव होने से लोप का बाध होने का अर्थ है कि जश्त्व की कर्तव्यता में 'ढो ढे लोपः' का असिद्धत्व बाधित हो गया, अतः ढलोप का अवपाद जश्त्व है। अपवाद वहीं होता है, जिसका समान बल हो। 'गुलिढ्+ढौकते', श्वलिढ्+ढौकते' यहाँ पर जश्त्व की दृष्टि में ढलोप का असिद्धत्व नहीं होने से जश्त्व और ढलोप का समान बल है, अतः भाष्यकार ने जश्त्व से ढलोप का बाध किया है। परन्तु यदि आप ने जश्त्व से अपवादत्वाद् ढलोप का बाध

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किया है तो ष्टुत्व का भी अपवादत्वाद् बाध कहना चाहिये। अन्यथा 'झलां जशोऽन्ते' ८.२.३९ इस पूर्वत्रिपादी की दृष्टि में 'ष्टुना ष्टुः' ८.४.४१ पर त्रिपादी के असिद्ध होने जाने से 'गुलिध्+ढौकते', श्वलिध्+ढौकते' यही रूप रहेगा। 'गुलिढ्ढौकते', श्वलिढ्ढौकते' यह रूप रहे, इसके लिए आप को जश्त्व की दृष्टि में ष्टुत्व को सिद्ध कहना चाहिये।

*** सङ्ग्रहणं वा * सङ्ग्रहणं वा कर्तव्यम्। 'सडि ढ' इति वक्तव्यम्। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। आनन्तर्यमिहाश्रीयते—'ढकारस्य ढकार' इति। क्वचिच्च सन्नितकृतम् आनन्तर्यं शास्त्रकृतमनानन्तर्यं, क्वचिच्च नैव सन्निपातकृतं नापि शास्त्रकृतम्। ष्टुत्वे सन्नितकृतमानन्तर्यं शास्त्रकृतमनानन्तर्यं, जश्त्वे नैव सन्निपातकृतं नापि शास्त्रकृतम्। यत्तु कुतश्चिदेवानन्तर्यं तदाश्रयिष्यामः।**

अथवा विकल्प से सङ्ग्रहण कहना चाहिये-'सडि ढे' ऐसा। तो क्या सङ्ग्रहण कहना चाहिये? जी नहीं, यहाँ हम आनन्तर्य का आश्रयण करेंगे—'ढकार को ढकार पर रहते' ऐसा अर्थ करेंगे। कहीं पर सन्निपातकृत आनन्तर्य हो तथा शास्त्रकृत आनन्तर्य का अभाव होगा। कहीं पर सन्निपातकृत आनन्तर्य भी नहीं रहेगा, तथा शास्त्रकृत अनानन्तर्य भी नहीं रहेगा। 'गुलिढ्+ढौकते', श्वलिढ्+ढौकते' यहाँ ष्टुत्व हो जाने पर सन्निपातकृत आनन्तर्य है तथा शास्त्रकृत आनन्तर्य का अभाव है। परन्तु जश्त्व कर देने पर 'गुलिड्+ढौकते', श्वलिड्+ढौकते' इस स्थिति में सन्निपातकृत आनन्तर्य भी नहीं है तथा शास्त्रकृत आनन्तर्य भी नहीं है। परन्तु यहाँ पर यदि कहीं से कोई आनन्तर्य बन सकता है, तो हम उसी का ग्रहण करेंगे। {ढो ढे लोपः}।

खरवसानयोर्विसर्जनीयः ८.३.१५

सूत्रार्थ—'पदान्त में विद्यमान रेफ को खर् और अवसान पर रहते विसर्ग हो'।

*** विसर्जनीयोऽनुत्तरपदे * विसर्जनीयोऽनुत्तरपद इति वक्तव्यम्। इह मा भूद्—नार्कुटो नार्पत्य इति। तत्तर्हि वक्तव्यं 'विसर्जनीयोऽनुत्तरपद' इति? * न वा बहिरङ्गलक्षणत्वात् * न वा वक्तव्यम्। किं कारणम्? 'बहिरङ्गलक्षणत्वात्'। बहिरङ्गो रेफोऽन्तरङ्गो विसर्जनीयः। असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे'।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'उत्तरपद रहते जो रेफ निष्पन्न है, उसको विसर्ग नहीं होता है', यह 'विसर्जनीयोऽनुत्तरपदे' का वाक्यार्थ है; अतः 'दास्याः पुत्रः' यहाँ पर रेफ को विसर्ग होगा, क्योंकि यहाँ पर रेफ उत्तरपदनिमित्तक नही है; अपितु पदत्वनिमित्तक है। ऐसा वाक्य स्वीकार करने का फल है—'नार्कुटो नार्पत्यः' में रेफ को विसर्ग का वारण करना। जैसे 'नुः कुटी नृकुटी, तस्यां भवः' इस अर्थ में 'तस्येदम्' ४.३.१२० से अण् है। एवं 'नृपतेरपत्यं पुमान्' इस अर्थ में 'दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः' ४.१.८५ से ण्य प्रत्यय होने पर आदि अच् ऋकार को णिन्निमित्तक वृद्धि, रपर होकर 'नार्कुटः' 'नापर्त्यः' रूप है। यहाँ रेफ उत्तरपदनिमित्तक है। पर में खर् होने से उसको विसर्ग प्राप्त है, उसका निषेध कहना चाहिये। तो क्या 'विसर्जनीयोऽनुत्तरपदे' यह वार्तिक पढना चाहिये। नहीं, 'विसर्जनीयोऽनुत्तरपदे' यह वार्तिक नहीं पढना चाहिये। इसका क्या कारण है? बहिरङ्ग लक्षण होने से। भवार्थक अण् तथा अपत्यार्थक ण्य प्रत्यय को निमित्त मान कर होने वाला रेफ बहिरङ्ग है, तथा उसकी अपेक्षा रेफ को होने वाला विसर्जनीय अन्तरङ्ग है। अन्तरङ्ग विसर्जनीय की कर्तव्यता में बहिरङ्ग रेफ असिद्ध हो जायेगा। 'न वा बहिरङ्गलक्षणत्वात्' यहाँ पर-'बहिरङ्गं लक्षणं=निमित्तं स्वभावो=स्वस्य भावः=उत्पत्तिः यस्य रेफस्य सः' ऐसा अर्थ है। अन्तरङ्ग शब्द का अर्थ है—'अन्तः अङ्गं निमित्तं यस्य असौ अन्तरङ्गः, एवं बहिः अङ्गं=निमित्तं यस्य असौ बहिरङ्गः'। यहाँ पर अङ्गशब्द उपकारकवाची है। अन्तरङ्ग बहिरङ्ग शब्द अव्युत्पन्न सर्वलिङ्गक है।

नैष युक्तः परिहारः। अन्तरङ्गं बहिरङ्गमिति प्रतिद्वन्द्विभाविनावेतौ पक्षौ, सत्यन्तरङ्गे बहिरङ्गं, सति च बहिरङ्गेऽन्तरङ्गं भवति। न चाऽत्रान्तरङ्गबहिरङ्गयोर्युगपत् समवस्थानमस्ति। किं कारणम्? 'असिद्धत्वात्'। कथमसिद्धत्वम्? पूर्वत्रासिद्धमिति। न चाऽनभिनिर्वृत्ते बहिरङ्गेऽन्तरङ्गं प्राप्नोति, तत्र निमित्तमेव बहिरङ्गमन्तरङ्गस्य भवति।

जी!, प्रकृत स्थल में आप का 'असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे' यह परिहार ठीक नहीं है। अन्तरङ्ग बहिरङ्ग ये दोनों प्रतिद्वन्द्वभावी पक्ष हैं। (द्वन्द्व युग्म को कहते हैं तथा प्रतिकूल=परस्पर विरुद्ध द्वन्द्व प्रतिद्वन्द्व कहलाता है) अन्तरङ्ग जब बुद्धि में अपेक्षित होगा, तभी उस अन्तरङ्ग की अपेक्षा कोई बहिरङ्ग बन सकेगा, एवं बुद्धि में बहिरङ्ग की अपेक्षा होने पर ही अन्तरङ्ग होता है। जब कि 'नार्कुटः, नार्पत्यः' में एक साथ अन्तरङ्ग बहिरङ्ग का अवस्थान सम्भव नहीं है। इसका क्या कारण है? इसका कारण यह है कि 'असिद्धं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बहिरङ्गमन्तरङ्गे' यह परिभाषा 'वाह ऊठ्' ६.४.१३२ से ज्ञापित होने के कारण षष्ठी है, उसकी दृष्टि में विसर्जनीय असिद्ध रहेगा। षाष्ठी होने से यह परिभाषा सपादसप्ताध्यायीस्था है, अतः त्रिपादी में इसकी प्रवृत्ति नहीं हो सकेगी। अथ च दूसरी वात यह है कि बहिरङ्ग सपादसप्ताध्यायीस्थ 'तद्धितेष्वचामादेः' ७.२.११७ यह वृद्धिशास्त्र रेफविधायक त्रैपादिक अन्तरङ्ग के प्रति असिद्ध हो जायेगा, जिससे त्रिपादी अन्तरङ्ग को लेकर सपादसप्ताध्यायी बहिरङ्ग नहीं कहा जा सकता है। एवं दूसरी वात यह है कि आप जिस सपादसप्ताध्यायीस्थ 'तद्धितेष्वाचादादेः' ७.२.११७ को बहिरङ्ग कह रहे हैं, उस बहिरङ्गशास्त्र से रेफशिरा आदि वृद्धि होने के बाद ही आप का अन्तरङ्ग विसर्जनीयविधायक 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' ८.३.१५ सूत्र प्रवृत्त हो रहा है। जब कि 'नृकुटी+अण्' 'नृपति+ण्य' इस दशा में वृद्धि रेफशिरा नहीं है, तब तक रेफ के अभाव में विसर्जनीय विधायक सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हो सकेगी, अतः विसर्जनीयविधायक अन्तरङ्ग शास्त्र का निमित्त बहिरङ्ग शास्त्र हो रहा है।

* अनिमित्तं बहिरङ्गमन्तरङ्गस्याऽसिद्धत्वात् * **अनिमित्तं बहिरङ्गमन्तरङ्गस्य। किं कारणम्? 'असिद्धत्वात्'। कथमसिद्धत्वं यावता 'पूर्वत्राऽसिद्ध'मित्यसिद्धा परिभाषा।**

अन्तरङ्ग विसर्जनीय की कर्तव्यता में बहिरङ्ग रेफ असिद्ध हो जायेगा, अतः 'नार्कुटः, नार्पत्यः' में रेफ को विसर्ग विसर्ग नहीं हो सकेगा। अन्तरङ्ग विसर्जनीय की कर्तव्यता में बहिरङ्ग रेफ असिद्ध कैसे होगा? यहाँ यह ध्यान देने की वात है कि विसर्जनीय की कर्तव्यता में रेफ का असिद्धत्व अनेक वार इसलिए बता रहे हैं कि भगवान् भाष्यकार शेष हैं। उनका सहस्रमुख है। एक वार जितने मुख से जितनी शङ्का और समाधान किया, उन सभी का यहाँ उल्लेख है। अब अन्य आचार्य यहाँ विसर्जनीय की कर्तव्यता में रेफ का असिद्धत्व बताते हैं—'वाह ऊठ्' ६.४.१३२ सूत्र से ज्ञापित 'असिद्धं अन्तरङ्गे बहिरङ्गम्' परिभाषा भी सपादसप्ताध्यायीस्था हुई। यह सपादसप्ताध्यायीस्था परिभाषा त्रिपादी में प्रवृत्त नहीं हो सकेगी, यही त्रिपादी के प्रति अन्तरङ्गपरिभाषा का असिद्धत्व है। यह यथोद्देशपक्ष में विचार किया गया।

असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे'। कथम्? 'कार्यकालं संज्ञापरिभाष'मिति। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः'। उपस्थितमिदं भवत्यसिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्ग इति। एवमेषा सिद्धा परिभाषा भवति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अब कार्यकालपक्ष में इसका विचार करते हैं—कार्यकालपक्ष में परिभाषा विधिवाक्य के साथ एकवाक्यतापन्न होकर स्वकार्य का सम्पादन करती है। जैसे—'इको गुणवृद्धी' १.१.३। यह परिभाषा 'मिदेर्गुणः' ७.३.८२ सूत्र के साथ एकवाक्यतापन्न होकर स्वकार्य का निष्पादन करती है। अर्थ होता है—'मिदेरिको गुणः स्यात्'। परन्तु कोई परिभाषा लक्ष्य के निमित्त की अपेक्षा रखती हुयी वाक्यभेद से प्रधानकार्य में विशेष स्थापित करती है। जैसे—'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' १.४.२। 'वृक्षेषु' में 'बहुवचने झल्येत्' ७.३.१०३ से एत्त्व चरितार्थ है तथा 'वृक्षाभ्याम्' में 'सुपि च' ७.३.१०२ से दीर्घ चरितार्थ है। 'वृक्षेभ्यः' में 'बहुवचने झल्येत्' ७.३.१०३ तथा 'सुपि च' ७.३.१०२, दोनों की सह प्रवृत्ति हो रही है। यहाँ वाक्यभेद से 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' १.४.२ परिभाषा पर होने से एत्त्व का विधान करती है। ठीक विप्रतिषेध परिभाषा की तरह 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' ८.२.१ परिभाषा 'वृक्षस्तिष्ठति' इत्यादि विसर्जनीयशास्त्र में लक्ष्य का संस्कार करती हुई 'नार्कुटः नार्पत्यः' में इत्यादि में रेफ को असिद्ध का विधान करती है तथा लक्ष्यदेश में विसर्जनीय की व्यवस्था करती हुई लक्ष्य का संस्कार करती है। जैसे—'राजा के समक्ष दो राजसेवकों का परस्पर स्व-स्वामिभाव आदि सम्बन्ध नहीं होता है, वैसे विधिशास्त्र के देश में 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' ८.२.१ यह परिभाषा 'असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे' को असिद्ध नहीं कर सकेगी। इस पक्ष में न्याय भी है—'गुणानाञ्च परार्थत्वाद् असम्बन्धः समत्वात्'। अर्थात् गुण=अप्रधान परार्थ होते हैं, समान बल होने से उनका परस्पर स्वस्वामिभाव नहीं होता है। कार्यकालपक्ष में 'असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे' यह परिभाषा 'खर-वसानयोर्विसर्जनीयः' ८.३.१५ के देश में उपस्थित होगी। इस तरह यह त्रिपादी हो जायेगी तथा इसका असिद्धत्व नहीं होने से अन्तरङ्ग विसर्जनीय की कर्तव्यता में बहिरङ्ग रेफ असिद्ध हो जायेगा, अतः 'नार्कुटः, नार्पत्यः' में रेफ को विसर्गवारण करने के लिए 'विसर्जनीयोऽनुत्तरपदे' यह वार्तिक पढने की आवश्यकता नहीं है।

कुतो नु खल्वेतद् द्वयोः परिभाषयोः सावकाशयोः समवस्थितयोः 'पूर्वत्राऽसिद्ध'मिति च, 'असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्ग' इति च, 'पूर्वत्रा-ऽसिद्ध'मित्येतामुपमृद्याऽसिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्ग इत्येतया व्यवस्थया भविष्यति, न पुनरसिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्ग इत्येतामुपमृद्य 'पूर्वत्राऽसिद्ध'मित्येतया व्यवस्था स्यात्? अतः किम्? अतोऽयुक्तः परिहारो 'न वा बहिरङ्ग-लक्षणत्वा'दिति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अच्छा तो क्या कारण है कि परस्पर अन्यत्र-अन्यत्र लक्ष्य में चरितार्थ दो परिभाषाओं 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' ८.२.१ तथा 'असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे', इसमें 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' ८.२.१ परिभाषा का बाध कर 'असिद्धं बहिरङ्गम् अन्तरङ्गे' इस परिभाषा से व्यवस्था होगी, परन्तु 'असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे' इस परिभाषा का बाध कर 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' ८.२.१ इस परिभाषा से व्यवस्था क्यों नहीं होगी? ऐसा मानने से प्रकृत में क्या आयेगा? ऐसा मानने से प्रकृत में यह आयेगा कि इसी सूत्र के भाष्य में जो 'न वा बहिरङ्गलक्षणत्वात्' यह 'परिहार दिया था, वह अयुक्त हो गया।

'असा आदित्यः' यहाँ सवर्णदीर्घ की कर्तव्यता में 'लोपः शाकल्यस्य' ८.३.१९ को असिद्धबोध कराती हुई 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' ८.२.१ परिभाषा चरितार्थ है, एवम् 'पचावेदम्' में बहिरङ्ग परिभाषा चरितार्थ है। यहाँ 'पचाव+इदम्' इस दशा में गुणरूप एकादेश होने से 'पचावेदम्' रूपसिद्धि है। पूर्वान्तवद्भाव के द्वारा गुण 'ए' में लोटसम्बन्धित्व ला कर 'ए' के स्थान में 'एत ऐ' ३.४.९३ से ऐत्त्व प्राप्त है। परन्तु यहाँ गुण एकादेश पदद्वयनिमित्तक वर्णद्वयसापेक्ष होने से बहिरङ्ग है तथा गुण की अपेक्षा 'एत ऐ' ३.४.९३ अन्तरङ्ग है, अतः अन्तरङ्ग 'एत ऐ' ३.४.९३ की कर्तव्यता में बहिरङ्ग गुण को असिद्धत्व का विधान करती हुई 'असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे' परिभाषा सावकाश है। इस तरह अन्यत्रान्यत्र लब्धावकाश परिभाषा की 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' ८.२.१ तथा 'असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे' का 'नार्कुटः, नार्पत्यः' में एककालावच्छेदेन प्रवृत्ति है। पर होने से 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' ८.२.१ इस परिभाषा का बाध कर 'असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे' परिभाषा से व्यवस्था होगी। परन्तु 'असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे' परिभाषा का बाध कर 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' ८.२.१ इस परिभाषा से व्यवस्था नहीं होगी।

अच्छा तो इससे प्रकृत में क्या आया? इससे प्रकृत में यह आया कि चाहे कार्यकाल पक्ष मानिये चाहे यथोद्देशपक्ष मानिये, दोनों में त्रिपादी की कर्तव्यता में बहिरङ्ग असिद्ध नहीं होता है, अतः अन्तरङ्ग विसर्जनीय की कर्तव्यता में बहिरङ्ग रेफ के असिद्ध न होने से 'नार्कुटः, नार्पत्यः' में रेफ को विसर्ग प्राप्त होगा, जिसका वारण करने के लिए 'विसर्जनीयोऽनुत्तरपदे' यह वार्तिक अवश्य पढना चाहिए। वार्तिक को न मानने के पक्ष में जो हेतु 'न वा बहिरङ्गलक्षणत्वात्' दिया था, वह अब तक के भाष्य से गिर गया, अतः वार्तिक का होना नितान्त आवश्यक है। {**खरवसानयोर्विस**}।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रोः सुपि ८.३.१६

किमर्थमिदमुच्यते न 'खरवसानयोर्विसजनीय' इत्येव सिद्धम्? * नियमार्थोऽयमारम्भः * 'नियमार्थोऽयम् आरम्भः 'रोरेव सुपि नान्यस्य सुपि'। क्व मा भूत्? गीर्षु धूर्षु। {रोः सुपि}।

सूत्रार्थ—'सप्तमीबहुवचन परे रहते रु को ही विसर्ग हो, अन्य को नहीं'। जैसे—यशःसु। इस नियम शास्त्र का व्यावर्त्य विषय रेफस्थानिक विसर्ग है। जैसे 'चतुर्षु' में रेफ को विसर्ग नहीं हुआ।

अच्छा तो यहाँ 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' ८.३.१५ सूत्र से ही विसर्ग सिद्ध था, इसके लिए पृथक् सूत्र का आरम्भ क्यों किया गया? सिद्ध होने पर यह आरम्भ नियम करेगा—'सप्तमी बहुवचन पर में रहते यदि विसर्ग हो तो रु को ही हो, रेफ को नहीं'। नियम का व्यावर्त्य क्या है? नियम का व्यावर्त्य है—गीर्षु, धूर्ष। यहाँ रेफ उकार अनुबन्ध वाला नहीं है, अतः उसको विसर्ग नहीं हो। {रो सुपि}।

भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि ८.३.१७

*** अश्ग्रहणमनर्थकमन्यत्राऽभावात् * अश्ग्रहणम् अनर्थकम्। किं कारणम्? 'अन्यत्राऽभावात्'। न ह्यन्यत्र रुरस्त्यन्यदतोऽशः।**

'भोपूर्वक भगोपूर्वक अघोपूर्वक और अवर्णपूर्वक रु को अश् परे रहते य आदेश हो'—यह सूत्रार्थ है। भगोस् अघोस् ये सकारान्त निपात है। उदाहरणर जैसे—भो देवाः, भगो नमस्ते, अघो याहि, देवा यान्ति इत्यादि।

सूत्र में अश्ग्रहण नहीं करना चाहिए। 'भोभगोअघोअपूर्वस्य यः' इतना ही सूत्र रखना चाहिए। अश् को छोड कर शेष वर्णो के पर रहते कहीं भी रु नहीं मिलेगा। अश् से अन्यत्र खर् पर रहते यदि आप यत्व का व्यभिचार कहेंगे तो 'पूर्वत्रासिद्धम्' ८.२.१ से यत्व असिद्ध हो जायेगा, अतः खर् परे रहते सर्वत्र रु को विसर्ग ही होगा यत्व नहीं। इस तरह अश् परे ही रोर्यत्व प्राप्त होता है। उसके लिए सूत्र में अश् ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है।

ननु चायमस्ति—च्छन्दःसु पयःस्विति। किं पुनः कारणं सुकारपर एवोदाह्रियते न पुनरयं वृक्षस्तत्र प्लक्षस्तत्रेति? अस्त्यत्र विशेषः—विसर्जनीये कृते न भविष्यति। इहापि तर्हि विसर्जनीये कृते न भविष्यति-च्छन्दःसु पयःस्विति। स्थानिवद्भावात् प्राप्नोति। ननु चेहापि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्थानिवद्भावात् प्राप्नोति—वृक्षस्तत्र प्लक्षस्तत्रेति। अनल्विधौ स्थानिवद्भावः। अथाऽयमल्विधिः स्याच्छक्यमश्ग्रहणमवक्तुम्? बाढं शक्यम्। अल्विधिस्तर्हि भविष्यति। कथम्? इदमस्ति 'रो री'ति। ततो वक्ष्यामि—'खरवसानयोर्विसर्जनीयः'—'रः'। ततो 'रोः सुपि'। 'विसर्जनीयो र' इत्येव।

सूत्र में अश्ग्रहण नहीं करने पर 'छन्दःसु पयःसुः' इस सप्तमी बहुवचान्त में रु को यत्वापत्ति होगी। जी! आपने सप्तमी बहुवचन का उदाहरण क्यों दिया है? जब कि प्रथमा एकवचन में 'वृक्षस्तत्र' यह उदाहरण उपलब्ध था? वह इसलिए कि सप्तमीबहुवचन की अपेक्षा प्रथमा-एकवचन में कुछ विशेष है। वह यह कि प्रथमा-एकवचन में 'वृक्ष रु तत्र, प्लक्ष रु तत्र' इस स्थिति में खर् पर में होने से विसर्ग नहीं होता हैं, विसर्ग कर देने पर यहाँ रु नहीं मिलेगा जिसको यत्व प्राप्त हो सके, अतः सप्तमीबहुवचन 'छन्दःसु पयःसु' का उदाहरण दिया गया। जी! यदि प्रथमा-एकवचन 'वृक्षस्तत्र प्लक्षस्तत्र' में जो विशेष है वही विशेष सप्तमी बहुवचन 'छन्दःसु, पयःसु' में भी है। अच्छा तो 'छन्दःसु पयःसु' यहाँ पर स्थानिवद्भाव के द्वारा विसर्ग का स्थानी रु को लायेंगे, सूत्र में अश् ग्रहण के अभाव में छन्दःसु पयःसु से स्थानिवद्भाव से रु को यत्व प्राप्त होगा। उसको वारण के लिए अश् ग्रहण चरितार्थ है। अब यहाँ शङ्का हो सकती है कि रु घटक उ अनुबन्ध है, अतः विसर्ग का स्थानी रेफ होगा। वह अल्विधि है, जब कि स्थानिवद्भाव अनल्विधि में होता है। यहाँ 'स्थानिवद्भावः प्राप्नोति' ऐसा भाष्यकार ने कैसे कह दिया? तो इस भाष्य के बल से यहाँ यही लिया जायेगा कि उच्चारणकाल में स्थानिवत्त्वरूप से जो श्रुत है, वही लिया जायेगा, बोध काल का नहीं, अतः उच्चारण काल में स्थानिवत्व रूप से श्रुत रु अनल् है, उसको स्थानिवद्भाव होने से 'छन्दःसु, पयःसु' में रु को यत्वापत्ति होगी। अच्छा तो यदि 'छन्दःसु' में स्थानिवद्भाव से रु को यत्वापत्ति होगी तो 'वृक्षस्तत्र, प्लक्षस्तत्र' में भी स्थानिवद्भाव होने से रु को यत्वविधि प्राप्त होगा। उभयत्र विसर्ग का स्थानी रु अनल्विधि है। 'छन्दःसु, पय+सु, वृक्षस्तत्र, प्लक्षस्तत्र' इत्यादि स्थलों में यदि विसर्ग का स्थानी रेफ को मानेंगे तो यह विसर्ग अल्विधि होगा। तब अनल्विधि प्रतिषेध होने से स्थानिवद्भाव नहीं हो सकेगा। इस तरह उक्त स्थलों में रु के अभाव में यत्वापत्ति निरस्त हो जायेगी, अतः सूत्र में अश्ग्रहण नहीं करना चाहिए। अवश्य अश्ग्रहण नहीं करना चाहिये। उक्त स्थलों में रेफ ही विसर्ग का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सथानी है; अतः अवश्य ही अल्विधि होगा। वह इस तरह कि सूत्र का क्रम 'रो रि' ८.३.१४ 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' ८.३.१५ तथा 'रोः सुपि' ८.३.१६ है। 'रो रि' सूत्र में 'रः' यह षष्ठ्यन्त स्थानिवचन है। उसका अनुवर्तन आगे के सूत्रों में जायेगा। अर्थ होगा—'खर् और अवसान से अव्यवहित पूर्वत्वविशिष्ट पदान्त रेफ को विसर्ग हो तथा सप्तमीबहुवचन सुप् प्रत्यय परे रहते रु का अवयव रेफ को विसर्ग हो'। 'रोः सुपि' सूत्र में 'रोः' यह अवयव षष्ठी है, स्थानषष्ठी नहीं है, इस तरह सर्वत्र विसर्ग का स्थानी रेफ हो रहा है, रु नहीं, अतः अल्विधि होने से स्थानिवद्भाव नहीं हो सकेगा, जिससे स्थानिवद्भाव के द्वारा यत्व की आपत्ति दी जा सके, अतः सूत्र में अश्ग्रहण व्यर्थ है, अथवा मन्दप्रयोजनार्थ है, अथवा अदृष्ट प्रयोजनार्थ है।

उत्तरार्थं तर्ह्यश्ग्रहणं कर्तव्यं, 'हलि सर्वेषां', हल्यशीति यथा स्यादिह मा भूद्—वृक्षवयतेरप्रत्ययो—वृक्षव्करोति। {भोभगोअघो}।

यदि इस सूत्र में अश् ग्रहण का कोई प्रयोजन नहीं है तो उत्तर सूत्र 'हलि सर्वेषाम्' ८.३.२२ में अनुवृत्ति के लिए इस सूत्र में अश्ग्रहण करना चाहिए। हल्घटक जो अश् व्यञ्जन वर्ण, उन्हीं के पर रहते व और य का लोप हो, अन्य के पर रहते नहीं। इसका व्यावर्त्य फल भाष्यकार देते हैं—'वृक्षव् करोति'। 'वृक्षं वृश्चतीति वृक्षव्'। 'वृक्षम्' उपपद रहते ओ व्रश्चू छेदने धा. पा.१२९३ से क्विप्, सम्प्रसारण होने पर 'वृक्षवृश्चमाचष्टे', इस विग्रह में 'तत्करोति तदाचष्टे' गण सूत्र २०४ से णिच्, इष्टवद्भाव होने से टिलोप और विच् प्रत्यय का विधान कर 'वृक्षव्' यह हलन्त रूप है। 'करोति' के साथ योग होने पर अवर्णपूर्वक पदान्त व का लोप प्राप्त है। अश् ग्रहण का अनुवर्तन होने से नहीं होता है। {भोभगोअघो}।

ओतो गार्ग्यस्य ८.३.२०

किमर्थमिदमुच्यते न 'लोपः शाकल्यस्ये'त्येव सिद्धम्? * ओकाराल्लोपवचनं नित्यार्थम् * ओकाराल्लोपवचनं क्रियते। किमर्थम्? 'नित्यार्थम्'। नित्यार्थोऽयमारम्भः। {ओतो गार्ग्यस्य}।

'ओकार से पर में अलघुप्रत्यन्त पदान्त यकार का नित्य लोप हो' यह सूत्रार्थ है। जैसे—भो अच्युत। सूत्र में गार्ग्यग्रहण पूजनार्थक है, विकल्पार्थक नहीं। लघुतरप्रत्यत्न होने पर लोप नहीं होगा। उस पक्ष में 'भोयच्युत' रूप होगा। यदि सूत्र में पदान्त का अनुवर्तन नहीं करेंगे तो 'तोयम्' में भी यलोपत्वापत्ति होगी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus; Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ 'लोपः शाकल्यस्य' ८.३.१९ से भी यलोप सिद्ध था, पुनः 'ओतो गार्ग्यस्य' सूत्र का आरम्भ क्यों किया गया है? सिद्ध होने पर पुनः आरम्भ इसलिए है कि यह नित्य लोपविधि करे। 'लोपः शाकल्यस्य' विकल्पविधि है, अतः नित्य लोप के लिए 'ओतो गार्ग्यस्य' सूत्र का आरम्भ किया गया है। {**ओतो गार्ग्यस्य**}।

उञि च पदे ८.३.२१

पद इति किमर्थम्? तन्त्रे उतं, तन्त्रयुतं, तन्त्र उतम् * पद इति शक्यमवक्तुम् * **पदे इति शक्यमवक्तुम्। कस्मान्न भवति—तन्त्रे उतं तन्त्रयुंत तन्त्र उतमिति? 'लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैवे'ति। उत्तरार्थं तर्हि पदग्रहणं कर्तव्यं—ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्य'मित्यपदे मा भूद्—दण्डिना शकटिना।** {उञि च पदे}।

'अवर्णपूर्वक पदान्त य् और व् का लोप हो, यदि उञ् पर में हो तो' यह सूत्रार्थ है। जैसे—स उ एकाग्निः। यहाँ भी 'लोपः शाकल्यस्य' से ही यलोप सिद्ध था, अतः यह योगारम्भ नित्यार्थक है।

सूत्र में पद ग्रहण क्यों किया गया? पदग्रहण के अभाव में 'उञि च' इतना ही सूत्र रहेगा। 'स उ एकाग्निः' लक्ष्यसिद्धि भी हो जायेगी, पुनः सूत्र में पदग्रहण क्यों किया? वह इसलिए कि 'तन्त्रे उतम्', इस पदच्छेद में 'तन्त्र उतम्, तन्त्रयुतम्' यहाँ पर लोप विकल्प से है, नित्य नहीं। यहाँ वेञ् तन्तुसन्ताने' धा.पा.१००६, से क्तप्रत्यय, 'वचिस्वपियजादीनां किति' ६.१.१५ सूत्र से वकार को सम्प्रसारण उकार, 'सम्प्रसारणाच्च' ६.१.१०८ से पूर्वरूप होकर उम्-घटक उ लाक्षणिक है तथा पद भी नहीं है, अतः 'तन्त्रे उतम्=तन्त्रयुतम्, तन्त्र उतम्', यहाँ विकल्प से यलोप होगा, 'उञि च पदे' से नित्य नहीं।

सूत्र में पदग्रहण नहीं करना चाहिए। लक्षणप्रतिपदोक्त परिभाषा के द्वारा 'तन्त्र उतम्, तन्त्रयुतम्' में उ के लाक्षणिक होने से 'उञि च' की प्रवृत्ति नहीं होगी। अच्छा तो उत्तर सूत्र 'ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम्' ८.३.३२ में पदे की अनुवृत्ति हो, इसके लिए सूत्र में पदग्रहण अवश्य करना चाहिए। ह्रस्व से पर में ङमन्त पद को अच् परे रहते ङमुड्विधान होने से 'दण्डिना, शकटिना' में नुडागम की निवृत्ति फल है। {**उञि च पदे**}।

हे मपरे वा ८.३.२६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

* यवलपरे यवला वा * यवलपरे हकारे यवला वेति वक्तव्यम् । किं ह्यः कियँ्ह्यः । किं ह्वलयति । किवँ्ह्वलयति । किं ह्लादयति । किलँ्ह्लादयति । {हेमपरे वा} ।

'मः परो यस्मादसौ मपरः तस्मिन्' । 'मपरक ह पर में होने से म को विकल्प में म ही रहे'—यह सूत्रार्थ है । जैसे—किम् ह्मलयति, किं ह्मलयति ।

यवलपरक हकार परे रहते पदान्त म को विकल्प से य् व् ल् आदेश हो । जैसे—'कियँ्ह्यः, किं ह्यः । किवँ्ह्वलयति, किं ह्वलयति । किलँ्ह्लादयति, किं ह्लादयति' । यहाँ पर यह ध्यान देने की बात है कि वार्तिककार ने निर-नुनासिक य् व् ल् का ही विधेय कोटि में उच्चारण किया है । 'अणुदित्सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः' १.१.६९ भी अविधीयमान अण् के ही सवर्णो का ग्रहण कराता है । यहाँ यवलाः यह विधीयमान है, अतः सवर्णो का ग्रहण नहीं करा सकेगा । इसलिए आदेश निरनुनासिक ही य् व् ल् होंगे, सानुनासिक नहीं, अतः मूल भाष्य में सानुनासिक प्रयोग होने से शिष्टप्रयोगात् यहाँ विधेय सानुनासिक ही रहेगा, निरनुनासिक नहीं । {हे मपरे वा} ।

डः सि धुट् ८.३.२९

नश्च ८.३.३०

शि तुक् ८.३.३१

ङ्णोः कुक् टुक् शरि ८.३.२८

ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम् ८.३.३२

इह धुडादिषु के चित्पूर्वान्ताः क्रियन्ते केचित्परादयः । यदि पुनः सर्व एव पूर्वान्ताः स्युः सर्व एव वा परादयः कश्चात्र विशेषः? * धुगादिषु ष्टुत्वणत्वप्रतिषेधः * धुगादिषु सत्सु ष्टुत्वणत्वयोः प्रतिषेधो वक्तव्यः । ष्टुत्वस्य तावत् श्वलिट्त्साये मधुलिट्त्साये । 'ष्टुना ष्टु'रिति ष्टुत्वं प्राप्नोति । परादौ पुनः सति' न पदान्ताट्टोरना'मिति प्रतिषेधः सिद्धो भवति । णत्वस्य—कुर्वन्त्रास्ते कृषन्त्रास्ते । 'रषाभ्यां नो णः समानपद' इति णत्वं प्राप्नोति । परादौ पुनः सति 'पदान्तस्य ने'ति प्रतिषेधः सिद्धो भवति ।

डकार से पर में स को धुडागम, नकारान्त से पर में स को धुडागम, शकार पर में रहते पदान्त न को तुक् का आगम, शर् पर में रहते अव्यवहित

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्वत्वविशिष्ट ङकार णकार को क्रम से कुक् और टुक् का आगम तथा ह्रस्व से पर में ङमन्त पद से पर में अच् को ङमुट् का आगम विहित है। इसमें टित् होने से धुट्, और ङमुट् पर के आद्यवयव होंगे तथा तुक् कुक् कित् होने से पूर्व के अन्तायव होंगे। यदि इन सबको टिद्विशिष्ट पढ कर पर का आदि अवयव मान लिया जाये। अथवा किद्विशिष्ट पढ कर पूर्व का अन्तावयव मान लिया जाये तो इसमें क्या हानि होगी? आपके इस प्रश्न में क्या विशेष है? यदि सबको किद्विशिष्ट पढा जाये तो 'डः सि धुट्' के स्थान पर 'ङः सि धुक्' ऐसा सूत्र पढना होगा और 'ङमुट्' ८.३.३२ को ङमुक् पढना होगा। कित् होने से पूर्व का अन्तावयव होगा, जिससे ष्टुत्व और णत्व का प्रतिषेध कहना होगा। जैसे—'श्वलिट्त्साये, मधुलिट्त्साये' में पूर्वसमुदाय पदान्त श्वलिट् तथा मुधलिट् को धुक् होगा पदान्तत्व धुक् पर बैठेगा, ट् पर नहीं, अतः 'न पदान्ताट्टोरनाम्' ८.४.४२ सूत्र से पदान्तत्व ट् न होने से पर में धुक् को ष्टुत्व का निषेध नहीं हो सकेगा। 'धुट्' ऐसा टित् आदेश करते हैं तो टित्वात् पर का आद्यवयव होगा। पदान्तत्व श्वलिट्, मधुलिट्घटक ट् पर रहेगा। उस पदान्त टवर्ग से पर में तवर्ग के ष्टुत्व का निषेध हो जाता है। धुक् ऐसा कित् विधान का पूर्वान्त कहने से 'कुर्वन्नास्ते' में पूर्वनकार को णत्व प्राप्त होगा। उसका निषेध करने के लिए अलग से वचन करना पडेगा जो गौरव होगा, अतः टिद्विशिष्ट् धुड्विधान कीजिए। टित् होने से आद्यवयव होगा। पदान्तत्व 'कुर्वन्+नास्ते' में कुर्वन् घटक न पर रहेगा। पदान्त होने से 'पदान्तस्य' ८.४.३७ सूत्र के द्वारा उसके णत्व का निषेध हो जा रहा है। उसके लिए कोई अलग से वचन नहीं करना पड रहा है।

सन्तु तर्हि परादयः * परादौ छत्वषत्वविधिप्रतिषेधः * **यदि परादयश्छत्वं विधेयं, षत्वं च प्रतिषेध्यम्। छत्वं विधेयं—कुर्वञ्च्छेते कृषञ्च्छेते। यद्धि तच्छश्छोऽटीति 'झयः पदान्ताद्' इत्येवं तत्। किं पुनः कारणं—'झयः पदान्ता'दित्येवं तत्? इह मा भूत्—'पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शि'न्निति। षत्वं च प्रतिषेध्यं प्रत्यङ्क्सञ्च उदङ्क्सञ्च। 'आदेशप्रत्यययो'रिति षत्वं प्राप्नोति। पूर्वान्ते पुनः सति 'सात्पदाद्यो'रिति प्रतिषेधः सिद्धो भवति। तस्मात् सन्तु यथान्यासमेव केचित् पूर्वान्ताः केचित् परादयः। अयं तु खलु शितुक्छत्वार्थं नियोगतः पूर्वान्तः कर्तव्यः। तत्र कुर्वञ्च्छेते कृशञ्च्छेत इति 'रषाभ्यां नो णः समानपद' इति णत्वं प्राप्नोति। नैष दोषः। श्चुत्वे योगविभागः करिष्यते। इदमस्ति 'क्षुभ्नादिषु च'। क्षुभ्नादिषु**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न णकारो भवति। ततः—'स्तोः श्चुना'। स्तोः श्चुना सन्निपाते न णकारो भवति। ततः 'श्चुः'। श्चुश्च भवति स्तोः श्चुना सन्निपाते। {ङः सि धुट्}।

अच्छा तो यदि सबको कित् पढ कर पूर्व का अन्तावयव मानने में दोष है तो सबको टिद्विशिष्ट पढ कर पर का आद्यवयव ही मान लीजिए। जी। यदि सबको टिद्विशिष्ट पढ कर पर का आद्यवयव मानेंगे तो छत्व का विधान तथा षत्व का प्रतिषेध कहना होगा। जैसे—छत्व का विधान 'कुर्वञ्च्छेते, कृशञ्च्छेते'। पदान्त झय् से पर में श को छ अट् परे रहते हो यह 'शश्छोऽटि' का अर्थ है यदि तुक् को तुड्विधान करेंगे तो 'कुर्वन् शेते, कृशन्+शेते' यहाँ पर शेते का आद्यवयव तुट् होगा। इस तरह पदान्तत्व न् पर रहेगा, तुक् पर नहीं, अतः पदान्त झय् से पर में न होने के कारण 'शेते'घटक श को छत्व नहीं हो सकेगा। यदि तुक् करते हैं तो कुर्वन् और कृशन् का अन्तावयव होता है। पदान्तत्व तुक् पर बैठेगा, वह झय् है उससे पर में शेते घटक श् को छत्व हो जा रहा है, पृथक् कोई वचन पढने की आवश्यकता नहीं है। अच्छा तो आप तुक् के बजाय तुट् ही पढिये। तुट् पढने पर आपने जो दोष दिया था-'कुर्वञ्च्छेते, कृशञ्च्छेते' स्थल में तुट् पर पदान्तत्व न होने से छत्व नहीं हो सकेगा, यह दोष वहाँ नहीं रहेगा। वह इस तरह कि 'शश्छोऽटि' सूत्र में पदान्तात् का अनुवर्तन नहीं किया जायेगा। 'झय् से पर में श् को छ हो' हम इतना ही अर्थ करेंगे। इससे 'कुर्वञ्च्छेते, कृशञ्च्छेते' में छत्व हो ज़ायेगा। परन्तु 'पदान्तात्' का अनुवर्तन 'शश्छोऽटि' सूत्र में न करने से उसकी अतिव्याप्ति 'पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्' में होगी। 'विरप्शिन्' में भी छत्व प्राप्त होने लगेगा, जिसके वारण के लिए 'झयः पदान्तात्' की अनुवृत्ति 'शश्छोऽटि' सूत्र में अवश्य करनी पडेगी, अतः तुक् को किद्विशिष्ट ही पढना चाहिए, टिद्विशिष्ट नहीं।

एवं तुक् को तुट् पढने में षत्व प्राप्त होगा जिसका प्रतिषेध कहना होगा। जैसे—'प्रत्यङ्क्सञ्च, उदङ्क्सञ्च'। यहाँ पर 'प्रत्यङ्+सिञ्च, उदङ्+सिञ्च' इस स्थिति में 'ङ्णोः कुक् टुक् शरि' सूत्र से शर् पर में रहते ङ् को कुक् का आगम होता है। कित् होने से आदि का अवयव है। पदादित्व सिञ्च-घटक स पर बैठा है, अतः 'आदेशप्रत्यययोः' ८.३.५९ से प्राप्त षत्व को 'सात्पदाद्योः' ८.३.१०१ निषेध कर देता है। यदि आप कुक् की कर्तव्यता में कुट् ऐसा विधान करेंगे तो टित् होने से आद्यवयव होगा। 'प्रत्यङ्क्संञ्च,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उद्ङ्क्सञ्च में पदादित्व ककार पर बैठेगा, वह कार्यी नहीं है। सकार को पदादि न होने से षत्व प्राप्त होने लगेगा, जिसका निषेध कहना होगा, अतः कित् को टित् पढने में ये दोष है। अच्छा तो जैसे पढे गये हैं वैसे ही रखिये। जो कित् हैं उसे कित् रहने दीजिए, जो टित् हैं उसे टित् रहने दीजिए। यथान्यास मानने में दोष नहीं है। कुछ पूर्वान्त रहेंगे जैसे—तुक्, कुक्, टुक्। कुछ परादि रहेंगे। जैसे—धुट्, ङमुट्। परन्तु 'शि तुक' से जो तुक् का विधान किया है, उसमें दोष भी आयेगा। कित्वात् पूर्व का अन्तावयव होने से 'कुर्वञ्च्छेते, कृशञ्च्छेते', यहाँ पर छत्व तो सिद्ध हो जा रहा है; परन्तु पदान्तत्व के तुक् पर चले जाने से नकार पर पदान्तत्व नहीं रहा, अतः समानपदस्थ होने से उस नकार को 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' ८.४.२ सूत्र से णत्व प्राप्त होगा। जी! यहाँ णत्वप्राप्तिरूप दोष नहीं होगा। मैं इसके लिए योगविभाग करूँगा। 'क्षुभ्नादिषु च स्तोः स्तुनाश्चुः' यह सूत्र का क्रम है। 'क्षुभ्नादिषु च' ८.४.३९ क्षुभ्नादिगण पठित शब्दों को णत्व का निषेध हो। इसके बाद 'स्तोः श्चुना' दूसरा योग होगा। अर्थ होगा 'शकार और चवर्ग से संयुक्त नकार को णकार नहीं हो।' इसके बाद तीसरा योग होगा 'श्चुः'। इसका अर्थ होगा 'शकार चवर्ग से संयुक्त सकार तवर्ग को षकार चवर्ग हो।' इस तरह 'कुर्वञ्च्छेते, कृशञ्च्छेते' में णत्व की आपत्ति निरस्त हो गयी। {ङः सि धुट्}।

ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम् ८.३.३२

***ङमुटि पदादिग्रहणम्* ङमुटि पदादिग्रहणं कर्त्तव्यम्। इह मा भूद्—दण्डिना शकटिनेति। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। 'पदा'दिति वर्तते। एवमपि—परमदण्डिना परमच्छत्रिणेत्यत्र प्राप्नोति। 'पदस्ये'ति वर्तते 'ङम' इति च नैषा पञ्चमी। का तर्हि? संबन्धषष्ठी। 'पदान्तस्य ङमो ङमुड् भवति ह्रस्वादुत्तरस्याऽची'ति। यदि ङम एव ङमुट् क्रियते कुर्वन्नास्ते कृषन्नास्ते, 'रषाभ्यां नो णः समानपदे' इति णत्वं प्राप्नोति। 'पदान्तस्य ने'ति प्रतिषेधो भविष्यति। 'पदान्तस्ये'त्युच्यते नैष पदान्तः। पदान्तभक्तः पदान्तग्रहणेन ग्राहिष्यते। एवमपि न सिध्यति।**

'तस्मादित्युत्तरस्य' १.१.६७ परिभाषा के बल से अचि इस सप्तम्यन्त को अचः षष्ठ्यन्त विपरिणाम हो जायेगा।

सूत्रार्थ—'ह्रस्व से पर में जो ङम्, तदन्त जो पद, उससे पर में अच्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

को ङमुट् आगम हो'। जैसे ङुट्—प्रत्यङ्ङात्मा, णुट्—सुगण्णीशः, नुट्—सन्नच्युतः।

ङमुट् की कर्तव्यता में पदादिग्रहण करना चाहिये। अर्थात् पदादि अच् को ङमुडागम कहना चाहिये। पदादिग्रहण का 'दण्डिना, शकटिना' में नुट् निषेध फल है। तो क्या 'ङमुटि पदादिग्रहणम्' यह वार्तिक पढना चाहिये? जी नहीं! इसकी आवश्यकता नहीं है। 'पदान्त' ८.१.१७ का अनुवर्तन होता है। 'दण्डिना शकटिना' यहाँ पर 'दण्डिन्+टा, शकटिन्+टा' इस स्थिति में भसंज्ञा होने से पद से पर में अच् नहीं होने से उसको नुट् का आगम नहीं हो सकेगा। अच्छा तो आप 'पदात्' का अनुवर्तन करके ह्रस्व से पर में जो ङमन्त पद उससे पर में अच् को ङमुट् कहेंगे तो 'परमदण्डिना, परमच्छत्रिणा', इस समस्त स्थल में अन्तर्वर्तिनी विभक्ति को लेकर 'परमदण्डिन्, परमच्छत्रिन्' यह पद हो गया, ह्रस्व से पर में ङमन्त भी है, उससे पर में अच् है टा, उसको नुट् होना चाहिये। इसका वारण करते हैं—'पदस्य' का अनुवर्तन होगा। वह 'ङमः' का विशेष्य होगा, अतः 'ङमः' पञ्चम्यन्त नहीं है, अपितु सम्बन्ध-षष्ठ्यन्त है। 'ह्रस्व से उत्तरवर्ती पदान्त ङम् को ङमुट् हो अच् परे रहते' ऐसा अर्थ करके ङम् को ही ङमुडागम करेंगे, ङम् से पर को नहीं। यदि ङम् को ङमुडागम करेंगे तो 'कुर्वन्नास्ते, कृशन्नास्ते', यहाँ पर समानपदत्व होने से पूर्वनकार को 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' ८.४.२ से णत्व प्राप्त होगा। जी! यहाँ पर 'पदान्तस्य' ८.४.३७ सूत्र से पदान्त न के णत्व का निषेध हो जायेगा। जी! यह सम्भव नहीं है। यदि 'ङमः' यह सम्बन्धषष्ठी मानेंगे तो ङम् को नुट् आगम होता हुआ आद्यवयव होगा। पदान्तत्व ङम् पर रहेगा, उसका आगम नुट् पर नहीं, अतः नुट् को णत्वापत्ति होगी। अच्छा तो तब भी दोष नहीं आयेगा। पदान्त ङम् का अवयव ङमुट् भी पदान्त ग्रहण से ग्रहीत होगा। आगम को पदान्त ङम् का अवयव मानने पर भी णत्व की निवृत्ति नहीं हो सकेगी। इसका कारण यह है कि यदागम परिभाषा के बल से आप 'कुर्वन्नास्ते' में नुट् को पदान्त का अवयव कह रहे हैं। इसका अर्थ है 'आगामी यद्धर्म वैशिष्ट्य से भासता है, आगम भी तद्धर्म वैशिष्ट्य होकर भासेगा'। अर्थात् आगमी यद्धर्मवान् है, आगम भी तद्धर्मवान् हो। आगमी जिस धर्म से गृहीत है, आगम भी उसी धर्म से गृहीत हो। 'कुर्वन्नास्ते, कृशन्नास्ते', यहाँ पर नुट् के आगम में ङम् गृहीत होने से नुट् नकार को हो रहा है, अतः आगम भी नकारग्रहण से गृहीत होगा, पदान्तग्रहण से नहीं, अतः ङम् में पदान्तत्व नहीं होने से नुट् में पदान्तत्व नहीं रहेगा, जिससे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

णत्वापत्ति यथावत् बनी हुई है।

नैष दोषः। उक्तमेतद्—'उत्तरपदत्वे चाऽपदादिविधौ लुमता लुप्ते प्रत्ययलक्षणं न भवती'ति। एवमपि पदादिति वक्तव्यं, यद्धि तत्प्रकृतं, 'प्राक् सुपि कुत्सना'दित्येवं तत्। एवं तर्हि ङम एवायं ङमुट् क्रियते। कथम्? 'पदस्ये'ति वर्तते। 'ङम' इति च नैषा पञ्चमी। का तर्हि? सम्बन्धषष्ठी। 'पदान्तस्य ङमो ङमुड् भवति ह्रस्वादुत्तरस्याऽची'ति। यदि ङम एव ङमुट् क्रियते कुर्वन्नास्ते कृषन्नास्ते—'रषाभ्यां नो णः समानपदे' इति णत्वं प्राप्नोति। 'पदान्तस्य ने'ति प्रतिषेधो भविष्यति। 'पदान्तस्ये'त्युच्यते नैष पदान्तः। पदान्तभक्तः पदान्तग्रहणेन ग्राहिष्यते। एवमपि न सिध्यति। किं कारणम्? उक्तमेतद्—'न वा पदाधिकारस्य विशेषणत्वा'दिति। तेन दण्डिना शकटिनेत्यत्र प्राप्नोति। एवं तर्हि पद इति वर्तते। क्व प्रकृतम्? 'उञि च पदे' इति। {ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम्}।

यह कोई दोष नहीं है। इसके विषय में बताया जा चुका है अपदादिविधि की विषयता में उत्तरपद के कार्यी होने पर लुमता शब्द से लुप्त को प्रत्ययलक्षण नहीं होता है, अतः 'परमदण्डिना, परमच्छत्रिणा' में लुक् शब्द से समासघटक सुप् का लुक् है, उत्तरपद के कार्यी होने पर प्रत्ययलक्षण न होने से परमदण्डिनूघटक दण्डिन् तथा परमच्छत्रिनूघटक छत्रिन् में पदत्व नहीं आयेगा, अतः ङमन्त पद नहीं होने से ङमुट् का आगम नहीं हुआ। अच्छा तो आप को 'पदात्' ऐसा पढना पडेगा, क्योंकि 'पदात्' ८.१.१७ सूत्र का अधिकार 'कुत्सने च सुप्यगोत्रादौ' ८.१.६९ सूत्र से पूर्व तक ही है। इस सूत्र में ङम् को ही ङमुट् आगम विहित है। वह कैसे? 'पदस्य' ८.१.१६ का अनुवर्तन होने से यहाँ 'ङमः' यह पञ्चमी नहीं है। तब क्या है? सम्बन्धषष्ठी है। इस तरह इसका अर्थ होगा—'ह्रस्व से उत्तर पदान्त ङम् को ङमुट् हो अच् पर रहते'। अच्छा तो ऐसा मान यदि ङ् को ही ङमुट् का आगम कर रहे हैं, तब 'कुर्वन्नास्ते, कृषन्नास्ते' में 'रषाभ्यां नो णः समानपदे' ८.४.१ से णत्व प्राप्त होगा। जी नहीं, इस णत्वप्राप्ति को 'पदान्तस्य न' ८.४.३७ से निषेध होगा। जी, 'पदान्तस्य न' ८.४.३७ से पदान्त नकार के णत्व का निषेध कहा जा रहा है, मैं 'कुर्वन्नास्ते, कृषन्नास्ते' में कहीं पर भी आगम नकार में पदान्तत्व नहीं देख रहा हूँ। यह पदान्त नकार नहीं है। जी, यह पदान्त का अवयव है, अतः पदान्त के ग्रहण से गृहीत होगा। जी, पदान्त के ग्रहण से गृहीत होने पर भी यहाँ णत्व का वारण नहीं हो सकेगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसका कारण बताया जा चुका है कि 'पदस्य' ८.१.१६ का प्रकृत सूत्र में अनुवर्तन होगा तथा वह ङम् का विशेष्य होगा एवं ङम् विशेषण होने से तदन्त अर्थ को कहेगा। अर्थ होगा—ङमन्त पद को ङमुट् हो। इस तरह 'दण्डिना, शकटिना' में ङमन्त पद होने से नुट् की आपत्ति हो गयी। उसको हटाने के लिए 'उञि च पदे' ८.३.३१ सूत्र से 'पदे' की अनुवृत्ति करेंगे। अचि उसका विशेषण होगा। वर्णग्रहण से 'यस्मिन् विधिस्तदादावल्ग्रहणे' परिभाषा के द्वारा अजादि पद पर में रहते ङमन्त पद को ङमुट् का विधान होगा। 'परम-दण्डिना, परमच्छत्रिणा'। 'दण्डिना, शकटिना' में अजादि पद न होने से नुट् की आपत्ति निरस्त हो गयी। {ङमो ह्रस्वादचि}।

मय उञो वो वा ८.३.३३

किमर्थं 'मय उत्तरस्य उञो वो वे'त्युच्यते नेको यणचीत्येव सिद्धम्? न सिध्यति। 'प्रगृह्यः प्रकृत्ये'ति प्रकृतिभावः प्राप्नोति। यदि पुनस्तत्रैवोच्येत 'इको यणचि मय उञो वे'ति? नैवं शक्यमिह हि दोषः स्यात्—'किम्वावपनं महत्'। 'मोऽनुस्वारो हली'त्यनुस्वारः प्रसज्येत। वत्वे पुनः सत्यसिद्धत्वान्न भविष्यति। {मय उञो वो वा}।

'मयः' पञ्चम्यन्त निमित्त वचन, 'उञः' षष्ठ्यन्त उद्देश्य वचन, 'वः' प्रथमान्त विधेय वचन, 'वा' अव्ययपद होने से यह चार पदों का सूत्र है। 'मय् से पर में विद्यमान उञ् को विकल्प से व आदेश हो' यह सूत्रार्थ है। जैसे—'किम्वुक्तम्, किमु उक्तम्'।

यह सूत्र क्यों पढा गया? मय् से उत्तर में उञ् को व कहा जा रहा है, वह तो यण् आदेश हो जाने से भी हो जायेगा। क्या 'इको यणचि' ६.१.७७ से यहाँ पर यणादेश प्राप्त नहीं है? अवश्य यणादेश प्राप्त है। संहिता की अविवक्षा में 'किमु उक्तम्' तथा संहिता की विवक्षा में यण् आदेश होकर 'किम्वुक्तम्', यह रूप सिद्ध हो जायेगा। उसके लिए 'मय उञो वो वा' सूत्र का आरम्भ क्यों करते हैं? सूत्रारम्भ इसलिए करते हैं कि 'इको यणचि' से प्रकृत में यणादेश प्राप्त नहीं है। वह इस तरह की 'निपात एकाजनाङ्' १.१.१४ सूत्र से उञ् की प्रगृह्य संज्ञा हो जायेगी तथा 'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्' ६.१.१२५ से प्रकृतिभाव हो जाने पर स्वरसन्धि का बाध हो जायेगा, अतः व विधान करने के लिए आचार्य ने 'मय उञो वो वा' सूत्र पढा है। अच्छा तो प्रकृत सूत्र को त्रिपादी में न पढ कर 'इको यण्णचि' के अनन्तर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सपादसप्ताध्यायी में ही पढ दीजिए। 'इको यणचि मय उञो वा' इससे लाभ यह होगा कि स्थानिवचन ही पढना पडेगा, आदेशवचन पढने की आवश्यकता नहीं होगी। 'इको यणचि' से विधेय यण् का अनुवर्तन प्रकृत सूत्र में हो जाने से उञ् को यण् 'व' ही होगा। इस तरह लाघव है।

इस पक्ष का खण्डन करते हैं—**नैवं शक्यमिहेति**। 'मय उञो वो वा' सूत्र का सपादसप्ताध्यायी में पाठ सम्भव नहीं है। यदि षष्ठ अध्याय में इसका पाठ कर दिया जाये तो यण्णादेश के सिद्ध होने से 'किम्वावपनं महत्' में पदान्त म् को हल् पर में होने से अनुस्वार की आपत्ति होगी। त्रिपादी में पाठ करने से अनुस्वार की कर्तव्यता में व आदेश के असिद्ध होने से अनुस्वार की आपत्ति नहीं होती है। {**मय उञो वो वा**}।

विसर्जनीयस्य सः ८.३.३४

इह कस्मान्न भवति—वृक्षः प्लक्ष इति। 'संहिताया'मिति वर्तते। एवमप्यत्र प्राप्नोति। किं कारणम्? 'परः सनिकर्षः संहिते'त्युच्यते स यथैव परेण परः सन्निकर्ष एवं पूर्वेणाऽपि। एवं तर्ह्ययनवकाशाऽवसानसंज्ञा संहितासंज्ञां बाधिष्यते। अथवा संहितासंज्ञायां प्रकर्षगतिर्विज्ञास्यते, 'साधीयो यः परः सन्निकर्ष' इति। कश्च साधीयः? यः पूर्वपरयोः।

'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' ८.३.१५ इस सूत्रघटक 'खरि' एकदेश में स्वरितत्वप्रतीज्ञा है; अतः मण्डूकप्लुत्या प्रकृत सूत्र में 'खरि' का अनुवर्तन होगा। सूत्रार्थ होगा—'खर् पर में रहते विसर्ग को सत्व हो'। जैसे—वृक्षस्तत्र, प्लक्षस्तत्र।

अब भाष्यकार पक्ष उठाते हैं कि सूत्र में 'विसर्जनीयस्य' यह स्थानिमात्र का निर्देश है, निमित्त निर्दिष्ट नहीं है। 'वृक्षः प्लक्षः' यहाँ पर भी विसर्ग है। उसको सत्व होकर वृक्षस्, प्लक्षस् क्यों न हो जाये? इसका उत्तर देते हैं—प्रकृत सूत्र में 'संहितायाम्' ६.१.७३ का अनुवर्तन होता है। 'परः सन्निकर्षः संहिता' १.४.१०९ से अर्धमात्राधिककालव्यवायशून्य पूर्व और पर वर्ण के अतिशय सन्निधि को संहिता कहते हैं। 'वृक्ष, प्लक्षः', यह पूर्व वर्ण विसर्ग तो है, परन्तु पर वर्ण के न होने से संहिता नहीं है, अतः सत्व नहीं होता है। जैसे 'दधि अत्र' यहाँ पूर्व इ तथा पर अ के होने से कालव्यवायशून्यत्व होने पर पूर्व इक् का पर अच् के साथ तथा पर अच् का पूर्व इक् के साथ संहिता है, अतः यहाँ पर 'दध्यत्र' ऐसा यण्घटित रूप होगा। परन्तु 'वृक्षः, प्लक्षः'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में पूर्व विसर्ग के होने पर भी पर वर्ण का अभाव होने से संहिता नहीं है, अतः सत्व नहीं हो सकेगा। जी! यह कोई दोष नहीं है। 'संहितायाम्' का अनुवर्तन करने पर भी 'वृक्षः, प्लक्षः' में सत्व होगा। वह इस तरह की संहितासंज्ञा जैसे पूर्व वर्ण की है वैसे पर वर्ण की भी है। 'इको यणचि' ६.१.७६ में स्थानी और निमित्त दोनों का उच्चारण होने से दोनों की संहिता होती है। 'विसर्जनीयस्य सः' सूत्र में मात्र स्थानी का ही उच्चारण है, अतः उसी की संहिता होगी। अच्छा तो 'वृक्षः, प्लक्षः' में विसर्ग को संहितासंज्ञा प्राप्त है तथा 'विरामोऽवसानम्' १.४.११० से अवसानसंज्ञा भी प्राप्त है। एक की एक ही संज्ञा होगी, जो पर अथवा अनवकाश हो। अवसानसंज्ञा अनवकाश होने से संहिता को बाध लेगी। बाध्यबाधकभाव उसी को होता है, जहाँ संज्ञी एक हो। प्रकृत में संज्ञिभेद है; अतः बाध अनुपपन्न हो जायेगा, पर सन्निकर्ष की संहितासंज्ञा करण घञन्त होने से वर्णों का विराम अथवा भाव घञन्त विरामपद होने से वर्णकर्मकोच्चारण क्रिया का अभाव अवसान है। इस तरह संज्ञिभेद होने से अवसानसंज्ञा संहितासंज्ञा का बाध कैसे करेगी? तो यहाँ यह पक्ष है—संहिता और अवसान संज्ञा का विषय एक ही वर्ण विसर्ग हो रहा है जो कार्यी है, अतः समानविषयक होने से संहिता तथा विराम इन दोनों संज्ञाओं का परस्पर बाध्यबाधकभाव होगा। अथवा 'सन्निकर्षः संहिता' इतना सूत्र पढने के स्थान पर आचार्य ने 'परः सन्निकर्षः संहिता' ऐसा सूत्र पढा है। यहाँ पर 'पर' शब्द प्रकर्ष गत्यर्थक दिया गया है। इससे पूर्व पर विषय सन्निकर्ष संहिता होता है, ऐसा अर्थ आयेगा। 'वृक्षः, प्लक्षः' में पूर्व होने पर भी पर न होने से पूर्व पर सन्निकर्ष का अभाव है; अतः संहिता नहीं हो सकेगी। संहिता के अभाव में विसर्जनीय को सत्व नहीं हो सकेगा।

यद्येवाऽनवकाशाऽवसानसंज्ञा संहितासंज्ञां बाधतेऽथापि संहितासंज्ञायां प्रकर्षगतिर्विज्ञायते उभयथा दोषो भवति। इष्यन्ते इत उत्तरमवसाने संहिताकार्याणि, तानि न सिध्यन्ति 'अणोऽप्रगृह्यस्यानुनासिक' इति।

यदि अवसानसंज्ञा में 'संहितासंज्ञा' का बाध किया जाये अथवा सूत्र में 'पर' पद के सन्निवेश से संहिता संज्ञा में प्रकर्षगति लिया जाये तो इन दोनों पक्षों में दोष होगा। इस सूत्र से आगे के सूत्रों में भी संहितासंज्ञाप्रयुक्त कार्य इष्ट हैं, जो सिद्ध नहीं हो सकेंगे, उनकी सिद्धि के लिए संज्ञा के भिन्न होने से संज्ञा का बाध्यबाधकभाव का अभाव ही मानना पडेगा।

'विसर्जनीयस्य सः' सूत्र से आगे के सूत्रों में भी जहाँ अवसान है, वहाँ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भी संहिताकार्य इष्ट है। जैसे 'अणोऽप्रगृह्यस्यानुनासिकः' ८.४.५७ सूत्र में 'अवसाने' की अनुवृत्ति होती है। उत्तरार्थक होने से संहिताधिकार का भी अनुवर्तन होगा। उसका आगे के सूत्रों में अनुवर्तन का फल यह है कि 'अग्निचित् लुनातिः' में संहिता न होने पर 'तोर्लि' ८.४.६० से पर सवर्ण न हो, अतः उत्तर के सूत्रों में अनुवृत्ति होती हुई संहिता 'अणोऽप्रगृह्यस्यानुनासिकः' ८.४.५७ सूत्र में भी अन्वित होगी। इस तरह 'दधिँ मधुँ' में अनुनासिक, संहिता और अवसान इत्येतद् उभयाश्रित होगा। परन्तु यदि दोनों संज्ञाओं का बाध्यबाधकभाव मानेंगे तो जहाँ पर अवसानाश्रय कार्य होगा, वहाँ संहिताग्रहण का सम्बन्ध नहीं हो सकेगा। उत्तर के सूत्रों में उसकी अनुवृत्ति भी मानते रहेंगे तो कोई दोष नहीं है। परन्तु इससे सन्देह होगा कि उत्तर के सूत्रों में संहिताधिकार है या नहीं? अतः भिन्नविषय मान कर ही इन दोनों संज्ञाओं का समावेश करना चाहिए, यह भाष्य का आशय है। भिन्नविषय मान कर इन दोनों संज्ञाओं का समावेश मानेंगे, परन्तु 'दधिँ मधुँ' में अप्रगृह्यसंज्ञक अवसान अण् को अनुनासिक है, जिसको अवसानसंज्ञा प्राप्त है, उसी को संहितासंज्ञा भी प्राप्त है, एवं प्रकृत में संहिताधिकार होने से 'अणोऽप्रगृह्यस्यानुनासिकः' ८.४.५७ में दोनों संज्ञायें इष्ट होंगी, जो परस्पर बाध्यबाधकभाव होने से सम्भव नहीं है।

एवं तर्ह्ययाचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति—'न सर्वस्य विसर्जनीयस्य सत्वं भवती'ति यदयं 'खरवसानयोर्विसर्जनीय' इत्याह। इतरथा 'खरवसानयोः सो भवती'त्येव ब्रूयात्। तच्च लघु भवति, 'विसर्जनीयस्य स' इत्येतच्च न वक्तव्यं भवति। अवश्यं 'शर्परे विसर्जनीय' इत्यत्र प्रकृतिनिर्देशार्थं विसर्जनीयग्रहणं कर्तव्यम्।

अच्छा तो आचार्य ने 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' ऐसा विसर्गघटित पाठ किया है। इससे ज्ञापित है कि 'सभी विसर्ग को सत्व नहीं होता है'। यदि सभी विसर्जनीय को सत्व इष्ट होता तो 'खरवसानयोः सो भवति' ऐसा ही सूत्रपाठ करते, इसमें लाघव भी था। 'विसर्जनीयस्य सः' यह नहीं कहना पडता। इसका आशय यह है कि मात्र 'सः' इतना ही सूत्र रखिये। यह प्रथमान्त विधेय वचन होगा। पूर्व सूत्र 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से 'विसर्जनीयः' प्रथमान्त का अनुवर्तन करके षष्ठीविपरिणाम करेंगे। इस तरह 'विसर्जनीयस्य सः' सूत्र हो जा रहा है। पुनः सूत्र में विसर्जनीयस्य यह षष्ठ्यन्त पाठ व्यर्थ हो गया, अतः व्यर्थ होकर कल्पना करेगा—'सभी विसर्ग को सत्व नहीं होता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। जी! आपका यह पक्ष उचित नहीं है। वह इसलिए कि 'विसर्जनीयस्य सः' सूत्र में यदि स्थानी का निर्देश नहीं करेंगे तो 'शर्परे विसर्जनीयः' ८.३.३५ सूत्र में आपको 'विसर्जनीयस्य' ऐसा पाठ करना ही पडेगा। 'विसर्जनीयस्य' पद के अभाव में 'शर्परे खरि' सूत्र में प्रकृतिनिर्देश सम्भव नहीं है, अतः उसके लिए 'विसर्जनीयस्य सः' सूत्र में ही 'विसर्जनीयस्य' का ग्रहण कर लिया गया तथा यहाँ इसका प्रयोजन भी है। यदि 'रो रि' 'खरवसानयोः सः' 'रोः सुपि' 'शर्परे विसर्जनीयः' ऐसा सूत्र का क्रम रखा जाये तो 'शर्परे विसर्जनीयः' 'रः' इस षष्ठ्यन्त पद की अनुवृत्ति होगी, 'रोः' की नहीं। इससे 'पुनः क्षरति' में रेफस्थानिक विसर्ग को विसर्ग रहने पर भी 'कः त्सरुः' इत्यादि रुस्थानिक विसर्ग को विसर्ग नहीं रह सकेगा।

अथेदानीमेतदपि रसान्निध्यार्थं पुरस्तादपक्रक्ष्यते—'खरवसानयोः स' इत्यत्रैव, एवमपि 'कुप्वोः ≍ क ≍ पौ चे'त्येवमादिनाऽनुक्रमणेन व्यवच्छिन्नं 'भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशी'त्यत्र रुग्रहणं कर्तव्यं स्यात्। एवमप्येकं विसर्जनीयग्रहणं व्याजो भवति। सोऽयमेवं लघीयसा न्यासेन सिद्धे सति यद्गरीयांसं यत्नमारभते तज्ज्ञापयत्याचार्यो 'न सर्वस्य विसर्जनीयस्य सत्वं भवती'ति।। एवमप्यनैकान्तिकं ज्ञापकम्, एतावज्ज्ञाप्यते 'न सर्वस्य विसर्जनीयस्य सत्वं भवती'ति तत्र कुत एतदिह भविष्यति-वृक्षस्तत्र प्लक्षस्तत्रेति, इह न भविष्यति—वृक्षः प्लक्ष इति।

यदि 'रोः सुपि' ८.३.१६ सूत्र के अनन्तर 'शर्परे विसर्जनीयः' 'वा शरि' 'कुप्वोः क पौ च' ऐसा सूत्र सन्निवेश करते हैं तो इससे रस्थानिक आदेश का ही विधान होगा। इस तरह 'भोभगोअघोअपूर्वस्य' सूत्र से र के ही स्थान पर यत्व का विधान होगा। इस तरह 'स्वरत्र' में अतिव्याप्ति होगी तथा 'भो देवाः' इत्यादि में असम्भव। इस अतिव्याप्ति तथा असम्भव दोष को हटाने के लिए 'भोभगो' सूत्र में आप को अलग से स्थानी रु का निर्देश करना पडेगा। ऐसा मानने पर भी एक विसर्जनीयग्रहण **व्याजो भवति**=अधिक होने से अकरणीय है, अथवा व्यर्थ कहा जा रहा है। वह इस तरह कि यथान्यास में दो विसर्जनीय तथा 'स'ग्रहण होने से तीन ग्रहण हो रहा है। अन्यथा न्यास में मात्र 'स' तथा 'रु' इन दो का ही ग्रहण होता है। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' सूत्रघटक विसर्जनीयग्रहण से 'खरवासनयोः सः' का 'स'ग्रहण परिवर्तित होगा तथा 'विसर्जनीयस्य सः'- घटक 'स'ग्रहण से 'रु'ग्रहण परिवर्तित होगा। इस तरह 'विसर्जनीयस्य सः' सूत्र में 'विसर्जनीयस्य' पद का ग्रहण अधिक हुआ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जो व्यर्थ होने से त्याज्य होगा। इस तरह अन्यथा लघुभूत न्यास से कार्यसिद्धि हो जाने से तृतीय अतिरिक्त 'विसर्जनीयस्य' का न्यास कर आचार्य ने जो गौरव किया वह व्यर्थ पड रहा है। वह व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा—'सम्पूर्ण विसर्ग को सकार नहीं होता है', अतः कहीं पर 'वृक्षस्तत्र, प्लक्षस्तत्र' में सत्व हो जायेगा तथा कहीं पर 'वृक्षः, प्लक्षः' में नहीं होगा।

एवं तर्ह्याचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति—'नास्य विसर्जनीयस्य सत्वं भवती'ति यदयं 'शर्परे विसर्जनीय' इत्याह। अथवा 'हली'ति वर्तते। क्व प्रकृतम्? 'हलि सर्वेषा'मिति। यदि तदनुवर्तते, 'मय उञो वो वा' 'हलि चे'ति हल्यपि वत्वं प्राप्नोति। शमु नः, शमु योरस्तु। एवं तर्हि 'विसर्जनीयस्य स' इत्यत्र 'खरी'त्यनुवर्तिष्यते। अथवा संबन्धमनुवर्तिष्यते।

अथवा आचार्य का आचरण बताता है कि 'वृक्षः प्लक्षः' में विसर्ग को सत्व नहीं होता है, अतः आचार्य 'शर्परे विसर्जनीयः' ऐसा पाठ करते हैं। अन्यथा विपर्यय होने पर 'कः त्सरुः' इत्यादि स्थलों में सत्वाभाव होने से विसर्ग रहेगा ही, पुनः उसी विसर्ग का विधान करने के लिए आचार्य 'शर्परे विजर्सनीयः' सूत्र क्यों पढेंगे? यदि विसर्गविधान का प्रयोजन 'वासः क्षौमम्, उद्भिः प्सातम्' में 'कुप्वोः क पौ च' का बाध मानेंगे तो इसके लिए आचार्य को 'कुप्वो ≍ क ≍ पौचाशरि' ऐसा ही सूत्र कहना चाहिए था। इससे उक्त स्थल में जीह्वामूलीय तथा उपध्मानीय की आपत्ति निरस्त हो जाती है। पृथक् 'शर्परे विसर्जनीयः' सूत्र का उच्चारण व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा—'वृक्षः प्लक्षः' इत्यादि में विसर्ग को सत्व नहीं होता है'।

अथवा 'विसर्जनीयस्य सः' सूत्र में 'हलि' इस निमित्त का अनुवर्तन करेंगे। अर्थ होगा—'हल् पर में रहते विसर्जनीय को सत्व हो'। 'वृक्षः, प्लक्षः' से पर में हल् नहीं है, अतः सत्वापत्ति निरस्त हो गयी। 'हलि' का अनुवर्तन आप कहाँ से करेंगे? 'हलि सर्वोषाम्' ८.३.२२ सूत्र से। यदि 'हलि सर्वोषाम्' ८.३.२२ से 'हलि' का अनुवर्तन करेंगे तो 'मय उञो वो वा' ८.३.३३ सूत्र में भी उसका अन्वय होगा, अतः हल् पर में रहते उञ् को वत्व होने से 'किम्वुक्तम्' में असम्भव होगा तथा 'शमु नः', 'शमुः योरस्तु' में हल् पर में रहते अनिष्ट वत्व होने से अतिव्याप्ति होगी। अच्छा तो इन सम्पूर्ण दोषों का निवारण करने के लिए सूत्रों को यथान्यास ही रखा जाये तथा 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' से 'खरि' इस निमित्तवचन का अनुवर्तन किया जाये। अथवा लोपसम्बद्ध 'हलि' इस सप्तम्यन्त पद का अनुवर्तन करेंगे। पूर्व सूत्रों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में 'हलि' का योग नहीं होगा, अतः 'मय उञो वो वा' से 'शमुः नः, शमु योरस्तु' में हल् पर में रहते वत्व की आपत्ति नहीं होगी। {**विसर्जनीयस्य सः**}।

वा शरि ८.३.३६

* वा शर्प्रकरणे खर्परे लोपः * **वा शर्प्रकरणे खर्परे लोपो वक्तव्यः। वृक्षा स्थातारः। वृक्षाः स्थातारः।** {वा शरि}।

'पर में शर् रहते विसर्जनीय को विकल्प से विसर्जनीय हो'। जैसे—'हरिः शेते। हरिश्शेते'।

'शर्प्रकरण में खर्परक शर् पर में रहते विकल्प से विर्जनीय का लोप हो', ऐसा कहना चाहिये। जैसे लोपपक्ष में—'वृक्षा स्थातारः', लोपाभावपक्ष में—'वृक्षाः स्थातारः'। {वा शरि}।

कुप्वोः ≍क ≍पौ च ८.३.३७

* सस्य कुप्वोर्विसर्जनीयजिह्वामूलीयोपध्मानीयाः * **सस्य कुप्वोर्विसर्जनीयजिह्वामूलीयोपध्मानीया वक्तव्याः** * विसर्जनीयादेशे हि शर्परयोरेवादेशप्रसङ्गः * **विसर्जनीयादेशे हि सति शर्परयोरेव कुप्वोः ≍क ≍पौ स्याताम्—अद्भिः प्सातं वासः क्षौमम्। वचनान्न भविष्यतः।**

'कवर्ग और पवर्ग पर में रहते विसर्जनीय को विकल्प से जीह्वामूलीय तथा उपध्मानीय क्रमशः हो'। जैसे—'राम करोति, राम पाति'।

कवर्ग और पवर्ग पर में रहते स् के स्थान में विसर्जनीय, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय विकल्प से कहना चाहिये। जैसे—'ब्राह्मण ≍ पचति, ब्राह्मण ≍ करोति' में क्रमशः उपध्मानीय तथा जिह्वामूलीय है तथा पक्षान्तर में उभयत्र विसर्ग भी इष्ट है। परन्तु 'अद्भिः प्सातम्, वासः क्षौमम्' में शर्परक कवर्ग पवर्ग पर में रहते विसर्जनीय ही इष्ट है, उपध्मानीय और जिह्वामूलीय नहीं, यह तभी संभव है जब स् के स्थान पर विसर्जनीय, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय का विधान करेंगे। यदि विसर्ग के स्थान में जायमान स को कवर्ग पवर्ग पर में रहते आदेशत्रय का विधान करेंगे तो शर् परक कवर्ग पवर्ग पर रहते सकार का अपवाद विसर्जनीय का ही विधान होगा, अतः सकार न होने से उक्त आदेश नहीं हो सकेंगे। परन्तु विसर्जनीय के स्थान पर इस सूत्र के आदेशत्रय का विधान करेंगे, तब शर्परक कु पु पर में रहते ही उक्त आदेश प्राप्त होगा; अशर्परक कु पु पर में रहते को 'पूर्वत्रासिद्धम्' से निषेध हो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जायेगा जिससे सकार ही प्राप्त होगा। विसर्ग नहीं मिलेगा, जिसको आप उक्त आदेशत्रय विधान कर सकेंगे। यदि स्थानिवद्भाव से स् में विसर्जनीय वृत्ति धर्म लाकर उक्त आदेशत्रय करना चाहें तो यहाँ अतिदेश संभव नहीं है। इसमें अनल्विधि निषेध लग जायेगा, अतः उक्त आदेशत्रयविधान के लिए स्थानी स् को बनाना चाहिये। 'अद्भिः प्सातमू, वासः क्षौमम्' यहाँ पर विसर्ग को विसर्ग 'शर्परे खरि' सूत्र भी करता है तथा 'कुप्वोः क पौ च' ८.३.३७ सूत्र भी करता है। यहाँ 'शर्परे खरि' से जब विसर्ग विहित है, तो उसी का 'कुप्वोः ≍ कः ≍ पौ च' ८.३.३७ सूत्र से जो किया गया, वह व्यर्थ हुआ। इस तरह व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' से 'कुप्वोः' द्वारा विहित विसर्ग असिद्ध नहीं होता है, अतः विसर्ग के असिद्ध न होने से सकार नहीं मिलेगा जिसको आप आदेशत्रय का विधान कर सकेंगे, अतः 'सस्य कुप्वोर्विसर्जनीय-जिह्वामूलीयोपध्मानीयाः' वह वार्तिक करने की आवश्यकता नहीं है।

अस्ति वचने प्रयोजनम्। किम्? पुरुषः त्सरुकः। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। यदेतद्विसर्जनीयस्य स इत्यत्र विसर्जनीयग्रहणमेतदुत्तर-त्रानुवर्तिष्यते, तस्मिंश्च शर्परे विसर्जनीयोऽसिद्धः। नाऽसिद्धः। कथम्?

जी! उक्त वचन=वार्तिक का प्रयोजन है। वह व्यर्थ नहीं होगा। उसका प्रयोजन 'पुरुषः त्सरुकः' इत्यादि में जहाँ कवर्ग, पवर्ग से अन्य शर्परक खर् है वहाँ तादृश शर्परक खर् पर में रहते सकार का अपवाद विसर्ग का विधान करने के लिए उक्त वचन आवश्यक है। परन्तु जहाँ पर शर्परक कवर्ग पवर्ग है, उसके पर में रहते 'कुप्वोः' ८.३.३७ से विसर्ग को जिह्वामूलीय और उपध्य-मानीय का विधान होगा। 'सस्य कुप्वोर्विसर्जनीयजिह्वामूलीयोपध्मानीयाः' को 'पुरुषः त्सरुकः' में विसर्गसिद्धि के लिए नहीं पढना चाहिये। 'विसर्जनीयस्य सः' ८.३.३४ सूत्र में सकार का स्थानी जो 'विसर्जनीयस्य' गृहीत है, वह स्थानी दो प्रकार का है। एक 'खरवसनयोर्विसर्जनीयः' ८.३.१५ से विहित तथा दूसरा 'शर्परे विसर्जनीयः' ८.३.३५ से विहित है। इन दोनों को जो शर्लक्षण विसर्ग है, उसको 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' ८.२.१ असिद्ध कर देगा; अतः 'खरवसान-योर्विसर्जनीयः' सूत्र से विहित विसर्जनीय ही 'विसर्जनीयस्य सः' में स का स्थानी बनेगा तथा उसी विसर्जनीयः की अनुवृत्ति 'कुप्वोः ≍ क ≍ पौ च' ८.३.३७ सूत्र में होगी। तदर्थ वा शब्द है, अतः 'कुप्वोः' सूत्र में स्थानी 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' सूत्र से विहित विसर्ग ही लिया जायेगा। 'विसर्जनीयस्य सः' इस वचन के प्रमाण से खर् पर में रहते विसर्जनीय को सत्व प्राप्त हो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रहा था। सत्व की प्राप्ति होने पर 'कुप्वोः ≍ क ≍ पौ च' सूत्र से विसर्ग का विधान किया गया, अतः कवर्ग पवर्ग खर् पर में रहते अव्यवहित पूर्वत्वविशिष्ट विसर्ग को 'विसर्जनीयस्य सः' विसर्ग नहीं करेगा। क्योंकि 'कुप्वोः ≍ क ≍ पौ च' यह सूत्र 'विसर्जनीयस्य सः' का अपवाद है। अपवाद होने से 'कुप्वोः ≍ क ≍ पौ च' सूत्र का असिद्धत्व 'विसर्जनीयस्य सः' की दृष्टि में नहीं होगा। 'शर्परे विसर्जनीयः' यह विसर्जनीय आदेश अपूर्व है। 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' सूत्र से विहित विसर्जनीय को विसर्जनीयविधान 'शर्परे विसर्जनीयः' नहीं करता है ऐसा मानकर उपर्युक्त विषय का प्रतिपादन करते हुए भाष्यकार कह रहे हैं—'**यदेतद् विसर्जनीयस्य स इत्येत्रे**'ति। 'विसर्जनीयस्य सः' सूत्र में जो विसर्जनीय ग्रहण है, उसका अनुवर्तन उत्तर सूत्रों में होगा। 'विसर्जनीयस्य सः' ८.३.३४ की दृष्टि में पर त्रिपादी होने से 'शर्परे विसर्जनीयः' ८.३.३५ असिद्ध है। जी! 'विसर्जनीयस्यः सः' की दृष्टि में 'शर्परे विसर्जनीयः' असिद्ध नहीं है। वह कैसे!

अधिकारो नाम त्रिप्रकारः। कश्चिदेकदेशस्थः सर्वं शास्त्रमभिज्वलयतिः। यथा प्रदीपः सुप्रज्वलितः सर्वं वेश्माऽभिज्वलयति। अपरो यथा—रज्ज्वाऽयसा वा बद्धं काष्ठम् अनुकृष्यते तद्वत्। अपरोऽधिकारः प्रतियोगं तस्याऽनिर्देशार्थ इति योगे योग उपतिष्ठते। तद्यदैष पक्षः 'प्रतियोगं तस्याऽनिर्देशार्थ' इति तदा हि यदेतद्विसर्जनीयस्य स इत्यत्र विसर्जनीयग्रहणमेतद् उत्तरत्राऽनुवृत्तं सदन्यत् सम्पद्यते। तस्मिंश्च शर्परे विसर्जनीयः सिद्धः। एवं च कृत्वा शर्परयोरेव कुप्वोः ≍ क ≍ पौ स्याताम्, वासः क्षौममद्भिः प्सातमिति। एवं तर्हि योगविभागः करिष्यते। 'शर्परे विसर्जनीयः'। 'वा शरि'। ततः 'कुप्वोः'। कुप्वोश्च शर्परयोर्विसर्जनीयस्य विसर्जनीयो भवतीति।

वह इस तरह कि 'विसर्जनीयस्य' को आप अधिकार मानेंगे। अधिकार तीन तरह का होता है। कोई अधिकार उच्चारणदेश में रहता हुआ सम्पूर्ण शास्त्रों को उपकृत करता है। ठीक वैसे ही जैसे दीपक घर के एकदेश में रहता हुआ भी सम्पूर्ण प्रकोष्ठ को प्रकाशित करता है। दूसरा अधिकार वहाँ है जहाँ चकार से अनुकर्षण हो। जैसे रस्सी अथवा लोहे के तार से किसी वस्तु को अपनी ओर खींच लेते हैं वैसे चकार के द्वारा पदों अथवा वाक्य का अनुकर्षण करेंगे। जैसे 'लुटि च क्लृपः' १.३.९३ सूत्र में चकार से 'स्य'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और 'सन्' का अनुकर्षण करते हैं। तीसरा अधिकार वह है जिसमें स्वरितत्व-प्रतिज्ञा की गयी है, तत्सदृश पदों अथवा वाक्य का अन्य सूत्रों में अनुमान कर लेते हैं तथा प्रतियोग में लक्ष्य के अनुसार उस अनुमित शब्द का अर्थ करते हैं। इस अधिकार को शब्दाधिकार नाम से कहा गया है। जैसे 'स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ:' १.१.५६ सूत्र घटक स्थानिवत् पद में स्वरितत्वप्रतिज्ञा होने से शब्दाधिकार महिम्ना उत्तर सूत्र 'अचः परस्मिन् पूर्वविधौ' १.१.५७ में लक्ष्यानुरोधात् भाव और अभाव उभय का अतिदेश होता है। इस तरह तीन प्रकार के अधिकारों में जो तीसरा अधिकार है—'योगे योगे उपतिष्ठते', इस अधिकार में जब यह माना जायेगा कि पद अथवा वाक्य जहाँ पढा गया है, वहाँ उसका शब्दस्वरूप के अलावा कोई अर्थ नहीं है, प्रतिसूत्र में उपस्थित होकर जहाँ जैसी आवश्यकता होगी वहाँ वैसा अर्थ बोध करा देगा, तब इस पक्ष में 'विसर्जनीयस्य सः' इत्येतत्सूत्रघटक विसर्जनीय पद को भी हम ऐसा ही अधिकार मानेंगे। इस तरह का अधिकार मानने पर शर्परक विसर्जनीय सिद्ध रहेगा। इस स्थिति में शर्परक ही कवर्ग, पवर्ग पर में रहते विसर्ग को जिह्वामूलीय और उपध्मानीय होगा, अतः 'वासः क्षौमम्, अद्भिः प्सातम्' में जिह्वामूलीय और उपध्मानीय की आपत्ति हो गयी। अच्छा तो इस आपत्ति को हटाने के लिए हम सूत्र का विभाग करेंगे-'शर्परे विसर्जनीयः, वा शरि, कुप्वोः'। इस योगविभाग से अर्थ होग-'शर्परक कवर्ग पवर्ग पर में रहते विसर्जनीय को विसर्जनीय ही हो, अन्य नहीं'। इससे 'वासः क्षौमम्, अद्भिः प्सातम्' में जिह्वामूलीय और उपध्मानीय की आपत्ति निरस्त हो गयी।

किमर्थमिदम्? कुप्वोः ≍ क ≍ पौ वक्ष्यति तद्बाधनार्थम्। ततः ≍ क ≍ पौ च। ≍ क ≍ पौ च भवतः। 'कुप्वो'रित्येव। 'शर्परयो'रिति निवृत्तम्। अथवा 'शर्परे विसर्जनीय' इत्येतत् 'कुप्वोः ≍ क ≍ पौ चे'त्यत्रानुवर्तिष्यते।।

आप यह योगविभाग क्यों करते हैं? 'कुप्वोः ≍ क ≍ पौ च' ऐसा सूत्र पढेंगे, उसका बाध करने के लिए पूर्व योगविभाग किया गया है। 'शर्परे विसर्जनीयः वा शरि, कुप्वोः', ऐसा योगविभाग करने के बाद '≍ क ≍ पौ च' सूत्र होगा। उसमें पूर्व सूत्र से 'कुप्वोः' की अनुवृत्ति हो जायेगी तथा 'शर्परयोः' की निवृत्ति हो जायेगी।

अथवा योगविभाग में विद्यमान 'शर्परे विसर्जनीयः' की निवृत्ति हो जायेगी। उसकी अनुवृत्ति का कोई प्रसङ्ग नही है। इस तरह योगविभाग के द्वार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'वासः, क्षौमम्, अद्भिः प्सातम्' में जिह्वामूलीय और उपध्मानीय की अतिप्रसक्ति निरस्त हो गयी। {कुप्वोः ≍ क ≍ पौ च}।

सोऽपदादौ ८.३.३८

* सोऽपदादावनव्ययस्य * सो पदादावनव्ययस्येति वक्तव्यम्। इह मा भूत्—प्रातःकल्पम् पुनःकल्पम् * रोः काम्ये नियमार्थम् * रोः काम्य इति वक्तव्यम्। किं प्रयोजनम्? 'नियमार्थम्'। रोरेव काम्ये नान्यस्य पयस्काम्यति। क्व मा भूत्? गीः काम्यति धूः काम्यति पूः काम्यति * उपध्मानीयस्य च * उपध्मानीयस्य च सत्वं वक्तव्यम्। किं प्रयोजनम्? अयमुब्जिरुपमानीयोपधः पठ्यते तस्य सत्वे कृते जश्भावे च 'अभ्युद्गः' 'समुद्ग' इत्येतद्रूपं यथा स्यात्। यद्युपध्मानीयोपधः पठ्यते—उब्जिजिषतीत्युपध्मानीयस्य द्विर्वचनं प्राप्नोति। दकारोपधे पुनः सति 'न न्द्राः संयोगादय, इति प्रतिषेधः सिद्धो भवति। यदि दकारोपधः पठ्यते का रूपसिद्धिः— उब्जिता उब्जितुमिति?

पूर्व सूत्र से 'विसर्जनीयस्य' तथा 'कुप्वोः' ये दो पद अनुवृत्त हैं। सूत्रार्थ होगा—'अपदादि कवर्ग पवर्ग परे रहते विसर्जनीय को स हो'।

इस पर वार्तिककार कहते हैं कि अव्ययभिन्न विसर्ग को सत्व कहना चाहिये। इसका व्यावर्त्य है—'प्रातः कल्पम्, पुनः कल्पम्'। यहाँ प्रातर् अव्यय-घटक रेफ का विसर्ग है तथा 'ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः' ५.३.६७ से ईषद् अर्थ में कल्पप् प्रत्यय है।

काम्य पर में रहते विसर्ग को सत्व कहना चाहिये। इसका क्या प्रयोजन है? इसका प्रयोजन है नियम करना-'काम्य शब्द पर में रहते विसर्जनीय को सत्व हो तो रु स्थानिक को ही हो, अन्य रेफ स्थानिक को नहीं'। जैसे—पयस्काम्यति। इसका व्यावर्त्य फल है—गीः काम्यति, धूः काम्यति, पूः काम्यति। यहाँ रेफ स्थानिक विसर्ग है, रुस्थानिक नहीं, अतः विसर्ग को सत्व नहीं हुआ।

उपध्मानीय को भी सत्व कहना चाहिये। उपध्मानीय को सत्व कहने का प्रयोजन यह है कि उब्ज् धातु पा.१३०४ आर्जव अर्थ में उपध्मानीयोपध पढा गया है। उसको सत्व होने से स् को 'झलां जश् झशि' ८.४.५३ से जश्त्व होकर द् होता है तथा 'अभ्युद्गः, समुद्गः' रूपसिद्धि होती है। यदि उब्ज् धातु

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

को आप उपध्मानीय उपधा वाला मानेंगे तो 'उब्जतुमिच्छति उब्जिजिषति', यहाँ पर 'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा' १.३.७ से इच्छार्थक सन् होने पर 'सन्यङोः' ६.१.६ से सनन्त को द्वित्व प्राप्त होगा। अजादि धातु होने से द्वितीय एकाच् उपध्मानीयोपध विशिष्ट ब्जि ब्जि ऐसा द्वित्व होगा। परन्तु यदि उब्ज् धातु को दकारोपध मानते हैं तो 'द्जि' को द्वित्व प्राप्त होने पर 'न न्द्राः संयोगादयः' ६.१.३ यह प्रतिषेद लग जाने से 'जि' को द्वित्व 'जि जि' होने से 'उब्जिजिषति' यह इष्ट रूप बनता है, अन्यथा 'उदिजिषति' यह अनिष्ट रूप होगा। यदि उब्ज धातु को दकारोपध मानेंगे तो 'उब्जिता, उब्जितुम्' यह रूपसिद्धि कैसे होगी?

*** असिद्धे भ उद्जेः * इदमस्ति 'स्तोः श्चुना श्चुः'। ततो वक्ष्यामि 'भ उद्जेः'। उद्जेश्च श्चुना सन्निपाते भो भवतीति। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। निपातनाद् एतत्सिद्धम्। किं निपातनम्? 'भुजन्युब्जौ पाण्युपतापयो'रिति। इहापि प्राप्नोति—अभ्युद्गः समुद्गः। अकुत्वविषये निपातनम्। अथवा नैतदुब्जे रूपम्। किन्तर्हि? गमेर्द्व्युपसर्गाड्डो विधीयते—अभ्युद्गतः-अभ्युद्गः। समुद्गतः समुद्गः। {सोऽपदादौ}।**

वह इस तरह कि असिद्धकाण्ड त्रिपादी में 'स्तोः श्चुना श्चुः' ८.४.४० सूत्र के बाद 'भ उद्जेः' ऐसा सूत्र पाठ करना चाहिए। नहीं, इसकी आवश्यकता नहीं है। यदि उक्त सूत्र नहीं पढेंगे जो 'उब्जिता, उब्जितुम्' की सिद्धि कैसे होगी? उसको निपातन से रूपसिद्धि करेंगे। आचार्य ने 'भुजन्युब्जौ पाण्युपतापयोः' ७.३.६१ ऐसा सूत्र पढा है। यहाँ पर उद्ज का निपातन उब्ज है, अतः निपातन से द् को ब् आदेश होने से 'उब्जिता, उब्जितुम्' की रूपसिद्धि हो जायेगी। यदि निपातन करेंगे तो 'अभि+ उबज्+घञ्=अभ्युद्गः, सम्+उब्ज्=समुद्गः' यहाँ पर भी निपात होना चाहिए। फिर तो 'अभ्युब्गः, समुब्गः' ऐसा अनिष्ट रूप होगा। 'अभ्युद्गः, समुद्गः' यह इष्ट रूप साधु नहीं हो सकेगा। जी नहीं। यह कोई दोष नहीं है। 'भुजन्युब्जौ पाण्युपतापयोः' ७.३.६१ यह निपातन कुत्व से भिन्नविषय में होगा। 'अभ्युद्गः, समुद्गः' यहाँ कुत्वविषय है, अतः यहाँ निपातन से द् को ब् नहीं होगा। अथवा इसका दूसरा समाधान यह है कि 'अभ्युद्गः, समुद्गः' यह उब्ज् धातु का रूप नहीं है, अपितु दो उपसर्ग उपपद रहते गम् धातु से कृत् प्रत्यय का विधान है। ङित् सामर्थ्य से टि लोप होकर 'अभ्युद्गतः-अभ्युद्गः, समुद्गतः-समुद्गः' रूपसिद्धि है। {सोऽपदादौ}।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इणः षः ८.३.३९

किमविशेषेण सत्वमुक्त्वा इण उत्तरस्य सकारस्य षत्वमुच्यते आहोस्विदिण उत्तरस्य विसर्जनीयस्यैव षत्वं विधीयते? किञ्चातः? यद्यविशेषेण सत्वमुक्त्वेण उत्तरस्य सकारस्य षत्वमुच्यते, निष्कृतं निष्पीतमित्यत्र सत्वस्याऽसिद्धत्वात् षत्वं न प्राप्नोति। अथेण उत्तरस्य विसर्जनीयस्यैव षत्वं विधीयते सत्वमप्यनुवर्त्तते उताहो न?

'इण् से पर में विसर्ग को षत्व हो, पाश, कल्प, क और काम्यघटक अपदादि कवर्ग पवर्ग पर में रहते'—यह सूत्रार्थ है। जैसे—'सर्पिष्पाशम्। सर्पिष्कल्पम्। सर्पिष्कम्। सर्पिष्काम्यति'।

अब यहाँ पर भाष्यकार पक्ष उठाते हैं कि क्या सामान्य रूप से सत्व कह कर इण् से उत्तर में सकार को षत्व का विधान कर रहे हैं, अथवा इण् से उत्तर में विद्यमान विसर्ग को ही सत्व कह रहे हैं? इस शङ्का में क्या हेतु है? वह यह है कि यदि सामान्यतया सत्व का विधान कर इण् से उत्तर स् को षत्व का विधान करेंगे तो 'निष्कृतम्, निष्पीतम्' में षत्व की कर्तव्यता में सत्व असिद्ध रहेगा, अतः स्थानी स् के न होने से 'निष्कृतम्, निष्पीतम्' की सिद्धि नहीं हो पायेगी। यदि इण् से उत्तर में विसर्जनीय को ही षत्व करेंगे तो सत्व का भी अनुवर्तन होता है, अथवा नहीं?

किं चातः? यद्यनुवर्तते सत्वमपि प्राप्नोति। अथ निवृत्तं 'नमस्पुरसोर्गत्यो'रित्यत्र सकारग्रहणं कर्तव्यम्। तस्मिंश्च क्रियमाणे षत्वमप्यनुवर्तते उताहो न? किं चातः? यद्यनुवर्तते षत्वमपि प्राप्नोति, अथ निवृत्तम्—'इदुदुपधस्य चाऽप्रत्ययस्ये'त्यत्र षकारग्रहणं कर्त्तव्यम्।

यदि सत्व का अनुवर्तन होगा तो क्या वैशिष्ट्य होगा? यह कि वहाँ सत्व भी प्राप्त होगा। यदि सत्व की अनुवृत्ति नहीं करेंगे, अर्थात् सत्व को यहाँ से निवृत्त मानेंगे तो उत्तर सूत्र "नमस्पुरसोर्गत्योः" ८.३.४० में पुनः सकार ग्रहण करना पडेगा, जिससे गौरव होगा।

यदि 'नमस्पुरसोर्गत्योः' ८.३.४० से सत्व का विधान किया जाये तो उस में षत्व का अनुवर्तन कर उससे षत्व की प्राप्ति होगी, अथवा नहीं?

यदि "नमस्पुरसोर्गत्योः" ८.३.४० सूत्र में षत्व की अनुवृत्ति की जाये तो इस सूत्र से षत्व भी प्राप्त होगा। यदि षत्व की निवृत्ति कर दी जाये तो उत्तर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूत्र 'इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य' ८.३.४१ में पुनः षत्व का पाठ करना पडेगा।

तस्मिंश्च क्रियमाणे सत्वमप्यनुवर्त्तते उताहो न? किञ्चातः? यद्यनुवर्तते सत्वमपि प्राप्नोति। अथ निवृत्तं 'तिरसोऽन्यतरस्याम्' इत्यत्र सकारग्रहणं कर्त्तव्यम्। तस्मिंश्च क्रियमाणे षत्वमप्यनुवर्तते उताहो न? किञ्चातः। यद्यनुवर्त्तते षत्वमपि प्राप्नोति। अथ निवृत्तं—'द्वित्रिश्चतुरिति कृत्वोऽर्थे' 'इसुसोः सामर्थ्ये' 'नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्ये'ति षकारग्रहणं कर्तव्यम्। तस्मिंश्च क्रियमाणे सत्वमप्यनुवर्त्तते उताहो न? किञ्चातः ? यद्यनुवर्तते सत्वमपि प्राप्नोति। अथ निवृत्तम् 'अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वन-व्ययस्ये'ति सकारग्रहणं कर्तव्यम्।

यदि "इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य" सूत्र में षत्व का ग्रहण किया जाये तो उसमें पूर्व सूत्र से सत्व की अनवृत्ति होगी या नहीं? इससे प्रकृत में क्या आयेगा? 'इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य' सूत्र में षत्व का पाठ करेंगे तथा सत्व का अनुवर्तन करेंगे तो षत्व की तरह सत्व भी प्राप्त होगा। यदि सत्व की निवृत्ति करते हैं तो उत्तर सूत्र 'तिरसोऽन्यतरस्याम्' ८.३.४२ में पुनः सकार ग्रहण करना पडेगा। यदि 'तिरसोऽन्यतरस्याम्' ८.३.४२ सूत्र में सकारग्रहण करेंगे तो वहाँ षत्व की अनृवृत्ति होगी या नहीं? यदि सत्व की अनुवृत्ति होगी तो 'तिरसोऽन्यतरस्याम्' ८.३.४२ से षत्व की भी प्राप्ति होगी। यदि 'तिरसोऽन्यतरस्याम्' ८.३.४२ में षत्व की निवृत्ति करेंगे तो आगे के सूत्रों 'द्विस्त्रिश्चतुरिति कृत्वोऽर्थे' ८.३.४५, 'इसुसोः सामर्थ्ये' ८.३.४४ तथा 'नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य' ८.३.४५ में पुनः षत्वग्रहण करना होगा। यदि उपर्युक्त तीनों सूत्रों में षत्व ग्रहण किया भी जाये तो पूर्व सूत्र 'तिरसोऽन्यतरस्याम्' ८.३.४२ से 'स'ग्रहण की अनुवृत्ति उत्तर सूत्रत्रयी में होगी अथवा नहीं? यदि पूर्व सूत्र से उत्तर के सूत्रत्रयी में 'स'ग्रहण की अनुवृत्ति होगी तो षत्व की तरह सत्व भी प्राप्त होगा। यदि उत्तर सूत्रत्रयी में सत्व की निवृत्ति होगी तो 'अतः कृकमिकंसकुम्भ-' ८.३.४६ सूत्र में पुनः सकारग्रहण करना पडेगा।

यथेच्छसि तथास्तु। अस्तु तावदविशेषेण सत्वमुक्त्वा इण उत्तरस्य सकारस्य षत्वमुच्यते। ननु चोक्तं—'निष्कृतं निष्पीतमित्यत्र सत्वस्याऽसिद्धत्वात् षत्वं न प्राप्नोती'ति। नैष दोषः। आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति—'न योगे योगोऽसिद्धः। किं तर्हि? प्रकरणे प्रकरणमसिद्ध'मिति, यदयमुपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्येत्यसमासेऽपिग्रहणं करोति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अच्छा तो आपकी जैसी सुविधा हो वैसा कर लीजिए। आप यह ही मान लीजिए कि सामान्यतया सत्व कह कर इण् से उत्तर सकार को षत्व का विधान है। इस पक्ष में आपने 'निष्कृतम्, निष्पीतम्' में षत्व के असिद्ध होने से षत्व का अभावरूप दोष दिया था, वह नहीं रहेगा। आचार्य अपने आचरण से बताते हैं कि सूत्र के प्रति सूत्र असिद्ध नहीं होता है अपितु प्रकरण के प्रति प्रकरण असिद्ध होता है, अतः आचार्य 'उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य' ८.४.१४ सूत्र में 'असमासेऽपि' ऐसा ग्रहण करते हैं। 'समासेऽङ्गुलेः सङ्गः' ८.३.८० सूत्र से समास की अनुवृत्ति होने से समास में ही णत्व होगा, असमास में नहीं। असमास में भी णत्व हो इसके लिए 'असमासेऽपि' ऐसा कहा है। यदि मात्र 'असमासे' इतना ही रखा जाये तो समासस्थल 'प्रणामः' में णत्व नहीं हो सकेगा, अतः समासे का भी अनुवर्तन किया जाता है।

अथवा पुनरस्तु 'इण उत्तरस्य विसर्जनीयस्य षत्वं विधीयते'। ननु चोक्तं—'सत्वमप्यनुवर्तते उताहो न। किञ्चातः, यद्यनुवर्तते सत्वमपि प्राप्नोती'ति। नैष दोषः। सम्बन्धमनुवर्तिष्यते। 'सोऽपदादौ' 'इणः षः'। 'नमस्पुरसोर्गत्योः' सकारः, इण उत्तरस्य षकारः। 'इदुदुपद्यस्य चाऽप्रत्ययस्य' षकारः। 'नमस्पुरसोर्गत्योः' सकारः। 'तिरसोऽन्यतरस्यां' सकारः। 'इदुदुपधस्य चाऽप्रत्ययस्य' षकारः। 'द्विस्त्रिश्चतुरिति कृत्वोऽर्थे' 'इसुसोः सामर्थ्ये' 'नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्ये'ति, षकारः। 'तिरसोऽन्यरस्यां' सकारः। 'अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य'। सकारोऽनुवर्त्तते। षकारग्रहणं निवृत्तम्। {इणः षः}।

अथवा जो दूसरा 'इणः षः' सूत्र में पूर्व सूत्र से षत्व की अनुवृत्ति होती है, या नहीं? यदि अनुवृत्ति होती है तो षत्व के साथ-साथ सत्व भी प्राप्त होगा, ऐसा दोष दिया था, वह भी नहीं रहेगा। सत्व का अनुवर्तन न करके सम्बन्धमात्र का अनुवर्तन करेंगे। इससे इण् से उत्तर विसर्ग को सकार नहीं प्राप्त होगा। वह इस तरह कि इण् से उत्तर विसर्ग को सकार भी प्राप्त होगा तथा षकार भी प्राप्त होगा, सूत्र में कहीं भी चकार का पाठ नहीं है जिससे सकार का विधान किया जा सके। इससे 'सोऽपदादौ, नमस्पुरसोर्गत्योः' मे सकार, तिरसोऽन्यतरस्याम् मे षकार, इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य में षकार, द्विस्त्रिश्चतुरिति कृत्वोऽर्थे, इसुसो सामर्थ्ये, नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य में षकार, 'तिरसोऽन्यतरस्याम्' में सकार, 'अतः कृकमिकंसकुम्भ-' में सकार का अनुवर्तन होगा। जहाँ सकार का अनुवर्तन होगा वहाँ षकार निवृत्त हो जायेगा तथा जहाँ षकार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का अनुवर्तन होगा वहाँ सकार निवृत्त हो जायेगा। {इणः षः}।

इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य ८.३.४१

* इदुदुपधस्य चाप्रत्यस्येति चेत्पुंमुहुसोः प्रतिषेधः * **इदुदुपधस्य चाऽप्रत्ययस्येति चेत्पुंमुहुसोः प्रतिषेधो वक्तव्यः। पुँस्कामा। मुहुःकामेति** * वृद्धिभूतानां षत्वम् * **वृद्धिभूतानां षत्वं वक्तव्यम्। दौष्कुल्यम्। नैष्पुरुष्यम्** * प्लुतानां तादौ च * **प्लुतानां तादौ च कुप्वोश्चेति वक्तव्यम्। सर्पी३ष्टर। बही३ष्टर। नी३ष्कुल। दू३ष्पुरुष।**

'इकारोपध और उकारोपध प्रत्ययभिन्न विसर्ग को कवर्ग पवर्ग पर में रहते षत्व हो।' जैसे—निष्प्रत्यूहम्, आविष्कृतम्, दुष्कृतम्। अप्रत्यय निषेध का फल 'अग्निः करोति, वायुः करोति' में प्रत्यय विसर्ग को षत्व निषेध है।

इदुपध उदुपध प्रत्ययभिन्न विसर्ग को षत्व कहते हैं तो पुम् और मुहुस् के विसर्ग को षत्व का प्रतिषेध कहना चाहिए। इससे 'पुंस्कामः, मुहुःकामः' से विसर्ग को षत्व नहीं होता है। यहाँ पर विचारणीय है कि वार्तिककार षत्वनिषेध में पुम् का ग्रहण करते हैं; परन्तु यह पक्ष उचित नहीं है। 'सम्पुंकानां सो वक्तव्यः' इस सत्वविधान से ही षत्व का बाध हो जायेगा। यदि यहाँ यह कहा जाये कि 'इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य' से 'सम्पुंकानां सो वक्तव्यः' का बाध प्राप्त है, अतः षत्व प्राप्त होगा, उसका निषेधवचन पुम् को षत्व-निषेध पढा है, तो यह उचित नहीं है। षत्व और सत्व में परस्पर बाध्यबाधकभाव नहीं है, अपितु षत्व और सत्व प्रकरण में सम्बन्ध मात्र का अनुवर्तन करना चाहिये यह 'इणः षः' ८.३.३९ सूत्र पर कह आये हैं। वृद्धि को प्राप्त हुए शब्दों में भी अप्रत्यय विसर्जनीय को कवर्ग पवर्ग पर में रहते षत्व कहना चाहिये। जैसे—'दौष्कुल्यम्, नैष्पुरुष्यम्'। प्लुत उपधा रहते अप्रत्यय विसर्ग को तादि तथा कवर्ग पवर्ग में रहते षत्व कहना चाहिए। जैसे—सर्पी३ष्टर। बही३ष्टर। नी३ष्कुल। दू३ष्पुरुष।

* न वा बहिरङ्गलक्षणत्वाद् वृद्धे * **न वा वक्तव्यम्। किं कारणम्? 'बहिरङ्गलक्षणत्वाद् वृद्धेः'। बहिरङ्गलक्षणा वृद्धिः। इह कस्मात्र भवति— पितुः करोति मातुः करोति? 'अप्रत्ययविसर्जनीयस्ये'ति षत्वं प्रसज्येत। 'अप्रत्ययविसर्जनीयस्ये'त्युच्यते प्रत्ययविसर्जनीयश्चाऽयम्। लुप्यतेऽत्र प्रत्ययविसर्जनीयो 'रात्सस्ये'ति। एवं तर्हि** * भ्रातुष्पुत्रग्रहणं ज्ञापकमेकादेशनिमित्तात् षत्वप्रतिषेधस्य * **यदयं कस्कादिषु भ्रातुष्पुत्रशब्दं पठति तज्ज्ञा-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पयत्याचार्यो 'नैकादेशनिमित्तात् षत्वं भवती'ति।

'वृद्धिभूतानां षत्वम्' यह वार्तिक पढने की आवश्यकता नहीं है। नैष्पुरुष्यम्, दोष्कुल्यम् में षत्व अन्तरङ्ग है तथा वृद्धि बहिरङ्ग, अन्तरङ्ग षत्व की कर्तव्यता में बहिरङ्ग वृद्धि असिद्ध रहेगी, अतः इदुपध, उदुपध होने से षत्व हो जायेगा। अच्छा तो 'पितुः करोति, मातुः करोति' में उदुपध विसर्ग कवर्ग पर में रहते हैं। उसको षत्व क्यों नहीं होता है? वह इसलिए कि 'अप्रत्ययस्य' निषेध लग जाने से षत्व नहीं होगा। जी! 'मातुः पितुः' में प्रत्यय विसर्ग नहीं है, अपितु प्रकृति का ही विसर्ग है। 'मातृ ङस्, पितृ ङस्', यहाँ पर 'ऋत् उत्' ६.१.१०६ सूत्र से पूर्वस्थानिक ऋ परस्थानिक अ के स्थान में उत् एकादेश रपर होता है। इस तरह 'मातुरस, पितुरस्' ऐसी दशा में 'रात्सस्य' ८.२.२४ सूत्र से प्रत्यय सकार का लोप हो गया है; अतः प्रकृति का ही विसर्ग है, प्रत्यय का नहीं। अच्छा तो 'कस्कादिषु च' ८.३.४८ सूत्र में आचार्य ने 'भ्रातुष्पुत्र' शब्द का पाठ किया है। यदि प्रकृति का विसर्ग होने से 'अप्रत्यय' निषेध नहीं लगता तथा 'इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य' से षत्व सिद्ध था तब 'कस्कादिषु च' गणपाठ में भ्रातुष्पुत्र शब्द का पाठ व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा एकादेशनिमित्तक इदुपध उदुपध विसर्ग को कवर्ग पवर्ग पर में रहते षत्व नहीं होता है। {इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य}।

द्विस्त्रिश्चतुरिति कृत्वोऽर्थे ८.३.४३

द्विस्त्रिश्चतुर्ग्रहणं किमर्थम्? इह मा भूत्-पञ्चकृत्वः करोति। अथ कृत्वोऽर्थग्रहणं किमर्थम्? इह मा भूत्-चतुष्कपालः चतुष्कण्टक इति। नैतदस्ति। अस्त्वेनन विभाषा, पूर्वेण नित्यो विधिर्भविष्यति। नाऽप्राप्ते पूर्वेणेयं विभाषाऽऽरभ्यते, सा यथैवेह बाधिका भवति चतुःकरोति चतुष्करोतीत्येवं चतुष्कपालेऽपि बाधिका स्यात्। नाऽत्र पूर्वेण षत्वं प्राप्नोति। किं कारणम्? 'अप्रत्ययविसर्जनीयस्ये'त्युच्यते प्रत्ययविसर्जनीयश्चाऽयम्। लुप्यतेऽत्र प्रत्ययविसर्जनीयो रात्सस्येति। तस्मात् कृत्वोऽर्थग्रहणं कर्तव्यम्।

यहाँ पूर्व सूत्र से 'अन्यतरस्याम्' की अनुवृत्ति होती है। सूत्रार्थ है—'कृत्वस् अर्थ में विद्यमान द्विः त्रिः और चतुर् के विसर्ग को कवर्ग पवर्ग पर में रहते विकल्प से षत्व होता हो'। जैसे—द्विष्कृतम्, द्विःकृतम्। त्रिष्कृतम्, त्रिःकृतम्, चतुःकृतम्। 'संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच्' ५.४.१७ से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्रिया का पौनःपुन्य वाच्य होने पर संख्यावाची शब्दों से कृत्वसुच् विहित है। जैसे—शतकृत्वः=सौ बार, सहस्रकृत्वः=हजार बार।

'कृत्वोऽर्थे' इतना ही सूत्र रखिये। अर्थ होगा—कृत्वस् अर्थ में विद्यमान विसर्ग को षत्व हो। इससे 'द्विष्कृतम्' इत्यादि सिद्ध हो जायेंगे। सूत्र में 'द्विस्त्रिश्चतुः' का ग्रहण क्यों किया गया है? इस आशय से पूछते हैं—**द्विस्त्रिश्चतुर्ग्रहणमिति**। द्विस्त्रिश्चतुर्ग्रहण का फल यह है कि 'पञ्चकृत्वः करोति' में षत्व निषेध हो, अन्यथा कृत्वस् को भी कृत्वस् के अर्थ में होने से उसके विसर्ग को षत्व होने लगेगा, अच्छा तो 'द्विस्त्रिश्चतुः' इतना ही सूत्र रखिये। इससे 'द्विष्कृतम्' की सिद्धि हो जायेगी तथा 'पञ्चकृत्वः करोति' में अतिव्याप्ति भी नहीं होगी; पुनः सूत्र में कृत्वोऽर्थग्रहण क्यों किया गया है? यदि सूत्र में कृत्वोऽर्थग्रहण नहीं करेंगे तो 'चतुष्कपालः, चतुष्कण्टकः' में भी षत्व विकल्प होने लगेगा। 'चतुर्भिः कपालैः संस्कृतः चतुष्कपालः पुरोडाशः चतुर्भिः कण्टकैः उद्धृतः चतुष्कण्टकः' यहाँ पर कृत्वस् अर्थ में चतुर् शब्द नहीं है, अतः षत्व विकल्प न होकर 'इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य' ८.३.४१ से नित्य षत्व है। पूर्व सूत्र 'इदुदुपधस्य चाऽप्रत्ययस्य' से षत्व प्राप्त होने पर विकल्प से षत्व का आरम्भ किया है, यह आरम्भ जैसे 'चतुःकरोति चतुष्करोति' में नित्य षत्व का बाध करेगा, वैसे 'चतुष्कपालः' में भी नित्य षत्व का बाध करेगा। 'चतुः करोति' में पूर्व सूत्र 'इदुदुपधस्य चाऽप्रत्ययस्य' से षत्व प्राप्त नहीं है, क्योंकि यह सूत्र अप्रत्यय विसर्ग की षत्व करता है, जब कि 'चतुःकरोति' में प्रत्यय विसर्ग है। जी! यहाँ प्रत्यय विसर्ग नहीं है। चतुर् शब्द से क्रियाभ्यावृत्ति परिगणन अर्थ में सुच्, प्रत्यय है। 'चतुर्+स्' ऐसी दशा में 'रात्सस्य' ८.२.२४ सूत्र से स् का लोप हो जाने से 'चतुः करोति' में अप्रत्यय विसर्ग ही है। उसको नित्य षत्व प्राप्त होने पर चतुर् शब्द को विकल्प विधानार्थ सूत्र में कृत्वस् ग्रहण करना ही चाहिये।

द्विस्त्रिश्चतुर्ग्रहणं शक्यमवक्तुम्। कस्मान्न भवति 'पञ्चकृत्वः करोती'ति? 'इदुदुपधस्ये'ति वर्तते। नैवं शक्यम्, अक्रियमाणे द्विस्त्रिश्चतुर्ग्रहणे कृत्वोऽर्थग्रहणेन विसर्जनीयो विशेष्येत। तत्र को दोषः? इहैव स्याद्—द्विष्करोति द्विःकरोति, त्रिष्करोति त्रिः करोति इति। इह न स्याच्चतुः करोति चतुष्करोतीति। द्विस्त्रिश्चतुर्ग्रहणे पुनः क्रियमाणे कृत्वोऽर्थग्रहणेन द्विस्त्रिश्चतुरो विशेष्यन्ते, 'द्विस्त्रिश्चतुर्णां कृत्वोऽर्थे वर्तमानानां यो विसर्जनीय' इति। एतदपि नास्ति प्रयोजनं, 'पदस्ये'ति वर्तते। तत् कृत्वोऽर्थग्रहणेन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विशेषयिष्यामः 'पदस्य कृत्वोऽर्थे वर्तमानस्य यो विसर्जनीय' इति।

द्विः, त्रिः और चतुः शब्द का ग्रहण नहीं करना चाहिये, अर्थात् 'कृत्वोऽर्थ' इतना ही सूत्र रख सकते हैं। 'कृत्वोऽर्थे' इतना सूत्र रखने में 'पञ्चकृत्वः करोति' में षत्ववारण के लिए पूर्वसूत्र से 'इदुदुपधस्य' की अनुवृत्ति कर लेगें। जी!, द्विस्त्रिश्चतुर्ग्रहण न करने पर कृत्वोऽर्थग्रहण से विसर्जनीय को विशेषित करके कृत्वस् अर्थ का वाचक विसर्ग ऐसा अर्थ करेंगे। इससे 'द्विष्करोति, त्रिष्करोति' में सुच् का विसर्ग है, अतः षत्व हो जायेगा। परन्तु 'चतुष्करोति' में प्रत्यय सुच् का 'रात्सस्य' ८.२.२४ से लोप हो गया है, अतः षत्व नहीं हो सकेगा। द्विस्त्रिश्चतुर्ग्रहण करने से द्विस्त्रिश्चतुर् को कृत्वोऽर्थ के साथ विशेषित करेंगे। अर्थ होगा—कृत्वस् अर्थ में विद्यमान द्विस्त्रिश्चतुर् के विसर्ग को षत्व हो। इस तरह 'चतुष्करोति' की सिद्धि हो जा रही है। द्विस्त्रिश्चतुर्ग्रहण का यह भी प्रयोजन नहीं है। यहाँ 'पदस्य' का अधिकार आता है। कृत्वोऽर्थग्रहण के साथ हम पद को विशेषित करेंगे। अर्थ होगा 'कृत्वोऽर्थ में विद्यमान पद को अवयव विसर्ग को षत्व हो' इस तरह 'चतुष्करोति' में षत्वसिद्धि हो जायेगी तथा सूत्र में द्विस्त्रिश्चतुर् का ग्रहण नहीं करना पड रहा है।

*** कृत्वसुजर्थे षत्वं ब्रवीति कस्माच्चतुष्कपाले मा।**
षत्वं विभाषयाऽभून्ननु सिद्धं तत्र पूर्वेण।।१।।

सिद्धे ह्ययं विधत्ते चतुरः षत्वं यदापि कृत्वोऽर्थे।
लुप्ते कृत्वोऽर्थीये रेफस्य विसर्जनीयो हि।।२।।

एवं सति त्विदानीं द्विस्त्रिश्चतुरित्यनेन किं कार्यम्?
अन्यो हि नेदुदुपधः कृत्वोऽर्थे कश्चिदप्यस्ति।।३।।

अक्रियमाणे ग्रहणे विसर्जनीयस्तदा विशेष्येत।
चतुरो न सिध्यति तदा रेफस्य विसर्जनीयो हि।।४।।

तस्मिंस्तु गृह्यमाणे युक्तं चतुरो विशेषणं भवति।
प्रकृतं पदं तदन्तं तस्यापि विशेषणं न्याय्यम्।।५।।*

कारिकार्थ—कुत्वसुच् अर्थ में आप षत्व कहते हैं। 'चतुष्कपालः' में विकल्प से षत्व क्यों नहीं होता? इसलिए कि पूर्व सूत्र 'इदुदुपधस्य चाऽप्रत्यस्य' से नित्य षत्व होता है?।।१।।

'इदुदुपधस्य चाऽप्रत्ययस्य' सूत्र से षत्व सिद्ध होने पर यदि पुनः उत्तर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूत्र से षत्व का विधान करते हैं तो वहाँ कृत्वसुच् अर्थ में विहित सुच् प्रत्यय का लोप होने से प्रकृति का अवयव रेफ को विसर्जनीय होगा।।२।।

ऐसी स्थिति में चूँकि द्विः त्रिः और चतुर् से अन्य कृत्वस् अर्थ में कोई शब्द नहीं है; अतः द्विस्त्रिश्चतुर्ग्रहण से कोई प्रयोजन नहीं है।।३।।

यदि 'द्विस्त्रिश्चतुर्' का ग्रहण नहीं करेंगे तो कृत्वस् को विसर्ग में विशेषित करेंगे। इससे कृत्वस् अर्थ में चतुर् के विसर्जनीय को षत्व हो ऐसा अर्थ होगा।।४।।

कृत्वोऽर्थग्रहण करने पर 'पदस्य' का अधिकार होने से पद का विशेषण कृत्वस् होगा, अतः कृत्वोऽर्थान्त पद के विसर्ग को षत्व विधान होने से 'चतुष्करोति' में षत्व विकल्प की सिद्धि हो जा रही है।।५।। {**द्विस्त्रिश्चतुरिति कृत्वोऽर्थे**}।

नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य ८.३.४५

अनुत्तरपदस्थस्येति किमर्थम्? परमसर्पिःकुण्डिका। अथेदानीम् अनेन मुक्ते पूर्वेण षत्वं विभाषा कस्मान्न भवति 'इसुसोः सामर्थ्ये' इति?

*** नाना पदार्थयोर्वर्तमानयोः ख्यायते यदा योगः।**
तस्मिन् षत्वं कार्यं तद्युक्तं तच्च मे नेह।।१।।*

व्यपेक्षासामर्थ्ये पूर्वयोगो न चाऽत्र व्यपेक्षासामर्थ्यम्।

'अनुत्तरपदस्थ इस् उस् के विसर्ग को समास में कवर्ग पवर्ग पर में रहते नित्य षत्व हो।' जैसे—'सर्पिष्कुण्डिका। धनुष्कपालम्'।

'अनुत्तरपदस्यथस्य' न होने से 'नित्यं समासे' ऐसा मात्र सूत्र रहेगा। इससे 'सर्पिष्कुण्डिका' में षत्व की सिद्धि हो जायेगी; पुनः सूत्र में अनुत्तरपदस्थग्रहण क्यों किया गया? वह इसलिए कि 'परमं च तत् सर्पिश्च परमसर्पिः तस्य कुण्डिका परमसर्पिःकुण्डिका', यहाँ समासघटक उत्तरपदस्थ इस् का विसर्ग है उसको षत्व न हो, इसलिए अनुत्तरपदस्थ ग्रहण किया गया। अच्छा तो प्रकृत में 'अनुत्तरपदस्थस्य' से निषेध के कारण षत्व न हो सकने पर पूर्व सूत्र 'इसुसोः सामर्थ्ये' ८.३.४४ से क्यों नहीं होता है? वह इसलिए कि—

कारिकार्थ—पूर्व सूत्र 'इसुसोः सामर्थ्ये' में व्यपेक्षालक्षण सामर्थ्य लिया गया है जो मात्र असमस्त वाक्यों में ही होता है। जबकि प्रकृत में समस्त स्थल होने से एकार्थीभाव रूप सामर्थ्य है तथा व्यपेक्षालक्षणसामर्थ्य का समास स्थल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में सर्वथा अभाव है, अतः 'परमसर्पिःकुण्डिका' में उत्तर सूत्र से निषेध होने पर भी व्यपेक्षालक्षणसामर्थ्य न होने से पूर्व सूत्र 'इसुसोः सामर्थ्ये' भी षत्व नहीं कर सकेगा, अतः 'परमसर्पिःकुण्डिका' यही रूप रहेगा।

किं पुनः कारणं पूर्वस्मिन्योगे व्यपेक्षासामर्थ्यमाश्रीयते न पुनरेकार्थीभावो, यथाऽन्यत्र?

*** ऐकार्थ्ये सामर्थ्ये वाक्ये षत्वं न मे प्रसज्येत।। ***

ऐकार्थ्ये सामर्थ्ये सति वाक्ये षत्वं न स्यात्-सर्पिष्करोति, सर्पिः करोतीति।

*** तस्मादिह व्यपेक्षां सामर्थ्यं साधु मन्यन्ते ***

अच्छा तो क्या कारण है कि पूर्वसूत्र 'इसुसोः सामर्थ्ये' में व्यपेक्षालक्षणसामर्थ्य लिया जाता है। एवम् एकार्थीभाव न लेने का क्या कारण है? जब कि अन्य सूत्रों में जहाँ सामर्थ्य इष्ट है वहाँ एकार्थीभाव तथा व्यपेक्षालक्षण दोनों तरह का सामर्थ्य लिया जाता है।

पूर्व सूत्र में यदि एकार्थीभावसामर्थ्य लेंगे तो समास में ही षत्व होगा। जैसे—सर्पिष्कुण्डिका। परन्तु जहाँ समास नहीं है वहाँ वाक्य में षत्व नहीं हो सकेगा। जैसे—'सर्पिष्करोति, सर्पिः करोति', अतः 'इसुसोः सामर्थ्ये' सूत्र में व्यपेक्षा-लक्षणसामर्थ्य ही लिया जाता है।

यदि 'इसुसोः सामर्थ्ये' में इस् उस् को कृदन्त मानेंगे जैसे—'सृपेरिस्', 'धनेरुस्' के द्वारा सृप् धातु से पर में इस् कृत् प्रत्यय, धन्, धातु से उस् कृत् प्रत्यय मानेंगे तो कृदन्त को ही षत्व होगा, कृदन्तान्त 'परमसर्पिः परमधनुः' को नहीं। इसका क्या कारण है? इसका कारण यह है कि जिससे प्रत्यय विहित है उसी को तदादि तदन्त लिया जायेगा। धन् से उस् विहित है, उसको परमधन् का तदन्तान्त नहीं लिया जायेगा। एवं सृप् से उस् विहित है परमसृप् का तदन्तान्त नहीं लिया जायेगा। अच्छा तो यदि 'प्रत्ययग्रहणे यस्मात् स विहितस्तदादेस्तदन्तस्य ग्रहणम्' पक्ष मानते हैं तो 'परमसर्पिष्करोति, परमसर्पिः करोति' इस वाक्य में भी तदन्तान्त का ग्रहण नहीं होने से षत्व निषेध विकल्प नहीं हो सकेगा।

जी! यह कोई दोष नहीं है। आचार्य ने 'अनुत्तरपदस्थस्य' ऐसा निषेध किया है, इससे आचार्य बताते हैं कि वाक्य में प्रतिषेध विकल्प होता है, अतः वाक्य में प्रतिषेधविकल्प होने से 'परमसर्पिष्करोति' यह भी रूप होगा। यदि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

षत्व की कर्तव्यता में 'प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स विहितस्तदादेस्तदन्तस्य ग्रहणम्' यह परिभाषा उपस्थित होती तो 'अनुत्तरपदस्थस्य' इस प्रतिषेध की आवश्यकता नहीं थी, परन्तु आचार्य ने प्रतिषेध किया है। यदि प्रत्यय ग्रहणपरिभाषा से तदन्त अर्थ ही लेंगे तो तदन्तान्त में प्राप्ति नहीं हो सकेगी। प्राप्ति के अभाव में निषेध व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा-षत्व- प्रकरण में प्रत्ययग्रहणपरिभाषा नहीं लगती है।

अथ चेत्कृदन्तमेतत्ततोऽधिकेनैव मे भवेत्प्राप्तिः।। ३।।

यदि कृदन्तमेतत्ततोऽधिकस्य षत्वं न प्राप्नोति। किं कारणम्? 'प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स तदादेर्ग्रहणं भवती'ति। वाक्येऽपि तर्हि न प्राप्नोति परमसर्पिष्करोति परमसर्पिः करोतीति।

वाक्ये च मे विभाषा प्रतिषेधो न प्रकल्पेत।।४।।

यदयमनुत्तरपदस्थस्येति प्रतिषेधं शास्ति तज्ज्ञापयत्याचार्यो 'भवति वाक्ये विभाषे'ति * अथ चेत्संविज्ञानं नित्ये षत्वे ततो विभाषेयम् * **अथाऽव्युत्पन्नं प्रातिपदिकं ततो नित्ये षत्वे प्राप्ते इयं विभाषा आरभ्यते** * सिद्धं च मे समासे * **सिद्धं च मे समासे षत्वम्। किमर्थं तर्हीदमुच्यते?** * प्रतिषेधार्थस्तु यत्नोऽयम् * **प्रतिषेधार्थोऽयं यत्न अनुत्तरपदस्थस्येति प्रतिषेधं वक्ष्यामीति।**

अथ चेदिति—यदि सर्पिः धनुः को कृदन्त न मान कर अव्युत्पन्न प्रातिपदिक मानेंगे तथा सर्पिः धनुः आदि शब्दस्वरूप ही **संविज्ञानम्**=वाचक होंगे तो अप्रत्यय विसर्जनीय होने से 'इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य' ८.३.४१ से नित्य षत्व प्राप्त होने पर 'इसुसोः सामर्थ्ये' से विकल्प किया गया है। यहाँ पर इस् उस् के प्रत्यय नहीं होने से 'प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स विहितस्तदादेस्तदन्तस्य ग्रहणम्' यह परिभाषा उपस्थित नहीं हो सकेगी, अतः 'परमसर्पिष्करोति' यहाँ पर भी षत्व विकल्प सिद्ध हो जा रहा है।

इस तरह अव्युत्पन्न मानने से समास स्थल सर्पिष्कुण्डिका में भी षत्व सिद्ध हो जा रहा है। यदि समास में भी षत्व सिद्ध हो रहा है तो 'नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य' सूत्र का आरम्भ क्यों करते हैं? यह आरम्भ इसलिए करते हैं कि उत्तरपदस्थ इस् उस् के षत्व का प्रतिषेध हो सके।

*** नानापदार्थयोर्वर्तमानयोः ख्यायते यदा योगः।**
तस्मिन् षत्वं कार्यं तद्युक्तं तच्च मे नेह।।१।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऐकार्थ्ये सामर्थ्ये वाक्ये षत्वं न मे प्रसज्येत।
तस्मादिह व्यपेक्षां सामर्थ्यं साधु मन्यते।।२।।
अथ चेत्कृदन्तमेतत्ततोऽधिकेनैव मे भवेत्प्राप्तिः।
वाक्ये च मे विभाषा प्रतिषेधो न प्रकल्पेत।।३।।
अथ चेत्संविज्ञानं नित्ये षत्वे ततो विभाषेयम्।
सिद्धं च मे समासे, प्रतिषेधार्थस्तु यत्नोऽयम्।।४।।*

करिकार्थ—यदि नाना पदार्थ मानते हैं अर्थात् सर्पिष्, धनुष् में प्रकृत्यर्थ प्रत्ययार्थ पृथक्-पृथक् मानते हैं तब प्रत्ययस्थ विसर्ग होने से 'अप्रत्ययस्य' ८.३.४१ निषेध लग जायेगा। उस स्थिति में 'इसुसोः सामर्थ्ये' यह सूत्र का आरम्भ है, अतः 'धनुः करोति धनुष्करोति' में षत्व विकल्प होगा। 'परमधनुः करोति' में उत्तरपदस्थ होने से षत्व नहीं हो सकेगा।

'इसुसोः सामर्थ्ये' में एकार्थीभावलक्षणसामर्थ्य मानने में वाक्य में षत्व प्राप्त नहीं होगा, अतः वाक्य में षत्वविधानार्थ 'इसुसोः सामर्थ्ये' में व्यपेक्षालक्षणसामर्थ्य लिया गया है। (२)

यदि सर्पिः धनुः को कृदन्त मानेंगे तो 'इसुसोः सामर्थ्ये' से इस् उस् स्थानी न बन कर इसन्त उसन्त ही स्थानी बनेगा, इससे वाक्य में प्रतिषेध विकल्प नहीं हो सकेगा। (३)

यदि सर्पिः धनुः को अव्युत्पन्न प्रातिपदिक मानते हैं तो 'इदुदुपधस्य चाऽप्रत्ययस्य' से नित्य षत्व प्राप्त होगा, जिसको विकल्पविधान करने के लिए 'इसुसोः सामर्थ्ये' पढा गया। समास में भी षत्व 'नित्यं समासे' से सिद्ध है जिसको निषेध करने के लिए 'अनुत्तरपदस्थस्य' पढा गया। {नित्यं समासेऽनुत्तारपदस्थस्य}।

अपदान्तस्य मूर्धन्यः ८.३.५५

अथ मूर्द्धन्यग्रहणं किमर्थं, नाऽपदान्तस्य षो भवतीत्येवोच्येत, तत्रायमप्यर्थः षकारग्रहणं न कर्तव्यं भवति। प्रकृतमनुवर्तते। क्व प्रकृतम्? 'इणः ष' इति। नैवं शक्यम्। अवश्यं मूर्द्धन्यग्रहणं कर्तव्यमिहार्थमुत्तरार्थं च। इहार्थं तावत्—'इणः शीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गा'दित्यत्र मूर्द्धन्यग्रहणं न कर्तव्यं भवति। उत्तरार्थं—'रषाभ्यां नो णः समानपदे' इत्यत्र णकारग्रहणं न कर्तव्यं भवति। तत्रायमप्यर्थः 'पदान्तस्य ने'ति प्रतिषेधो न वक्तव्यो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भवति। अपदान्ताभिसम्बद्धं मूर्धन्यग्रहणमनुर्वर्तते।

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरणमहाभाष्ये
अष्टमाध्यायस्य तृतीयपादे प्रथममाह्निकम्

●

यह अधिकार सूत्र है। अध्याय समाप्ति पर्यन्त उसका अधिकार चलता है। सूत्र में मूर्धन्यग्रहण क्यों करते हैं। 'अपदान्तस्य षः' ऐसा सूत्र आप क्यों नहीं करते हैं? 'अपदान्तस्य षः' कहने में लाघव है। अथवा यह भी नहीं कहिये। षत्व का प्रकरण चल रहा है, उसी का अनुवर्तन कर लिया जायेगा। कहाँ से अनुवर्तन होगा? 'इणः षः' ८.३.३९ सूत्र में 'षः' पढा गया है, उसी का अनुवर्तन कर लिया जायेगा। जी!, यह सम्भव नहीं है। सूत्र में अवश्य मूर्धन्यग्रहण करना चाहिये। मूर्धन्यग्रहण का प्रयोजन इस पाद में भी है तथा चतुर्थ पाद में भी है। इस पाद में इसलिए है कि मूर्धन्यग्रहण से 'इणः शीध्वं लुङ्लिटां धोऽङ्गात्' ८.३.७८ सूत्र में मूर्धन्यग्रहण नहीं करना पड रहा है। इण्णन्त अङ्ग से पर में शीध्व, लुङ् और लिट् के ध को मूर्धन्य ढ् हो यह सूत्रार्थ है। यदि अपदान्तस्य षः, ऐसा सूत्र पाठ करेंगे, अथवा 'अपदान्तस्य' इतना ही सूत्र पाठ कर 'षः' का अनुवर्तन करेंगे तो 'इणः शीध्वं' में षत्व ही विधेय होगा जो इष्ट नहीं है, अतः वहाँ इष्ट ढत्व का विधान करने के लिए पुनः 'इणः शीध्वं लुङ्' सूत्र में मूर्धन्यग्रहण करना पडेगा। अपरञ्च मूर्धन्यग्रहण का उत्तर पाद में भी प्रयोजन है 'रषाभ्यां नो णः समानपदे' ८.४.१ सूत्र से विधेय ण का ग्रहण नहीं करना पडेगा। मूर्धन्यः इस विधान से ही णत्व भी सिद्ध हो जायेगा। एवम् उत्तर पाद में इसका अन्य प्रयोजन यह है कि 'पदान्तस्य न' ८.४.३७ सूत्र नहीं करना पडेगा। वह इस तरह कि सर्वत्र णत्व प्रकरण में अपदान्त से सम्बद्ध मूर्धन्यग्रहण का अनुवर्तन होगा। अपदान्त में णत्व प्राप्त होने से पदान्त को णत्व प्राप्त नहीं है, अतः 'पदान्तस्य' सूत्र से उसका निषेध व्यर्थ होगा'। {अपदान्तस्य मूर्धन्यः}।

श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिमुनिविरचित व्याकरणमहाभाष्य
अष्टम अध्याय तृतीय पाद प्रथम आह्निक पर
डॉ. हरिनारायण तिवारी द्वारा रचित
'ज्योत्स्ना' हिन्दी टीका पूर्ण हुई

●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

❁ तृतीये पादे द्वितीयमाह्निकम् ❁

सहेः साडः सः ८.३.५६

'स'ग्रहणं किमर्थं न 'सहेस्साडो मूर्द्धन्यो भवती'त्येवोच्येत? 'सहेस्साडो मूर्द्धन्यो भवती'त्युच्यमानेऽन्त्यस्य प्रसज्येत। ननु चाऽन्त्यस्य मूर्द्धन्यवचने प्रयोजनं नास्तीति कृत्वा सकारस्य भविष्यति। कुतो न खल्वेतद् अनन्त्यार्थे आरम्भे सकारस्य भविष्यति न पुनराकारस्य स्यात्? 'स्थानेऽन्तरतमो भवती'ति सकारस्य भविष्यति। भवेत् प्रकृतितोऽन्तरतमनिर्वृत्तौ सत्यां सिद्धं स्यात्। आदेशस्त्वन्तरतमनिर्वृत्तौ, सत्यामाकारस्य प्रसज्येत। तस्मात् सकारग्रहणं कर्तव्यम् * सकारग्रहणमुत्तरार्थम् * उत्तरार्थं च सकारग्रहणं क्रियते। आदेशप्रत्यययोस्सकारस्य यथा स्यादिह मा भूत्—चितं स्तुतम्।

साड्रूप को प्राप्त षह् मर्षणे धा.पा.८२५ धातु के स् को मूर्धन्य आदेश हो। जैसे—तुराषाड्।

सूत्र में 'सः' यह षष्ठ्यन्तवचन क्यों रखते हैं। 'सहेस्साडः' इतना ही सूत्र रखिये। 'अपदान्तस्य मूर्धन्यः' ८.३.५५ का अनुवर्तन होने से 'साड् रूप को प्राप्त सह् धातु को मूर्धन्यादेश हो' यह अर्थ होगा। इससे 'तुराषाड्' की सिद्धि हो जायेगी। सूत्र में 'स'ग्रहण क्यों किया गया? वह इसलिए कि यदि 'सहेस्साडः' सूत्र पढ कर 'मूर्धन्यः' का अनुवर्तन करेंगे तो 'अलोऽन्त्यस्य' १.१.५२ परिभाषा से अन्त्य अल् ह् को प्राप्त होगा, स् को नहीं। स् को मूर्धन्यादेश प्राप्त हो, इस के लिए सूत्र में 'स'ग्रहण किया गया। जी!, सूत्र 'सहेस्साडः' यही रखिये। अन्त्य को मूर्धन्यादेश का कोई प्रयोजन प्रकृत में नहीं है, अतः स् को ही मूर्धन्यादेश होगा, फिर सकार- ग्रहण का क्या प्रयोजन है? 'अपदान्तस्य मूर्धन्यः' ८.३.५५ सूत्र का आरम्भ इसलिए है कि अनन्त्य=पद का आदि अथवा मध्य को मूर्धन्यादेश हो। जब आदि और मध्य दोनों में प्राप्ति सम्भव है तो क्या कारण है कि सूत्र में 'स'ग्रहण न करने पर भी आदि स् को मूर्धन्यादेश होगा तथा मध्य आकार को मूर्धन्यादेश नहीं होगा? इसका कारण यह है कि आदेश स्थानी के तुल्य होता है। ष् मूर्धन्य आदेश के तुल्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्थानी स् है, अतः स् को ष् आदेश हो जायेगा। आकार स्थानी के तुल्य कोई मूर्धन्य वर्ण नहीं है, अतः आकार के स्थान में मूर्धन्यादेश नहीं होगा। यदि 'स्थानेऽन्तरतमउरण् रपरः' इस संहितापाठ में अन्तरतम पद को सप्तम्यन्त मानेंगे तो आदेश के तुल्य स्थानी को होना चाहिये, यह अर्थ आयेगा। परन्तु 'इको यणचि' ६.१.७६ में अर्धमात्रिक यण् के तुल्य इक् के असम्भव होने से 'अन्तरतमे' इस सप्तम्यन्त पाठ में दोष देकर भाष्यकार ने 'अन्तरतमः' ऐसा प्रथमान्त पाठ ही माना है। इससे स्थानी की तुल्यता आदेश में ले जायेंगे, आदेश की तुल्यता स्थानी में नहीं।

इस विषय को स्पष्ट करते हैं—**भवेत् प्रकृतित इति**। यदि प्रकृति का आन्तरतम्य लेंगे तो स् को मूर्धन्यादेश होगा, परन्तु यदि आदेश का आन्तरतम्य लेंगे तो आकार को भी प्राप्त होगा। आकार को मूर्धन्यादेश न हो इसके लिए सूत्र में सग्रहण करना आवश्यक है। उत्तर के सूत्रों में सः का अनुवर्तन हो सके इसके लिए भी प्रकृत में 'सः' ग्रहण करना चाहिये। इससे आदेश और प्रत्यय के सकार को ही हो, अन्य को नहीं। जैसे—'चितम्, स्तुतम्' में स् और त् को मूर्धन्यादेश नहीं होता है।

अथ सहिग्रहणं किमर्थं न 'साडः सो भवती'त्येवोच्येत? सहेरेव साड्रूपं भवति नान्यस्य भवति। यद्येवं * साडः षत्वे समानशब्दप्रतिषेधः * **साडः षत्वे समानशब्दानां प्रतिषेधो वक्तव्यः। साऽडो दण्डः, साऽडो वृश्चिक इति** * अथर्वद्ग्रहणात् सिद्धम् * **अर्थवतः साड्रूपशब्दस्य ग्रहणं, न चैषोऽर्थवान्** * अर्थवद्ग्रहणात् सिद्धमिति चेत्तद्धितलोपेऽर्थवत्त्वात् प्रतिषेधः * **अर्थवद्ग्रहणात् सिद्धमिति चेत्तद्धितलोपेऽर्थवत्त्वात् प्रतिषेधो वक्तव्यः। सह अडेन साऽडः, साऽडस्याऽपत्यं साऽडिरित्यत्र प्राप्नोति। स तर्हि वक्तव्यः? न वक्तव्यः। षत्वतुकोरेकादेशस्याऽसिद्धत्वान्नैष साडशब्दः। एवमपि सह डेन सडः, सडस्यापत्यं साडिः, अत्र प्राप्नोति। तस्मात् सहिग्रहणं कर्तव्यम्।** {सहे साडः सः}।

अच्छा तो सूत्र में 'सहेः' ग्रहण क्यों किया गया है? 'साडः सः' इतना ही सूत्र रखिये। सह को ही साड् होता है, अन्य को नहीं। 'साड् के स् को मूर्धन्यादेश हो' यह अर्थ होगा। 'तुराषाड्' की सिद्धि हो जायेगी। सूत्र में 'सह'ग्रहण किस लिए किया गया? यदि ऐसा है तो साड् को षत्व की कर्तव्यता में समान शब्दों का प्रतिषेध कहना चाहिये। जैसे 'साऽडो दण्डः, साऽडो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वृश्चिकः'। यहाँ साड् का समान ही साऽड शब्द है, उसके स् को मूर्धन्यादेश न हो, उसके लिए सूत्र में सह् ग्रहण किया गया है। जी, यह कोई दोष नही है। मर्षण अर्थ का वाचक षह् धा.पा.८२५ से निष्पन्न साड् शब्द का ग्रहण होगा, दण्ड अथवा वृश्चिक का वाचक साऽड शब्द का नहीं। क्योंकि अर्थवान् के ग्रहण में अनर्थक का ग्रहण नहीं होता है। मर्षण अर्थ में साड् अर्थवान् है तथा साऽड अनर्थक। यदि अर्थवद् ग्रहण परिभाषा से मर्षणार्थक साड् को लेंगे, दण्डार्थ और वृश्चिकार्थक साऽड को नहीं तो तद्धित प्रत्ययनिमित्तक लोप होने पर मूर्धन्यादेश का प्रतिषेध होगा। जैसे—'सह अडेन साऽडः साऽडस्य अपत्यं पुमान् साऽडिः' यहाँ 'अत इञ्' ४.१.९५ से इञ् प्रत्यय होने से अकार का लोप तद्धित निमित्तक है। अकार लोप होने से साऽड् शब्द हलन्त हो गया। सूत्र में भी हलन्त का ही पाठ है, अतः साऽडिघटक साड् शब्द के अर्थवान् हो जाने से उसके स को मूर्धन्यादेश प्राप्त होगा, जिसको निषेध करने के लिए सूत्र में सह ग्रहण किया गया है। तो क्या 'अर्थवद्ग्रहणात् सिद्धमिति चेत् तद्धितलोपेऽर्थवत्त्वात् प्रतिषेधः' यह वार्तिक पढना पडेगा? जी नहीं, यह वार्तिक पढने की आवश्यकता नहीं है। षत्व और तुक् की कर्तव्यता में एकादेश को असिद्ध कहा गया है—'षत्वतुकोररसिद्धः' ६.१.८६। 'सह अडेन इति साऽडः' यह एकादेश है। षत्व की कर्तव्यता में दोष एकादेश असिद्ध हो जाने से स अड ऐसा ही रूप रहेगा, अतः साड् रूप न होने से षत्व प्राप्त नहीं हो सकेगा। अच्छा तो 'सह डेन वर्तते इति सडः तस्यापत्यं पुमान् साडः', यहाँ पर साडरूपता है। उसको षत्व न हो उसके लिए सूत्र में अवश्य सह् ग्रहण करना चाहिए। {सहेः साडः सः}।

इण्को ८.३.५७

नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि ८.३.५८

* नुम्विसर्जनीयशर्व्यवाये निंसेः प्रतिषेधः * नुम्विसर्जनीयशर्व्यवाये निंसेः प्रतिषेधो वक्तव्यः। निंस्से निंस्स्वेति। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। नुमैव व्यवाये, विसर्जनीयेनैव व्यवाये, शरैव व्यवाये इति। किं वक्तव्यमेतत्? न हि। कथमनुच्यमानं गंस्यते?

'इण्कोः' यह अधिकार सूत्र है। 'इण् च कुश्च इत्यनयोः समाहारः इण्कुः तस्मात्'। आर्ष पुंस्त्व है। अथवा इतरेतरयोगद्वन्द्व मानने में एकवचन आर्ष है।

'नुम् विसर्जनीय और शर् इस में प्रत्येक के व्यवधान होने पर भी इण्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और कवर्ग से पर में विद्यमान स को मूर्धन्यादेश हो' जैसे—पिपठीःषु।

नुम् विसर्जनीय और शर् के व्यवाय होने पर स् को मूर्धन्यादेश के विषय में निंस से पर का प्रतिषेध कहना चाहिये। जैसे—निंस्से, निंस्स्व। यहाँ से के स को षत्व प्राप्त है, उसका प्रतिषेध कहना चाहिये। तो क्यों 'नुम्विसर्जनीय शर्व्यवाये निंसेः प्रतिषेधः' यह वार्तिक पढना चाहिये? नहीं। इसकी आवश्यकता नहीं है। नुम् से ही व्यवधान होने पर, विसर्जनीय से ही व्यवधान होने पर, शर् से ही व्यवधान होने पर इण् कवर्ग से पर में स् को षत्व होगा। तो क्या 'नुमैव व्यवाये, विसर्जनीयेनैव व्यवाये, शरैव व्यवाये', ऐसा कहना होगा। नहीं, ऐसा कहने की आवश्यकता नहीं है। यदि 'नुमैव व्यवाये' इत्यादि वचन नहीं कहेंगे तो विना शब्द के 'नुमैव व्यवाये' इत्यादि अर्थ कहाँ से आयेगा?

प्रत्येकं वाक्यपरिसमाप्तिर्दृष्टेति। तद्यथा गुणवृद्धिसंज्ञे प्रत्येकं भवतः। ननु चायमप्यस्ति दृष्टान्तः—समुदाये वाक्यपरिसमाप्तिः। तद्यथा—'गर्गाः शतं दण्ड्यन्तामर्थिनश्च राजानो हिरण्येन भवन्ति, न च प्रत्येकं दण्डयन्ति'। एवं तर्हि * योगविभागात् सिद्धम् * योगविभागात् सिद्धमेतत्। योगविभागः करिष्यते। 'नुम्व्यवाये'। ततो—'विसर्जनीयव्यवाये'। ततः 'शर्व्यवाये'। स तर्हि योगविभागः कर्तव्यः? न कर्तव्यः। प्रत्येकं व्यवायशब्दः परिसमाप्यते।

वह इस तरह आयेगा कि वाक्य की परिसमाप्ति प्रत्येक में देखी जाती है। जैसे 'अदेङ्गुणः' १.१.२ तथा 'वृद्धिरादैच्' १.१.१ से गुणसंज्ञा तथा वृद्धिसंज्ञा बतायी गयी। वहाँ अ, ए, ओ प्रत्येक गुण है तथा आ, ऐ, औ प्रत्येक वृद्धि है, वैसे 'नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि' में भी प्रत्येक में वाक्य परिसमाप्ति होगी, अतः प्रत्येक के व्यवधान होने पर षत्व होगा। जी, समुदाय में भी वाक्य की परिसमाप्ति देखी जाती है। इस पक्ष में दृष्टान्त है—'गर्गाः शतं दण्ड्यन्ताम्, अर्थिनश्च राजानो हिरण्येन भवन्ति, न च प्रत्येकं दण्डयन्ति'। ये गर्ग गोत्र वाले बदमाश ब्राह्मण हैं। इन पर सौ दिनार दण्ड लगाया जाये। राजा अर्थी होता है, अतः उसे सौ दिनार से मतलब है। प्रत्येक को दण्डित न करता हुआ समुदाय को दण्डित करता है। इस तरह समुदाय में भी वाक्यपरिसमाप्ति देखी जाती है। इस तरह प्रत्येक में वाक्य परिसमाप्ति तथा समुदाय में वाक्यपरिसमाप्ति, दोनों का दृष्टान्त जब विद्यमान है तो क्या प्रमाण है कि 'प्रत्येकं वाक्यपरिसमाप्तिः'पक्ष लिया जायेगा तथा 'समुदाये वाक्यपरिसमाप्तिः'पक्ष नहीं लिया जायेगा? अच्छा तो यदि ऐसी बात है तो हम सूत्र का विभाग करेंगे 'नुम्व्यवाये' प्रथम योग होगा। 'विसर्जनीयव्यवाये' द्वितीय योग होगा तथा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'शर्व्यवाये' तृतीय योग होगा। इससे प्रत्येक में वाक्यपरिसमाप्ति हो जायेगी। तो क्या यह योगविभाग करना चाहिये? जी नहीं, इस योगविभाग की आवश्यकता नहीं है। 'नुम्विसर्जनीयशरः' ऐसा इतरेंतरयोगद्वन्द्व होकर व्यवाय शब्द के साथ तृतीया तत्पुरुष है—'नुम्विसर्जनीयशर्भिः व्यवायः=नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायः'। यहाँ यह नियम है कि 'द्वन्द्वादौ द्वन्द्वमध्ये द्वन्द्वान्ते च श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते' इस नियम शरीर में आदि और अन्त पद अन्तसमीप आदिसमीप अर्थ का वाचक है। द्वन्द्वान्तसमीप में श्रूयमाण व्यवायपद का प्रत्येक के साथ अन्वय होने से 'नुमा व्यवाये, विसर्जनीयेन व्यवाये शरा व्यवाये' अर्थ होगा। एवम् 'असति बाधके सर्वं वाक्यं सावधारणं भवति' इस नियम से निंस्से, निंस्स्व में अनुस्वार का अतिरिक्त व्यवाय है; अतः षत्व प्राप्त न होने से निस् से पर स् को षत्व का निषेध नहीं कहना होगा। {इण्कोः}।

आदेशप्रत्यययोः ८.३.५९

* आदेशप्रत्यययोः षत्वे सरकः प्रतिषेधः * **आदेशप्रत्यययोः षत्वे सरकः प्रतिषेधो वक्तव्यः। कृसरः धूसरः। अत्यल्पमिदमुच्यते 'सरक' इति** * सरगादीनामिति वक्तव्यम् * **इहापि यथा स्यात्-वर्सं तर्समिति। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। 'उणादयोऽव्युत्पन्नानि प्रातिपदिकानि'। न वा एतत्षत्वे शक्यं विज्ञातुम्—'उणादयोऽव्युत्पन्नानि प्रातिपदिकानी'ति। इह हि न स्यात्—सर्पिषः यजुष इति। एवं तर्हि** * बहुलवचनात् सिद्धम् * **बहुलवचनात् सिद्धमेतत्। बहुलं प्रत्ययसंज्ञा भवति।**

'सहेः साडः सः' ८.३.५६ सूत्र से 'सः' षष्ठ्यन्त स्थानी वचन, 'इण्कोः' ८.३.५७ तथा 'अपदान्तस्य मूर्धन्यः' का अनुवर्तन प्रकृत सूत्र में है। सूत्रार्थ होगा—'इण् और कवर्ग से पर में आदेश तथा प्रत्यय का अवयव जो अपदान्त स उसको मूर्धन्यादेश हो'। जैसे—'रामेषु, हरिषु'।

आदेश और प्रत्यय का अवयव स् को मूर्धन्यादेश की कर्तव्यता में सरक् का प्रतिषेध कहना चाहिये। 'अशेः सरन्' उ.सू.३५० सूत्र से सरन् प्रत्यय का अनुवर्तन 'कृधूमादिभ्यः कित्' उ.सू.३५३ सूत्र में होता है। कित्त्वातिदेश होने से कित् निमित्तक कार्य का लाभ होगा, अतः भाष्यकार ने सरन् और कित् अलग-अलग नहीं कहकर भाष्य में एकत्र सरक् प्रत्यय ही पढ दिया है। इसका अर्थ सरन् प्रत्यय तथा कित् अतिदेश होने पर 'कृसरः, धूसरः' में इण् से पर में प्रत्यय का अवसव अपदान्त स है, उसको षत्व प्राप्त होगा जिसका निषेध कहना चाहिये।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'सरकः प्रतिषेधः' यह अत्यन्त अल्प आप ने कहा है। सरगादि का प्रतिषेध कहना चाहिये। इस गणपाठ से 'वर्सम्, तर्सम्' में भी इण् रेफ से पर में प्रत्यय का अवयव अपदान्त स को प्राप्त षत्व का निषेध हो जाता है। यहाँ यह ध्येय है कि प्रकृत सूत्र में इण् पर णकार तक लिया जाता है एवम् अन्यत्र भी सर्वत्र, अतः भाष्यकार 'वर्सम्, तर्सम्' में अतिव्याप्ति दे रहे हैं। प्रत्याहाराह्निक में भी 'अणुदित्सूत्रं विहाय अण् पूर्वेण, इण् परेण' ऐसा भाष्यकार कहते हैं, अतः अष्टाध्यायी में सर्वत्र इण् पर णकार पर्यन्त ही गृहीत है।

तो क्या 'सरगादीनामिति वक्तव्यम्' यह वार्तिक पढना चाहिये? जी नहीं, यह वार्तिक पढने की आवश्यकता नहीं है। यदि निषेध वार्तिक नहीं पढेंगे तो 'कृसरः, धूसरः, वर्सम्, तर्सम्' में षत्वनिषेध कैसे होगा? वह इस तरह कि उणादि अव्युत्पन्न प्रातिपदिक होते हैं। आप की यह बात ठीक है, परन्तु षत्व के विषय में 'उणादयोऽव्युत्पन्नानि प्रातिपदिकानि' यह नियम नहीं माना जायेगा। यदि उणादि को अव्युत्पन्नपक्ष मानेंगे तो सर्पिषः, यजुषः में प्रत्यय का अवयव अपदान्त स नहीं होने से स् को षत्व नहीं हो सकेगा। जी! यह कोई दोष नहीं है। 'उणादयो बहुलम्' ३.३.१ सूत्र में आचार्य बहुलग्रहण करते हैं। इसका अर्थ यह है कि बाहुलकात् प्रत्यय संज्ञा होगी। जिससे 'सर्पिषः, यजुषः, धनुषः' में बाहुलकात् प्रत्ययसंज्ञा होने से षत्व सिद्ध हो जायेगा।

अथ किं पुनरियमवयवषष्ठी—'आदेशस्य यः सकारः' 'प्रत्ययस्य यः सकार' इति, आहोस्वित् समानाधिकरणा—'आदेशो यः सकारः' 'प्रत्ययो यः सकार' इति। कश्चात्र विशेषः? * आदेशप्रत्यययोरित्यवयवषष्ठी चेद्द्विर्वचने प्रतिषेधः * **आदेशप्रत्यययोरित्यवयवषष्ठी चेद् द्विर्वचने प्रतिषेधो वक्तव्यः। बिसंबिसम्। मुसलंमुसलम्** * समानाधिकरणानां चाऽप्राप्तिः * **समानाधिकरणानां च षत्वस्याऽप्राप्तिः। एषः अकार्षीत्। अस्तु समानाधिकरणा। यदि समानाधिकरणा सिषेच सुष्वाप, अत्र न प्राप्नोति। न धातुद्विर्वचने स्थाने द्विर्वचनं शक्यमास्थातुम्, इहापि हि प्रसज्येत—सरीसृप्यत इति। तस्मात्तत्र द्विःप्रयोगो द्विर्वचनम्।**

'आदेशप्रत्यययोः' यह षष्ठी है। यहाँ सन्देह होता है कि अवयव षष्ठी है। यहाँ सन्देह होता है कि अवयव षष्ठी है—आदेश का जो सकार, प्रत्यय का जो सकार। अथवा समानाधिकरण षष्ठी है—आदेश रूप जो सकार, प्रत्ययरूप जो सकार? इस सन्देह में क्या विशेष=भेद है? इस सन्देह में विशेष यह है कि यदि अवयव षष्ठी मानेंगे तो द्विर्वचन में प्रतिषेध कहना पडेगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जैसे—वीप्सा में बिस शब्द को द्विर्वचन आदेश होगा 'बिसंबिसम्', एवं मुसल शब्द को 'मुसलंमुसलम्', यहाँ इण् से पर में आदेश का अवयव सकार है, उसको मूर्धन्यादेश प्राप्त होगा, उसका प्रतिषेध कहना पडेगा। यदि समानाधिकरण षष्ठी आदेश रूप जो स् प्रत्यय रूप जो स् मानेंगे तो एतद्रूप स् की अप्रसिद्धि होने से कहीं भी षत्व प्राप्त नहीं हो सकेगा। जी। समानाधिकरण होने में षत्व की अप्राप्ति आपने कैसे कह दिया? अकार्षित् में प्रत्यय रूप स् है उसको षत्व होगा। अच्छा तो आप 'आदेशप्रत्यययोः' में समानाधिकरण षष्ठी ही मानिये। यदि समानाधिकरण षष्ठी मानेंगे तो आदेश रूप स् प्रत्यय रूप स् चाहिये। वह जहाँ होगा वहीं पर षत्व का विधान होगा, अन्यत्र नहीं। इस तरह 'सिषेच, सुष्वाप' में षत्व नहीं हो सकेगा, क्योंकि 'सि सि' आदेश है, स्वप् स्वप् आदेश है, स् स् नहीं। यहाँ धातु को द्विर्वचन कहा गया है, स् को द्विर्वचन सम्भव नहीं है, अपितु 'सि' और 'स्वप्' को ही द्विर्वचन होगा। एवम् समानाधिकरणपक्ष में आदेश रूप जो स् प्रत्ययरूप जो स् उसको षत्व हो यही अर्थ होगा। इस अर्थ में सृप्लृ धा.पा ९८३ से यङ्लुगन्त में 'सरीसृप्यते' यहीं पर निषेध होगा। अच्छा तो आप जिसे द्वित्व आदेश कहते हैं उसे मैं द्वित्व आदेश नहीं कहूँगा, अपितु 'द्विःप्रयोगो द्विर्वचनम्' ऐसा मानूँगा। इससे आदेश न होने से 'सरीसृप्यते' में इष्ट षत्व का निषेध हो जायेगा, एवम् 'बिसंबिसम्, मुसलं मुसलम्' में भी आदेश न होने से षत्वनिषेध हो जायेगा।

इह तर्हि करिष्यति हरिष्यति, 'प्रत्ययो यः सकार' इति षत्वं न प्राप्नोति। अस्तु तर्ह्यादेशो यः सकारः प्रत्ययस्य यः सकार इति। इह तर्हि—अकार्षीत्, प्रत्ययस्य यः सकार इति षत्वं न प्राप्नोति । मा भूदेवम्, 'आदेशो यः सकार' इत्येवं भविष्यति। इह तर्हि जोषिषत्, मन्दिषदिति, प्रत्ययस्य यः सकार इति षत्वं न प्राप्नोति। एषोऽपीटि कृते प्रत्ययस्य सकारः। इह तर्हि, इन्द्रो मा वक्षत्, स देवान्यक्षत् * नानाविभक्तीनां च समासानुपपत्तिः * नानाविभक्तीनां च समासो नोपपद्यते आदेशप्रत्यययोरिति * योगविभागात् सिद्धम् * योगविभागात् सिद्धमेतत्। योगविभागः करिष्यते। 'आदेशस्य'। आदेशस्य षो भवतीति। ततः 'प्रत्ययस्य'। प्रत्ययस्य सकारस्य षो भवतीति। स तर्हि योगविभागः कर्त्तव्यः? न कर्त्तव्यः। कथम्? अस्तु तावदवयवषष्ठी। ननु चोक्तम्—'आदेशप्रत्यय-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

योरित्यवयवषष्ठी चेद् द्विर्वचने प्रतिषेध' इति। नैष दोषः। द्विःप्रयोगो द्विर्वचनम्।

समानाधिकरणषष्ठी मानने में 'करिष्यति हरिष्यति' में 'स' रूप प्रत्यय नहीं है? अतः उसको इष्ट षत्व प्राप्त नहीं हो सकेगा। अच्छा तो 'आदेशो यः सकारः' यह समानाधिकरणा षष्ठी मानिये तथा 'प्रत्ययस्य यः सकारः' यहाँ पर अवयवषष्ठी मानिये। यदि 'प्रत्ययस्य यः सकारः' ऐसा अवयवषष्ठी मानेंगे तो 'अकार्षीत् अहार्षीत्' में सकार प्रत्ययरूप है, प्रत्यय का अवयव नहीं, अतः यहाँ षत्व प्राप्त नहीं हो सकेगा। जी! परन्तु 'प्रत्यय का अवयव सकार को षत्व हो' इस अर्थ से 'अकार्षीत्, अहार्षीत्' में षत्व प्राप्त नहीं हो रहा है तो कोई बात नहीं है, 'प्रत्ययरूप सकार को षत्व हो' इस समानाधिकरणषष्ठी से 'अकार्षीत् अहार्षीत्' आदेशरूप स होने से षत्व हो जायेगा। अच्छा तो 'जोषिषत्, मन्दिषत्' में च्लिस्थानिक सिच् को षत्व नहीं हो सकेगा, क्योंकि इट् का आगम हो जाने से आदेश रूप स् नहीं है, अपितु आदेश का अवयव स् है। अच्छा तो यह भी कोई दोष नहीं है, 'प्रत्यय का अवयव सकार' ऐसा अवयवषष्ठी मानने से 'जोषिषत्, मन्दिषत्' में षत्व हो जायेगा। सिच् को इट् का आगम हो जाने पर 'इस्' इस समुदाय का अवयव स् है। अच्छा तो 'इन्द्रो मा वक्षत्। स देवान् यक्षत्' यहाँ 'अवक्षत्' यह लुङ् में रूप है, च्लि को सिच् आदेश हो जाने से यहाँ स् प्रत्ययरूप है, प्रत्यय का अवयव नहीं। इस तरह षत्व नहीं हो सकेगा। यदि यहाँ प्रत्यय का अवयव सकार नहीं है तो आदेशरूप सकार मानकर षत्व हो जायेगा।

समानाधिकरणषष्ठी मानने में दोष है तो आप अवयव षष्ठी मान लीजिये। 'द्विःप्रयोगो द्विर्वचनम्' मानने पर 'सिषेव, सुष्वाप' यहाँ पर इष्ट षत्व हो सकेगा। वह इस तरह कि षिञ् और ष्वप् यह मूल धातु है। इण् से पर में उसको षत्व हो जायेगा।

'आदेशप्रत्यययोः' यहाँ पर 'आदेशो यः सकारः' तथा 'प्रत्ययस्य यः सकारः' ऐसा अनेक विभक्ति का समास सम्भव नहीं है। जी!, यह सम्भव हो जायेगा। हम यहाँ योगविभाग कर दोनों तरह का समास कर लेंगे। प्रथम योग होगा 'आदेशस्य'। अर्थ होगा—'आदेशरूप जो प्रत्यय, उसको षत्व होता है'। द्वितीय योग होगा—'प्रत्ययस्य'। अर्थ होगा—'प्रत्यय का अवयव जो स्, उसको षत्व होता है'। तो क्या यह योगविभाग करना चाहिये? इस की आवश्यकता नहीं है। यदि योगविभाग नहीं करेंगे तो या तो अन्यवषष्ठी होगी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथवा समानाधिकरणषष्ठी होगी। इन दोनों पक्षों में जो दोष पूर्वपक्षी दे आया है, उसका निवारण करते हैं—आप 'आदेशप्रत्यययोः' में अवयवषष्ठी ही मानिये। अवयवषष्ठी मानने में आप ने जो कहा कि द्विर्वचन में प्रतिषेध कहना पडेगा—'बिसंबिसम्। मुसलंमुसलम्', यहाँ षत्वप्राप्तिरूप दोष नहीं आयेगा। यहाँ हम द्वित्व आदेश नहीं करेंगे, अपितु 'द्विःप्रयोगो द्विर्वचनम्' ऐसा पक्ष मानेंगे।

यदप्युच्यते—समानाधिकरणानां चाप्राप्तिरिति। नैष दोषः। व्यपदेशिवद्भावेन भविष्यति। अथवा पुनरस्तु समानाधिकरणा। कथं करिष्यति हरिष्यति? आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति—'भवत्येवंजातीयकानां षत्व'मिति, यदयं 'सात्पदाद्यो'रिति सात्प्रतिषेधं शास्ति। अथवा पुनरस्तु—'आदेशो यः सकारः प्रत्ययस्य यः सकार' इति। कथम्—'इन्द्रो मा वक्षत्, स देवान्यक्षत्'? व्यवदेशिवद्भावेन भविष्यति। स तर्हि व्यवदेशिवद्भावो वक्तव्यः? न वक्तव्यः * उक्तं वा * उक्तं वा। किमुक्तम्? 'तत्र व्यपदेशिवद्वचनमेकाचो द्वे प्रथमार्थं, षत्वे चादेशसंप्रत्ययार्थम्, अवचनाल्लोकविज्ञानात् सिद्ध'मिति । यदपि—'नानाविभक्तीनां च समासानुपपत्ति'रिति। आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति—'नानाविभक्त्योरेष समास' इति, 'यदयं शासिवसिघसीनां चे'ति घसिग्रहणं करोति।

अथ च समानाधिकरणषष्ठी मानने में आप ने जो दोष दिया कि 'करिष्यति हरिष्यति' में प्रत्ययरूप तथा आदेशरूप स् नहीं होने से षत्व नहीं हो सकेगा, यह कोई दोष नहीं आयेगा। व्यपदेशिवद्भाव से आदेशरूप हो जायेगा। अथवा समानाधिकरणषष्ठी मानने में अव्याप्तिपरिहार का दूसरा तरीका यह भी है कि 'सात्पदाद्योः' ८.३.१११ सूत्र पढ कर आचार्य ने निषेध किया है। यह निषेधप्राप्ति होने पर ही सम्भव हो सकेगा, अतः आचार्य बताते हैं कि **एवंजातीयक**=इस तरह को षत्व होता ही है, अतः 'करिष्यति हरिष्यति' में षत्व हो जायेगा। अथवा पुनः समानाधिकरणा षष्ठी ही मानिये—'आदेशो यः सकारः', तथा अवयवषष्ठी 'प्रत्ययस्य यः सकारः' यही मानिये। इस पक्ष में आप ने 'इन्द्रो भा वक्षत्। स देवान्यक्षत्' में आपत्ति उठायी थी, वहाँ व्यपदेशिवद्भाव से षत्व सिद्ध हो जायेगा। जी, 'अवक्षत् यक्षत्' में भी व्यपदेशिवद्भाव कहने की आवश्यकता नहीं है। अथवा इसके विषय में पहले 'एकाचो द्वे प्रथमस्य' ६.१.१, 'अजादेर्द्वितीयस्य' ६.१.२, सूत्र पर कह आया हूँ। 'एकाचो द्वे प्रथमस्य' के लिए व्यपदेशिवद्भाव कहना चाहिये। इस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्यवदेशिवद्भाव का प्रयोजन षत्व की कर्तव्यता में आदेश का ज्ञान करना है। अथवा यहाँ और 'एकोचो द्वे प्रथमस्य' ६.१.१ सूत्र पर व्यपदेशिवद्भाव कहने की आवश्यकता नहीं है। यह लोकविज्ञान से ही सिद्ध है कि देवदत्त के एक ही पुत्र होने पर व्यपदेशिवद्भाव=मुख्यव्यवहारी के तुल्य व्यवहार होने से उसी में ज्येष्ठत्व, मध्यमत्व, कनिष्ठत्व, आदि व्यवहार होते है। आप ने जो दूसरी आपत्ति दी थी कि 'आदेशो यः सकारः' ऐसा समानाधि- करणा षष्ठी तथा 'प्रत्ययस्य यः सकारः' ऐसा अवयवषष्ठी; यहाँ आचार्य आचरण से बताते हैं कि नानाविभक्तियों का समास 'आदेशप्रत्यययोः' में है, अतः 'शासिवसिघसीनां च' ८.३.६० सूत्र में घसिग्रहण करते हैं।

कथं कृत्वा ज्ञापकम्? यदि ह्यादेशस्य यः सकार इत्येवं स्याद् घसिग्रहणमनर्थकं स्यात्। पश्यति त्वाचार्यः—'आदेशो यः सकारस्तस्य षत्व'मिति, ततो घसिग्रहणं करोति। {आदेशप्रत्यययोः}।

जी, 'शासिवसिघसीनाम्' सूत्र में घसिग्रहण कैसे ज्ञापक होगा? वह इस तरह कि अद् भक्षणे धा.पा.१०११ धातु को लिट् पर में रहते 'लिट्यन्यतरस्याम्' २.४.४० से घस्लृ आदेश है। उस घस् के स को 'शासिवसिघसीनां च' ८.३.६० से इण् और कवर्ग से पर में षत्वविधान है। 'जक्षतुः जक्षुः' रूपसिद्धि होती है। यदि आदेश का जो सकार ऐसा अर्थ लेंगे तो अद् को घस् आदेश होने से आदेश का सकार मिल गया, उसी से षत्वसिद्धि हो जायेगी; पुनः सूत्र में घस्ग्रहण व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा—'आदेशप्रत्यययोः' में नानाविभक्तिक समास होता है, अतः आचार्य देखते हैं कि आदेश का जो स्, उसको घस् में षत्व प्राप्त हो रहा है, आदेशरूप स् को नही, अतः आचार्य 'शासिवसिघसीनां च' ८.३.६० में घस्ग्रहण करते हैं, अतः 'आदेशप्रत्यययोः' में नानाविभक्तिक समास भी मान सकते हैं। {आदेशप्रत्यययोः}।

स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासात् ८.३.६१

स्तौतिणिग्रहणं किमर्थम्? अस्तौतिण्यन्तानां मा भूत्—सिसिक्षति। अथैवकारः किमर्थः? * एवकारो नियमार्थः * **एवकारो नियमार्थः। 'स्तौतिण्यन्तानामेव नान्येषा'मिति। नैतदस्ति प्रयोजनं, सिद्धे विधि-रारभ्यमाणोऽन्तरेणैवकारकरणं नियमार्थो भविष्यति। 'इष्टतोऽवधा-रणार्थस्तर्हि'। यथैवं विज्ञायेत 'स्तौतिण्योरेव षणी'ति, मैवं विज्ञायि—'स्तौतिण्योः षण्येवे'ति। इह न स्यात्—तुष्टाव।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'स्तौतिण्योः' यह अवयवार्थ षष्ठी है। एवम् अव्ययपद है। 'षणि' यह सन् प्रत्यय का कृतषत्व सप्तम्यन्त है। 'अभ्यासात्' पञ्चम्यन्त निमित्त है। 'इण्कोः' से 'इणः' की अनुवृत्ति है। यहाँ असम्भव होने से 'कु' की अनुवृत्ति नहीं होगी। 'सहेः साड सः' से 'सः' षष्ठ्यन्त स्थानी का ग्रहण है। सूत्र में 'णेः' यह प्रत्यय है, अतः तदन्त अर्थ का बोध होगा। सूत्रार्थ हुआ—'अभ्यास इण् से पर में ष्टु धातु तथा ण्यन्त धातु के सकार को षत्व हो षत्वभूत सन् प्रत्यय यपर में रहते, अन्यत्र नहीं'। षणिनिर्देश से यह समझना चाहिए कि जहाँ पर सन् प्रत्यय के स् को ष् हुआ होगा, वहीं पर षत्व है। जैसे ष्टु का उदाहरण—तुष्टूषति। ण्यन्त का सुष्वापयिषति।

सूत्र में 'स्तौतिण्योः' का ग्रहण क्यों करते हैं ? वह इसलिए कि इन्हीं के स् को षत्व हो, ष्टु और ण्यन्त से भिन्न को षत्व न हो, जैसे—'सिसिक्षति'। यहाँ षत्वभूत षण् पर में है तथा अभ्यास इण् से भी पर में है। परन्तु ष्टु और ण्यन्त न होने से सिक्षघटक स को षत्व नहीं हुआ। सूत्र में एवकार नियमार्थक है। नियम का स्वरूप होगा—'अभ्यास इण् से पर में षण् पर रहते यदि सकार को षत्व हो तो स्तौति और ण्यन्त को ही हो, अन्य को नहीं'। जी, एवकार का प्रयोजन प्रकृत सूत्र में नियम करना नहीं हो सकता है। 'तुष्टूषति, सुष्वापयिषति' में 'आदेशप्रत्यययोः' से ही षत्व प्राप्त है। इस तरह प्राप्त होने पर सूत्र आरम्भ मात्र से विना 'एव' शब्द के भी नियामक होगा। अच्छा तो इष्ट का अवधारण के लिए 'एव'ग्रहण है। 'षण् पर में रहते ष्टु और ण्यन्त को ही षत्व हो' यह इष्ट का अवधारण होगा। अन्यथा 'एव' शब्द के अभाव में कहीं 'ष्टु और ण्यन्त को षत्वभूत षण् परे ही हो' ऐसा न समझ लिया जाये। यदि 'स्तौतिण्योः षण्येव' ऐसा अनिष्ट अर्थ समझ लिया जायेगा तो तुष्टाव में इष्ट षत्व की सिद्धि नहीं होगी'।

अथ षणीति किमर्थम्? सेषीव्यते। को विनतेऽनुरोधः? अविनते नियमो मा भूत—सुसुप्सतीति। कः सानुबन्धेऽनुरोधः? षशब्दमात्रे नियमो मा भूत्—सुषुपिष इन्द्रम्। सुषुपिष इहेति।

सूत्र में षण्ग्रहण किया है, उसका क्या प्रयोजन है? उसका प्रयोजन है—सेषीव्यते। षिवु तन्तु सन्ताने धा.पा.११०८ का यङन्त लट् में सेषीव्यते रूप है। धातु को द्वित्व, अभ्यास को गुण, अभ्यासोत्तर को 'हलि च' ८.२.६६ से दीर्घ कर 'सेषीव्यते' रूप है। यदि षण् पर में रहते सत्व नहीं कहेंगे तो अन्यत्र भी अभ्यास इण् से पर में षत्व होगा जैसे—सेषीव्यते। यहाँ 'आदेश-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रत्यययोः' से षत्व है। अच्छा तो सूत्र में 'सनि' ऐसा पाठ कर दीजिए। कृतषत्व निर्देश क्यों करते हैं। व्याकरणान्तर में विनाम शब्द से षत्व कहा गया है। **अनुरोधः**=प्रयोजन। कृतषत्व षणू ऐसा उच्चारण करने का क्या प्रयोजन है? उसका प्रयोजन है कि जहाँ सन् के सकार को षत्व होगा वहीं नियम होगा। जहाँ पर **अविनते**=षत्व नहीं होगा वहाँ पर नियम नहीं होगा। जैसे—'सुष्वपितुम् इच्छति सुषुप्सुति'। यहाँ पर सन् को षत्वविशिष्ट नहीं है; अतः यहाँ नियम भी नहीं होगा। अच्छा तो आप 'षेऽभ्यासात्' ऐसा सूत्र में पढ देते, 'षण्यभ्यासात्' ऐसा अनुबन्धसहित पाठ क्यों किया है? वह इसलिए कि जहाँ 'ष' मात्र ग्रहण है, वहाँ नियम नहीं हो, जैसे—'सुषुपिष इन्द्रम्'। ष्वप् धा.पा.१०६८ का लिट् लकार मध्यम पुरुष-एकवचन में 'व्यत्ययो बहुलम्' ३.१.१८५ से व्यत्यय होने से परस्मैपद के स्थान पर आत्मनेपद थास्, 'थासः से' ३.४.८० सूत्र से थास् को 'से' आदेश, से को इट् का आगम, षत्व अयादेश, यलोप होकर 'सुषुपिष इन्द्रम्' यहाँ पर कृत षत्व 'ष' है। यदि अनुबन्धविशिष्ट पाठ नहीं करते तो 'सुषुपिष इन्द्रम्' से भी कृतषत्वविशिष्ट 'ष' होने से अभ्यास इणू से पर में स को षत्व नहीं हो सकता था। सानुबन्ध निर्देश करते हैं तो यहाँ पर कृतषत्व 'ष' है, षणू नहीं, अतः नियम का व्यावर्त्य नहीं होने से षत्व हो जा रहा है।

अभ्यासादिति किमर्थम् ? अभ्यासाद्या प्राप्तिस्तस्या नियमो यथा स्यादुपसर्गाद्या प्राप्तिस्तस्या नियमो मा भूद्—अभिषिषिक्षति। नैतदस्ति, असिद्धमुपसर्गात् षत्वं, तस्याऽसिद्धत्वान्नियमो न भविष्यति। इदं तर्हि प्रयोजनं, सनि योऽभ्यासस्तस्माद्या प्राप्तिस्तस्या नियमो यथा स्याद्यङि योऽभ्यासस्तस्माद्या प्राप्तिस्तत्र नियमो मा भूत्-सोषुप्यतेः सन् सोषुपिषते। अथवाऽभ्यासाद्या प्राप्तिस्तस्यानियमो यथा स्याद्धातोर्या प्राप्तिस्तस्या नियमो मा भूद्—अधीषिषति प्रतीषिषतीति।

'अभ्यासात्' पद का ग्रहण क्यों किया गया? अभ्यासग्रहण इसलिए किया गया है कि अभ्यास से पर में जो प्राप्ति, उसी का नियम हो, उपसर्ग से पर में जो प्राप्ति, उसका नियम न हो। जैसे—'अभिषिषिक्षति'। यहाँ उपसर्ग से पर में नियम न होने से नियम का व्यावर्त्य 'अभिषिषिक्षति' नहीं है, अतः 'स्थादिष्वभ्यासेन चाऽभ्यासस्य' ८.३.६४ के विद्यमान रहने से 'उपसर्गात् सुनोति-सुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभतिस्थासेनयसेधसिचसञ्जस्वञ्जाम्' ८.३.६५ सूत्र से षत्व है। जी, अभ्यासग्रहण का यह प्रयोजन नहीं हो सकता है। 'अभिषिषिक्षति'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में उपसर्ग से पर में जो षत्व हुआ है, वह असिद्ध रहेगा, अतः उसके असिद्ध होने से नियम नहीं हो सकेगा। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि भाष्यकार 'प्रकरणे प्रकरणमसिद्धं न तु योगे योगः' इस नियम का आश्रय नहीं कर रहे हैं, अपितु यहाँ 'स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासात्' ८.३.६१ की दृष्टि में 'उपसर्गात् सुनोति' ८.३.६५ को असिद्ध कह रहे हैं, अतः यहाँ योग के प्रति योग असिद्ध है। अच्छा तो अभ्यासग्रहण का दूसरा प्रयोजन है सन्प्रत्ययनिमित्तक जो अभ्यास, उससे पर में जो प्राप्ति, उसको नियम होगा; यङ्प्रत्ययनिमित्तक जो अभ्यास, उससे पर में जो प्राप्ति, उसमें नियम नहीं होगा, जैसे—ष्वप् स्वप्ने धा.पा.१०६८ से यङ् प्रत्यय करके 'सोषुप्य' रूप बना लिया; अब यङ्न्त से 'सन्' प्रत्यय करेंगे। रूप होगा 'सोषुपिषते'। यहाँ यङ्प्रत्ययनिमित्तक अभ्यास है, उससे पर में प्राप्त षत्व का नियमन नहीं हो सकेगा। 'सोषुपिषते' यहाँ पर कार्यकालपक्ष में षत्व अन्तरङ्ग है तथा नियम बहिरङ्ग, अतः 'असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे' से षत्व सिद्ध रहेगा। अथवा सन् का षत्व बहिरङ्ग होने से असिद्ध है। जहाँ सन् कृतषत्व नहीं है वहाँ यङ्निमित्तक अभ्यास से पर में धातु का अवयव सकार को षकारादेश की कर्तव्यता में नियम नहीं हो सकेगा। जैसे—'सुषुप्सति'। अथवा अभ्यास से पर में जो प्राप्ति, उसका नियम हो, धातु से पर में जो प्राप्ति, उसका नियम न हो। जैसे 'अधीषिषति, प्रतीतिषति'। यहाँ अधिपूर्वक इङ् अध्ययने धा.पा.१०४५, तथा प्रतिपूर्वक बोधार्थक इण् धा.पा.१०४६ है। इससे सन् प्रत्यय होकर 'सन्यङोः' ६.१.९ सूत्र से सन्नन्त को द्वित्व प्राप्त है। अजादि धातु होने से 'अजादेर्द्वितीयस्य' ६.१.२ सूत्र से 'स' शब्द को द्विर्वचन है। 'सन्यतः' ७.४.७९ से अभ्यास अत् को इत्त्व है। यहाँ अभ्यास का आश्रय प्रत्यय को षत्व हो जाने पर नियम न होने के कारण अभ्यास को धात्वाश्रय षत्व होता है। जी, सूत्र में 'षणि' ऐसा कहा है। 'षणि' यह निमित्तसप्तमी नहीं है। यदि 'षणि' को पर सप्तमी मानेंगे तो 'षण् पर में रहते स्तौति और ण्यन्त को ही षत्व हो' ऐसा नियम होगा। यह नियम षण्परक तुल्यजातीय 'सिसिक्षति' इत्यादि में ही षत्व का व्यावर्तन करेगा। परन्तु 'अधीषिषति, प्रतीषिषति' इत्यादि में सन् को ही द्वित्व विहित है, अतः षण्परक न होने से स को नियम नहीं होगा, अतः सूत्र में अभ्यासग्रहण का कोई प्रयोजन नहीं है।

ननु च षणीत्युच्यते; 'षणी'ति नैषा परसप्तमी शक्या विज्ञातुम्। सन्यङन्तं हि द्विरुच्यते, तस्मादेषा सत्सप्तमी 'षणि सती'ति। सत्सप्तमी चेत् प्राप्नोति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सन्नन्त और यङन्त को द्वित्व कहा गया है, अतः अवयव के द्वारा सन्नन्त और यङन्त समुदाय ही द्वित्ववान् हो रहा है, अतः 'षणि' यह सत्सप्तमी है। अर्थ होगा—'षणि सति'। नियम से तुल्यजातीय की ही निवृत्ति होती है। सन्नन्तसमुदाय का अवयवत्वधर्म से तुल्यजातीय की निवृत्ति होगी, जिससे 'अधीषिषति' 'प्रतीषिषति' में भी व्यावृत्ति होने लगेगी। वहाँ व्यावृत्ति न हो, इसके लिए अभ्यासग्रहण करना चाहिये। यदि सन्ग्रहणसूत्रों में निमित्त-सप्तमी मानें तो 'अधीषिषति' 'प्रतीषिषति' यहाँ पर समुदाय सन्नन्तरूप है; उसी को द्वित्व प्राप्त है, सन्निमित्तक नहीं, अतः 'अधीषिषति, प्रतीषिषति' में द्वित्व नहीं हो सकेगा, अतः जहाँ कहीं भी सूत्र में 'सनि' ऐसा सप्तम्यन्त पाठ है, वहाँ सर्वत्र सत्सप्तमी माननी चाहिये। {स्तौतिण्योरेव}।

स्थादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्य ८.३.६४

किमर्थमिदमुच्यते? * स्थादिष्वभ्यासवचनं नियमार्थम् * **नियमार्थोऽयमारम्भः—'स्थादिष्वभ्यासस्य यथा स्यादिह मा भूद्—अभिसुसूषति। अथ किमर्थमभ्यासेन चेत्युच्यते?** * तद्व्यवाये चाषोपदेशार्थम् * **तद्व्यवायेऽभ्यासव्यवाये चाऽषोपदेशस्यापि यथा स्यात्। अभिषिषेणयिषति** * अवर्णान्ताभ्यासार्थं षणिप्रतिषेधार्थं च * **अवर्णान्ताभ्यासार्थं तावद्—अभितष्ठौ। षणिप्रतिषेधार्थम्—अभिषिषिक्षति।**

'स्थादिषु' यह सौत्रत्वात् षष्ठ्यर्थ में सप्तमी है। सूत्र में दो भाग हैं। 'स्थादिष्वभ्यासेन' एक भाग तथा 'चाभ्यासस्य' द्वितीय भाग है। प्रथम भाग का अर्थ है—'अभ्यास से व्यवधान होने पर भी स्थादि दस धातुओं के स को उपसर्गनिमित्तक इण् से पर में षत्व हो'। द्वितीय का अर्थ है—'उपसर्ग-निमित्तक इण् से पर में स्थादि धातुओं के अभ्यास के सकार को षत्व हो। यहाँ 'उपसर्गात् सुनोति' ८.३.६५घटक स्था धातु से आरम्भ कर 'परिनिविभ्यः सेवसितसयसिवुः' ८.३.७० सूत्रघटक सित से प्राक् 'सेव'पर्यन्त दस धातु विवक्षित हैं। वे क्रम से स्था, सेनय, सेध, सिच्, सञ्ज, स्वञ्ज, सद्, स्तम्भ, स्वन् और सेव हैं। इसमें सेनय णिजन्त नामधातु है। सेध यह शप् के द्वारा निर्देश होने से भ्वादिप्रकरणस्थ षिध गत्यां धा.पा.४७ तथा षिधु शास्त्रे माङ्गल्ये च धा.पा.४८ का ग्रहण होगा; षिधु संराद्धौ धा.पा.११९२ दिवादि का नहीं।

स्थादि के अभ्यासघटक स को 'उपसर्गात् सुनोतिसुवतिस्यति' ८.३.६५ से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

षत्व सिद्ध है, उसी षत्व का विधान के लिए आचार्य ने 'स्थादिष्वभ्यासेन' सूत्र क्यों पढा है? उत्तर देते हैं—यह आरम्भ नियमार्थक है। नियम का स्वरूप होगा—'उपसर्ग इण् से पर में अभ्यासघटक स को षत्व हो तो स्थादि को ही हो, अन्य सुनोत्यादि को नहीं'। जैसे—निषिषिधतुः निषिषिधतुः। निषिषेध। नियम का व्यावर्त्य फल है—अभिसुसूषति।

अच्छा तो अभ्यास के व्यवधान होने पर भी स्थादि के सकार को षत्व क्यों कहते हैं? अभ्यास व्यवाय होने पर षत्व इसलिए कहा जा रहा है कि जो षोपदेश नहीं है वे भी गृहीत हो जायें। जैसे सेनय णिजन्त नामधातु षोपदेश नहीं है, उसके स को भी अभ्यास व्यवाय होने से षत्व कहने पर 'अभिषिषेणयिषति' में षत्व सिद्ध हो जाता है। अथ च अभ्यास व्यवाय कहने का दूसरा फल यह है कि अवर्णान्त उपदेश से व्यवाय होने पर भी षत्व हो। जैसे—अभितष्ठौ। एवम् षणि प्रतिषेध भी प्रयोजन है। 'स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासात्' ८.३.६४ इस नियम सूत्र से षत्वभूत षण् पर में रहते स्तौति और ण्यन्त को ही षत्व हो अन्य को नहीं, इस नियत से सिच् आदि धातुओं के सकार का षत्व प्राप्त नहीं था, उनका षत्व विधान करने के लिए स्थादि धातुओं को अभ्यास व्यवास में षत्व कहा गया। {स्थादिष्वभ्यासेन}।

उपसर्गात् सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभति-स्थासेनयसेधसिचसञ्जस्वञ्जाम् ८.३.६५

*** उपसर्गात् षत्वे निस उपसङ्ख्यानमनिण्णन्तत्वात् * उपसर्गात् षत्वे निस उपसङ्ख्यानं कर्तव्यम्। निष्षुणोति। निष्षिञ्चति। किं पुनः कारणं न सिध्यति? 'अनिण्णन्तत्वात्'। इण्णन्तादुपसर्गात् षत्वमुच्यते न च निसिण्णन्तः * न वा वर्णाश्रयत्वात् षत्वस्य तद्विशेषक उपसर्गो धातुश्च * न वा वक्तव्यम्। किं कारणम्? 'वर्णाश्रयत्वात् षत्वस्य'। वर्णाश्रयं षत्वम्। 'तद्विशेषक उपसर्गो धातुश्च'। नैवं विज्ञायते—'इण्णन्तादुपसर्गा'दिति। कथं तर्हि? 'इण उत्तरस्य सकारस्य, स चेदिणुपसर्गस्य', 'स चेत्सकारस्सुनोत्यादीना'मिति। तत्र शर्व्यवाये' इत्येव सिद्धम्।**

'उपसर्गस्थ इण् से पर में सुनोत्यादि के सकार को षत्व हो'। जैसे—निषेधति इत्यादि।

निस् उपसर्ग इणन्त नहीं है। 'निष्षुणोति, निष्षिञ्चति' में निस् से पर में सुनोति को षत्व इष्ट है, उसके लिए निस् से पर में सुनोत्यादि को षत्व

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कहना चाहिये। क्या कारण है कि निष्षुणोति में षत्व प्राप्त नहीं है? वह इसलिए कि इणन्त उपसर्ग से पर में सुनोत्यादि को षत्व कहा जा रहा है। निस् इणन्त नहीं है, अतः उससे पर में षत्व प्राप्त नहीं हो सकेगा, अतः निस् से पर में सुनोत्यादि को षत्वविधान के लिए 'उपसर्गात् षत्वे निस उपसंख्यानम् अनिणन्तात्' यह वचन पढना चाहिये। जी, यह कोई दोष नहीं हैं। यदि आप उपसर्ग को विशेष्य तथा इण् को विषेषण बनायेंगे तो यह दोष आयेगा, जिसके लिए पृथग्वचन कहने की आवश्यकता होगी, परन्तु यदि हम उपसर्ग को विशेषण तथा इण् को विशेष्य मान लेंगे तो उपर्युक्त दोष नहीं होगा, जिसके लिए पृथग्वचन नहीं पढना पडेगा। षत्व वर्णाश्रय है, अतः षत्व का विशेषण उपसर्ग और धातु होगा, विशेष्य नहीं, अतः 'इण्णन्त उपसर्ग से पर में सुनोत्यादि को षत्व हो' ऐसा अर्थ नहीं होगा, अपितु 'इण् से उत्तर में सकार को षत्व हो, वह इण् यदि उपसर्ग का तथा सकार यदि सुनोत्यादि का हो तो'। इस तरह 'निष्षुणोति, निष्षञ्चति, में 'नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि' ८.३.५८ सूत्र से ही षत्व हो जायेगा। इसके लिए वचन पढने की आवश्यकता नहीं है।

यद्येवं धातूपसर्गयोरभिसम्बन्धोऽकृतो भवति। तत्र को दोषः? इहापि प्राप्नोति—विगताः सेचका अस्माद् ग्रामाद्—विसेचको ग्रामः। धातूपसर्गयोश्चाऽभिसम्बन्धः कृतः। कथम्? सुनोत्यादिभिरत्रोपसर्गं विशेषयिष्यामः—'सुनोत्यादीनां य उपसर्गस्तस्य उपसर्गस्य य इ'ण्णिति।

यदि उपसर्ग को विशेषण मानेंगे तो धातु और उपसर्ग का सम्बन्ध नहीं हो सकेगा। यदि धातु और उपसर्ग का परस्पर सम्बन्ध न रहे तो क्या दोष होगा? इस से दोष यह होगा कि 'विगताः सेचका अस्माद् ग्रामाद् असौ विसेचको ग्रामः' यहाँ पर भी उपसर्ग के इण् से पर में सेचकघटक स को षत्व होने लगेगा। यदि धातु और उपसर्ग का सम्बन्ध मानते हैं, तो 'विगताः सेचका अस्माद् ग्रामाद्' इस विग्रहवाक्य में गम् धातु के प्रति 'वि' उपसर्ग का योग है, सिच् के प्रति नहीं, अतः 'विसेचकः' में षत्व प्राप्त नहीं होता है। जी, प्रकृत में धातु और उपसर्ग का अभिसम्बन्ध है। वह कैसे? सुनोत्यादि के साथ हम उपसर्ग को विशेषित करेंगे—'सुनोत्यादि का जो उपसर्ग, उसका जो इण्, उससे उत्तर में सकार को षत्व हो'।

*** सुनात्यादीनां षत्वे ण्यन्तस्योपसङ्ख्यानमधिकत्वात् * सुनोत्यादीनां षत्वे ण्यन्तस्योपसङ्ख्यानं कर्तव्यम्। अभिषावयति। किं कारणं न सिध्यति? 'अधिकत्वात्'। व्यतिरिक्तः सुनोत्यादिरिति कृत्वोपसर्गात् सुनोत्यादीनामिति**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

षत्वं न प्राप्नोति *** न वाऽवयवस्याऽनन्यत्वात् *** **न वा वक्तव्यम्। किं कारणम्? 'अवयवस्यानन्यत्वात्'। अवयवोऽत्राऽनन्यः इति।**

सुनोत्यादि को षत्व की विषयता में ण्यन्त को भी षत्व कहना चाहिये। जैसे—अभिषावयति। ण्यन्त को षत्व कहने से यहाँ पर भी षत्व सिद्ध हो गया। अच्छा तो क्या कारण है कि सुनोत्यादि को षत्व की कर्तव्यता में ण्यन्त को षत्व सिद्ध नहीं हो पा रहा है? वह यह कि सुनोत्यादि को ही षत्व कहा है, णिच् कर देने पर अधिक हो गया। सूत्र सुनोत्यादि में चरितार्थ है, अतः ण्यन्त में उसकी प्रवृत्ति नहीं होगी। यहाँ 'यूनि लब्धे तु युवतिः जरठे रमते कथम्'? इस न्याय का भाव समझना चाहिये।

जी, 'अभिषावयति' इत्यादि णिजन्त स्थलों में षत्वविधान के लिए पृथक् वचन पढने की आवश्यकता नहीं है। ण्यन्त स्थल में भी 'उपसर्गात् सुनोतिसुवति' इत्यादि सूत्र से ही षत्व सिद्ध हो जायेगा, वह इस तरह कि णिच् प्रत्यय होने पर भी अवयवभेद नहीं होता है, अतः णिजन्त में भी षत्व सिद्ध हो जायेगा।

*** नामधातोस्तु प्रतिषेधः *** **नामधातोस्तु प्रतिषेधो वक्तव्यः। सावकमिच्छत्यभिसावकीयति। परिसावकीयति** *** न वाऽनुपसर्गत्वात् *** **न वा वक्तव्यः। किं कारणम्? 'अनुपसर्गत्वात्'। यत्क्रियायुक्तास्तं प्रति गत्युपसर्गसंज्ञे भवतो न चाऽत्र सुनोतिं प्रति क्रियायोगः। किं तर्हि? सावकीयतिं प्रति। इहापि तर्हि न प्राप्नोति—अभिषावयति। अत्रापि न सुनोतिं प्रति क्रियायोगः। किं तर्हि? सावयतिं प्रति। सुनोतिं प्रत्यत्र क्रियायोगः। कथम्? नासावेवं प्रेष्यते—सुन्वभी'ति। किं तर्हि? उपसर्ग-विशिष्टामसौ क्रियां प्रेष्यते—अभिषुण्विति।**

उपसर्गस्थ इण् से पर में नामधातु के सकार को षत्व का प्रतिषेध कहना चाहिये। जैसे—'सावकमात्मनः इच्छति सावकीयति', 'सुप आत्मन' क्यच्' ३.१.८ सूत्र से क्यच् प्रत्यय, 'क्यचि च' ७.४.३३ सूत्र से इत्व, दीर्घ, लट् आदि होकर 'सावकीयति' रूप होगा। उसका 'परि' के साथ योग होने से यहाँ सुनोति धातु है। यदि आप 'न वाऽवयवस्याऽनन्यत्वात्' वार्तिक पढते हैं तो 'परिसावकीयति' में भी अवयव के अनन्य ही होने से 'उपसर्गात् सुनोतिसुवति' से षत्व प्राप्त होगा, उसका निषेध कहना होगा। जी, 'न वाऽवयवस्याऽनन्यत्वात्' यह वार्तिक मानने पर 'नामधातोस्तु प्रतिषेधः' यह निषेधवचन पढने की आवश्यकता नहीं होगी। वह इस तरह कि 'परिसावकीयति' में 'सावकीयति'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के प्रति 'परि' उपसर्ग है, 'सुनोति' के प्रति नहीं, अतः 'परिसावकीयति' में सुनोति के प्रति उपसर्ग नहीं होने से षत्व प्राप्त नहीं हागा। अच्छा तो यदि 'परिसावकीयति' में 'परि' को 'सु' के प्रति उपसर्ग नहीं मानते हैं तो 'अभिषावकीयति' में भी 'अभि' को 'सावकीयति' के प्रति उपसर्ग मानना होगा, 'सु' के प्रति नहीं। इस तरह 'अभिषावकीयति' में भी षत्व नहीं होना चाहिये। जी, 'अभिषावकीयति' में 'सावकीयति' के प्रति उपसर्ग संज्ञा नहीं है अपितु 'सुनोति' के प्रति ही उपसर्ग संज्ञा है। ऐसा क्यों? वह इस तरह कि 'अभिषावकीयति' में णिच् से प्रेषणक्रिया वाच्य है। वहाँ केवल सुनोतिक्रिया का प्रेषण नहीं किया जा रहा है, अपितु उपसर्गविशिष्ट सुनोतिक्रिया का प्रेषण वाच्य है, अतः 'अभिषावकीयति' में सुनोति के प्रति उपसर्गसंज्ञा हो ज़ायेगी तथा षत्व भी होगा। परन्तु 'अभिसावकीयति' में 'सावकीयति' के प्रति ही उपसर्गसंज्ञा है, 'सुनोति' के प्रति नहीं, अतः षत्व प्राप्त नहीं होने से निषेध नहीं कहना पडेगा। {उपसर्गात् सुनोतिसुवति}।

स्तम्भेः ८.३.६७

अप्रतेरिति वर्तते उताहो निवृत्तम्? 'निवृत्त'मित्याह। कथं ज्ञायते? योगविभागकरणसामर्थ्यात्। इतरथा हि 'सदिस्तम्भ्योरप्रते'रित्येव ब्रूयात्। अस्त्यन्यद् योगविभागकरणे प्रयोजनम्। किम्? 'अवाच्चालम्बनाविदूर्ययो'रिति वक्ष्यति, तत् स्तम्भेरेव यथा स्यात् सदेर्मा भूदिति। नैतदस्ति प्रयोजनम्। एकयोगेऽपि सति यस्यालम्बनाविदूर्ये स्तस्तस्य भविष्यति। कस्य चाऽऽलम्बनाविदूर्ये स्तः? स्तम्भेरेव। {स्तम्भेः}।

'स्तम्भुस्तुम्भुस्कम्भुस्कुम्भुस्कुञ्भ्यः श्नुश्च' ३.१.८२ सूत्र में पठित स्तम्भुधातु का प्रकृत सूत्र में परिगणन है, उसके स् को ष् कहना चाहिये।

इससे पूर्व 'स्तम्भेः' सूत्र में अप्रतेः का अनुवर्तत है, अथवा नहीं? जी, पूर्व सूत्र से 'अप्रतेः' का अनुवर्तन नहीं होता है। यह कैसे जाना जायेगा कि प्रकृत सूत्र में 'अप्रतेः' का अनुवर्तन नहीं होता है? वह ऐसे कि यदि आचार्य को 'अप्रतेः' का योग 'स्तम्भेः' में भी करना होता तो पृथक् पृथक् 'सदिरप्रतेः' तथा 'स्तम्भेः' ऐसा सूत्र नहीं करते, अपितु 'सदिस्तम्भ्योरप्रतेः' एक ही सूत्र पढते। परन्तु आचार्य ने एक सूत्र न पढ कर पृथक् पृथक् सूत्र पढा है, इससे आचार्य बताते हैं कि 'स्तम्भेः' सूत्र में 'अप्रतेः' का अनुवर्तन नहीं होता है। जी, योगविभाग का फल दूसरा है। वह यह कि आचार्य 'अवाच्चालम्बनाविदूर्ययोः'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

८.३.६८ ऐसा सूत्र पढेगें। वहाँ पर अव से पर स्तम्भ के स को ही आलम्बन और आविदूर्य अर्थ में षत्व हो, सद् के सकार को षत्व नहीं हो, यह योगविभाग का फल है। उस योगविभाग से प्रकृत सूत्र में 'अप्रतेः' की निवृत्ति कैसे कही जा सकती है? जी, आपने जो योगविभाग का फल दिया है, वह ठीक नहीं है। यदि एकयोग में भी आलम्बन और आविदूर्य अर्थ में जो है, उसी को षत्व होगा, अन्य को नहीं। आलम्बन और आविदूर्य अर्थ में किसको षत्व प्राप्त है? स्तम्भु धातु को आलम्बन और आविदूर्य अर्थ में षत्व प्राप्त है, जिसको षत्व प्राप्त है, उसी को होगा, सदि को नहीं। {**स्तम्भे**}।

'अनुविपर्यभिनिभ्यः स्यन्दतेरप्राणिषु' ८.३.७२

अथ यः प्राण्यप्राणी च कथं तत्र भवितव्यम्, अनुष्यन्देते मत्स्योदके इति, आहो स्विदनुस्यन्देते मत्स्योदके इति? यदि तावदप्राणी विधिनाश्रीयते, अस्त्यत्राप्राणीति कृत्वा भवितव्यं षत्वेन, अथ प्राणी प्रतिषेधेनाश्रीयते, अस्त्यत्र प्राणीति कृत्वा भवितव्यं प्रतिषेधेन।

किं पुनरत्राऽर्थसतत्त्वम्? देवा एतज्ज्ञातुमर्हन्ति।

अनु, वि, परि और अभि से पर में अप्राणिकर्तृक स्यन्दू के स को विकल्प से षत्व हो। जैसे—'अनुष्यन्दते-अनुस्यन्दते वा जलम्'।

'अप्राणिषु=न प्राणिनः, अप्राणिनः+तेषु अप्राणिषु'। यहाँ पर नञर्थ प्रसज्यार्थक माना जाये कि पर्युदासार्थक? यदि प्रसज्यार्थक मानेंगे तो 'प्राणिषु वाच्येषु न स्यात्' ऐसा निषेधपरक अर्थ करना होगा। नञ् से विध्यर्थ सत्ता क्रिया का अभावबोध होगा, प्राणी का नहीं, अतः नञ् का अन्वय विध्यर्थक सत्ता क्रिया में होने से नञ् उसी में समर्थ होगा, प्राणी के साथ नञ् का समर्थ नहीं होने से 'अप्राणिषु' यह असमर्थ समास की आपत्ति होगी एवं निषेधार्थक मानने में विध्यर्थक 'सत्ता' इस क्रियापद का अध्याहार, यह दूसरा दोष, वाक्यभेद तीसरा दोष तथा आचार्य की अप्रामाण्यापत्तिरूप चौथा दोष होने से प्रसज्यार्थक नञ् पक्ष में चार दोष होते हैं; जब कि प्रसज्यार्थक नञ् मानने में 'प्राणिसदृशेषु वाच्येषु' ऐसा अर्थ होगा। इस पक्ष में उपर्युक्त चारों दोष नहीं होंगे तथा एकवाक्यता बनी रहेगी। इस तरह प्रकृत में क्या करना चाहिये? तो यहाँ पर कोई दोष तथा लाघव गौरव की चर्चा नहीं होने से पर्युदासपक्ष ही मानना चाहिये।

अच्छा जी, अप्राणी अर्थ वाच्य होने पर आप अनु, वि, परि, नि, अभि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से पर में स्यन्दू प्रस्रवणे धा.पा.७६१ के स् को षत्व का विकल्प कह रहे हैं। परन्तु जहाँ प्राणी अप्राणी उभय है वहाँ 'मत्स्योदके अनुष्यन्देते' ऐसा षत्वघटित वाक्य होगा, अथवा 'अनुस्यन्देते मत्स्योदके' ऐसा अषत्वघटित रूप होगा? यदि विधि से यहाँ पर अप्राणिरूप अर्थ की विवक्षा करेंगे तो षत्वघटित रूप होगा? यदि विधि से यहाँ पर अप्राणिरूप अर्थ की विवक्षा करेंगे तो षत्वघटित रूप 'अनुष्यन्देते मत्स्योदेके' ऐसा होगा। परन्तु यदि प्राणी अर्थ की विवक्षा करेंगे तो अषत्वघटित 'अनुस्यन्देते' ऐसा रूप होगा।

तो क्या 'अनुविपर्यभिनिभ्यः स्यन्दतेरप्राणिषु' सूत्र में अर्थ तत्त्व है? (भाष्य में सतत्व शब्द तत्त्व का पर्याय है)। **देवाः**=विद्वान् वैयाकरण लोग इस बात को जानते हैं कि यहाँ अर्थ तत्त्व लिया गया है। {अनुविपर्यभि}।

परेश्च ८.३.७४

अथाऽनिष्ठायामिति वर्तते उताहो निवृत्तम्? 'निवृत्त'मित्याह। कथं ज्ञायते? योगविभागकरणसामर्थ्यात्। इतरथा हि 'विपरिभ्यां च स्कन्देरनिष्ठाया'मित्येव ब्रूयात्। {परेश्च}।

'परि से पर में 'स्कन्दिर् गतिशोषणयोः' धा.पा.६७६ के स् को षत्व विकल्प है। जैसे—'परिष्कन्दति-परिस्कन्दति'।

इससे पूर्व 'वेः स्कन्देरनिष्ठायाम्' ८.३.७३ सूत्र पढा गया है। वहाँ से 'स्कन्देः' का अनुवर्तन होता है। 'अनिष्ठायाम्' यह भी पढा गया है। उसका अनुवर्तन 'परेश्च' सूत्र में होता है अथवा 'अनिष्ठायाम्' यह निवृत्त हो जाता है? 'अनिष्ठायाम्' की निवृत्ति हो जाती है। यह कैसे जाना जाये? यह वैसे कि आचार्य ने 'वेः स्कन्देरेनिष्ठायाम्' 'परेश्च' ऐसा योगविभाग कर पृथक्-पृथक् सूत्र पढा है। यदि 'परेश्च' में आचार्य को 'अनिष्ठायाम्' की अनुवृत्ति इष्ट होती तो योगविभाग नहीं कर आचार्य एक ही सूत्र पढते—'विपरिभ्यां च स्कन्देरनिष्ठायाम्'। परन्तु आचार्य ने जो योगविभाग किया, उससे बताते हैं कि 'परेश्च' सूत्र में 'अनिष्ठायाम्' का अन्वय नहीं होता है। {परेश्च}।

इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात् ८.३.७८
विभाषेटः ८.३.७९

इण्ग्रहणं किमर्थम्? * इण्ग्रहणं ढत्वे कवर्गनिवृत्त्यर्थम् * इण्ग्रहणं क्रियते। किं प्रयोजनम्? 'ढत्वे कवर्गनिवृत्त्यर्थम्'। कवर्गाड्ढत्वं मा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भूत्—पक्षीध्वम् यक्षीध्वम्। किं पुनरिदमिण्ग्रहणं प्रत्ययविशेषणम्—'इण उत्तरेषां षीध्वंलुङ्लिटां यो धकार' इति, आहोस्विद्धकारविशेषणम्—'इणः उत्तरस्य धकारस्य, स चेत् षीध्वलुङ्लिटां धकार' इति। कश्चात्र विशेषः? * तत्र प्रत्ययपरत्वे इटो लिटि ढत्वं परादित्वात् * तत्र प्रत्ययपरत्वे इटो लिटि ढत्वं न प्राप्नोति। लुलुविढ्वे लुलुविध्व इति। किं कारणम्? 'परादित्वात्'। इट् परादिः। वचनाद् भविष्यति। अस्ति वचने प्रयोजनम्। किम्? अलविढ्वम् अलविध्वम्।

सूत्रार्थ—'इणन्त अङ्ग से पर में विद्यमान षीध्वम्, लुङ् और लिट् के धकार को मूर्धन्यादेश (ढत्व) हो' ८.३.७८।।

सूत्रार्थ—'इण् से पर में जो इट् उससे पर में विद्यमान षीध्वम् लुङ् और लिट् के धकार को ढत्वविकल्प हो'। ८.३.७९।

'इण्कोः' ८.३.६७ का अधिकार है। उसी से 'इणः' पद का लाभ हो जाता है, पुनः सूत्र में 'इणः' का ग्रहण क्यों किया गया है? वह इसलिए कि 'कोः' की निवृत्ति हो जाये। 'इण्कोः' सम्पूर्ण का अधिकार आता है। 'कोः' की निवृत्ति का तरीका यही है प्रकृत सूत्र में 'इणः' पञ्चम्यन्त पद का ग्रहण किया जाये। कवर्ग की निवृत्ति का 'पक्षीध्वम्, यक्षीध्वम्' में ढत्व की निवृत्ति फल है।

जी, क्या यह इण्ग्रहण प्रत्यय का विशेषण है—इण् से उत्तर में विद्यमान षीध्वम्, लुङ् और लिट् के धकार को ढकार हो, अथवा धकार का विशेषण हैं—इण् से उत्तर में धकार को ढत्व हो, यदि वह षीध्वम्, लुङ् और लिट् का हो तो? इण् यदि प्रत्ययविशेषण हो, अथवा धकारविशेषण, उसमें **विशेष**=भेद क्या है? प्रश्न में विशेष यह है कि यदि प्रत्यय का विशेषण मानते हैं तो जहाँ लिट् को इट् का आगम है वहाँ आगामिग्रहण से आगम का ग्रहण होगा, अतः इट् भी लिट् का अवयव हुआ। लिट् ग्रहण से ही इट् का भी ग्रहण होगा, अतः इट् से पर में जो षीध्वम् और लिट् के धकार को ढत्वविकल्प विहित है, वह नहीं हो सकेगा। वार्तिक में लिड्ग्रहण उपलक्षणविधया षीध्वम् का भी बोध करायेगा, क्योंकि षीध्वम् को भी इट् सम्भव है। लिट् का उदाहरण देते हैं—'लुलुविढ्वे लुलुविध्वे'। इट् से पर में विकल्पि से ढत्व प्राप्त नहीं होने में क्या कारण है? वह यह कि इट् टित् होने से पर का आदि अवयव है। लिट् पर होगा, अतः इट् से पर में लिट् नहीं मिलेगा, जिसे आप

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ढत्व कर सकेंगे। अच्छा तो इस तरह सोचने पर 'विभाषेटः' यह वचन ही व्यर्थ हो जायेगा। यह वचन व्यर्थ न हो, अतः इसके आरम्भसामर्थ्य से इट् से पर में लिट् और षीध्वम् मानेंगे। इस वचन का अन्यत्र प्रयोजन है। कहाँ प्रयोजन है? 'अलविढ्वम्, अलविध्वम्' में ढत्वविकल्प का विधान कर वचन चरितार्थ है, अतः वचनसामर्थ्यात् 'लुलुविढ्वे, लुलुविध्वे' में ढत्वविकल्प नहीं कह सकते हैं।

अस्तु तर्हि धकारविशेषणम् * धकारपरत्वे षीध्वम्यननन्तरत्वादिटो विभाषाऽभावः * **धकारपरत्वे षीध्वम्यननन्तरत्वादिटो विभाषा न प्राप्नोति। लविषीध्वं लविषीढ्वम्। वचनाद् भविष्यति। अस्ति वचने प्रयोजनम्। किम्? लुलुविढ्वे लुलुविध्वे इति** * इण्ग्रहणस्य चाऽविशेषणत्वात् ष्यादिमात्रे ढत्वप्रसङ्गः * **इण्ग्रहणस्य चाऽविशेषणत्वात् ष्यादिमात्रे ढत्वं प्राप्नोति। पक्षीध्वं यक्षीध्वमिति। नैष दोषः। अङ्गादिति वक्ष्यामि** * अङ्गग्रहणाच्च दोषः * **अङ्गग्रहणाच्च दोषो भवति। इह न प्राप्नोति—उपदिदीयिध्वे उपदिदीयिढ्वे इति। यो ह्यत्राऽङ्गाऽन्त्य इण्न तस्मादुत्तर इट्। यस्माच्च चोत्तर इड् नाऽसावङ्गान्त्य इण्णिति।**

अच्छा तो यदि प्रत्ययविशेषण मानने में दोष है तो धकार का ही विशेषण मानिये तथा अर्थ कीजिये—'इणः उत्तरस्य धकारस्य ढः, स चेत् षीध्वंलुङ्लिटां धकारः'। इस तरह के अर्थ में षी शब्द का व्यवधान होने से पाक्षिक ढत्व प्राप्त नहीं हो सकेगा। जैसे 'लविषीध्वम् लविषीढ्वम्' की सिद्धि नहीं हो सकेगी, यह धकारविशेषणपक्ष में दोष है। जी, यह कोई दोष नहीं है। 'इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात्' सूत्र से उत्तर सूत्र 'विभाषेटः' में 'षीध्वम्' की अनुवृत्ति होती है। यहाँ इट् से पर में षीध्वम् के ध को ढत्व विकल्प विहित है। जहाँ कहीं भी षीध्वम् का ध इट् से पर में मिलेगा षी के व्यवधान होने पर ही मिलेगा। यदि षी का व्यवधान रहते ध् को ढत्व नहीं किया जाये तो आरम्भ व्यर्थ पड जायेगा। आरम्भ व्यर्थ न हो, इसके लिए वचनसामर्थ्यात् षीध्वम् के ध को ढत्व हो जायेगा। 'येन नाव्यवधानं तेन व्यवहितेऽपि' यह न्याय भी इस पक्ष में है। जी, आप वचनसामर्थ्यात्, 'लविषीध्वम्, लविषीढ्वम्' में ढत्व नहीं कह सकते हैं। इस वचन का अन्यत्र 'लुलुविढ्वे, लुलुविध्वे' में प्रयोजन है। यहाँ पर इट् से पर व्यवधानशून्य धकार है, उसको ढत्वविधान कर 'विभाषेटः' चरितार्थ है। मूल में 'अस्ति वचने प्रयोजनम्। किम्? 'लुलुविढ्वे लुलुविध्वे' के अनन्तर 'इतीण्ग्रहणस्य' इतना पाठ और होना चाहिये। यदि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इण्ग्रहण से प्रत्यय को विशेषित नहीं करके धकार को विशेषित करेंगे तो मध्य में षी का व्यवधान होने से इण् से पर में षीध्वम् का धकार नहीं है। यदि इण्ग्रहण से किसी को विशेषित नहीं करेंगे तो 'इण् से पर में षीध्वम्, लुङ्लिट् को ढत्व हो' यही अर्थ होगा। इस तरह 'अलविढ्वम्, अलविढ्वम्, लुलुविढ्वे, लुलुविध्वे' में इष्ट ढत्व सिद्ध होने पर भी 'पक्षीध्वम्, यक्षध्वम्' में षीध्वम्घटक ष् को ही अव्यवहितपरत्व होने से ढत्व होने लगेगा। परन्तु 'पक्षीध्वम्, यक्षीध्वम्' में हम इट्पद से षीध्वम्घटक ई को निमित्त मानेंगे तो उससे अव्यवहितपरत्वविशिष्ट ध को ढत्व होगा। परन्तु इस पक्ष में षीध्वम् में धकार का विशेषण इण् नहीं हो सकेगा जिससे सर्वत्र षीध्वम् के ध को ढत्व प्राप्त होगा। जी, षीध्वम् में सर्वत्र ध को ढ न हो, इसके लिए 'अङ्गात्' ऐसा पाठ करूँगा। अर्थ होगा इण्णन्त अङ्ग से पर में ध को ढत्व हो। इससे 'येन नाऽव्यवधानं तेन व्यवहितेऽपि' इस रीति से षी का व्यवधान होने पर भी 'च्योषीढ्वम्' में ढत्व हो जायेगा। जब कि 'पक्षीध्वम्, यक्षीध्वम्' में इण्णन्त अङ्ग से पर में षीध्वम् नहीं है, अतः ढत्व की आपत्ति नहीं रहेगी। जी, 'अङ्गात्' ऐसा पाठ करने पर भी 'उपदिदीयिध्वे, उपदिदीयिढ्वे' में लक्षण की अव्याप्ति होगी। 'उपदिदीयुट् ध्वम्' यहाँ पर अङ्ग का अन्त्य इण्घटक ई है, युट् से व्यवधान होने से उससे पर में इट् नहीं है। जिस युट् से पर में इट् है, वह अङ्ग का अन्त्य नहीं है।

यथेच्छसि तथाऽस्तु। अस्तु तावत् प्रत्ययविशेषणम्। ननु चोक्तं—'तत्र प्रत्ययपरत्वे इटो लिटि ढत्वं परादित्वात् लुलुविध्वे लुलुविढ्वे' इति। वचनाद् भविष्यति। ननु चोक्तम्—'अस्ति वचने प्रयोजनम्। किम्? अलविढ्वम् अलविध्व'मिति। यदेतस्मिन् योगे लिड्ग्रहणं तदनवकाशं तस्याऽनवकाशत्वाद् वचनाद् भविष्यति।

अच्छा तो आप जैसा चाहते हैं वैसा कर लीजिए। आप इण् को प्रत्ययविशेषण ही मान लीजिए। प्रत्ययविशेषण मानने में आप ने जो दोष दिया है—परादि होने से इट् से पर में लिट् में ढत्व होगा। जैसे—'लुलुविध्वे. लुलुविढ्वे', यह कोई दोष नहीं है। 'विभाषेटः' इस वचन के आरम्भसामर्थ्य से हो जायेगा। आप ने 'विभाषेटः' इस वचन के आरम्भ का प्रयोजनान्तर जो 'अलविध्वम्, अलविढ्वम्' दिया था, वह सावकाशत्व में हेतु नहीं हो सकेगा। लुङ् विभक्ति का आप ने रूप दिया है, परन्तु 'षीध्वंलुङ्लिटाम्' इस योग में जो लिड्ग्रहण किया है, वह अनवकाश है, उसके अनवकाश होने से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वचनसामर्थ्यात् 'लुलुविध्वे, लुलुविढ्त्वे' में ढत्व हो जायेगा।

अथवा पुनरस्तु-धकारविशेषणमिति। ननु चोक्तं—'धकारविशेषणत्वे षीध्वम्यननन्तरत्वादिटो विभाषाऽभावो लविषीध्वं लविषीढ्व'मिति। वचनाद् भविष्यति। ननु चोक्तम्—'अस्तिवचने प्रयोजनं, किं, लुलुविध्वे लुलुविढ्वे' इति। यदेतस्मिन् योगे षीध्वग्रहणं तदनवकाशं, तस्याऽनवकाशत्वाद् वचनाद् भविष्यति।

अथवा इण्ग्रहण को धकार विशेषण ही मानिये। धकारविशेषण मानने में आप ने 'इट् से पर में षीध्वम्घटक धकार को व्यवधानसहित होने से 'लविषीध्वम्, लविषीढ्वम्' में ढत्व हो सकेगा', ऐसा दोष दिया था, यह कोई दोष नहीं है। यहाँ भी इट् से पर में षीध्वम्घटक धकार को ढत्वविधानसामर्थ्य से ढत्व हो जायेगा। जो आपने 'वचनप्रामाण्यात्' पर 'अस्ति वचने प्रयोजनम्' कह कर उसका प्रयोजन 'लुलुविध्वे, लुलुविढ्त्वे' दिया था, यह मात्र लिट् का ही प्रयोजन था। 'षीध्वलुङ्लिटाम्' इस योग में जो षीध्वम्ग्रहण किया है, वह अनवकाश है, उसके अनवकाश होने से 'वचनप्रामाण्यात्' व्यवधान होने पर भी ढत्व हो जायेगा।

यदप्युच्यते—'इण्ग्रहणस्य चाऽविषेषणत्वात् ष्यादिमात्रे ढत्वप्रसङ्ग' इति। अङ्गादिति वक्ष्यामि। ननु चोक्तम्—'अङ्गग्रहणाच्च दोष' इति। पूर्वस्मिन् योगे यदङ्गग्रहणं तदुत्तरत्र निवृत्तम्। अथवा पूर्वस्मिन् योग इण्ग्रहणं प्रत्ययविशेषणमुत्तरत्र धकारविशेषणम्।

अथ च मैंने कहा था कि 'इण्ग्रहण को किसी का विशेषण नहीं रखेंगे', तो इस पर आप ने दोष दिया था कि 'ष्यादिमात्र में ढत्व प्राप्त होगा'। इस दोष का निवारण करने के लिए मैंने कहा था कि मैं 'अङ्गात्' ऐसा पाठ करूँगा', तो आप ने इस पर भी दोष दिया था कि 'अङ्गग्रहण में दोष होगा। अङ्गग्रहण करने से 'उपदिदीयिध्वे, उपदिदीयिढ्वे' में ढत्व नहीं हो सकेगा'। यह दोष भी अङ्गग्रहणपक्ष में नहीं रहेगा। वह इस तरह कि पूर्व में जो अङ्गग्रहण किया गया है, उसकी अनुवृत्ति यहाँ नहीं होगी, अपितु यहाँ मैं अतिरिक्त 'अङ्गात्' ऐसा पढूँगा। इससे अङ्गग्रहण की अनुवृत्ति नहीं होने से इण् से उत्तर में युट् है, और युट् से उत्तर में इट् है, अतः इट् से पर में ढत्वविकल्प हो जायेगा। अथवा पूर्वयोग 'इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात्' सूत्र में इण्ग्रहण प्रत्ययविशेषण है तथा उत्तर सूत्र 'विभाषेटः' में धकारविशेषण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। इस तरह दोनों सूत्रों का अर्थ होगा—इण् से पर में जो षीध्वम् लुङ् और लिट्सम्बन्धी धकार, उसको ढत्व हो। उत्तर सूत्र 'विभाषेटः' का अर्थ होगा—'इट् से पर में षीध्वम्, लुङ् और लिट् सम्बन्धी जो धकार उसको मूर्धन्यादेश हो'। इस तरह 'उपदिदीयिध्वे, उपदिदीयिढ्वे' में युट् से पर में जो इट्, उस से पर में धकार को ढत्वविकल्प सिद्ध हो जायेगा। {**विभाषेटः**}।

अग्नेः स्तुत्स्तोमसोमाः ८.३.८२

* अग्नेर्दीर्घात् सोमस्य * **अग्नेर्दीर्घात् सोमस्येति वक्तव्यम्। अग्नीषोमौ** * इतरथा ह्यनिष्टप्रसङ्गः * **इतरथा ह्यनिष्टं प्रसज्येत। अग्निसोमौ माणवकाविति। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। 'गौणमुख्ययोर्मुख्ये सम्प्रतिपत्तिः'। तद्यथा 'गौरनुबन्ध्योऽजोऽग्नीषोमीय' इति। न वाहीकोऽनुबध्यते। कथं तर्हि वाहीके वृद्ध्यात्त्वे भवतो—गौस्तिष्ठति गामानयेति? अर्थाश्रय एतदेवं भवति। यद्धि शब्दाश्रयं शब्दमात्रे तद् भवति। शब्दाश्रये च वृद्ध्यात्त्वे।** {अग्नेःस्तुस्स्तोमसोमाः}।

अग्नि शब्द से पर में स्तुत्, स्तोम और सोम के सकार को समास में मूर्धन्य आदेश हो। जैसे—अग्निष्टुत्! अग्निष्टोमः। अग्नीषोमौ। 'अग्नीषोमौ' में 'ईदग्नेः सोमवरुणयोः' ६.३.२७ सूत्र से अग्नि शब्द को ईत् आदेश है।

दीर्घ अग्नि शब्द से पर में सोम को मूर्धन्यादेश कहना चाहिये। जैसे— अग्निश्च सोमश्च=अग्नीषोमौ माणवकौः' में भी मूर्धन्यादेश होने लगेगा। तो क्या 'अग्नेर्दीघात् सोमस्य' यह वार्तिक पढना चाहिये? नहीं, इसकी आवश्यकता नहीं है। तो फिर विना पढे 'अग्निसोमौ माणवकौ' में षत्व निपेध कैसे करेंगे? जी, वहाँ 'गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्यसम्प्रत्ययः' से षत्व निषिद्ध हो जायेगा। 'अग्निसोमौ माणवकौ' में अग्नि और सोम नाम के दो बच्चों का बोध हो रहा है, अन्य अर्थ में शक्त होने से यहाँ अग्नि और सोम शब्द गौण हो गये, अतः शास्त्र मुख्य में प्रवृत्त होगा, गौण में नहीं। जैसे 'गौरनुबन्ध्योऽजोग्नीषोमीयः' में गौण होने से वाहीक गौः तथा वाहीक अज अनुबन्ध्य नहीं होता है, अपितु प्रधान होने से अग्नीषोमीय ही अनुबन्ध्य होता है। वैसे अग्निसोमौ इस नाम के दो माणवक होने से वह शब्द गौण है, अतः उसमें शास्त्रप्रवृत्ति नहीं होगी।

यदि शास्त्र मुख्य में ही प्रवृत्त होता है तो 'गौर्वाहीकः', 'गावौ वाहीकौ' आदि कैसे होते हैं? बाहर खडा आदमी गौः=बैल है, ऐसा कहने से गो शब्द

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गौण हो गया। उसको णिद्वद्, वृद्धि, आत्व आदि कार्य भी नहीं होने चाहिए, परन्तु होते हैं, वह कैसे? णिद्वद् आदि कार्य वर्णाश्रय है। शब्दाश्रय की कर्तव्यता में गौणमुख्यन्याय लगता है। परन्तु अर्थ को आश्रय मान कर होने वाला कार्य मुख्य में ही होता है, गौण में नहीं। वृद्धि और आत्व आदि कार्य शब्दाश्रय हैं, अतः वे गौण में भी होंगे। परन्तु 'अग्नेः स्तुत्स्तोमसोमाः' यह अर्थाश्रम है, अतः मुख्य में ही होंगे गौण में नहीं। {अग्नेः स्तुत्}।

मातुः पितुर्भ्यामन्यतरस्याम् ८.३.८५

*** सान्ताभ्यां च * सान्ताभ्यां चेति वक्तव्यम्। इहापि यथा स्याद्— मातुःष्वसा मातुःस्वसा। पितुःष्वसा पितुःस्वसा इति * मातुःपितुरिति सान्तग्रहणानर्थक्यमेकदेशविकृतस्याऽनन्यत्वात् * मातुः पितुरिति सान्त-ग्रहणमनर्थकम्। किं कारणम्? 'एकदेशविकृतस्यानन्यत्वात्'। 'एकदेशविकृतम् अनन्यवद् भवती'ति सान्तस्यापि भविष्यति।**

षष्ठी एकवचनान्तानुकरण मातुः पितुः से पञ्चमी द्विवचन भ्याम् विभक्ति है। पूर्व सूत्र 'मातृपितृभ्यां स्वसा' ८.३.८४ से स्वसा का अनुवर्तन होता है। षष्ठ्यर्थ में प्रथमा है। अर्थ होगा 'मातुः और पितुः शब्द से पर में स्वसृ शब्द के स को विकल्प से समास में षत्व हो'। 'मातुःपितुर्भ्याम्' में पञ्चमीनिर्देश होने से अव्यवहितपरत्वविशिष्ट को ही षत्व होने से स्वसृघटक पूर्व स को षत्व होगा, स्व से व्यवधान होने के कारण पर स को नहीं। जैसे—षत्वपक्ष में मातुःष्वसा, पितुःष्वसा। षत्वाभावपक्ष में 'मातुःस्वसा, पितुःस्वसा'।

सान्त मातुस् पितुस् शब्द से पर में स्वसृशब्द को षत्वविकल्प कहना चाहिये। इससे 'मातुःष्वसाः, मातुःस्वसा, पितुःष्वसा, पितुःस्वसा' यहाँ पर भी षत्व हो सकेगा। अन्यथा यदि रेफान्त से पर में षत्व कहेंगे तो यहाँ षत्व नहीं हो सकेगा। 'सान्ताभ्यां च' यह वार्तिक पढने की आवश्यकता नहीं है, अतः सूत्र में मातुः, पितुः को सान्त नहीं पढना चाहिये। अपितु रेफान्त ही मातुर् पितुर् शब्द पढिये। इससे एकदेश विकृतन्याय से सान्त का भी ग्रहण हो जायेगा।

यहाँ रेफनिर्देश से रेफ का विकार विसर्ग का बोध करना चाहिये। अन्यथा स्वसृ शब्द पर में रहते कहीं भी रेफ का श्रवण नहीं होगा। 'वा शरि' ८.३.३६ सूत्र से अन्यतरपक्ष में विसर्जनीय को विसर्जनीय विधान होगा, तथा पक्ष में 'विसर्जनीयस्य सः' ८.३.३४ सूत्र विसर्ग को सकारविधान होने से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सान्त अथवा विसर्गान्त ही मातुः पितुः शब्द मिलेगा। {मातुःपितुर्भ्यामन्यरस्याम्}।

उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः ८.३.८७

अस्तिग्रहणं किमर्थम्? इह मा भूद्—अनुसृतं विसृतमिति। नैतदस्ति प्रयोजनं—यत्क्रियायुक्तास्तं प्रति गत्युपसर्गसंज्ञे भवतो न चैतं सकारं प्रति क्रियायोगः। इहापि तर्हि न प्राप्नोति—अभिषन्ति विषन्तीति। न ह्यस्तिः क्रियावचनः। कः पुनराह 'नाऽस्तिः क्रियावचन' इति। क्रियावचनोऽस्तिः। आतश्च क्रियावचनः, व्यत्यनुषते—'कर्तरि कर्मव्यतिहारे' इत्यनेनात्मनेपदं भवति। कर्मव्यतिहारश्च कः? क्रियाव्यतिहारः। प्रादुःशब्दात्तर्हि मा भूत्। प्रादुःशब्दश्च नियतविषयः कृभ्वस्तियोग एव वर्तते। उपसर्गात्तर्हि स्यतेर्मा भूदिति। इष्यते उपसर्गात् स्यतेः षत्वम्। आतश्चेष्यते—एवं तर्हि ह्याह 'उपसर्गात् सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभतिस्थासेनयसेधसिचसञ्जस्वञ्जा'मिति। प्रादुःशब्दात्तर्हि स्यतेर्मा भूत्। प्रादुः शब्दश्च नियतविषयः कृभ्वस्तियोग एव वर्तते। इदं तर्हि प्रयोजनमिह मा भूत्—अनुसूतेरप्रत्ययः अनुसूः, अनुस्वोऽपत्यमानुसेयः।

उपसर्ग इण् और प्रादुस् शब्द से पर में विद्यमान अस् को य और अच् पर में रहते षत्व हो। जैसे—निषन्ति। प्रादुःषन्ति। निष्यात्। प्रादुष्यात्।

अकार का लोप होने पर अस्ति का सकार ही उपसर्ग और प्रादुस् शब्द से पर में सम्भव है, अन्य सकार नहीं मिलेगा। फिर तो आचार्य को 'उपसर्गप्रादुर्भ्यां यच्परः' इतना ही सूत्र पढना चाहिये था। अस्तिग्रहण क्यों किया है? अस्तिग्रहण का फल 'अनुसृतम्, विसृतम्' में षत्व की अप्राप्ति है। जी, अस्तिग्रहण का फल यह नहीं है। जिस क्रिया के साथ प्रादि का योग होता है, उसी क्रिया के प्रति वह उपसर्गसंज्ञक तथा गतिसंज्ञक होते हैं। 'अनुसृतम्, विसृतम्' में अनु और वि सकार के प्रति क्रियायोग नहीं है। यदि 'अनुसृतम्, विसृतम्' में अनु और वि को स के प्रति क्रियायोग नहीं मानेंगे तो, 'अभिषन्ति, विषन्ति' में भी आप स के प्रति अनु और वि को क्रियायोग नहीं मानेंगे। जी, अभिषन्ति, विषन्ति यह क्रियावाची नहीं है। आप ने कैसे कह दिया कि ये क्रियावाची नहीं हैं? यहाँ परिस्पन्दनरूपा क्रिया की प्रतीति होती है, अतः ये क्रियावचन है। ये क्रियावचन हैं, तभी तो इन को क्रियाव्यतिहार द्योत्य होने पर 'कर्तरि कर्मव्यतिहारे' १.३.१४ सूत्र से कर्ता में आत्मनेपद होता है, अतः कर्तव्यतिहार होने से 'व्यत्यनुषते' ऐसा कर्ता में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आत्मनेपद है। व्यत्यनुषते=व्यत्यनुभवन्ते। क्रियाव्यतिहार को कर्मव्यतिहार कहते हैं। अच्छा तो कुछ शब्द नियतविषय देखे जाते हैं। जैसे—कृ, भू और अस् धातु के योग में प्रादुस् शब्द नियतविषय है, अतः प्रादुस्शब्द से पर में किसी अन्य धातु का प्रयोग नहीं होने से पर अस् का ही सकार मिलेगा। उसके लिए सूत्र में अस्ग्रहण आवश्यक नहीं है। अच्छा तो अस्ग्रहण के अभाव में उपसर्ग से पर में स्यति को षत्व नहीं हो सकेगा, जब कि वहाँ षत्व इष्ट है, अतः उपसर्ग से पर में स्यति को षत्वविधानार्थ सूत्र में अस्ग्रहण करना चाहिये। जी, उसके लिए भी सूत्र में अस्ग्रहण नहीं कीजिये। 'उपसर्गात् सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभतिस्थासेनयसेधसिचसञ्जस्वञ्जाम्' ८.३.६५ में उपसर्ग से पर में स्यति को षत्व कहा है, उसी से षत्व हो जायेगा। अच्छा तो 'उपसर्गात् सुनोति' सूत्र से उपसर्ग से पर में स्यति को षत्व मानकर 'उपसर्गपादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः' सूत्र में यदि अस्ति का ग्रहण नहीं किया जाये तो प्रादुस्शब्द से पर में स्यति को इष्ट षत्व नहीं होगा। जी, यह कोई दोष नहीं है। प्रादुस्शब्द नियतविषय है। कृ भू और अस् के ही योग में प्रयुक्त होता है। सूत्र में अस्तिग्रहण के अभाव में भी नियतविषय होने से प्रादुस्शब्द से पर में अस् का ही स् मिलेगा अन्य का नहीं, अतः प्रादुस् शब्द के लिए भी अस्ति का पाठ नहीं करना चाहिये। अच्छा तो उसका प्रयोजन है—'आनुसेयः' में षत्व निषेध। 'अनुसूते इति अनुसूः' 'सत्सूद्विषद्रुहदुहयुजविदभिदच्छिदजितनी-राजामुपसर्गेऽपि क्विप्' ३.२.६१ से क्विप् प्रत्यय, 'चतुष्पाद्भ्यो ढञ्' ४.१.१३५ से ढञ्, 'ढे लोपोऽकद्रूवाः' ६.४.१४७ से अकार लोप होने पर सकार मात्र क्रियावाची है, उसको षत्वप्रसङ्ग होगा, अतः उसका वारण करने के लिए सूत्र में अस्तिग्रहण करना चाहिये। {उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिः}।

सुविनिर्दुर्भ्यः सुपिसूतिसमाः ८.३.८८

किमर्थं स्वपेः सूपिभूतस्य ग्रहणं क्रियते? *सुपेः षत्वं स्वपेर्मा भूत्* सुपेः षत्वमुच्यते तत्स्वपेर्मा भूदिति। सुस्वप्नः विस्वप्नगिति *विसुष्वापेति केन न* विसुष्वापेत्यत्र कस्मान्न भवति? *हलादिशेषान्न सुपिः* हलादिशेषे कृते नैष सुपिर्भवति। इदमिह संप्रधार्यं हलादिशेषः क्रियतां संप्रसारणमिति; किमत्र कर्तव्यम्? परत्वाद्धलादिः शेषः *इष्टं पूर्वं प्रसारणम्* इष्यते हलादिः शेषात् पूर्वं सम्प्रसारणम्। आतश्चेष्यते; एवं तर्हि ह्याह—'अभ्याससम्प्रसारणं हलादिः शेषाद् विप्रतिषेधेने'ति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'सु, वि, नि और दुर् से पर में विद्यमान सुपि, सूति और सम के सकार को षत्व हो'। जैसे—सुषुषुपतुः, सुषुषुपुः। सुपि रूप प्राप्त ञिस्वप् को ही षत्व हो यह कहने से सुसुष्वाप में षत्व नहीं होता है।

सूत्र में सुपि रूप को प्राप्त ञिस्वप् धा.पा.१०६८ का ग्रहण क्या किया गया है? वह इसलिए कि सुपिरूप को प्राप्त जो स्वप् धातु, उसी को षत्व हो, स्वप्‌रूप को न हो। जैसे—'सुस्वप्नः विस्वपनम्'। 'स्वपितृषोर्नजिङ्' ३. २.१७२ सूत्र से 'विस्वप्नग्' में नजिँङ् प्रत्यय है। स्वप्धातु से लिट्, तिप् पर में रहते उपसर्ग का योग होने पर 'विसुष्वाप' रूप होगा। यहाँ 'स्वप् स्वप्' द्वित्व होकर हलादिशेष से पूर्व ही 'लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्' ६.१.१७ से अभ्यास को सम्प्रसारण है। एकदेशविकृतन्याय से 'सु' को सुप्-रूप मान कर वि के योग में षत्व क्यों नहीं होता है? जी, हलादिशेष कर देने पर 'सु' शेष रहता है। वह सुप्-रूप नहीं है? अतः षत्व नहीं होता है। अच्छा 'विस्वप् स्वप्' ऐसी स्थिति में हलादिशेष भी प्राप्त है तथा अभ्यास को सम्प्रसारण भी प्राप्त है। यहाँ यह निश्चय करना चाहिये कि हलादिशेष हो, अथवा सम्प्रसारण हो? यहाँ क्या करना चाहिये? हलादिशेष से पूर्व प्रकृत में सम्प्रसारण इष्ट है, अतः इष्ट होने से हलादिशेष का बाध कर पहले सम्प्रसारण ही होगा। 'हलादिः शेषात्' यह ल्यब्लोप में पञ्चमी है। 'तं हलादिशेषं प्रबाध्य' ऐसा अर्थ समझना चाहिये। इस बात को हम ऐसे कहेंगे—'हलादि शेष का बाध कर **विप्रतिषेधेन**=पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा अभ्यास को सम्प्रसारण होगा। 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' १.४.२ तथा 'विप्रतिषेधेऽपरं कार्यम्' ऐसा भी पदच्छेद करके पूर्वविप्रति-षेध तथा परविप्रतिषेध, दोनों तरह का अर्थ लिया जाता है। कहाँ पूर्वविप्रतिषेध लेंगे तथा कहाँ परविप्रतिषेध लेंगे? तो इस विषय में आचार्य का व्याख्यान अन्तिम होगा। आचार्य कहते हैं—'सुसुष्वाप' में इष्ट होने से, **विप्रतिषेधेन**=पूर्वविप्रतिषेध के द्वारा हलादिशेष का बाध कर अभ्यास को सम्प्रसारण करेंगे।

एवं तर्हि 'स्थादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्ये'त्येतस्मान्नियमान्न भविष्यति * स्थादीनां नियमो नाऽत्र प्राक्सितादुत्तरः सुपिः * **प्राक् सितसंशब्दनात् स नियमः, उत्तरश्च सुपिः पठ्यते। एवं तर्ह्यर्थवद्ग्रहणेनानर्थकस्येत्येवमेतस्य न भविष्यति** * अनर्थके विषुषुपुः * **यद्यर्थवतो ग्रहणं 'विषुषुपु'रिति न सिध्यति। नैष दोषः। कथम्?** * सुपिभूतो द्विरुच्यते * **सुपिभूतस्य द्विर्वचनम्।**

प्राक्सितादड्व्यवायेऽपि' ८.३.६३ सूत्र में 'उपसर्गात् सुनोतिसुवतिस्यति'-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

घटक स्था धातु से प्रारम्भ कर 'परिनिविभ्यः सेवसितसय' ८.३.७० सूत्रघटक सित शब्द से पूर्व 'सेव'पर्यन्त दस धातुओं के अभ्यास तथा अभ्यास से व्यवधान होने पर भी उत्तर को 'स्थादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्य' ८.३.६४ से नियम के द्वारा षत्व का विधान कर सुनोति, सुवति, स्यति का ही व्यावर्तन किया जाता है। परन्तु सित से उत्तर में सुपिग्रहण है, अतः सुप् का निवर्तन नहीं होगा। अच्छा तो 'अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्य ग्रहणम्' इस परिभाषा से सुप् अर्थवान् के ग्रहण में अनर्थक 'सु' का ग्रहण नहीं हो सकेगा, अतः 'सुसुष्वाप' में अभ्यास 'सु' का सुप्ग्रहण से ग्रहण न हो सकने के कारण 'सुविनिर्दुर्भ्यः सुपिसूतिसमाः' से षत्व की आपत्ति नहीं होगी। यदि 'विसुसुष्वाप' में अभ्यास 'सु' को अनर्थक मानेंगे तो 'विषुषुपुः' में भी अभ्यास 'सु' को निरर्थक होने से इष्ट षत्व सिद्ध नहीं हो सकेगा। जी, 'विषुषुपुः' में षत्व का अप्राप्तिरूप दोष नहीं आयेगा। वह कैसे? यहाँ 'स्वप् स्वप्' द्वित्व न होकर 'सुप् सुप्' ही द्वित्व है। पहले सम्प्रसारण होगा तथा बाद में द्विर्वचन। 'सुसुष्वाप' में अभ्यास 'सु' के निरर्थक होने से षत्व की आपत्ति निरस्त हो गयी।

* सुपेः षत्वं स्वपेर्मा भूद् विसुष्वापेति केन न।
हलादिःशेषान्न सुपिरिष्टं पूर्वं प्रसारणम्।।१।।
स्थादीनां नियमो नाऽत्र प्राक्सितादुत्तरः सुपिः।
अनर्थके विषुषुपुः सुपिभूतो द्विरुच्यते।।२।।*

कारिकार्थ—सुप् रूप को प्राप्त ञिष्वप् शये धा.पा.१०६८ को सु, वि, निर् और दुर् से पर में षत्व कहा गया है। वह 'विसुष्वाप' में अभ्यास 'सु' को क्यों नहीं होता है? अभ्यास में हलादिशेष को बाध कर पहले सम्प्रसारण इष्ट है, पश्चात् हलादिशेष होने से 'सु' अनर्थक होगा, अतः वि से पर में 'विसुष्वाप' में षत्व नहीं होता है।

'स्थादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्य' ८.३.६४ सूत्र से नियम के द्वारा 'सुपि' का व्यावर्तन नहीं होगा; क्योंकि सित् शब्द से पर में सुप् पढा गया है। 'विषुषुपुः' में 'स्वप् स्वप्' द्वित्व नहीं किया गया है, अपितु पहले सम्प्रसारण करके 'सुप् सुप्' द्वित्व किया गया है, अतः अभ्यास सु निरर्थक नहीं है। {सुविनिर्दुर्भ्यः सुपिसूतिसमाः}।

कपिष्ठलो गोत्रे ८.३.९१

* कपिष्ठलो गोत्रप्रकृतौ * कपिष्ठलो गोत्रप्रकृताविति वक्तव्यम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'गोत्र' इत्युच्यमाने इहैव स्यात्—कापिष्ठलिः। इह न स्यात्—कपिष्ठलः कापिष्ठलायनः। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। नैवं विज्ञायते 'कपिष्ठल इति गोत्रे निपात्यत' इति। कथं तर्हि? 'गोत्रे यः कपिष्ठलशब्दस्तस्य षत्वं निपात्यते यत्र वा तत्र वे'ति। {कपिष्ठलो गोत्रे}।

सूत्र में गोत्र शब्द से पारिभाषिक पौत्रप्रभृति गोत्र लिया है, अतः जहाँ पर गोत्रप्रत्यय है, वहाँ कपिशब्द से पर में स्थलघटक सकार को षत्व होना चाहिये। परमप्रकृति में अथवा युवा अर्थ वाच्य होने पर यह नहीं होगा, अपितु जिस से गोत्र प्रवर्तित है, अर्थात् गोत्र का जो कारण है, उस प्रत्यय के होने पर भी कपिशब्द से पर में स्थल को षत्व होगा। यदि केवल 'गोत्र' ऐसा कहेंगे तो 'कापिष्ठलिः' में ही गोत्र अर्थ में इञ् प्रत्यय रहते षत्व हो सकेगा। परन्तु इञन्त से युवापत्य अर्थ में जहाँ 'यञिञोश्च' ४.१.१०१ से फक् प्रत्यय है, वहाँ 'कापिष्ठलायनः' में षत्व नहीं हो सकेगा, वहाँ भी षत्व हो, इसके लिए 'कपिष्ठलो गोत्रप्रकृतौ' इस वार्तिक का पाठ करना चाहिये। जी, यह वार्तिक पढने की आवश्यकता नहीं है। यह नहीं कहा जा रहा है कि गोत्र अर्थ में 'कपिष्ठल' यह निपात किया जा रहा है। तब क्या कहा जा रहा है? यह कहा जा रहा है कि गोत्र अर्थ में शक्त जो कपिष्ठल शब्द, उसको निपातन से षत्व कहा जा रहा है, वह चाहे कपिष्ठल में हो, अथवा 'कापिष्ठलिः' में हो, अथवा 'कापिष्ठलायनः' में हो। गोत्र अर्थ में कपिष्ठल शब्द जहाँ कहीं भी होगा, कपि शब्द से पर में उसके सकार को निपातन से षत्व कहेंगे। {कपिष्ठलो गोत्रे}।

अम्बाम्बगोभूमिसव्यापद्वित्रिकुशेकुशङ्क्वङ्गुमञ्जिपुञ्जि-परमेबर्हिर्दिव्यग्निभ्यः स्थः ८.३.९७

'स्थ' इति किमिदं धातुग्रहणमाहोस्विद् रूपग्रहणम्? किं चातः? यदि धातुग्रहणं—'गोस्थान'मित्यत्र प्राप्नोति। अथ रूपग्रहणं सव्येष्ठाः परमेष्ठी सव्येष्ठा सारथिरित्यत्र न प्राप्नोति। यथेच्छसि तथाऽस्तु। अस्तु तावद्धातुग्रहणम्। कथं गोस्थानमिति? सवनादिषु पाठः करिष्यते।

'क'प्रत्ययान्त का अनुकरण 'स्थः' है। षष्ठ्यर्थ में प्रथमा है। सूत्रार्थ है—'अम्ब, आम्ब, गो, भूमि, सव्य, अप, द्वि, त्रि, कुशे, कु, शङ्कु, अङ्गु, मञ्जि, पुञ्जि, परमे, बर्हिस्, दिवि और अग्नि ये अठारह परिगणित हैं। 'इन से पर में स्थ के स को षत्व हो'। इनमें से कुछ को इण् और कवर्ग से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पर में स्थ का अभाव है, तथा कुछ को 'सात्पदाद्योः' ८.३.१११ से निषेध प्राप्त होने पर सूत्र का आरम्भ है। उदाहरण क्रम से—अम्बष्ठः, आम्बष्ठः, गोष्ठः, भूमिष्ठः, सत्येष्ठः=निपातन से अथवा 'हलदन्तात्सप्तम्याः' ६.३.६ से सप्तमी का अलुक् है। अपष्ठः। द्वाभ्यां तिष्ठीति द्विष्ठः, त्रिभिः तिष्ठतीति त्रिष्ठः। कुशेष्ठः=सप्तमी का अलुक् निपातन से है। कुष्ठः, शङ्कुष्ठः, अङ्गुष्ठः, मञ्जिष्ठः, पुञ्जिष्ठः, परमेष्ठः=निपातन से अथवा 'हलदन्तात् सप्तम्याः' से सप्तमी का अलुक् है। बर्हिष्ठः, दिविष्ठः=यहाँ भी निपातन से अथवा 'हलदन्तात् सप्तम्याः' से सप्तमी का अलुक् है। अग्निष्ठः।

'स्थः' यह षष्ठीनिर्देश से धातु का ग्रहण है, अथवा प्रथमानिर्देश से रूप का ग्रहण है? यदि धातु का ग्रहण मानेंगे तो 'गोस्थानम्' में भी स्था धातु है, उसको भी षत्व होना चाहिये? यदि रूप का ग्रहण मानेंगे तो 'सव्येष्ठाः परमेष्ठी सव्येष्ठा सारथिः' यहाँ पर स्थ रूप नहीं है, अपितु स्था और ष्ठी रूप हैं, अतः षत्व नहीं होना चाहिये। आप जैसा चाहते हैं, वैसा मान लीजिये। स्था धातु का ग्रहण होने में आप ने कहा कि 'गोस्थानम्' में षत्व की अतिव्याप्ति होगी, तो उसकी निवृत्ति के लिए 'न रपरसृपिसृजिस्पृशिस्पृहिसवनादीनाम्' ८.३.११० सूत्र में पठित सवनादिगण में पाठ कर देंगे। इससे 'गोस्थानम्, भूमिस्थानम्' में षत्व की आपत्ति समाप्त हो जायेगी।

अथवा पुनरस्तु रूपग्रहणम्। कथं सव्येष्ठाः परमेष्ठी सव्येष्ठा सारथिरिति? * स्थःस्थास्थिन्स्थॄणामिति वक्तव्यम् *

अथवा 'स्थ' यह स्वरूप का ही ग्रहण कीजिये। स्वरूप के ग्रहण में आपने 'सव्येष्ठाः परमेष्ठी सव्येष्ठा सारथिः' में जो अव्याप्ति दी थी, वह नहीं रहेगी। उसके लिए हम सूत्र में 'स्थः' की जगह 'स्थःस्थास्थिन्स्थॄणाम्' ऐसा पाठ कर लेंगे। स्था शब्द क्विबन्त है। 'ईत्त्वे वकारप्रतिषेधः' इस वचन से प्रत्ययलक्षण के द्वारा ईत्त्व नहीं होता है। स्थिन् यह इन्-प्रत्ययान्त है। स्थृ-शब्द ऋप्रत्ययान्त है {अम्बाम्बगोभूमि}।

सुषामादिषु च ८.३.९८

* अविहितलक्षणमूर्धन्यःसुषामादिषु * अविहितलक्षणमूर्द्धन्यः सुषमादिषु द्रष्टव्यः।

सुषमादिगणपठित शब्दों में इण् और कवर्ग से पर में स को षत्व कहना चाहिये। जैसे—'शोभनं साम यस्य असौ सुषामा। शोभनः सन्धिः यस्य असौ सुषन्धिः'।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सुषामादिगणपठित शब्दों में अविहितलक्षण मूर्धन्य समझना चाहिये। अर्थात् किसी भी शास्त्र से जिनको मूर्धन्य विहित नहीं है वे ही शब्द सुषामादिगण में पढे गये हैं। {सुषामादिषु च}।

ह्रस्वात्तादौ तद्धिते ८.३.१०१

* ह्रस्वात्तादौ तिङ्प्रतिषेधः * **ह्रस्वात्तादौ तिङः प्रतिषेधो वक्तव्यः। भिन्द्युस्तराम्। छिन्द्युस्तरामिति।** {ह्रस्वात्तादौ तद्धिते}।

'तादि तद्धित प्रत्यय पर में होने पर ह्रस्व इण् से पर सकार को षत्व हो'। जैसे 'निर्गतो वर्णाश्रमेभ्यो निष्ट्यः'=वर्णाश्रमो से बहिष्कृत चाण्डाल आदि। गत अर्थ वाच्य होने पर निस् से पर में 'निसो गते' वार्तिक से त्य तद्धित प्रत्यय विहित है।

ह्रस्व इण् से पर में तादि परे रहते षत्व की कर्तव्यता में तिङ् का प्रतिषेध कहना चाहिये। इस से 'भिन्द्युस्तराम् छिन्द्युस्तराम्', यहाँ तिङन्त से तर प्रत्यय तादि तद्धित है। तिङ् से पर में षत्वप्रतिषेध कहने से 'भिन्द्युस्तराम्, छिन्द्युस्तराम्' में षत्व नहीं हुआ। {**ह्रस्वात्तादौ तद्धिते**}।

स्तुतस्तोमयोश्छन्दसि ८.३.१०५

* स्तुतस्तोमयोश्छन्दस्यनर्थकं वचनं पूर्वपदादिति सिद्धत्वात् * **स्तुतस्तोमयोश्छन्दसि वचनमनर्थकमित्येव। किं कारणम्? 'पूर्वपदादिति सिद्धत्वात्'। पूर्वपदादित्येव सिद्धम्।** {स्तुतस्तोमयोः}।

'स्तुत और स्तोम शब्द पर में रहते स् को षत्व हो'। यह सूत्र वेदविषयक है। यहाँ भी 'इण्कोः' का अधिकार है। उदाहरण जैसे—नृभिष्टुतस्य। नृभिः स्तुतस्य। गोष्टोमम्। गोस्तोमम्।

'स्तुतस्तोमयोश्छन्दसि' यह सूत्र नहीं पढना चाहिये। इस सूत्र का सम्पूर्ण लक्ष्य 'पूर्वपदात्' ८.३.१०६ सूत्र से ही सिद्ध है, अतः यह सूत्र प्रपञ्चार्थ है। {स्तुतस्तोमयोश्छन्दसि}।

सनोतेरनः ८.३.१०८

* सनोतेरन इति च * **सनोतेरन इति च। किम्? वचनमनर्थकमित्येव। किं कारणम्? पूर्वपदादिति सिद्धत्वात्। पूर्वपदादित्येव सिद्धम्। नियमार्थं तर्हीदं वक्तव्यम्—'सनोतेरनकारस्यैव यथा स्यादिह मा भूत्—गोसनि'मिति**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

*** सनोतेरन इति नियमार्थमिति चेत् सवनादिकृतत्वात् सिद्धम् * सनोतेरन इति नियमार्थमिति चेत्सवनादिकृतत्वात् सिद्धम् । सवनादिषु पाठः करिष्यते ।**

'अन्नन्त 'षणू सम्भक्तौ' धा.पा.४६४ के सकार को इण् कवर्ग से पर में षत्व हो। जैसे—'गोषा इन्द्रो नृषा असि'। यहाँ गोषा और नृषा अन्नन्त षण् धातु का 'षा' रूप वाला है। 'जनसनखनक्रमगमो विट्' ३.२.६७ सूत्र से विट् प्रत्यय तथा 'विडवनोरनुनासिकस्याऽऽत्' ६.४.४१ सूत्र से सन् के न को आत्त्व होकर 'गोसा, नृसा' हुआ। 'सनोतेरनः' से षत्व होकर 'गोषा, नृषा' रूप है।

'गोषा, नृषा' में 'पूर्वपदात्' ८.३.१०६ सूत्र से ही षत्व सिद्ध हो जायेगा, अतः 'सनातेरनः' इस सूत्र का आरम्भ व्यर्थ है। अच्छा तो 'पूर्वपदात्' ८.३.१०६ से षत्व सिद्ध होने पर आचार्य ने 'सनोतेरनः' सूत्र का आरम्भ किया है, अतः व्यर्थ पड कर यह सूत्र नियम करेगा अनूशब्दान्त जो षणू सम्भक्तौ धा.पा.४६४ धातु, उसी के स को षत्व हो, जो अनुशब्दान्त षणु दाने धा.पा.१४६४ उसके स को षत्व न हो। इस तरह के नियम का व्यावर्त्य 'गोसनिः' में षत्व निषेध है। 'गोसनिः' में 'छन्दसि वनसवनरक्षिमथाम्' ३.३.२७ से इन् प्रत्यय है।

यदि 'सनोतेरनः' सूत्र को नियमार्थक मान कर 'गोसनिः' में षत्व का निषेध करेंगे तो षणु दाने धा.पा.१४६४ के स को षत्वविधान करने के लिए हम उसका पाठ 'न रपरसृपिसृजिस्पृशिस्पृहिसवनादीनाम्' ८.३.११० इस सूत्र के सवनादिगण में करेंगे, जिससे षणु दाने १४६४ को भी षत्व का निषेध हो सके। इससे 'सनोतेरनः' को कुछ भी व्यावर्त्य फल नहीं होने से नियम सूत्र नहीं माना जायेगा, जिससे उसका वैयर्थ्य हो गया है; उसका सार्थक्यउपपादन के लिए पुनः दूसरी कोटि देते हैं—

*** सन्नर्थे तु * सन्नर्थे त्विदं वक्तव्यम्। सिसनिषति। एतदपि नास्ति प्रयोजनम्। 'स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासाद्' इत्येतस्मान्नियमान्न भविष्यति। ण्यर्थे तर्हीदं वक्तव्यं—सिसानयिषतीति। कथं पुनरण्यन्तस्य प्रतिषेधे ण्यन्तः शक्यो विज्ञातुम्? सामर्थ्यात्। 'अण्यन्तस्य प्रतिषेधवचने प्रयोजनं नास्ती'ति कृत्वा ण्यन्तो विज्ञास्यते। अथवाऽयमस्त्यण्यन्तः सिसनिषतेरप्रत्ययः—सिसनीः। {सनोतेरनः}।**

'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा' ३.१.८ सूत्र से इच्छार्थक सन्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रत्यय है, तदन्त को षत्वविधान का नहीं होना ही सूत्र व्यावर्त्य होगा। जैसे—'सिसनिषति'। यह भी नियम का व्यावर्त्य नहीं है। 'स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासात्' ८.३.६१ को नियम माना है—'षत्वभूत सन् पर में रहते षत्व हो तो स्तौति और ण्यन्त को ही हो, अन्य को नहीं'। इस नियम से ही सिसनिषतिघटक स का षत्वनिषेध सिद्ध हो जायेगा। अच्छा तो 'सनोतेरनः' इस सूत्र के नियामक होने पर व्यावर्त्य णिजन्त को मानेंगे। जैसे—'सिसानयिषति'। जी, सूत्रकार ने 'सनोतेरनः' यह अणिजन्त उच्चारण किया है। आप उस से णिजन्त का बोध कैसे कर सकते हैं? सूत्रारम्भसामर्थ्य से नियमसूत्र का व्यावर्त्य णिजन्त मानेंगे। अणिजन्त के प्रतिषेध में सूत्र का प्रयोजन नहीं है तथा कोई फल नहीं बन रहा है। आचार्य ने सूत्र का आरम्भ किया है, अतः आरम्भसामर्थ्य से इसका व्यावर्त्य णिजन्त ही होगा। अथवा 'सिसनिषति' से क्विप् अप्रत्यय तथा उसका लोप कर 'सिसनीः' में भी षत्वनिषेध व्यावर्त्य फल होगा। यहाँ उद्योतकार ने 'गोषणिः' ऐसा षत्वभूत रूप माना है, वह उचित नहीं है, क्योंकि षत्वनिषेध के लिए ही सवनादिगण में 'गोसनिः' का पाठ है।

न रपरसृपिसृजिस्पृशिस्पृहिसवनादीनाम् ८.३.११०

किमर्थं सवनादिष्वश्वसनिशब्दः पठ्यते? * षत्वबाधनार्थम् * 'पूर्वपदा'दिति षत्वं प्राप्नोति तद्बाधनार्थम्। नैतदस्ति प्रयोजनम्, इणन्तादिति तत्रानुवर्त्तते। अनिणन्तश्चायं, नैव प्राप्नोति नाऽर्थः प्रतिषेधेन। एवं तर्हि सिद्धे सति यत्सवनादिष्वश्वसनिशब्दं पठति तज्ज्ञापयत्याचार्योऽनिण्णन्तादपि षत्वं भवती'ति। किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनम्? जलाषाहं माष इत्येतत् सिद्धं भवति। अथ वैकदेशविकृतार्थोऽयमारम्भः। अश्वषा इति।

'रः परो यस्मादसौ रपरः'। र हो पर में जिससे, ऐसा र तथा सृप, सृज, स्पृश, स्पृह और सवनादिगणपठित शब्दों के स को षत्व नहीं होता है।

सवनादिगण में अश्वसनिशब्द क्यों पढा गया है? वह इसलिए कि 'पूर्वपदात्' ८.३.१०६ से उसको षत्व प्राप्त होगा, उसका बाध करने के लिए सवनादिगण में अश्वसनिशब्द का पाठ किया गया है। जी!, इस पाठ का प्रयोजन षत्वनिषेध नहीं है। पूर्वपदात्' ८.३.१०६ सूत्र में 'इण्कोः' का अधिकार होने से पूर्वपद अश्व इणन्त नहीं है, अतः सनि के स को षत्व की प्राप्ति नहीं हो सकेगी, अतः उसके लिए निषेध का भी कोई प्रयोजन नहीं है। अच्छा तो इणन्त से पर में न होने से षत्व की प्राप्ति नहीं है, फिर भी आचार्य ने सवनादिगण में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अश्वसनि शब्द का पाठ षत्व का बाध करने के लिए किया है, वह व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा—'कहीं पर अनिणन्त से पर में भी षत्व होता है'। इस ज्ञापन का क्या फल है? इस ज्ञापन का फल यह है कि 'जलाषाहं माषः' में षत्व की सिद्धि होती है। 'मानं माः, मां सनाति' इस विग्रह में 'जनसनखनक्रमगमो विट्' ३.२.६७ सूत्र से विट् प्रत्यय, 'विड्वनोरनुनासिकस्याऽऽत्' ६.४.४१ से आत्त्व, ङस् विभक्ति पर में रहते 'आतो धातोः' ६.४.४० आल्लोप होकर 'सनोतेरनः' ८.३.१०८ से षत्व प्राप्त है। अथवा 'एकदेशविकृतमनन्यवद् भवति', इस प्रयोजन की सिद्धि के लिए यह आरम्भ है। यह ज्ञापन अश्वशब्द-विषयक ही है। अनिण्णन्त अश्वशब्द से पर में भी षत्व होता है। {न रपर-}।

सिचो यङि ८.३.११२

इस में पूर्व सूत्र ' न रपर-' ८.३.११० से निषेधवचन 'न' पद की अनुवृत्ति होती है।

सूत्रार्थ—'यङ् पर रहते सिच् के सकार को षत्व न हो'। जैसे—'निसेसिच्यते'। यहाँ 'उपसर्गात् सुनोतिसुवतिस्यति-' ८.३.६५ सूत्र से षत्व प्राप्त है, उसका निषेध किया गया है।

अथोपसर्गादिति या प्राप्तिः-भवितव्यं तस्याः प्रतिषेधेनोताहो न? न भवितव्यम्। किं कारणम्? उपसर्गात् षत्वं प्रतिषेधविषये आरभ्यते, तद्यथैव पदादिलक्षणं प्रतिषेधं बाधते एवं 'सिचो यङी'त्येतमपि बाधते। न बाधते। किं कारणम्? येन नाऽप्राप्ते तस्य बाधनं भवति। न चाऽप्राप्ते पदादिलक्षणे प्रतिषेधे उपसर्गात् षत्वमारभ्यते, 'सिचो यङी'त्येतस्मात् पुनः प्राप्ते चाऽप्राप्ते च। अथवा 'पुरस्तादपवादा अनन्तरान् विधीन् बाधन्ते' इत्येवमुपसर्गात् षत्वं पदादिलक्षणं प्रतिषेधं बाधिष्यते। 'सिचो यङी'त्येतन्न बाधिष्यते। तस्मादभिसेसिच्यते इति भवितव्यम्।

अब भाष्यकार पूर्वभाष्य उठाते हैं—'उपसर्गात् सुनोतिसुवति--' ८.३.६५ सूत्र से जो षत्व प्राप्त है, उसको 'सिचो यङि' से निषेध होगा, या नहीं? उसका निषेध नहीं होगा। इसका क्या कारण है? 'सिचो यङि' सूत्र से उपसर्ग से पर में षत्व का निषेध प्राप्त है। उस निषेध को बाधने के लिए 'उपसर्गात् सुनोतिसुवति--' ८.३.६५ सूत्र में सिच् को षत्व का विधान किया गया है। 'उपसर्गात् सुनोतिसुवति--' ८.३.६५ जैसे 'सात्पदाद्योः' ८.३.१११ से प्राप्त प्रतिषेध का बाध करता है, वैसे 'सिचो यङि' से प्राप्त प्रतिषेध को भी बाध

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लेगा। जी, 'उपसर्गात् सुनोतिसुवति--' ८.३.६५ यह 'सिचो यङि' से प्राप्त प्रतिषेध का बाध नहीं करेगा। इसका क्या कारण है? इसका क्या कारण है? इसका कारण यह है कि 'येन नाऽप्राप्ते यो विधिरारभ्यते स तस्य बाधको भवति'='जिसके अवश्यम्प्राप्त होने पर जिस विधि का आरम्भ होता है, वह उसका बाधक होता है'। 'सात्पदाद्योः' ८.३.१११ के अवश्यम्प्राप्त होने पर 'उपसर्गात् सुनोतिसुवति--' ८.३.६५ सूत्र का आरम्भ नहीं, है, अतः 'उपसर्गात् सुनोतिसुवति--' ८.३.६५ सूत्र पदादिलक्षणप्रतिषेध का बाध नहीं कर सकेगा। परन्तु 'सिचो यङि' से प्रतिषेध प्राप्त होने पर तथा यङ् से इतर में निषेध अप्राप्त होने पर 'उपसर्गात् सुनोति-' ८.३.६५ सूत्र का आरम्भ है, अतः 'सिचो यङि' का भी बाध 'उपसर्गात् सुनाति-' ८.३.६५ से नहीं हो सकेगा। अथवा 'पुरस्तादपवादा अनन्तरान् विधीन् बाधन्ते नोत्तरान्' इस परिभाषा से 'उपसर्गात् सुनोति-' ८.३.६५ सूत्र 'सात्पदाद्योः' के निषेध को ही बाधेगा। 'सिचो यङि' के निषेध को नहीं, अतः 'अभिसेसिच्यते' में 'सिचो यङि' से निषेध होना ही चाहिये। {सिचो यङि}।

सोढः ८.३.११५

किमर्थं सहिः सोढभूतो गृह्यते? यत्रास्यैतद् रूपं तत्र यथा स्यादिह मा भूत्—परिषहत इति। {सोढः}।

सूत्रार्थ—'सोढ-रूप को प्राप्त षह मर्षणे धा.पा.८५१ के स को षत्व न हो'। जैसे—'परिसोढा'।

अब भाष्यकार पूर्वपक्ष करते हैं—सूत्र में सोढ-रूप को प्राप्त षह मर्षणे धा.पा.८५१ धातु का ग्रहण क्यों किया गया है? वह इसलिए कि षह मर्षणे धा.पा.८५१ धातु जहाँ सोढ-रूप को प्राप्त है, वहीं पर निषेध हो। जैसे—परिसोढा। परन्तु जहाँ सोढ-रूप को प्राप्त नहीं है, वहाँ निषेध न हो। जैसे—'परिषहते'। {सोढः}।

स्तम्भुसिवुसहां चङि ८.३.११६

*** स्तम्भुसिवुसहां चङ्युपसर्गात् * स्तम्भुसिवुसहां चङ्युपसर्गादिति वक्तव्यम्। किं प्रयोजनम्? उपसर्गाद् या प्राप्तिस्तस्याः प्रतिषेधो यथा स्याद्, अभ्यासाद् या प्राप्तिस्तस्याः प्रतिषेधो मा भूदिति। पर्यसीषहत्। {स्तम्भुसिवुसहां}।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूत्रार्थ—'स्तम्भु, सिवु और सह के सकार को चङ् पर रहते षत्व न हो'।

यहाँ 'स्तम्भुसिवुसहां चङि' के स्थान पर 'स्तम्भुसिवुसहां चङ्युपसर्गात्' ऐसा सूत्र करना चाहिये। अर्थात् उपसर्गनिमित्तक जो षत्वप्राप्ति, उसी का निषेध हो, अभ्यासनिमित्तकषत्व का निषेध न हो। जैसे—'पर्यसीषहत्'। {स्तम्भुसिवुसहां}।

सुनोतेः स्यसनोः ८.३.११७

सनि किमुदाहरणम्? सुसूषति। नैतदस्ति प्रयोजनम्। 'स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासा'दित्येतस्मान्नियमान्न भविष्यति। इदं तर्हि—अभिसुसूषति। एतदपि नास्ति प्रयोजनम्। 'स्थादिष्वभ्यासेन चाऽभ्यासस्ये'त्येतस्मान्नियमान्न भविष्यति। इदं तर्हि प्रयोजनम्—अभिसुसूतेरप्रत्ययः—अभिसुसूः। विसुसूः। निसुसूः। {सुनोतेः स्यसनोः}।

सूत्रार्थ—'षुञ् अभिषवे धा.पा.१२४७ के सकार को स्य और सन् पर में रहते षत्व नहीं हो'। जैसे—'विसोष्यति'।

अब भाष्यकार पूछते हैं—सन् पर में रहते षुञ् धातु का क्या उदाहरण है? उत्तर देते हैं—सुसूषति। यहाँ सन् पर में रहते षुञ् धातु के अभ्यास को षत्व नहीं हुआ। 'स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासात्' ८.३.६१ सूत्र को नियामक बताया गया है। उसी के नियम से 'सुसूषति' में षत्व का निषेध हो जायेगा। अच्छा तो 'अभिसुसूषति' यह प्रयोजन है। यहाँ 'उपसर्गात् सुनोति--' इससे षत्व प्राप्त है, उसका निषेध होगा। जी, सन्ग्रहण का यह भी प्रयोजन नहीं हो सकता है। 'स्थादिष्वभ्यासेन चाऽभ्यासस्य' ८.३.६४ सूत्र को नियामक माना गया है। उसी नियम से 'अभिसुसूषति' में षत्व का निषेध हो जायेगा। अच्छा तो 'अभिसुसूति' से अविद्यमान प्रत्यय क्विप् आदि करने पर 'स'घटक 'अ' का लोप होकर सन्नन्त रूप 'अभिसुसूः, विसुसूः, निसुसूः' होता है, उसको षत्व का निषेध कहने के लिए सन् का ग्रहण किया गया है। {सुनोतेः स्यसनोः}।

सदेः परस्य लिटि ८.३.११८

*** सदो लिटि प्रतिषेधे स्वञ्जेरुपसंख्यानम् * सदो लिटि प्रतिषेधे स्वञ्जेरुपसंख्यानं कर्तव्यम्। परिषस्वजे।**

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरणमहाभाष्ये
अष्टमाध्यायस्य तृतीयपादे द्वितीयमाह्निकम्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूत्रार्थ—'लिट् पर में रहते षद्लृ विसरणगत्यवसादनेषु धा.पा.८५४ को अभ्यास से पर सकार को षत्व न हो'। जैसे—'निषसाद'।

'स्थादिष्वभ्यासेन चाऽभ्यासस्य' ८.३.६४ से प्राप्त सत्व को 'सदेः परस्य लिटि' से निषेध किया गया है। लिट् पर में रहते सद् को निषेध की विषयता में स्वञ्ज का भी निषेध करना चाहिये। जैसे—'परिषस्वजे'। {**सदेः परस्य लिटि**}।

श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिमुनिविरचित व्याकरणमहाभाष्य
अष्टम अध्याय तृतीय पाद द्वितीय आह्निक पर
डॉ. हरिनारायण तिवारी द्वारा रचित
'ज्योत्स्ना' हिन्दी टीका पूर्ण हुई

तृतीय पाद भी पूर्ण हुआ

●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

❁ चतुर्थ पादे प्रथममाह्निकम् ❁

रषाभ्यां नो णः समानपदे ८.४.१

सूत्रार्थ—'समानपदस्थ रेफ और ष से पर में न को ण हो'। जैसे—'जीर्णम्, शीर्णम्। यूष्णः पूष्णः'।

*** रषाभ्यां णत्वे ऋकारग्रहणम् * रषाभ्यां णत्वे ऋकारग्रहणं कर्तव्यम्। 'रषाभ्यां नो णः समानपदे' 'ऋकाराच्चे'ति वक्तव्यम्। इहापि यथा स्याद्—मातॄणाम् पितॄणामिति। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। योऽसावृकारे रेफस्तदाश्रयं णत्वं भविष्यति। न सिध्यति। किं कारणम्? न हि वर्णैकदेशा वर्णग्रहणेन गृह्यन्ते।**

रेफ और ष से पर में न को णत्व कहने पर अन्य से पर में नकार को णत्व प्राप्त नहीं है, अतः ऋकार से पर में नकार को णत्वविधान करने के लिए वार्तिक का अवतरण करते हैं—**रषाभ्यामिति**। रेफ और ष से पर में न को णत्व की कर्तव्यता में ऋकार का ग्रहण करना चाहिये। अर्थात् ऋ से पर में भी नकार को णत्व कहना चाहिये। इससे 'मातॄणाम्, पितॄणाम्' में भी ऋ से पर में नकार को णत्व हो जाता है।

प्रश्नभाष्य—**तत्तर्हीति**। तो क्या 'रषाभ्यां णत्वे ऋकारग्रहणम्' यह वार्तिक पढना चाहिये?

उत्तरभाष्य—**नेति**। नहीं, 'रषाभ्यां णत्वे ऋकारग्रहणम्' यह व्रार्तिक नहीं पढना चाहिये। यदि उक्त वार्तिक नहीं पढेंगे तो 'मातॄणाम्, पितॄणाम्' में भी ऋ से पर में नकार को णत्व कैसे होगा? वह इस तरह कि ऋकार में रेफ है, तदाश्रय णत्व हो जायेगा। जी!, ऋकारघटक रेफ को मान कर णत्व नही हो सकेगा, क्योंकि वर्णैकदेश वर्णग्रहण से गृहीत नहीं होते हैं। जी, यह कोई दोष नहीं है। इसके विषय में मैं पहले ही कह आया हूँ कि नुड्विधि, लादेश और **विनाम**=णत्व को छोड कर अन्यत्र वर्णैकदेश वर्णग्रहण से गृहीत नहीं होते हैं। इससे णत्वविधि में वर्णैकदेश भी वर्णग्रहण से गृहीत होता है। इससे 'मातॄणाम्, पितॄणाम्' में भी ऋ से पर में नकार को णत्व की कर्तव्यता में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वर्णैकदेश वर्णग्रहण से गृहीत हो जायेगा। अच्छा तो इस तरह भी 'मातृणाम्, पितृणाम्' में नकार को णत्व सिद्ध नहीं हो सकेगा। वह इस तरह कि 'ॠ' इस द्विमात्रिक स्थल में मध्य में अर्द्धमात्रिक व्यञ्जन वर्ण दो रेफ तथा दोनों तरफ आधी-आधी मात्रा का स्वर है, अतः स्वर का व्यवधान होने से रेफ से अव्यवहितपरत्वविशिष्ट नकार नहीं मिलेगा, जिसे आप णत्व कर सकेंगे। 'रषाभ्याम्' में पञ्चमीनिर्देश है; अतः 'तस्मादित्युत्तरस्य' १.१.६७ से अव्यवहितपरत्वविशिष्ट अर्थ उपस्थित होगा। 'ऋ' में उत्तरवर्ती अर्द्धमात्रिक अच् का व्यवधान होने से णत्व नहीं हो सकेगा।

***एकदेशे नुडादिषु चोक्तम्* किमुक्तम्? 'अग्रहणं चेन्नुड्विधि-लादेशविनामेष्वृकारग्रहण'मिति। तस्माद् गृह्यन्ते। एवमपि न सिध्यति। किं कारणम्? 'अननन्तरत्वात्'। यत् तद् रेफात् परं भक्तेस्तेन व्यवहितत्वान्न प्राप्नोति। 'अड्व्यवाये' इत्येवं भविष्यति। न सिध्यति। किं कारणम्? वर्णैकदेशा के वर्णग्रहणेन गृह्यन्ते, ये व्यपवृक्ता अपि वर्णा भवन्ति। यच्चाऽत्र रेफात् परं भक्तेर्न तत् क्वचिदपि व्यपवृक्तं दृश्यते। एवं तर्हि योगविभागः करिष्यते—'रषाभ्यां नो णः समानपदे' ततो 'व्यवाये'। व्यवाये च रषाभ्यां नो णो भवतीति। ततः 'अट्कुप्वाङ्नुम्भि'रिति। इदमिदानीं किमर्थम्? नियमार्थम्—'एतैरेवाक्षरसमाम्नायिकैर्व्यवाये नान्यै'रिति।**

अच्छा तो एकदेश के ग्रहण में नुड्विधि, लादेश और णत्व में कहा जा चुका है। णत्व की कर्तव्यता में वर्णैकदेश भी वर्णग्रहण से गृहीत होता है। यहाँ 'मातृणाम्, पितृणाम्' में 'ॠ' का अवयव अर्द्धमात्रिक अच् का भी ग्रहण होने से उत्तरसूत्र 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' ८.४.२ से णत्व हो जायेगा। जी, उससे भी णत्व नहीं हो सकेगा; क्योंकि वे ही वर्णैकदेश वर्णग्रहण से गृहीत होते हैं, जिनकी सत्ता अन्यत्र भी होती है। जैसे 'र्' और 'ल्' आदि। परन्तु जो वर्णैकदेश पृथक् उपलब्ध नहीं होते हैं, वर्णग्रहण से उनका ग्रहण नहीं होता है। 'ऋ'घटक पूर्व और उत्तर पादमात्रिक स्वर कहीं अन्यत्र उपलब्ध नहीं हैं, अतः वर्णग्रहण से उनका ग्रहण नहीं होगा। अच्छा तो तब हम योगविभाग करेंगे। 'रषाभ्यां नो णः समानपदे' यह एक योग होगा। 'व्यवाये' यह दूसरा योग होगा। तथा 'अट्कुप्वाङ्नुम्भिः' यह तीसरा योग होगा। आप यह योगविभाग क्यों कर रहे हैं? मैं यह योगविभाग इसलिए कर रहा हूँ कि इससे मैं नियम कर सकूँगा। इससे 'यदि व्यवधान होने पर रेफ और ष से पर में नकार को णत्व हो तो अट्, कवर्ग, पवर्ग आङ्, नुम् का व्यवधान होने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पर ही हो, अन्य का व्यवधान होने पर नहीं'। ऐसा नियम होने पर अच्पद-बोध्य 'ऋ' भी है, तथा 'ऋ' वर्ण का उत्तर पादमात्रिक अच् भी है, अतः उस के व्यवधान होने पर 'मातृणाम्, पितृणाम्' में णत्व हो जायेगा। **आक्षर-समाम्नायिकाः**=अक्षरसमाम्नाये भवा आक्षरसमाम्नायिकाः'। यहाँ 'बह्वचोऽन्तोदात्ताट्ठञ्' ४.३.६७ सूत्र से 'भव' अर्थ में ठञ् है। अथवा 'प्रयोजनम्' ५.१.१०६ सूत्र से ठञ् समझना चाहिये। अच्छा तो 'एतैरेव व्यवायैः' कहने से जो अक्षर-समाम्नाय में पढे गये हैं, वे तथा अक्षरसमाम्नायस्थ वर्णों से जिनका ग्रहण है, वे आकार आदि ही लिये जायेंगे। इस तरह 'ऋ' से 'ॠ' का ग्रहण कहा जायेगा, वर्णैकदेश का नहीं, तो यह पक्ष इस भाष्यप्रमाण से कट जायेगा कि 'विनाम=णत्व की कर्तव्यता में वर्णैकदेश पादमात्रिक अच् भी वर्णग्रहण से गृहीत होते हैं'

अथवाऽऽचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति—'भवति ऋकाराण्णत्व'मिति यदयं क्षुभ्नादिषु नृनमनशब्दं पठति। नैतदस्ति ज्ञापकम्। वृद्ध्यर्थमेतत् स्याद्—नार्नमनिरिति। यत्तर्हि तत्रैव 'तृप्नोति'शब्दं पठति।

अथवा आचार्य की प्रवृत्ति बताती है कि-'ऋकार से पर में नकार को णत्व होता है'। जो यह आचार्य 'क्षुभ्नादिषु च' ८.४.३९ सूत्र में नृनमन शब्द का पाठ करते हैं। वह पाठ इसलिए है कि यहाँ ऋकार से पर में नकार को णत्व न हो सके। प्राप्ति होने पर ही निषेध होता है, अतः णत्वप्राप्ति होने से निषेध के लिए आचार्य ने 'क्षुभ्नादिषु च' ८.४.३९ सूत्र में नृनमन शब्द का पाठ किया है। जी, यह उक्त विषय का ज्ञापक नहीं हो सकेगा। यह नृनमनशब्द का पाठ वृद्धि के लिए है। 'नृनमनस्याऽपत्यं नार्नमनिः' में 'अत इञ्' ४.१.९५ से इञ् प्रत्यय होकर रेफशिरा आदिवृद्धि होने पर 'नार्नमन'घटक रेफ से पर में नकार को णत्व प्राप्त है; उसका निषेध हो सके, इसलिए 'क्षुभ्नादिषु च' ८.४.३९ सूत्र में नृनमनशब्द का पाठ किया गया है। अच्छा तो वहीं 'क्षुभ्नादिषु च' ८.४.३९ सूत्र में तृप्नोतिशब्द का पाठ करते हैं, वह णत्वनिषेध के लिए है। वह ज्ञापन करेगा—'ऋवर्ण से पर में भी नकार को णत्व होता है'; अतः उसी णत्व का विधान करने के लिए 'रषाभ्यां णत्वे ऋकारग्रहणम्' यह वार्तिक नहीं पढना चाहिये। 'अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षत्तृहोतृपोतृप्रशास्तॄणाम्' ६.४.११ सूत्र में आचार्य ने ऋकार से पर में नकार को णत्व कर 'प्रशास्तॄणाम्' ऐसा निर्देश भी किया है।

यच्चाऽपि नृनमनशब्दं पठति। ननु चोक्तं—'वृद्ध्यर्थमेतत् स्या'दिति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बहिरङ्गा वृद्धिरन्तरङ्गं णत्वम्। 'असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे'। अथवोपरिष्टाद् योगविभागः करिष्यते। इदमस्ति-'छन्दस्यृदवग्रहा'दिति। 'ऋत'। ऋत उत्तरस्य नो णो भवति। ततः 'छन्दस्यृदवग्रहात्'। 'ऋत' इत्येव।

अथवा नृनमन शब्द भी इसका ज्ञापन कर देगा। आप ने जो कहा कि 'नृनमन शब्द का पाठ वृद्धि के लिए है'। वह कहना उचित नहीं है। क्योंकि तद्धित की अपेक्षा करने से वृद्धि बहिरङ्ग है, तथा किसी अन्य की अपेक्षा नहीं करने से णत्व अन्तङ्ग है; अतः अन्तरङ्ग णत्व की कर्तव्यता में बहिरङ्ग वृद्धि के असिद्ध होने से 'ऋ' से पर में नकार मिलेगा, रेफ से पर में नहीं। अथवा आगे के सूत्रों में योगविभाग करेंगे। 'छन्दस्यृदवग्रहात्' ८.४.२६ सूत्र का 'छन्दसि' एकयोग, 'ऋतः' दूसरा योग तथा 'अवग्रहात्' तीसरा योग करेंगे। 'ऋतः' को पञ्चमी मानेंगे। 'ऋतः' सूत्र में 'नो णः' की अनुवृत्ति करेंगे। अर्थ होगा—'ऋवर्ण से पर में नकार को णत्व हो', ऐसा अर्थ कर लेंगे। इससे पृथक् वार्तिक पढने की आवश्यकता नहीं है। {**रषाभ्यां नो णः समानपदे**}।

अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ८.४.२

सूत्रार्थ—'अट्, कवर्ग, पवर्ग, आङ् और नुम्, इन में प्रत्येक अथवा यथासम्भव मिलित के व्यवधान होने पर र और ष से पर में नकार को णत्व हो'। जैसे—'रामेण, नारीणाम्, ऋषीणाम्'।

* अड्व्यवाये णत्वेऽन्यव्यवाये प्रतिषेधः * **अड्व्यवाये णत्वेऽन्यव्यवाये प्रतिषेधो वक्तव्यः। आदर्शेन अक्षदर्शेन** * न वाऽन्येन व्यपेतत्वात् * **न वा वक्तव्यः। किं कारणम्? 'अन्येन व्यपेतत्वात्'। अन्येनाऽत्र व्यवायः। यद्यप्यत्रान्ये व्यवायोऽटाऽपि तु व्यवायोऽस्ति। तत्राऽस्त्यड्व्यवाय इति प्राप्नोति। अटैव व्यवाये भवति। किं वक्तव्यमेतत्? न हि। कथमनुच्यमानं गंस्यते? अड्ग्रहणसामर्थ्यात्। यदि हि यत्राऽटा चान्येन च व्यवायस्तत्र स्याद् अड्ग्रहणमनर्थकं स्यात्। 'व्यवाये नो णो भवती'त्येव ब्रूयात्। अस्त्यन्यद् अड्ग्रहणस्य प्रयोजनम्। किम्? योऽनिर्दिष्टैरेव व्यवायस्तत्र मा भूत्—कृत्स्नं मृत्स्नेति। यद्येतावत् प्रयोजनं स्याच्छर्व्यवाये नेत्येव ब्रूयात्।**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अड्व्यवाय की विषयता में अट् से भिन्न का व्यवधान होने पर णत्व का निषेध कहना चाहिये। जैसे—'आदर्शेन अक्षदर्शेन'। यहाँ अट् से भिन्न वर्ण शर् का भी व्यवधान है, अतः नकार को णत्व नहीं हुआ। जी, 'आदर्शेन अक्षदर्शेन' में णत्व का निषेध के लिए 'अड्व्यवाये णत्वेऽन्यव्यवाये प्रतिषेधः' यह वार्तिक पढने की आवश्यकता नहीं है। इसका कारण यह है कि अड्व्यवाय में णत्व कहा जा रहा है। 'आदर्शेन अक्षदर्शेन' में अट् से अतिरिक्त का व्यवधान हो गया, अतः णत्व नहीं होगा। इसलिए उसका निषेधवचन भी नहीं पढना चाहिये। अच्छा तो यदि यहाँ अन्य का व्यवधान है तो अट् का भी व्यवधान है, अतः अट् का व्यवधान होने से 'आदर्शेन अक्षदर्शेन' में नकार को णत्व होना चाहिये। जी, अट् का व्यवधान होने के साथ यदि अट् से भिन्न का भी व्यवधान है तो यहाँ णत्व नहीं होगा, क्योंकि 'अट् के ही व्यवधान में णत्व होता है', ऐसा हम नियम करेंगे। तो क्या 'अट् के ही व्यवधान में णत्व होता है', यह नियमवाक्य कहना होगा? जी नहीं, 'अट् के ही व्यवधान में णत्व होता है' यह नियमवाक्य कहने की आवश्यकता नहीं है। यदि यह नियमवाक्य नहीं कहेंगे तो विना इसके कहे इस अर्थ का बोध कैसे होगा? जी, अड्ग्रहणसामर्थ्य से 'अट् के ही व्यवधान में णत्व होता है', इस अर्थ का बोध हो जायेगा। वह इस तरह कि यदि अट् और अंट् से भिन्न, दोनों का व्यवधान होने पर 'आदर्शेन अक्षदर्शेन' आदिं में णत्व होता, तो आचार्य सूत्र में अड्ग्रहण नहीं करते। अपितु 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' इस सूत्र के स्थान पर 'व्यवायेऽपि' इतना ही सूत्र पढते। परन्तु आचार्य ने इतना मात्र सूत्र न पढ कर जो अड्ग्रहण किया है, वह नियम करेगा कि-'अट् के ही व्यधान होने पर नकार को णत्व हो, अन्य के व्यवधान होने पर नहीं'। जी, यह अड्ग्रहण नियम नहीं कर सकता है। इस अड्ग्रहण का अन्यत्र प्रयोजन है कि जहाँ अनुच्चरित का व्यवधान हो, वहाँ णत्व न हो। जैसे—'कृत्स्नम्, मृत्स्ना'। सूत्र में शर् अनुच्चरित है, उसके व्यवाय होने पर णत्व नहीं हुआ। जी, अड्ग्रहण का यह प्रयोजन नहीं है। यदि अड्ग्रहण का यह प्रयोजन होता तो 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' इस सूत्र के स्थान पर 'शर्व्यवाये न' यही सूत्र पढ देते। अर्थ होता-'शर् का व्यवधान होने पर रेफ और ष से पर में नकार को णत्व न हो'। इससे इष्टसिद्धि तथा अनिष्टपरिहार हो जाता। परन्तु 'शर्व्यवाये न' ऐसा सूत्र नहीं कह कर आचार्य ने 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' ऐसा सूत्रपाठ किया है, अतः यह गौरवभूतन्यास व्यर्थ पड कर कल्पना करायेगा-'अट् के ही व्यवधान में णत्व हो, तद्भिन्न के व्यवधान में नहीं'।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

*** तत्समुदाये णत्वाऽप्रसिद्धिर्यथाऽन्यत्र * तत्समुदायेव्यवायसमुदाये णत्वस्याऽप्रसिद्धिः—अर्केण अर्घेण। 'यथाऽन्यत्र'। यथाऽन्यत्राऽपि व्यवायसमुदाये कार्यं न भवति। क्वाऽन्यत्र? 'नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि'। निंस्से निंस्स्वेति। किं पुनः कारणम् अन्यत्रापि व्यवायसमुदाये कार्यं न भवति? 'प्रत्येकं वाक्यपरिसमाप्तिर्दृष्टे'ति। तद्यथा—गुणवृद्धिसंज्ञे प्रत्येकं भवतः।**

जैसे 'नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि' ८.३.५८ सूत्र इण् और कवर्ग का व्यवधान होने पर स को ष करता है, परन्तु नुम्, विसर्जनीय और शर्समुदाय का व्यवधान होने पर नहीं करता है। जैसे—'निंस्से, निंस्स्व'। वैसे अट्, कु, पु आङ् और नुम्, इन में से एक-एक के ही व्यवधान होने पर णत्व करेगा, समुदाय का व्यवधान होने पर नहीं। इस तरह 'अर्केण, अर्घेण' में समुदाय का व्यवधान होने से णत्व की अप्रसिद्धि होगी। वैसे ही जैसे अन्यत्र नुम्विसर्जनीयशर्समुदाय का व्यवधान होने पर 'निंस्से निंस्स्व' में षत्व नहीं होता है। इसका क्या कारण है कि 'नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि' ८.३.५८ समुदाय का व्यवधान होने पर षत्व नहीं करता है? इसका कारण यह है कि प्रत्येक में वाक्यपरिसमाप्ति देखी जाती है। जैसे 'अदेङ् गुणः' १.१.२ में अ, ए और ओ, प्रत्येक वर्ण की गुणसंज्ञा देखी जाती है, तथा 'वृद्धिरादैच्' १.१.१ में आ, ऐ, और औ, इस प्रत्येक वर्ण की वृद्धिसंज्ञा देखी जाती है। वैसे अट्, कु, पु, आङ् और नुम्, इन में से प्रत्येक का व्यवधान होने पर ही णत्व होगा, समुदाय का व्यवधान होने पर नहीं।

ननु चाऽमप्यस्ति दृष्टान्तः—'समुदाये वाक्यपरिसमाप्ति'रिति। तद्यथा—'गर्गाः शतं दण्ड्या'मिति, अर्थिनश्च राजानो हिरण्येन भवन्ति न च प्रत्येकं दण्डयन्ति। यद्येवमेकेन व्यवाये न प्राप्नोति—किरिणा गिरिणेति। उभयथापि वाक्यपरिसमाप्तिर्दृश्यते, तद्यथा—'गर्गैः सह न भोक्तव्य'मिति, प्रत्येकं च न भुज्यते समुदितैश्च।

जी, समुदाय में भी वाक्यपरिसमाप्ति देखी जाती है। इस पक्ष में भी दृष्टान्त है—'गर्गाः शतं दण्ड्यन्ताम्, अर्थिनश्च राजानो हिरण्येन भवन्ति न च प्रत्येकं दण्डयन्ति'। यहाँ अर्थदण्ड समुदाय पर है, प्रत्येक पर नहीं, अतः समुदायव्यवाय में णत्व होगा। अच्छा तो यदि आप का दृष्टान्त मान लिया जाये तो एक के व्यवधान होने पर 'किरिणा, गिरिणा' में णत्व नहीं हो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सकेगा। यहाँ एक का ही व्यवाय है, समुदाय का नहीं। अच्छा तो प्रत्येक तथा समुदाय, दोनों में ही वाक्यपरिसमाप्ति देखी जाती है। जैसे—'गर्गैः सह न भोक्तव्यम्'=गर्गगोत्र वालों के साथ नहीं, खाना चाहिये', ऐसा कहने से प्रत्येक के साथ भी भोजन का निषेध होता है, तथा समुदाय के साथ भी भोजन का निषेध होता है।

* कुव्यवाये हादेशेषु प्रतिषेधः * **कुव्यवाये हादेशेषु प्रतिषेधो वक्तव्यः। किं प्रयोजनम्?** * प्रयोजनं वृत्रघ्नः स्रुघ्नः प्राघानीति * **वृत्रघ्नः स्रुघ्नः प्राघानीति प्रयोजनम्। हन्तेरत्पूर्वस्येत्यत्पूर्वग्रहणं न कर्तव्यं भवति।**

कुव्यवाय में हादेश का प्रतिषेध कहना चाहिये। इसका क्या प्रयोजन है? इसका प्रयोजन यह है—'वृत्रघ्नः, स्रुघ्नः, प्राघानि' में हन् के ह को 'हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु' ६.३.५४ से घत्व होकर कवर्ग हुआ है। उसके व्यवाय होने पर णत्व न हो। अथ च 'कुव्यवाये हादेशेषु प्रतिषेधः' इस वार्तिक के पढने से अन्य लाभ यह भी होगा कि 'हन्तेरत्पूर्वस्य' ८.४.२२ में 'अत्पूर्वस्य' पद का ग्रहण नहीं करना पडेगा। 'अत्पूर्वक हन के नकार को णत्व हो', यह सूत्रार्थ है। 'हादेश का व्यवधान होने पर णत्व न हो', यह निषेध कर देने पर 'अत्पूर्वस्य' यह नहीं पढना पडेगा।

* नुम्व्यवाये णत्वेऽनुस्वाराऽभावे प्रतिषेधः * **नुम्व्यवाये णत्वेऽनुस्वाराऽभावे प्रतिषेधो वक्तव्यः। प्रेन्वनम् प्रेन्वनीयम्** * अनागमे च णत्वम् * **अनागमे च णत्वं वक्तव्यम्। तृम्फणं तृम्फणीयम्।**

नुम् का व्यवधान में णत्व की कर्तव्यता में अनुस्वाराभाव होने पर णत्व का प्रतिषेध कहना चाहिये। इसका भाव यह है कि नुम् को अनुस्वार होने पर ही णत्व होगा। जहाँ नुम् को अनुस्वारादेश नहीं है, वहाँ णत्व नहीं होगा। जैसे—'प्रेन्वनम् प्रेन्वनीयम्'। यहाँ 'प्र'पूर्वक इवि व्याप्तौ धा.पा.५८७ धातु को इदित् होने से 'इदितो नुम् धातोः' ७.१.५८ से नुम् का आगम है, परन्तु उसको अनुस्वार नहीं होने से अनीयर्-प्रत्ययघटक 'न' को णत्व नहीं हुआ। **अनागमे इति**। नुम् का आगम नहीं होने पर णत्व कहना चाहिये। जैसे—तृन्फ तृप्तौ धा.पा.१३०८, यहाँ पर नुम् का आगम नहीं है, अपितु सूत्र में ही पठित है। उसका व्यवधान होने पर णत्व कहना चाहिये। जैसे—'तृम्फणं तृम्फणीयम्'। यहाँ क्रम से ल्युट्स्थानिक 'न' तथा अनीयर्स्थानिक 'न' को णत्व हुआ है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

*** अनुस्वारव्यवाये वचनात्तु सिद्धम् * अनुस्वारव्यवाये नो णो भवतीति वक्तव्यम्। तदनुस्वारग्रहणं कर्तव्यम्? न कर्तव्यम्। क्रियते न्यास एव। नकारेऽनुस्वारः परसवर्णीभूतो निर्दिश्यते। इहापि तर्हि प्राप्नोति—प्रेन्वनं प्रेन्वनीयम्। अनुस्वारविशेषणं नुम्ग्रहणं—'नुमो योऽनुस्वार' इति। इहापि तर्हि न प्राप्नोति—तृम्फणम् तृम्फणीयम्।**

अनुस्वार का व्यवधान होने पर णत्व होता है। जी, सूत्र में अट्, कु, पु, आङ् नुम्, इतना ही पढा गया है। आप अनुस्वार का व्यवधान होने पर णत्व कह रहे हैं। तो क्या यह अनुस्वारग्रहण करना चाहिये? नहीं, यह अनुस्वारग्रहण नहीं करना चाहिये। इसका यह न्यास करेंगे-'नकारे- ऽनुस्वारः'। अर्थात् 'अट्कुप्वाङ्न्नुम्व्यवायेऽपि' ऐसा दो नकार वाला निर्देश है। अनुस्वार को परसवर्ण किया गया है, अतः सूत्र में अनुस्वार का निर्देश होने से पृथक् वार्तिक पढने की आवश्यकता नहीं है। अच्छा तो यदि दो नकार वाला निर्देश होने से सूत्र में अनुस्वार भी निर्दिष्ट है तो 'प्रेन्वनं प्रेन्वनीयम्' में भी णत्व होना चाहिये। जी, नुम्ग्रहण अनुस्वार का विशेषण है—'नुम् का जो अनुस्वार, उसका व्यवधान होने पर णत्व हो'। यदि नुम्ग्रहण को अनुस्वार का विशेषण मानेंगे तो 'तृम्फणम् तृम्फणीयम्' में भी णत्व नहीं होना चाहिये। क्योंकि यहाँ नकार को अनुस्वार होकर परसवर्ण हो गया है, जिससे अनुस्वार न होने से णत्व नहीं हो सकेगा।

इहापि तर्ह्ययोगवाहानामविशेषेणोपदेशश्चोदितस्तत्राऽनुस्वारे कृतेऽड्व्यवाये इत्येव सिद्धम्। यद्येवं नार्थो नुम्ग्रहणेन। अनुस्वारे कृतेऽड्व्यवाय इत्येव सिद्धम्। {अट्कुप्वाङ्}।

अच्छा तो यदि ऐसी वात है तो प्रत्याहाराह्निकप्रकरण में अयोगवाहों को अट् और शर् में पाठ बताया जा चुका है। नुम् को अनुस्वार कर देने पर उसका अयोगवाह के ग्रहण से ग्रहण होगा। अयोगवाहों का पाठ अट् में होने से अट् का व्यवधान से ही णत्व सिद्ध हो जायेगा। यदि ऐसी वात है तो नुम्ग्रहण नहीं करना चाहिये था। जी, उसकी आवश्यकता नहीं थी। अनुस्वार हो जाने पर अट् के व्यवधान से ही सिद्ध हो जायेगा, नुम्ग्रहण की आवश्यकता नहीं है। {अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि}।

पूर्वपदात् संज्ञायामगः ८.४.३

सूत्रार्थ—'पूर्वपदस्थनिमित्त से पर में गकारव्यवधान से भिन्न उत्तरपदस्थ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नकार को संज्ञा गय होने पर णत्व हो'। जैसे—'सूर्पणखा, द्रुणसः, खरणसः। 'अगः' यह निषेध होने से 'ऋचामयनमृगयनम्' में णत्व नहीं हुआ। सूत्र में पूर्वपद पूर्वपदस्थ में लाक्षणिक है, अतः 'पूर्वपदात्' का अर्थ है—'पूर्वपदस्थनिमित्त से पर में गकारव्यवधान से भिन्न उत्तरपदस्थ नकार को संज्ञा गय होने पर णत्व हो'।

* पूर्वपदात् संज्ञायामुत्तरपदग्रहणम् * **पूर्वपदात् संज्ञायामुत्तरपदग्रहणं कर्तव्यम्। किं प्रयोजयन्?** * तद्धितपूर्वपदस्थाऽप्रतिषेधार्थम् * **तद्धितस्थस्य पूर्वपदस्थस्य च प्रतिषेधो मा भूत्। खारपायणः, करणप्रियः। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। पूर्वपदमुत्तरपदमिति सम्बन्धिशब्दावेतौ। सति पूर्वपदे उत्तरपदं भवति, सति चोत्तरपदे पूर्वपदं भवति। तत्र सम्बन्धादेतद् गन्तव्यं—'यत् प्रति पूर्वपदमित्येतद् भवति तत्स्थस्य नियम' इति' इति। किं च प्रत्येतद् भवति** * उत्तरपदं प्रति *

'पूर्वपदात् संज्ञायाम् अगः' इस सूत्र में उत्तरपद का ग्रहण करना चाहिये। पूर्वपदस्थ जो रेफ और षकार, उससे पर में संज्ञा गम्य होने पर ही णत्व हो, इस नियम से असंज्ञा गम्य होने पर पूर्वपदस्थ को णत्व नहीं हो पा रहा है, अतः पूर्वपदस्थ को असंज्ञा गम्य होने पर भी जैसे णत्व हो, उसके लिए उत्तरपद का ग्रहण करना चाहिये। इसका फल है—असंज्ञा गम्य होने पर पूर्वपदस्थ नकार को णत्व होकर 'करणप्रियः' हुआ। एवम् उत्तरपदस्थ नकार को संज्ञा गम्य होने पर 'खारपायणः' में णत्वसिद्धि हुई। 'खरपस्य गोत्राऽपत्यं खारपायणः' 'नडादिभ्यः फक्' ४.१.९९ से फक् प्रत्यय तथा 'फ' को आयन आदेश होकर उत्तरपदस्थ नकार को णत्व हुआ है। तो क्या 'पूर्वपदात् संज्ञायामुत्तरपदग्रहणम्' यह वचन पढना पडेगा? जी, नहीं। इसकी आवश्यकता नहीं है। पूर्वपद और उत्तरपद, ये दोनों सम्बन्धी शब्द हैं, अतः एक दूसरे के प्रति नित्य साकाङ्क्ष होने से पूर्वपद से उत्तरपद तथा उत्तरपद से पूर्वपद का आक्षेप होगा। अथ च पूर्वपद के रहते ही उत्तरपद होता है, तथा किसी उत्तरपद के रहते ही कोई पूर्वपद होता है। इस तरह पूर्वपद से ही सम्बन्धि-शब्दमहिम्ना उत्तरपद का लाभ हो जायेगा; उसके लिए उत्तरपदग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है। इस तरह सम्बन्ध से यह अर्थ समझ लिया जायेगा—'जिस के प्रति पूर्वपद होता है, उस उत्तरपद को णत्व हो', ऐसा नियम होगा। किसके प्रति पूर्वपद होता है? उत्तरपद के प्रति पूर्वपद होता है।

* संज्ञायां नियमवचनेऽगप्रतिषेधान्नियमप्रतिषेधः * **संज्ञायां नियम-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वचनेऽगप्रतिषेधान्नियमस्याऽयं प्रतिषेधो विज्ञायते—'अग' इति। तत्र को दोषः? * तत्र नित्यं णत्वप्रसङ्गः *** तत्र पूर्वेण संज्ञायां चाऽसंज्ञायां च नित्यं णत्वं प्राप्नोति।**

समास में भी समानपद होने से ही पूर्वसूत्र 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' ८.४.२ से णत्व सिद्ध था। इस तरह सिद्ध होने पर 'पूर्वपदात् संज्ञायामगः' सूत्र का आरम्भ व्यर्थ पड कर नियम करेगा—'पूर्वपदस्थनिमित्त से पर में उत्तर-पदस्थ नकार को णत्व हो तो संज्ञा गम्य होने पर ही हो' यह 'संज्ञायामेव' यह नियम होने से 'अगः' यह निषेध भी संज्ञा गम्य होने पर ही निषेध करेगा, अन्यत्र नहीं। इससे क्या दोष होगा? इससे दोष यह होगा कि-पूर्व सूत्र 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' ८.४.२ संज्ञा तथा असंज्ञा, अन्यतर गम्य होने पर अथवा उभय गम्य होने पर भी नित्य णत्व करेगा।

*** योगविभागात् सिद्धम् * योगविभागः करिष्यते—'पूर्वपदात् संज्ञायाम्'। ततः—'अगः'। गान्तात् पूर्वपदाद् या च यावती च णत्वप्राप्तिस्तस्याः सर्वस्याः प्रतिषेधः।**

अच्छा तो पूर्वसूत्र से संज्ञा असंज्ञा इत्येतदुभयत्र णत्व प्राप्त न हो, इसके लिए सूत्रविभाग किया जायेगा—'पूर्वपदात् संज्ञायाम्' एक योग होगा तथा 'अगः' यह दूसरा योग होगा। अर्थ होगा—गान्त पूर्वपद से पर में जो णत्व-प्राप्ति, अथवा जितनी णत्वप्राप्ति, उन सभी का प्रतिषेध हो। इस तरह 'ऋचामयनमृगयनम्' में णत्वनिषेध हो जायेगा।

*** प्रतिषेधो वा यथा सर्वनामसंज्ञायाम् * न वाऽर्थः प्रतिषेधेन। णत्वं कस्मान्न भवति? 'यथा सर्वनामसंज्ञायाम्'। उक्तं च सर्वनामसंज्ञायां 'सर्वनामसंज्ञायां निपातनाण्णत्वाऽभाव' इति। यथा पुनस्तत्र निपातनं क्रियते—सर्वादीनि सर्वनामानीति, इहेदानीं किं निपातनम्? इहापि निपातनमस्ति। किम्? 'अणृगयनादिभ्य' इति। नैव वा पुनरत्र णत्वं प्राप्नोति।**

जी, 'अगः' इस प्रतिषेधवचन की आवश्यकता नहीं है। यदि 'अगः' यह प्रतिषेधवचन नहीं पढेंगे तो 'ऋगयनम्' में णत्वनिषेध कैसे होगा? वहाँ ऐसे णत्वनिषेध होगा, जैसे संज्ञा गम्य होने पर भी 'सर्वादीनि सर्वनामानि' १.१.२७ में सर्वनाम पद का णत्व निषिद्ध है। सर्वनामसंज्ञा गम्य होने पर 'सर्व' इत्येतत् पूर्वपदस्थनिमित्त रेफ से पर में उत्तरपदस्थ नकार को निपातन से णत्व

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का अभाव है। इस वात को 'सर्वादीनि सर्वनामानि' १.१.२७ सूत्र पर 'सर्वनामसंज्ञायां निपातनाण्णत्वाऽभावः' ऐसा कह आया हूँ। वैसे प्रकृत 'ऋगयनम्' में भी संज्ञा गम्य होने पर निपातन से णत्व का अभाव कर लेंगे। इसके लिए 'अगः' यह निषेधवचन पढने की आवश्यकता नहीं है। अच्छा तो सर्वनामसंज्ञा में णत्वाऽभाव के लिए 'सर्वादीनि सर्वनामानि' १.१.२७ निपातन है, 'ऋगयनम्' में णत्वनिवृत्ति के लिए क्या निषेध है? यहाँ 'अणृगयनादिभ्यः' ४.३.७३ सूत्र में आचार्य ने 'ऋगयनादिभ्यः' ऐसा णत्वाऽभावघटित रूप पढा है। वहाँ निपातन से णत्वाऽभाव हो जायेगा। तदर्थ सूत्र में 'अगः' यह निषेधवचन पढने की आवश्यकता नहीं है। अथवा 'ऋगयनम्' में णत्व ही प्राप्त नहीं है।

किं कारणम्? 'समानपद' इत्युच्यते, न चैतत् समानपदम्। समासे कृते समानपदम्। समानपदमेव यन्नित्यम्। न चैतन्नित्यं समानपदमेव। किं वक्तव्यमेतत्? न हि। कथमनुच्यमानं गंस्यते? 'समानग्रहणसामर्थ्यात्'। यदि हि यत् समानं चाऽसमानं च तत्र स्यात् समानग्रहणमनर्थकं स्यात्। {पूर्वपदात् संज्ञायामगः}।

वह कैसे? वह ऐसे कि समानपद में णत्व कहा है। 'ऋगयनम्' में समानपद नहीं है। 'समानम्=एकम् पदं समानपदम्'। निमित्त और निमित्ती के समानपदस्थ होने पर ही णत्व प्राप्त होता है। 'ऋगयनम्' में 'ऋग्+अयनम्' ऐसा असमान पद होने से णत्व की प्राप्ति नहीं है, अतः 'अगः' ऐसा निषेधवचन व्यर्थ है। यदि आप समास करने पर 'ऋगयनम्' में समान पद हो जायेगा, अतः णत्व प्राप्त होने से 'अगः' यह निषेध सार्थक है, ऐसा कहते हैं तो यह पक्ष भी उचित नहीं है। वह इसलिए कि 'समानपदे' में 'यन्नित्यमेव समानं न क्वचिदसमानम्' ऐसा अर्थ होगा। 'ऋगयनम्' यह नित्य समान पद नहीं है, अतः णत्व नहीं होगा। अच्छा तो 'यन्नित्यमेव समानम्' इस अर्थ को कहने वाला पद सूत्र में नहीं है, तो क्या 'समानपदमेव यन्नित्यम्' ऐसा कहना होगा? नहीं, ऐसा कहने की आवश्यकता नहीं है। यदि 'समानपदमेव यन्नित्यम्' ऐसा नहीं कहेंगे तो यह अर्थ कैसे समझा जायेगा? सूत्र में समानपद का ग्रहण किया है, उसके सामर्थ्य से 'समानपदमेव यन्नित्यम्' इस अर्थ का लाभ हो जायेगा। वह इस तरह अर्थ को कहेगा कि यदि समान और असमान, इन दोनों में इससे णत्व होता, तो आचार्य समानपद का ग्रहण नहीं करते। परन्तु आचार्य यहाँ समान पद का ग्रहण कर रहे हैं, अतः समान तथा असमान, उभयत्र णत्व इष्ट नहीं है, अपितु समान में ही णत्व इष्ट है, अतः आचार्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ने जो समानग्रहण किया है, इससे 'समानमेव यन्नित्यम्' यह अर्थ आ जायेगा, इसके लिए सूत्र में 'समानपदमेव यन्नित्यम्' ऐसा पढने की आवश्यकता नही है। {पूर्वपदात् संज्ञायामगः}।

विभाषोषधिवनस्पतिभ्यः ८.४.६

सूत्र में वनस्पति तथा ओषधि पद संज्ञापरक है, अतः वनस्पतिवाचक शब्दों का ग्रहण होगा। यद्यपि—

वानस्पत्यः फलैः पुष्पात् तैरपुष्पाद् वनस्पतिः।
ओषध्यः फलपाकान्ताः स्यादवध्यः फलेग्रहिः।।

(अमरकोश २.४.६)

इस उक्ति से वनस्पति शब्द से वे वृक्ष आदि गृहीत हैं, जो पुष्पों के विना फल देते हैं। जैसे—उदुम्बर आदि। परन्तु प्रकृत में वनस्पति शब्द से व्याख्यानात् वृक्षसामान्य अर्थ लिया गया है। इसका प्रमाण यह है कि भाष्यकार 'लुपि युक्तिवद्व्यक्तिवचने' १.२.५१ सूत्र पर 'शिरीषवणम्' ऐसा णत्वघटित रूप देते हैं। इस तरह सूत्रार्थ होगा—'ओषधि तथा वनस्पति अर्थ का वाचकपदस्थ णत्वनिमित्तक रेफ और ष से पर में वन शब्दघटक नकार को विकल्प से णत्व हो'। जैसे—दुर्वावणम्, दुर्वावनम्। 'शिरीषवणम्, 'शिरीषवनम्।

* द्व्यक्षरत्र्यक्षरेभ्यः * **द्व्यक्षरत्र्यक्षरेभ्य इति वक्तव्यम्। इह मा भूद्—देवदारुवनम्** * इरिकादिभ्यः प्रतिषेधः * **इरिकादिभ्यः प्रतिषेधो वक्तव्यः। इरिकावनम्। तिमिरवनम्।** {विभाषोषधिवन}।

दो अथवा तीन अक्षर वाले पद से पर में ही वन शब्दघटक नकार को णत्व कहना चाहिये। इससे 'देवदारुवनम्' में चार अक्षर होने से णत्व नही होगा। स्वरसहित अक्षर की व्यञ्जनसंज्ञा है। जैसा कि 'चतुरश्छयतावाद्यक्षरलोपश्च' वा.३१५८ वार्तिक से स्पष्ट है।

इरिकादि गणपठित शब्दों से पर में वन शब्दघटक नकार को णत्वनिषेध कहना चाहिये। जैसे 'इरिकावनम्, तिमिरवनम्'। {विभाषोषधिवन-}।

अह्नोऽदन्तात् ८.४.७

सूत्रार्थ—'अदन्त पूर्वपदस्थनिमित्त से पर में अह्नादेश को प्राप्त अह्न् शब्द के नकार को णत्व हो'। जैसे—सर्वाह्णः, पूर्वाह्णः।

* अदन्तादन्तस्य * **अदन्तादन्तस्येति वक्तव्यम्। इह मा भूद्—**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दीर्घाह्नी शरदिति। तत्तर्हि वक्तव्यम्। न वक्तव्यम्। नैषाऽहञ्छब्दात् षष्ठी। का तर्हि? अह्नशब्दात् प्रथमा। 'पूर्वसूत्रनिर्देशश्च'। अथवा युवादिषु पाठः करिष्यते। {अह्नोऽदन्तात्}।

अदन्त पूर्वपदस्थनिमित्त से पर में अदन्त अह्न शब्द को णत्व का निषेध कहना चाहिये। इससे 'दीर्घाह्नी शरत्' यहाँ ईदन्त अह्नी शब्द के होने से णत्व नहीं हुआ। क्या 'अदन्तादन्तस्य', ऐसा वचन पढना पडेगा? नहीं, इसकी आवश्यकता नहीं है। 'अह्नोऽदन्तात्' सूत्र में 'अह्नः' यह षष्ठ्यन्त नहीं है, अपितु प्रथमान्त अदन्त पद है। उसी से अदन्त अह्न शब्द को णत्व हो, ऐसा अर्थ आ जायेगा। अथवा पूर्वाचार्य जो अह्न शब्द को णत्व चाहते हैं, उन्होंने भी अह्नशब्द को षष्ठ्यन्त निर्देश नहीं किया है, अतः 'अह्नोऽदन्तात्' सूत्र में अह्न शब्द प्रथमैकवचनान्त ही है। इस बात को बताते हैं—**पूर्वसूत्रनिर्देशश्चेति**। अथवा अदन्त अह्नशब्द को 'युवादेर्न' वा.४६६६ वार्तिकस्थ युवादिगण में पाठ कर अदन्त को णत्व का निषेध करेंगे। युवादिगण में अदन्त अह्न शब्द का पाठ कर णत्वनिषेध कर देने पर 'अह्नोऽदन्तात्' सूत्र का खण्डन समझना चाहिये। **{अह्नोऽदन्तात्}**।

वाहनमाहितात् ८.४.८

'वाहने आधीयते वहनाय यत् तद् आहितम्'। ढोने के लिए जिसे वाहन पर लादा जाये, वह आहित कहलाता है। जैसे—इक्षु आदि। उसके पूर्वपदस्थ-निमित्त होने पर उत्तरपदस्थ वाहनघटक नकार को णत्व होता है। जैसे—'इक्षुवाहणम्'। यहाँ 'इन्द्रस्वामिकं वाहनम्' यह अर्थ है। वह प्रापणे धा.पा. १००४ धातु से ल्युट् प्रत्यय होकर इसी सूत्र से वाहन शब्द में उपधा को दीर्घ निपातित है।

*** आहितोपस्थितयोः * आहितोपस्थितयोरिति वक्तव्यम्। इहापि यथा स्याद्—इक्षुवाहणम् शरवाहणम्। अपर आह—* वाहनं वाह्यादिति वक्तव्यम् * यदा हि गर्गाणां वाहनमपविद्धं तिष्ठति तदा मा भूद्—गर्गवाहनमिति। {वाहनमाहितात्}।**

'भूते च' ३.३.१४० सूत्र के अधिकार में क्त प्रत्यय विहित है। आहित शब्द के क्तान्त होने से भूतकालिक क्रिया का निर्देश है। इससे यदि वाह्य इक्षु आदि ढोने की इच्छा से वाहन पर आरोपित नहीं है, अपितु मात्र वाहन सन्निकट है, वैसी स्थिति में 'इक्षुवाहणम्' में णत्व प्राप्त नहीं हो सकेगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जबकि वहाँ णत्व इष्ट है, अतः सन्निहित वाह्य के होने पर भी णत्व हो, इसके लिए वार्तिक का अवतरण करते हैं—'आहितोपस्थितयोः' ऐसा। **आहित**=भूतकालिकक्रिया का निर्देश तथा **उपस्थित**=वर्तमानकालिक वाह्यसन्निहितत्व वाच्य होने पर भी णत्व कहना चाहिये। जैसे—'इक्षुवाहणम्'। यहाँ 'इक्षुकर्मकाधिकरण वाहन' इतना ही मात्र अर्थबोध है, 'इक्ष्वाहित वाहन' ऐसा अर्थ नहीं। यहाँ दूसरा पक्ष यह भी है कि 'आहितात्' में यदि हम भूतत्व की अविवक्षा कर देंगे तो उपस्थित अर्थ सूत्र से ही लब्ध हो जायेगा। इस पक्ष में 'आहितोपस्थितयोः' यह वार्तिक व्यर्थ हो जाता है।

दूसरे कहते हैं—**वाह्य**=वहनीयवाचक से पर में वाहन शब्द को णत्व कहना चाहिये। अच्छा तो **वाह्य**=वहनीय अर्थ का वाचक से पर में वाहन शब्द को णत्व कहेंगे, इससे जहाँ गर्गगोत्र वालों का वाहन **अपविद्धं तिष्ठति**=ढोने की शक्ति नष्ट कर व्यर्थ पडा है, वहाँ णत्व नहीं होगा। जैसे—'गर्गवाहनम्'। परन्तु स्वस्वामिभाव वाच्य होने पर 'गर्गस्वामिकं वाहनम्' इस अर्थ में 'गर्गवाहणम्', यह णत्वविशिष्ट रूप होगा। {**वाहनमाहितात्**}।

वा भावकरणयोः ८.४.१०

'पानं देशे' ८.४.९ सूत्र से 'पानम्' की अनुवृत्ति होती है।

सूत्रार्थ—'भाव शब्दान्त और करण शब्दान्त पान शब्द को भाव और करण वाच्य होने पर पूर्वपदस्थनिमित्त से पर में विकल्प से णत्व हो'। जैसे—'क्षीरपाणम्, क्षीरपानम्। क्षीरस्य पानं क्षीरपाणनम्'। यहाँ भाव अथवा करण में ल्युट् है। पानक्रिया अथवा पानपात्र विवक्षित है।

* वाप्रकरणे गिरिनद्यादीनामुपसंख्यानम् * **वाप्रकरणे गिरिनद्यादीनामुपसंख्यानं कर्तव्यम्। गिरिणदी गिरिनदी। चक्रणितम्बा चक्रनितम्बा।**

'वा'प्रकरण में 'गिरिनदी' आदि को भी विकल्प से णत्व कहना चाहिये। जैसे—'गिरिणदी गिरिनदी। चक्रणितम्बा चक्रनितम्बा'। {**वा भावकरणयोः**}।

प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु च ८.४.११

सूत्रार्थ—'पूर्वपदस्थनिमित्त से पर में स्थित प्रातिपदिकान्त, नुम् और विभक्तिस्थ नकार को अडादिव्यवधान होने पर भी णत्व हो'। जैसे प्रतिपदिकान्त में—'माषवापिणौ'। नुम् में—'व्रीहिवापाणि'। विभक्ति में—'माषवापेण'। पक्ष में णत्वाभावघटित 'माषवापिनौ', 'व्रीहिवापानि', 'माषवापेन' यह भी रूप होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

*** प्रातिपदिकान्तस्य णत्वे समासान्तग्रहणमसमासान्तप्रतिषेधार्थम् * प्रातिपदिकान्तस्य णत्वे समासान्तग्रहणं कर्तव्यम्। किं प्रयोजनम्? 'असमासान्तप्रतिषेधार्थम्'। असमासान्तस्य मा भूद्—गर्गभगिनी दक्षभगिनीति। न वा भवति—गर्गभगिणीति? भवति यदैतद् वाक्यं—गर्गाणां भगो गर्गभगः, गर्गभगोऽस्याऽस्तीति। यदा त्वेतद् वाक्यं भवति—गर्गाणां भगिनी गर्गभगिनीति तदा न भवितव्यं, तदा मा भूदिति। यदि समासान्तग्रहणं क्रियते माषवापिणी व्रीहिवापिणीत्यत्र न प्राप्नोति।**

प्रातिपदिकान्त को णत्व की कर्तव्यता में समासान्तग्रहण करना चाहिये। अर्थात् समासान्त 'न' को णत्व कहना चाहिये। इससे जो समास का अन्त नहीं है, उसका प्रतिषेध हो जायेगा। अन्तशब्द अवसानवर्ती एकदेश अर्थ का वाचक है। परन्तु यह वार्तिक पढने पर 'गर्गभगिनी' में णत्व प्राप्त होगा। यहाँ 'भगिन्', ऐसा नान्त प्रातिपदिकान्त समासान्त 'न्' है। यदि असमासान्त को णत्व कहेंगे तो 'गर्गभगिनी'घटक 'गर्गभगिन्' समासान्त 'न्' है। उसको णत्व प्राप्त नहीं होने से 'गर्गभगिणी' यह रूप नहीं हो सकेगा। यदि 'गर्गाणां भगो गर्गभगः, गर्गभगोऽस्याऽस्ति स गर्गभगिन्' यहाँ ऐसा विग्रह मानेंगे तो समासान्त 'न्' है। असमासान्त को णत्व कहने में यहाँ णत्व नहीं हो सकेगा। परन्तु यदि हम विग्रह दूसरे तरह से करेंगे; जैसे—'गर्गाणां भगिनी गर्गभगिनी' तो यहाँ पर समासान्त 'न्' नहीं है, अतः समासान्त 'न्' को णत्व कहने में यहाँ णत्व प्राप्त नहीं हो सकेगा। यहाँ यह समझना चाहिये कि यदि 'गर्गभगिणी' में णत्व इष्ट है तो नान्त के साथ समास कीजिये। जैसे—'गर्गाणां भगी गर्गभगिन्' इस पक्ष में णत्वविकल्प होकर 'गर्गभगिणी' तथा 'गर्गभगिनी' ये दोनों रूप हो जायेंगे। परन्तु यदि 'गर्गाणां भगिनी' यह विग्रह करेंगे तथा समासान्त प्रातिपदिकान्त को णत्व कहेंगे तो 'गर्गभगिनी' में णत्व नहीं हो सकेगा। इसी तरह यदि समासान्त नान्त प्रातिपदिक को णत्व कहेंगे तो 'माषणां वापिनी माषवापिणी, व्रीहीणां वापिनी व्रीहिवापिणी' में भी णत्व प्राप्त नहीं होगा, यह पूर्वपक्ष है। इसका उत्तरपक्ष ऐसे समझना चाहिये—समासान्त 'न्' को णत्व कहने में 'माषाणं वापिन् माषवापिन्, व्रीहीणां वापिन् व्रीहिवापिन्' ऐसा करने से समासान्त नान्त प्रातिपदिक है, स्त्रीत्वविवक्षा में नान्त से ङीप् कर लेगे तथा विकल्प से णत्व भी हो जायेगा।

*** लिङ्गविशिष्टग्रहणे चोक्तम् * लिङ्गविशिष्टग्रहणे चोक्तम्। किमुक्तम्? 'गतिकारकोपपदानां समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्ते'रिति * तत्र युवादिप्रतिषेधः ***

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तत्र युवादीनां प्रतिषेधो वक्तव्यः। आर्ययूना क्षत्रिययूना। प्रपक्वानि परिपक्वानि। दीर्घाह्नी शरदिति।

यदि यह कहा जाये कि नान्त समासान्त पुल्लिङ्ग अथवा क्लीब में ही मिलेगा। स्त्रीत्व में नान्त सम्भव नहीं है। स्त्रीत्व वाच्य होने पर विकल्प से णत्व कैसे होगा? तो इसका उत्तर यह दिया जा सकता है कि 'प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्'='प्रतिपदिक के ग्रहण में लिङ्गविशिष्ट का ग्रहण होता है', इस परिभाषा से लिङ्गविशिष्ट=लिङ्गबोधकप्रत्यय ङीप् आदिविशिष्ट का ग्रहण हो जाने से णत्व हो जायेगा, तो इस विषय में कहते हैं कि इससे पूर्व लिङ्गविशिष्टग्रहण में मैंने बताया है कि 'गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः' ऐसा नियम है। कृदन्त के साथ समास होने से णत्व हो जायेगा।

समासान्त 'न्' को णत्व कहने में युवादि का प्रतिषेध कहना चाहिये। जैसे—'आर्यस्य युवा आर्ययुवा, तेन आर्ययूना, क्षत्रियस्य युवा क्षत्रिययुवा, तेन क्षत्रिययूना' यहाँ नान्त प्रातिपदिक होने से णत्व प्राप्त था, उसको निषेध किया गया है। इसी तरह 'प्रपक्वानि' में प्रपक्वन्, 'परिपक्वानि' में परिपक्वन्, दीर्घाह्नी' में दीर्घाह्न् नान्त समासान्त होने से णत्व प्राप्त था, जिसका निषेध किया गया है। {प्रातिपदिकान्त-}।

कुमति च ८.४.१३

सूत्रार्थ—'पूर्वपदस्थनिमित्त से पर में कवर्गवान् उत्तरपदस्थ नकार को णत्व हो'। जैसे—'प्रमुखेण, वर्षभोग्येण भर्तुः, रामकविणा'।

अथेह कथं भवितव्यं—माषकुम्भवापेण व्रीहिकुम्भवापेणेति, नित्यं णत्वेन भवितव्यम् आहोस्विद् विभाषया? यदा त्वेतद् वाक्यं भवति—कुम्भस्य वापः कुम्भवापः, माषाणां कुम्भवापो माषकुम्भवाप इति, तदा नित्यं णत्वेन भवितव्यम्। तदा त्वेतद् वाक्यं भवति, माषाणां कुम्भो माषकुम्भः, माषकुम्भस्य वापो माषकुम्भवाप इति, तदा विभाषया भवितव्यम्।

पूर्वपद और उत्तरपद समास में रूढ है। 'माषकुम्भवापेण व्रीहिकुम्भवापेण' णत्व कैसे होगा? यहाँ यह मान कर प्रश्न किया जा रहा है कि 'माषस्य कुम्भः मापकुम्भस्तस्य वापः माषकुम्भः' यहाँ मध्यमपद का व्यवधान होने से पूर्वपद माष के प्रति 'वापेन' यह उत्तरपद नहीं है। इसी तरह 'व्रीहिकुम्भवापेण' में भी मध्यमपद का व्यवधान होने से पूर्वपदस्थनिमित्त से पर में उत्तरपदस्थ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नकार नहीं है, जिसको णत्व हो सके, अतः 'माषकुम्भवापेण व्रीहिकुम्भवापेण' यहाँ णत्व कैसे होगा? इसका उत्तर देते हैं—यदि 'कुम्भस्य वापः कुम्भवापः' ऐसा पहले समास करके माष पद के साथ 'माषाणां कुम्भवापो माषकुम्भवापः' ऐसा समास करेंगे तो उत्तरपद 'कुम्भवापेन' हुआ तथा पूर्वपद माष हुआ। एवम् पूर्वपदस्थनिमित्त षकार से पर में उत्तरपदस्थ नकार को नित्य णत्व हो जायेगा—'माषकुम्भवापेण'। इसी तरह 'व्रीहिकुम्भवापेण' में भी समझें। परन्तु यदि 'माषाणां कुम्भो माषकुम्भः, माषकुम्भस्य वापो माषकुम्भवापस्तेन', ऐसा वाक्य होगा तो इस में मध्यम पद का व्यवधान होने से नित्य णत्व नहीं होगा, अपितु 'प्रतिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु च' ८.४.११ से विकल्प से णत्व होगा। {कुमति च}।

उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य ८.४.१४

सूत्रार्थ—'उपसर्गस्थनिमित्त से पर में णोपदेश धातु के नकार को समास होने तथा समास नहीं होने पर भी णत्व हो'। जैसे—'प्रणमति, प्रणदति'।

असमासग्रहणं किमर्थम्?। समास इति वर्त्तते, असमासेऽपि यथा स्यात्—प्रणमति परिणमति। क्व पुनः समासग्रहणं प्रकृतम्? 'पूर्वपदात् संज्ञायामग' इति। कथं पुनस्तेन समासग्रहणं शक्यं विज्ञातुम्? पूर्वपदान्तग्रहणसामर्थ्यात्। समास एवैतद् भवति पूर्वपदमुत्तरपदमिति।

इस सूत्र में असमासग्रहण क्यों किया गया है? यदि असमासग्रहण नहीं करेते तो 'उपसर्गादपि णोपदेशस्य' इतना मात्र सूत्र होता। इस सूत्र में 'समासे' पद की अनुवृत्ति होती। इससे समास में ही णत्व होता, असमास में नहीं। असमास में भी णत्व हो, इसके लिए इस सूत्र में असमासग्रहण किया गया है। कहाँ समासग्रहण किया गया है? 'पूर्वपदात् संज्ञायामगः' ८.४.३ में पूर्वपद का ग्रहण है। पूर्वपद तथा उत्तरपद समास के चरमावयव में रूढ हैं, अतः पूर्वपदग्रहणसामर्थ्य से समास अर्थ का लाभ करेंगे तथा 'उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य' ८.४.१४ में उसी का अनुवर्तन करेंगे।

अथाऽपिग्रहणं किमर्थम्? समासेऽपि यथा स्यात्—प्रणामकः। परिणामकः। यदि तर्हि समासे चाऽसमासे चेष्यते नाऽर्थो'ऽसमासेऽपि'ग्रहणेन। निवृत्तं पूर्वपदादिति। अविशेषेणोपसर्गाण्णत्वं वक्ष्यामि। समासे नियमान्न प्राप्नोति। असिद्धमुपसर्गाण् णत्वं, तस्याऽसिद्धत्वान्नियमो न भविष्यति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस सूत्र में 'अपि' पद का ग्रहण क्यों किया गया है? वह इसलिए कि 'समासे' का अनुवर्तन हो रहा है। 'अपि' पद का ग्रहण से समास में भी णत्व होगा। 'अपि' पद का ग्रहण से समास और असमास, दोनों का समुच्चय हो जाता है। अच्छा तो यदि समास और असमास, दोनों में णत्व इष्ट है तो 'असमासे' यह कहने की आवश्यकता नहीं है। एवम् 'पूर्वपदात् संज्ञायामगः' ८.४.३ सूत्र से जो 'पूर्वपदात्' की अनुवृत्ति आ रही है, प्रकृत सूत्र में इसकी भी आवश्यकता नही है। 'पूर्वपदात्' की निवृत्ति हो जायेगी। मात्र 'उपसर्गाण्णोपदेशस्य' इतना ही सूत्र रखा जायेगा। जी, यदि आप 'उपसर्गाण्णोपदेशस्य' इतना ही सूत्र रखेंगे तो 'पूर्वपदात् संज्ञायामगः' ८.४.३ इस सूत्र के नियमपक्ष में समास में णत्व प्राप्त नहीं हो सकेगा। परन्तु 'रषाभ्यां नो णः समानपदे' ८.४.१ सूत्रघटक 'समानपदे' को 'समानमेव यन्नित्यं पदम्' ऐसा अर्थ करेंगे तो 'पूर्वपदात् संज्ञायामगः' ८.४.३ यह विधिसूत्र होगा। इस पक्ष में 'असमासेऽपि' यह ज्ञापक असंगत हो जायेगा। यदि आप 'पूर्वपदात् संज्ञायामगः' ८.४.३ को नियम[1] मानेंगे तो उपसर्गनिमित्तक णत्व 'पूर्वपदात् संज्ञायासमगः' ८.४.३ के प्रति असिद्ध होगा, अतः उसके असिद्ध होने से नियम नहीं हो सकेगा। यहाँ यह ध्येय है कि भाष्यकार 'असिद्धमुपसर्गाण्णत्वम्' ऐसा कह रहे हैं। इसका भाव यह है कि 'पूर्वपदात् संज्ञायामगः' ८.४.३ की दृष्टि में 'उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य' ८.४.१४ असिद्ध रहेगा। यहाँ भाष्यकार ने योग के प्रति योग को असिद्ध कहा है; जब कि इससे पूर्व 'न हि योगो योगेऽसिद्धः। किं तर्हि? प्रकरणे प्रकरणमसिद्धम्' ऐसा कहा है। इससे प्रकरण के प्रति प्रकरण का असिद्धत्व बोधित है। प्रकरण अर्थवान् वाक्य होता है तथा तादृश अर्थवान् वाक्य के अन्तर्गत होने से प्रकरण में योग अनर्थक होता है, अतः योग के प्रति योग असिद्ध नहीं हो सकता है, अपितु प्रकरण के प्रति प्रकरण को ही असिद्ध कहना होगा। यदि योग के प्रति योग को असिद्ध कहेंगे तो एक योग, जिसका असिद्धत्वबोध हो रहा है, वह अनर्थक हो जायेगा। परन्तु प्रकरण के प्रति प्रकरण को असिद्ध करेंगे तो सम्पूर्ण प्रकरण निरर्थक हो जायेगा। परन्तु इस पक्ष का आश्रयण करने पर प्रकृत में कुछ भी फल नहीं है। भाष्यकार ने प्रकृत में प्रकरण के प्रति प्रकरण को असिद्ध कहने का कोई फल नहीं दिया है, अतः योग के प्रति ही योग को असिद्ध कहा है। सूत्र में

---

१. वस्तुतः 'पूर्वपदात् संज्ञायासमगः' ८.४.३ इस सूत्र का विधिपक्ष ही शास्त्रसम्मत हो रहा है, नियामकत्वपक्ष नहीं। इस तरह 'असमासेऽपि' यह अंश व्यर्थ हो रहा है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'असमासेऽपि' ऐसा सूत्र नहीं पढ कर सामान्य रूप से 'उपसर्गाण्णोपदेशस्य' ऐसा सूत्र कहने पर नियम नहीं हो सकेगा। इस तरह समास, असमास इत्युभय में णत्व सिद्ध हो गया तथा सूत्र में 'असमासेऽपि'ग्रहण व्यर्थ हो गया।

एवं तर्हि सिद्धे सति यदसमासेऽपिग्रहणं करोति तज्ज्ञापयत्याचार्यो— 'न योगो योगेऽसिद्धः। किं तर्हि? 'प्रकरणे प्रकरणमसिद्ध'मिति। किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनम्? यत्तदुक्तं—निष्कृतं निष्पीतमित्यत्र सत्वस्याऽसिद्धत्वात् षत्वं न प्राप्नोती'ति, न स दोषो भवति।

अच्छा तो इस तरह लक्ष्य सिद्ध हो जाने पर भी आचार्य ने जो 'असमासेऽपि' ग्रहण किया है, उससे बताते हैं कि 'योग के प्रति योग असिद्ध नहीं होता है'। यदि योग के प्रति योग असिद्ध नहीं होता है तो क्या होता है? प्रकरण के प्रति प्रकरण को ही असिद्ध होता है। प्रकरण के प्रति प्रकरण का असिद्धत्वज्ञापन करने से प्रकृत में क्या आया? इसका प्रयोजन यह आया कि 'सत्व के असिद्ध होने से षत्व प्राप्त है' यह दोष नहीं आता है। ऐसे कि 'निष्कृतं निष्पीतम्' में विसर्जनीय को ही षत्व करेंगे, 'स' को षत्व नहीं करेंगे।

* णोपदेशं प्रत्युपसर्गाऽभावादनिर्देशः * **णोपदेशं प्रत्युपसर्गाऽभावादनिर्देशः। अगमको निर्देशोऽनिर्देशः। यत्क्रियायुक्तास्तं प्रति गत्युपसर्गसंज्ञे भवतो, न च णोपदेशं प्रति क्रियायोगः। एवं तर्ह्याहाऽयमुपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्येति, न च णोपदेशं प्रत्युपसर्गोऽस्ति, तत्र वचनाद् भविष्यति।**

अब सम्पूर्ण सूत्र का वैयर्थ्य उपपादन करते हैं—**णोपदेशं प्रतीति।** णोपदेश के प्रति उपसर्गसंज्ञा नहीं होने से सूत्रनिर्देश सार्थक नहीं है। जिस क्रिया के साथ प्रादि का योग होता है, उसी के प्रति उसकी उपसर्गसंज्ञा तथा गतिसंज्ञा होती है। णोपदेश के प्रति प्रादि का योग नहीं है, अतः णोपदेश के प्रति उपसर्ग नहीं होने से सूत्र व्यर्थ है। जी, इस तरह यह सूत्र व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा कि 'णोपदेश के प्रति प्रादि का क्रियायोग होता है'।

* वचनप्रामाण्यादिति चेत् पदलोपे प्रतिषेधः * **वचनप्रामाण्यादिति चेत् पदलोपे प्रतिषेधो वक्तव्यः। प्रगता नायका अस्माद् ग्रामात्— प्रनायको ग्राम इति।**

यदि वचनप्रमाण से णादि के प्रति प्रादि का क्रियायोग कहेंगे तो पदलोप में णत्व का निषेध कहना होगा। जैसे—'प्रगता नायका अस्माद् ग्रामादिति प्रनायको ग्रामः'; यहाँ णोपदेश णीञ् प्रापणे धा.पा.९०१ के योग में 'प्र' का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्रियायोग है, अतः 'उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य' से णत्व प्राप्त होगा, जिसका निषेध कहना होगा। जी, यह निषेधवचन कहने की आवश्यकता नहीं है। विना निषेधवचन पढे ही यहाँ णत्व की निवृत्ति हो जायेगी। वह इस तरह कि जिसके प्रति उपसर्ग है, उस में विद्यमान 'न्' को ही णत्व करेगा। 'प्रनायको ग्रामः' यहाँ पर 'प्र' का णीञ् के प्रति प्रयोग नहीं है, अपितु 'प्रगता नायका अस्माद् ग्रामात्' इस विग्रह में 'गत'क्रिया के साथ 'प्र' का योग है। गतघटक कोई नकार नहीं है, जिसको णत्व किया जा सके। नायकघटक नकार तो है, वह 'प्र' से पर में भी है, परन्तु 'नायक' शब्द के साथ 'प्र' का योग नहीं है, अतः नायकघटक नकार को णत्व नहीं होगा।

* सिद्धं तु यं प्रत्युपसर्गस्तस्तत्स्थस्येति वचनात् * **सिद्धमेतत्। कथम्? 'यं प्रत्युपसर्गस्तस्तत्स्थस्येति वचनात्'। यं प्रत्युपसर्गस्तस्तत्स्थस्य णो भवतीति वक्तव्यम्। सिद्ध्यति। सूत्रं तर्हि भिद्यते। यथान्यासमेवाऽस्तु। ननु चोक्तं—'णोपदेशं प्रत्युपसर्गाऽभावादनिर्देश' इति। नैष दोषः। णोपदेश इति नैवं विज्ञायते—ण उपदेशः णोपदेशः, णोपदेशस्येति। कथं तर्हि? ण उपदेशोऽस्य सोऽयं णोपदेशः, णोपदेशस्येति।**

अच्छा तो 'यं प्रत्युपसर्गस्तस्तत्स्थस्येति वचनात्' ऐसा कहेंगे तो इससे 'प्रनायकः' में णत्व की आपत्ति नहीं रहेगी, परन्तु सूत्रभेद तो होगा। अच्छा तो सूत्रभेद न हो, इसके लिए आप यथान्यास ही रखिये। सूत्र को यथान्यास रखने में 'णोपदेश के प्रति उपसर्गयोग नहीं है, अतः सूत्रनिर्देश नहीं करना चाहिये', ऐसा जो आप ने कहा है उसको णोपदेशस्थल में मैं ऐसा नहीं कहता हूँ कि 'ण उपदेशो णोपदेशः' ऐसा आप कर्मधारय मानिये। मैं णोपदेश में 'ण उपदेशो णोपदेशस्तस्य णोपदेशस्य नस्य णः'='ण उपदेश णोपदेश उस णोपदेश नकार को ण हो' ऐसा बहुव्रीहि करूँगा। कर्मधारय मानने पर उपसर्ग का गौणार्थत्व हो रहा है; जबकि इसका मुख्यार्थत्व इष्ट है, अतः भगवान् भाष्यकार ने 'णोपदेशः' में बहुव्रीहि माना है। {उपसर्गादसमासेऽपि-}।

हिनुमीना ८.४.१५

सूत्रार्थ—'उपसर्गनिमित्तक रेफ से पर में हिनु और मीनाघटक नकार को णत्व हो'। जैसे—'प्रहिणोति। प्रमीणीते'। प्रपूर्वक हि गतौ वृद्धौ च धा.पा.१२५७ से 'स्वादिभ्यः श्नुः' ३.१.७६ से श्नु विकरण होकर 'हिनु' शब्द है। एवं प्रपूर्वक मीञ् हिंसायाम् धा.पा.१४७६ से 'क्र्यादिभ्यः श्ना' ३.१.८१ से श्ना विकरण है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

* हिनुमीनाग्रहणे विकृतस्योपसङ्ख्यानम् * **हिनुमीनाग्रहणे विकृतस्योपसङ्ख्यानं कर्तव्यम्। प्रहिणोति प्रमीणीते। वचनाद् भविष्यति। अस्ति वचने प्रयोजनम्। किम्? प्रहिणुतः प्रमीणाति।**

हिनुमीना के ग्रहण में विकृत का भी उपसङ्ख्यान करना चाहिये। जैसे—'प्रहिणोति' में गुण हो जाने से 'हिनो' ऐसा रूप हो गया, 'हिनु' नहीं है। एवम् 'प्रमीणीते' में 'ई हल्यघोः' ६.४.११३ से इत्व होने पर 'मीनी' ऐसा विकृत रूप है। 'हिनु' और 'मीना' रूप न होने से णत्व प्राप्त नहीं हो सकेगा; यहाँ णत्व हो, इसके लिए 'हिनु' और 'मीना' के ग्रहण में विकृत का ग्रहण करना चाहिये। जी, उक्त स्थल में विकृत का ग्रहण नहीं करना पडेगा। वचनसामर्थ्य से णत्व सिद्ध हो जायेगा। जी, उक्त स्थल में वचनसामर्थ्य से णत्व नहीं कह सकते हैं। इस वचन का अन्यत्र प्रयोजन है—'प्रहिणुतः प्रमीणाति' में, अतः वचन व्यर्थ नहीं है।

* सिद्धमचः स्थानिवत्त्वात् * **सिद्धमेतत्। कथम्? 'अचः स्थानिवत्त्वात्'। स्थानिवद्भावादत्र णत्वं भविष्यति। प्रतिषिध्यतेऽत्र स्थानिवद्भावः—'पूर्वत्राऽसिद्धे न स्थानिव'दिति। दोषा एवैते तस्याः परिभाषायाः—'तस्य दोषः संयोगादिलोपलत्वणत्वे'ष्विति।** {हिनुमीना}।

अच्छा तो गुण और ईत्व आदेशस्थल में हम अजादेश को स्थानिवत् करेंगे। 'अचः परस्मिन् पूर्वविधौ' १.१.५७ से परनिमित्तक अजादेश गुण आदेश तथा ईत्व आदेश स्थानी के तुल्य होता है, स्थानिभूत अच् से पूर्व में दृष्ट नकार को णत्वविधि कर्तव्य है। इस तरह स्थानिवद्भाव होने से 'हिनु' और 'मीना' रूप ही रहेगा, 'हिनो' और 'मीनी' रूप नहीं, अतः णत्व हो जायेगा। जी, यहाँ पर 'पूर्वत्राऽसिद्धे न स्थानिवत्' यह स्थानिवद्भाव का निषेधवचन है, अतः स्थानिवद्भाव नही हो सकेगा। जी, यह कोई दोष नही है। संयोगादिलोप—'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' ८.२.२९, लत्व—'कृपो रो लः' ८.२.१८, एवं णत्व की कर्तव्यता में 'पूर्वत्राऽसिद्धे न स्थानिवत्' यह स्थानिवद्भाव का निषेधवचन नहीं लगता है। **(हिनुमीना)**।

आनि लोट् ८.४.१६

'आनि' और 'लोट्', ये दोनों ही लुप्तषष्ठीक पद हैं। पूर्वसूत्र से 'रषाभ्यां नो णः' ८.४.१ तथा 'उपसर्गात्' की अनुवृत्ति है।

सूत्रार्थ—'लोट्स्थानिक आदेश आनि के नकार को उपसर्गस्थ निमित्त से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पर में णत्व हो'। जैसे—'प्रभवाणि'।

लोडिति किमर्थम्? प्रहिमानि कुलानि, प्रवपानि मांसानि * आनिलोड्ग्रहणानर्थक्यमर्थवद्ग्रहणात् * **आनिलोड्ग्रहणम् अनर्थकम्। किं कारणम्? 'अर्थवद्ग्रहणात्'। अर्थवतः आनिशब्दस्य ग्रहणं, नैषोऽर्थवान्।**

सूत्र में लोड्ग्रहण क्यों करते हैं? यदि सूत्र में लोड्ग्रहण नहीं करेंगे तो 'आनि' मात्र इतना ही सूत्र होगा। इसका अर्थ होगा—'उपसर्गस्थ निमित्त से पर में अट्, कु, पु आङ् एवं नुम् का व्यवाय होने पर आनि के नकार को णकार आदेश हो'। इससे 'प्रभवाणि' की लक्ष्यसिद्धि हो जायेगी। परन्तु इसकी अतिव्याप्ति 'प्रहिमानि कुलानि, प्रवपानि मांसानि' इस जसन्त स्थल में होगी। 'प्रहिमानि, प्रवपानि' इस जसन्त स्थल में 'आनि' है, उसको णत्व की आपत्ति होगी। उसका वारण करने के लिए सूत्र में लोड्ग्रहण किया गया है। जी, लोड्ग्रहण का यह व्यावर्त्य नहीं है। अर्थवान् लोट् के ग्रहण में अनर्थक 'प्रहिमानि, प्रवपानि'घटक 'आनि' का ग्रहण नहीं होने से णत्व की अतिव्याप्ति नही होगी। अर्थवान् लोट्स्थानिक 'आनि' का ग्रहण होगा। 'आनि' अनर्थक है।

* अनुपसर्गाद्वा * **अथवा यत्क्रियायुक्तास्तं प्रति गत्युपसर्गसंज्ञे भवतो, न चैतम् आनिशब्दं प्रति क्रियायोगः। इहापि तर्हि न प्राप्नोति—प्रयाणि, परियाणीति, अत्रापि नाऽऽनिशब्दं प्रति क्रियायोगः। आनिशब्दं प्रत्यत्र क्रियायोगः। कथम्? यत्क्रियायुक्ता इति नैवं विज्ञायते 'यस्य क्रिया यत्क्रिया, यत्क्रियायुक्तास्तं प्रति गत्युपसपर्गसंज्ञे भवत' इति। कथं तर्हि? या क्रिया यत्क्रिया, यत्क्रियायुक्तास्तं प्रति गत्युपसपर्गसंज्ञे भवत' इति।**

अथवा यहाँ पर णत्व का अतिव्याप्तिनिरास करने के लिए दूसरा तरीका यह भी है कि 'प्रहिमानि, प्रवपानि' में 'प्र' उपसर्ग नहीं है। प्रादि जिस क्रिया से युक्त होते हैं, उसी क्रिया के प्रति गतिसंज्ञक तथा उपसर्गसंज्ञक होते हैं। 'प्रहिमानि, प्रवपानि'घटक 'आनि' के प्रति प्रादि का क्रियायोग नहीं है, अतः उनकी उपसर्गसंज्ञा नहीं होने से णत्व की अतिव्याप्ति नहीं है। अच्छा तो यदि ऐसा नियम मानेंगे तो 'प्रयाणि परियाणि' यहाँ पर भी 'आनि' निरर्थक है तथा 'आनि' के प्रति प्रादि का योग होना चाहिये, जिससे उपसर्गसंज्ञा नहीं होने से णत्व की अव्याप्ति होगी। जी, 'यत्क्रियायुक्ताः प्रादयस्तं प्रति गत्युपसर्गसंज्ञे भवतः' यहाँ पर मैं 'यस्य क्रिया यत्क्रिया, यत्क्रियायुक्तास्तं प्रति गत्युपसपर्गसंज्ञे भवत' ऐसा नहीं कह रहा हूँ। तब कैसा कह रहे हैं? 'या क्रिया यत्क्रिया,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यत्क्रियायुक्तास्तं प्रति गत्युपसपर्गसंज्ञे भवत' ऐसा कह रहा हूँ। कर्मधारय कहने से प्रादि से पर में जो क्रिया, उससे युक्त प्रादि की उपपसर्गसंज्ञा हो, ऐसा कहने से 'प्रयाणि, परियाणि' में प्रादि से पर में 'या' क्रिया है, उससे युक्त प्रादि उपपसर्ग है, अतः णत्व हो जायेगा। परन्तु 'यस्य क्रिया' ऐसा कहने से 'प्रहिमानि, प्रवपानि' में प्रादि की क्रिया 'हिम' और 'वप' नहीं है, अतः उसके प्रति उपसर्गत्व नहीं होगा। इस तरह सूत्र में लोड्ग्रहण नहीं करना चाहिये। {आनि लोट्}।

नेर्गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिषु च ८.४.१७

सूत्रार्थ—'उपसर्गस्थनिमित्त से पर में गदादि पर रहते 'नि' के नकार को णत्व हो'। जैसे—'प्रणिगदति'।

*** नेर्गदादिषु अड्व्यवाय उपसङ्ख्यानम् * नेर्गदादिषु अड्व्यवाय उपसङ्ख्यानं कर्त्तव्यम्। प्रण्यगदत्। परिण्यगदत् * आङ च * आङ चेति वक्तव्यम्। प्रण्यागदत्। ननु चाऽयमड् गदादिभक्तो गदादिग्रहणेन ग्राहिष्यते। न सिध्यति। अङ्गस्याऽडुच्यते, विकरणान्तं चाङ्गम्। सोऽसौ सङ्घातभक्तोऽशक्यो गदादिग्रहणेन ग्रहीतुम्। एवं तर्ह्यड्व्यवाय इति वर्त्तते। क्व प्रकृतम्? 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपी'ति। तद्वै कार्यिविशेषणं निमित्तविशेषणेन चेहार्थः। तत्रापि निमित्तविशेषणमेव।**

गदादि से पर में नि को णत्व की विषयता में अट् का व्यवधान होने पर भी णत्व कहना चाहिये—'प्रण्यगदत्, परिण्यगदत्' यहाँ लङ् पर में रहते धातु को अडागम है, अतः व्यवधान होने से गदाद्यव्यवहितपूर्वत्वविशिष्ट 'नि' नहीं है। व्यवधान में शास्त्र की प्रवृत्ति नहीं होती है, अतः आङ् का व्यवधान होने पर भी णत्व कहना चाहिये। जैसे—'प्रण्यागदत्'। यदि यह कहा जाये कि 'यदागमास्तद्गुणीभूतास्तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते' इस परिभाषा से गदादि का आगम अट् भी गदादिग्रहण से गृहीत होगा। इससे 'प्रण्यगदत्, परिण्यगदत्' में णत्व सिद्ध हो जायेगा, उसके लिए 'नेर्गदादिषु अड्व्यवाय उपसङ्ख्यानम्' यह वार्तिक पढने की आवश्यकता नहीं है, तो इसका खण्डन करते हैं—**न सिध्यतीति**। यहाँ णत्व सिद्ध नहीं होने में कारण यह है कि अङ्ग को अडागम कहा है। अङ्गत्व विकरण शबादिविशिष्ट में है, अतः अट् का ग्रहण अङ्ग के ग्रहण से गृहीत होगा, गदादि के ग्रहण से नहीं। इसलिए अट् का व्यवधान होने से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

णत्व प्राप्त नहीं हो पा रहा है। अट् सम्पूर्ण अङ्ग का अवयव होगा, गद आदि का नहीं, अतः णत्वविधानार्थ अट् का व्यवधान होने पर भी णत्व कहना चाहिये। अच्छा तो 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' ८.४.२ सूत्र से हम अट् का अनुवर्तन कर लेंगे। उसके व्यवधान में भी णत्व हो जायेगा। इसके लिए पृथक् वचन करने की आवश्यकता नहीं है। जी, आप का यह पक्ष उचित नहीं है। 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' ८.४.२ से आप जो 'अट्' का अनुवर्तन करेंगे, वह **कार्यी**=स्थानी में विशेषण है, जब कि प्रकृत में निमित्तविशेषण से प्रयोजन है। जी, 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' ८.४.२ सूत्र में जो अडादिग्रहण है, वह भी निमित्तविशेषण ही है, कार्यिविशेषण नहीं, अतः 'अट्' की अनुवृत्ति होने से 'अड्व्यवाय उपसंख्यानम्' यह वचन पढने की आवश्यकता नहीं है। **{नेर्गदनदपत-}**।

अनितेः ८.४.१९

अन्तः ८.४.२०

अन प्राणने धा.पा.१०७० का श्तिपूनिर्देश 'अनिति' है, उसका षष्ठ्यन्त रूप 'अनितेः' है।

सूत्रार्थ—'उपसर्गस्थनिमित्त से पर में अन धातु के नकार को णत्व हो'। जैसे—'प्रणिति'। ८.४.१९.

द्वितीय सूत्र 'अन्तः' ८.४.२० में 'अनितेः' की अनुवृत्ति होती है। 'अन्तः' यह षष्ठ्यर्थ में प्रथमा है। 'अन्तः' से 'पदस्य अन्तः' ऐसा अर्थ विवक्षित है। सूत्रार्थ हुआ—'उपसर्गस्थनिमित्त से पर में पदान्त अन धातु के नकार को णत्व हो'। जैसे 'हे प्राण्!'। ८.४.२०.

अन्तग्रहणं किमर्थम्? * अनितेरन्तग्रहणं सम्बुद्ध्यर्थम् * अनितेरन्तग्रहणं क्रियते। किं प्रयोजनम्? 'सम्बुद्ध्यर्थम्'। हे प्राण्!।

'अन्तः' यह पृथक् सूत्र क्यों पढते हैं? यह पूर्वपक्ष इसलिए हो रहा है कि 'अनितेः' की अनुवृत्ति 'अन्तः' में होती है। दोनों ही सूत्र अन प्राणने धा.पा.१०७० धातु के नकार को णत्व करते हैं। वह 'अनितेः' से ही हो जायेगा, पुनः 'अन्तः' सूत्र क्यों पढा गया है? वह इसलिए कि अन प्राणने धा.पा.१०७० धातु का अन्तग्रहण सम्बुद्धि में णत्वविधान के लिए है। जैसे—'हे प्राण्!'।

अपर आह—* अनितेरन्तः पदान्तस्य * अनितेरन्तग्रहणं क्रियते,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'पदान्तस्य ने'ति प्रतिषेधः प्राप्नोति तद् बाधनार्थम् *यो वा तस्मादनन्तरः* अथवा—अयमन्तशब्दोऽस्त्येवाऽवयववाची। तद्यथा—वस्त्रान्तो वसनान्त इति। अस्ति सामीप्ये वर्त्तते। तद्यथा—उदकान्तं गतः। उदकसमीपं गत इति गम्यते। तद्यः सामीप्ये वर्त्तते तस्य ग्रहणं विज्ञायते—अनितेः समीपे यो रेफस्तस्मान्नस्य यथा स्यात्-प्राणीतीति। इह मा भूत्—पर्यनितीति।

दूसरे कहते हैं कि पदान्त नकार को णत्व का प्रतिषेध है। उसका बाध करने के लिए 'अन्तः' सूत्र का आरम्भ किया गया है। अथवा अन्तशब्द अवयववाची है। जैसे—'वस्त्रान्तो वसनान्तः' ऐसा कहा जाता है। इससे 'वस्त्र का अवयव, वसन का अवयव' ऐसा अर्थ जाना जाता है। अथ च यह अन्तशब्द सामीप्य अर्थ में भी है। जैसे—'उदकान्तं गतः' ऐसा कहने से 'उदकसमीपं गतः' ऐसा अर्थबोध होता है। इस तरह अन्त शब्द को द्व्यर्थक बता कर भाष्यकार निर्णय करते हैं कि प्रकृत में सामीप्यार्थक अन्तशब्द का ग्रहण है। 'अन' के समीप में जो रेफ, उससे पर में 'अन'घटक नकार को णत्व हो। जैसे—'प्रणिति'। 'अन'समीपवर्ती नकार को णत्व कहने का व्यावर्त्य है—'पर्यनिति' में णत्व की निवृत्ति। {अनितेः अन्तः}।

उभौ साभ्यासस्य ८.४.२१

सूत्रार्थ—'उपसर्गस्थनिमित्त से पर में अभ्याससहित अन धातु के नकार को, अर्थात् दोनों को णत्व हो'। जैसे—'प्राणिणत्'।

*** साभ्यासस्य द्वयोरिष्टम् * साभ्यासस्य द्वयोर्णत्वमिष्यते, प्राणिणिषति। {उभौ साभ्यासस्य}।**

अभ्याससहित अन धातु के नकार को, अर्थात् दोनों नकार को णत्व इष्ट है। जैसे—'प्राणिणिषति'। {उभौ साभ्यासस्य}।

हन्तेरत्पूर्वस्य ८.४.२२

वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी में श्री दीक्षित जी ने इस सूत्र की व्याख्या योगविभाग के द्वारा की है। 'हन्तेः' यह एक योग है तथा 'अत्पूर्वस्य' यह दूसरा योग है। पूर्व योग का अर्थ है—'उपसर्गस्थनिमित्त से पर में हन्ति धातु के नकार को णत्व हो'। जैसे—'प्रहण्यात्'। द्वितीय योग 'अत्पूर्वस्य' नियामक है। नियम का स्वरूप है—'हन्तेरत्पूर्वस्यैव नस्य णत्वं, नाऽन्यस्य'। 'अत्पूर्वक हन के नकार को ही णत्व हो', ऐसा कहने से 'प्रहण्यात्' में णत्व होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस नियम का व्यावर्त्य विषय है—'प्रघ्नन्ति, वृत्रघ्नः'।

हन्तेरत्पूर्वस्येति किमर्थम्? प्रघ्नन्ति परिघ्नन्ति * हन्तेरत्पूर्वस्य वचने उक्तम् * **हन्तेरत्पूर्वस्य वचने उक्तम्। किमुक्तम्? 'कुव्यवाये हादेशेषु प्रतिषेधः' इति।** {हन्तेरत्पूर्वस्य}।

अब भाष्यकार अत्पूर्वक हन के नकार को णत्व कह कर 'प्रघ्नन्ति, परिघ्नन्ति' ऐसा उदाहरण देते हैं। इससे पूर्व भाष्यकार ने 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' ८.४.२ सूत्र पर 'कुव्यवाये हादेशेषु प्रतिषेधः' ऐसा कहा है। इस तरह 'प्रघ्नन्ति, परिघ्नन्ति' में हादेश कवर्ग का व्यवधान है, अतः भाष्यमत में सूत्र का नियामकत्व नहीं रहेगा। **{हन्तेरत्पूर्वस्य}**।

उपसर्गादनोत्परः ८.४.२८

प्रकृत सूत्र में 'नश्च धातुस्थोरुषुभ्यः' ८.४.२७ से लुप्तषष्ठीक नासिकार्थक 'नस्' शब्द की अनुवृत्ति है। 'न ओत् अनोत्, अनोत् परः यस्मादसौ अनोत्परः'।

सूत्रार्थ—'उपसर्गस्थ निमित्त रेफ और ष् से पर में नस् के नकार को णत्व हो'। जैसे—'प्रगता नासिका यस्यासौ प्रणसः'। यहाँ नासिका को नस् आदेश तथा 'उपसर्गाच्च' ५.४.११९ से समासान्त अच् प्रत्यय है। 'अनोत्परः' ऐसा निषेध करने से 'प्र नो मुञ्चतम्' में णत्व नहीं हुआ।

कथमिदं विज्ञायते—ओकारात् परः ओत्परः, न ओत्परोऽनोत्पर इति, आहोस्विदोकारः परोऽस्मात् सोऽयमोत्परः, न ओत्परोऽनोत्पर इति। किं चातः? यदि विज्ञायते—'ओकारात् परः ओत्परः, न ओत्परोऽनोत्पर इति, प्र नो मुञ्चतम्—अत्रापि प्राप्नोति। अथ विज्ञायते—ओकारः परोऽस्मात् सोऽयमोत्परः, न ओत्परोऽनोत्पर इति, प्राणो वनिर्देवकृता, अत्र न प्राप्नोति। उभयथा च प्रक्रमे दोषो भवति। प्र नः मुञ्चतम् प्र नो मुञ्चतम्। प्र उ नः प्रोनः * भाविन्यप्योति नेष्यते * **भाविन्यप्योकारे णत्वं नेष्यते। एवं तर्ह्युपसर्गाद् बहुलमिति वक्तव्यम्।** {उपसर्गादनोत्परः}।

जी!, 'अनोत्परः' का क्या अर्थ समझा जायेगा—'ओकारात् परः ओत्परः, न ओत्परोऽनोत्परः' ऐसा तत्पुरुष समझा जायेगा, अथवा 'ओकारः परोऽस्मात् सोऽयमोत्परः, न ओत्परोऽनोत्परः' ऐसा पहले बहुव्रीहि तथा बाद में तत्पुरुष

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समझा जायेगा? इस तरह की शङ्का आपके मन में कैसे हुयी? वह ऐसे कि यदि 'ओकारात् परः ओत्परः, न ओत्परोऽनोत्परः' ऐसा तत्पुरुष मानेंगे तो ओकार से पर में नस् शब्द नहीं हो, उसी को णत्व करेगा। इससे 'प्र नो मुञ्चतम्' में ओकार से पर में नस् शब्द नहीं है, अतः यहाँ णत्व प्राप्त होने लगेगा, जो इष्ट नहीं है। अथवा यदि पहले बहुव्रीहि तथा बाद में तत्पुरुष 'ओकारः परोऽस्मात् सोऽयमोत्परः, न ओत्परोऽनोत्परः' ऐसा समास करेंगे तो इस पक्ष में 'प्राणो वनिर्देवकृता' में 'न' से पर में ओत् है, अतः 'अनोत्परः' निषेध लग जाने से इष्ट णत्व भी न प्राप्त नहीं होगा। इस तरह चाहे तत्पुरुष मानें अथवा बहुव्रीहि मानें, दोनों ही पक्षों में 'प्र नः मुञ्चतम्-प्र नो मुञ्चतम्' और 'प्र उ नः-प्रोनः' में दोष बना हुआ है। 'प्र नः मुञ्चतम्-प्र नो मुञ्चतम्' और 'प्र उ नः-प्रोनः' में उभयपक्षों में 'अनोत्परः' होने से 'नः' को अनिष्ट णत्व होने लगेगा। इस अनिष्ट णत्व का निवारण करते हैं—**भाविन्यपीति**। ओत् भावी हो, तब भी 'अनोत्परः' यह निषेध लगेगा। 'प्र नः मुञ्चतम्' और 'प्र उ नः' में ओत् भावी है, अतः णत्व का निषेध हो जायेगा। अच्छा तो दोनों ही पक्षों में दोष है, अतः 'उपसर्गादनोत्परः' इस सूत्र के स्थान पर 'उपसर्गाद् बहुलम्' ऐसा सूत्रपाठ कर देंगे। इससे बाहुलकात् सभी दोषों का निराकरण हो जायेगा। {**उपसर्गादनोत्परः**}।

कृत्यचः ८.४.२९

सूत्रार्थ—'उपसर्गस्थ निमित्त से पर में अच् से उत्तर में कृत्स्थ न को णत्व हो'। जैसे—प्रयाणीयम्'।

* कृत्स्थस्य णत्वे निर्विण्णस्योपसङ्ख्यानम् * **कृत्स्थस्य णत्वे निर्विण्णस्योपसङ्ख्यानं कर्तव्यम्। निर्विण्णोऽहमनेन वासेन।** {कृत्यचः}।

कृत्स्थ न को णत्व की विषयता में 'निर्विण्णः' को भी णत्व कहना चाहिये। अच् से उत्तर में कृत् प्रत्यय में स्थित नकार नहीं है, अतः उसके लिए पृथग् वचन पढा गया है। {**कृत्यचः**}।

णेर्विभाषा ८.४.३०

सूत्रार्थ—'उपसर्गस्थ निमित्त रेफ और षकार से पर में ण्यन्त से विहित कृत् प्रत्यय में स्थित नकार को विकल्प से णत्व हो'। जैसे—'प्रयापणीयम्, प्रयापनीयम्'।

* णेर्विभाषायां साधनव्यवाये उपसङ्ख्यानम् * **णेर्विभाषायां साधनव्यवाये**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपसङ्ख्यानं कर्तव्यम् । प्राप्यमाणं प्राप्यमानम् * तद्विविधानात् सिद्धम् * **तद्विधानात् सिद्धम् । विहितविशेषणं णिग्रहणं 'ण्यन्ताद् यो विहित' इति** * अडधिकाराद्वा * **अथवाऽड्व्यवाय इति वर्तते ।**

'णेर्विभाषा' ८.४.३० की विषयता में साधन का व्यवधान होने पर भी णत्व कहना चाहिये। **साधन**=क्रिया का जनक कर्ता, कर्म कारक का वाचक लकार पर में रहते यक् आदि विकरण का विधान है, अतः यहाँ साधनशब्द से विकरण को कहा जा रहा है। यक् आदि विकरण का व्यवधान होने पर भी 'णेर्विभाषा' ८.४.३० का णत्व कहना चाहिये, यह फलितार्थ है। जैसे— 'प्राप्यमाणं पश्य, प्राप्यमानम् पश्य'। अथवा 'णेर्विभाषायां साधनव्यवाये उपसङ्ख्यानम्' यह वार्तिक पढने की आवश्यकता नहीं है। यह तद्विधान से सिद्ध है। 'णेर्विभाषा' ८.४.३० में हम विहित विशेषण देंगे। ण्यन्त से विहित कृत् प्रत्यय का नकार को णत्व हो', यह कहने से 'प्राप्यमाणं पश्य' में ण्यन्त 'प्रापि' से शानच् विहित है, अतः उसको णत्व हो जायेगा। अथवा विहित विशेषण भी नहीं दीजिये। 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि' ८.४.२ से 'अट्' का 'णेर्विभाषा' ८. ४.३० में अनुवर्तन होगा। अर्थ होगा—'उपसर्गस्थ निमित्त रेफ और षकार से पर में अट् के व्यवधान होने पर भी कृत् प्रत्यय का नकार को विकल्प से णत्व हो'। इससे 'प्राप्यमाणम्' में अट् का व्यवधान होने पर भी णत्व हो जायेगा। {**णेर्विभाषा**}।

इजादेः सनुमः ८.४.३२

यहाँ 'इच् आदिर्यस्यासौ इजादिः, नुमा सहितः सनुम् तस्माद् इजादेः सनुमः' ऐसा विग्रह है। 'हलश्चेजुपधात्' ८.४.३१ से पञ्चम्यन्त 'हलः' की अनुवृत्ति होती है। सूत्रार्थ है—'यदि सनुम् धातु से पर में कृत् प्रत्यय का नकार को णत्व हो तो इजादि हलन्त को ही हो, अन्य को नहीं'। जैसे— 'प्रेङ्खणीयम्'।

किमर्थमिदमुच्यते न 'कृत्यच' इत्येव सिद्धम् * नियमार्थोऽयमारम्भः * **नियमार्थोऽयमारम्भः। इजादेरेव च सनुम्कान्नान्यस्मात् सनुम्कादिति। क्व मा भूत्? प्रमङ्कनम् परिमङ्कनम् ।**

इस सूत्र का आरम्भ किस लिए करते हैं, 'कृत्यचः' ८.४.२९ से ही णत्व होने से ही इसके लक्ष्यों की सिद्धि है? 'कृत्यचः' ८.४.२९ से णत्व सिद्ध होने पर इस 'इजादेः सनुमः' सूत्र का आरम्भ किया गया है, अतः यह नियमसूत्र

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। यहाँ नियम होगा—'इजादि इनुम्क से विहित को ही णत्व हो, अन्य सनुम्क से विहित को नहीं'। इसका व्यावर्त्य णत्वनिषेध किस धातु से विहित कृत् का नकार में है? 'प्रमङ्कनम् परिमङ्कनम्' में है। यहाँ कृत् का नकार को णत्व नहीं होता है।

* सनुमो णत्वेऽवधारणाऽप्रसिद्धिर्विधेयभावात् * **सनुमो णत्वेऽवधारणस्याऽप्राप्तिः। किं कारणम्? 'विधेयभावात्'। कैमर्थ्यान्नियमो भवति? विधेयं नास्तीति कृत्वा। इह चास्ति विधेयम्। किम्? ण्यन्ताद्विभाषा प्राप्ता तत्र नित्यं णत्वं विधेयम्। तत्राऽपूर्वो विधिरस्तु नियमोऽस्त्विति, अपूर्वो विधिर्भविष्यति न नियमः।**

नियम का खण्डन करते हैं—सनुम् को णत्व कहने में **अवधारण**=नियम का व्यवर्त्य नहीं मिलेगा, वह इसलिए कि नियम **कैमर्थ्यक्य**=किसी का व्यावर्तन के लिए होता है। कोई विधेय व्यावर्त्य नहीं है, अतः 'इजादेः सनुमः' सूत्र का नियामकत्व सम्भव नहीं है। जी, आप कहते हैं कि कोई विधेय नहीं है, वह कैसे सम्भव है? यहाँ पर विधेय है। वह यह कि ण्यन्त से विहित को 'णेर्विभाषा' से विकल्प से णत्व है; नित्य णत्व हो, इसके लिए 'इजादेः सनुमः' का आरम्भ किया गया है। अब यहाँ पर अपूर्वविधि भी प्राप्त है तथा नियम भी प्राप्त है। नियम होने पर प्राप्त का बाध तथा विहित का अनुवाद, यह दो दोष होता है। परन्तु विधि मानने पर प्राप्त का बाध नहीं होता है तथा अनुवाददोष भी नहीं होता है। इस तरह नियमपक्ष में दो दोष स्पष्ट है, जब कि विधिपक्ष में कोई दोष नहीं होता है, अतः 'विधिनियमसम्भवे विधिरेव ज्यायान्' यह परिभाषा मानी जाती है। इस तरह जब प्रकृत में विधि और नियम, दोनों सम्भव हैं, तो नियम के सदोष होने से उसका परित्याग करके अपूर्वविधि ही करेंगे।

* सिद्धं तु प्रतिषेधाधिकारे सनुम्ग्रहणात् * **सिद्धमेतत्। कथम्? 'प्रतिषेधाधिकारे सनुम्ग्रहणात्'। प्रतिषेधाऽधिकारे सनुम्ग्रहणं कर्तव्यं—'न भाभूपूकमिगमिप्यायीवेपिसनुमा'मिति। इहापि तर्हि न प्राप्नोति—प्रेङ्णीयम् प्रेङ्खणम्।**

अब यहाँ शङ्का होती है कि जब आप 'इजादेः सनुमः' को विध्यर्थ मानेंगे, तो 'प्रमङ्कनम् परिमङ्कनम्' में णत्व की निवृत्ति कैसे होगी? तो इसका उत्तर देते हैं—**सिद्धं त्विति**। प्रतिषेधाधिकार में सनुम् का ग्रहण किया

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जायेगा। 'न भाभूपूकमिगमिप्यायीवेपाम्' इस सूत्र के स्थान पर 'न भाभूपूकमिगमिप्यायीवेपिसनुमाम्' ऐसा सूत्र पढ देंगे। इससे सनुम् का निषेध होने से 'प्रमङ्कनम् परिमङ्कनम्' में 'कृत्यचः' ८.४.२९ से प्राप्त णत्व का निषेध हो जायेगा। जी, प्रतिषेधाधिकार में सनुम् का ग्रहण करने से 'प्रेङ्णीयम् प्रेङ्खणम्' में भी सनुम् होने से णत्व का निषेध प्राप्त होगा। वहाँ णत्व का निषेध न हो, इसके लिए आप क्या करेंगे।

*** कृत्स्थस्य च णत्वे इजादेः सनुमो ग्रहणम् * कृत्स्थस्य च णत्वे इजादेः सनुमो ग्रहणं कर्त्तव्यम्। सिध्यति। सूत्रं तर्हि भिद्यते। यथान्यासमेवास्तु। ननु चोक्तं—'सनुमो णत्वेऽवधारणाऽप्रसिद्धिर्विधेयभावा'दिति। नैष दोषः। 'हल' इति वर्त्तते। क्व प्रकृतम्? 'हलश्चेजुपधा'दिति। तद्वै तत्रादिविशेषणमन्तविशेषणेन चेहार्थः। कथं पुनर्ज्ञायते—'तत्रादिविशेषण'मिति? 'इजुपधा'दित्युच्यते तत्र नाऽर्थोऽन्तविशेषणेन। तत्रादिविशेषणं सदिहान्तविशेषणं भविष्यति। कथम्? 'इजादे'रित्युच्यते तत्र नाऽर्थ आदिविशेषणेन। अथवा 'इजादेः सनुम' इत्यत्र 'णेर्विभाषे'त्येतदनुवर्त्तिष्यते।**

इसके लिए 'सनुमः' इस सूत्र के स्थान पर 'इजादेः सनुमः' ऐसा सूत्र पढ देंगे। 'कृत् प्रत्यय में स्थित नकार को णत्व की कर्तव्यता में 'इजादेः सनुमः' का ग्रहण करना चाहिये। जी, 'इजादेः सनुमः' ऐसा सूत्र पढने से 'प्रेङ्खणम्' में णत्व सिद्ध हो जायेगा, परन्तु सूत्रभेद होगा। अच्छा तो यदि आप सूत्रभेद नहीं चाहते हैं तो सूत्र जैसा है, वैसा ही रहने दीजिये। सूत्र के यथान्यासपक्ष में आप ने जो 'सनुमो णत्वेऽवधारणाऽप्रसिद्धिर्विधेयभावात्' यह जो दोष दिया था, वह नहीं रहेगा। वह इस तरह कि 'हलश्चेजुपधात्' सूत्र से 'हलः' इस पञ्चम्यन्त पद का अनुवर्तन करेंगे। जी, 'हलश्चेजुपधात्' सूत्र में 'हलः' आदिविशेषण है। अर्थात् 'हलादि इजुपध' ऐसा अर्थ है। जब कि 'सनुमः' सूत्र में 'हलन्तात् सनुमः' ऐसा अन्तविशेषण इष्ट है। आप कैसे जानते हैं कि 'हलश्चेजुपधात्' सूत्र में 'हलः' आदिविशेषण है? वह ऐसे कि वहाँ 'इजुपधात्' ऐसा कहा जा रहा है, अतः अन्तविशेषण का कोई प्रयोजन नहीं होने से आदिविशेषणं ही होगा। अच्छा तो 'हलश्चेजुपधात्' सूत्र में 'हलः' आदिविशेषण होता हुआ भी यहाँ अन्तविशेषण हो जायेगा। वह कैसे? वह ऐसे कि सूत्र में 'इजादेः' ८.४.३२ ऐसा कहते हैं। यदि पूर्वसूत्र से 'हलः' का अनुवर्तन कर आदिविशेषण किया जाये तो प्रकृत में उसका कोई प्रयोजन नहीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है, अतः प्रकृत में 'हलः' को अन्तविशेषण ही माना जायेगा। अन्तविशेषण होने पर उसका प्रयोजन भी है। अथवा हम 'इजादेः सनुमः' सूत्र में 'णेर्विभाषा' सूत्र का अनुवर्तन करेंगे। इससे 'प्रमङ्कनमू, परिमङ्कनम्' में ण्यन्त से विहित नहीं होने के कारण णत्व प्राप्त नहीं होगा। {इजादेः सनुमः}।

न भाभूपूकमिगमिप्यायीवेपाम् ८.४.३४

सूत्रार्थ—'उपसर्गनिमित्तक रेफ और ष से पर में भादि से विहित कृत्स्थ नकार को णत्व न हो'। प्रभानीयमू, प्रभवनीयम्' इत्यादि।

* भादिषु पूञ्ग्रहणम् * **भादिषु पूञ्ग्रहणं कर्त्तव्यम्। इह मा भूत्—प्रवपणं सोमस्येति** * ण्यन्तस्य चोपसङ्ख्यानम् * **ण्यन्तस्य चोपसङ्ख्यानं कर्तव्यम्। किं पूञ एव? 'ने'त्याह** * अविशेषेण * **प्रभापनं परिभापनम्।**

भादि के ग्रहण में पूञ् पवने धा.पा.१४८३ का ग्रहण करना चाहिये। इससे जहाँ पूङ् पवने धा.पा.९६३ का ग्रहण है, वहाँ 'प्रवपणं सोमस्य' में णत्व का निषेध नहीं होगा। ण्यन्त भादि से पर में विहित कृत्स्थ नकार को भी णत्व का निषेध कहना चाहिये। तो क्या आप ने 'ण्यन्तस्य चोपसङ्ख्यानम्' यह वचन पढा है, वह ण्यन्त पूञ् से पर में विहित कृत्स्थ नकार को णत्व का निषेध करेगा? जी नहीं। सम्पूर्ण ण्यन्त भादि से पर में विहित कृत्स्थ नकार को णत्व का निषेध कहा जा रहा है। इसे बताते हैं—**नेत्याह अविशेषेणेति**। इसका उदाहरण भी देते हैं—'प्रभापनं परिभापनम्' में ण्यन्त से विहित ल्यु को अन है, अतः णत्व का निषेध हो गया। {न भाभूपू-}।

षात् पदान्तात् ८.४.३५

सूत्रार्थ—'पदान्त ष् से पर में नकार को णत्व न हो'। 'निष्पानं, सर्पिष्पानम्'।

* षात् पदादिपरवचनम् * **षात् पदादिपरग्रहणं कर्त्तव्यम्। इहैव यथा स्याद्—निष्पानं दुष्पानम्। इह मा भूत्—सुसर्पिष्केण सयजुष्केण। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। नैवं विज्ञायते—'पदस्यान्तः पदान्तः, तदान्ता'दिति। कथं तर्हि? पदे अन्तः पदान्तः, पदान्तादिति।**

'षात् पदान्तात्' से णत्व का निषेध की कर्तव्यता में 'षात् पदादिपरवचन' कहना चाहिये। अर्थात् यदि षान्त पद आदि होगा तभी णत्वनिषेध होगा। जैसे—'निष्पानं, सर्पिष्पानम्'। यहाँ पर षान्त पद निष् और दुष् आद्यवयव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। परन्तु जहाँ षान्त पदादि नहीं होगा, वहाँ णत्वनिषेध नहीं होगा। जैसे—'सुसर्पिष्केण सयजुष्केण'। यहाँ पर षान्त सर्पिष्, सयजुष् पद आदि नहीं है। यहाँ आदि 'सु' पद है, परन्तु वह षान्त नहीं है, अतः णत्वनिषेध नहीं होगा। तो क्या 'षात् पदादिपरवचनम्' यह वचन पढना चाहिये? जी, इसकी आवश्यकता नहीं है। 'षात् पदान्तात्' में मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि 'पद का अन्त पदान्त, तदान्त से पर में' ऐसा। अपितु 'पद में जो अन्त, वह पदान्त, पदान्त से पर में' ऐसा कह रहा हूँ। इसका आशय यह है कि आचार्य 'षात् पदात्' इतना ही सूत्र पढते। इस में 'ष'ग्रहण पद का विशेषण होता। इससे तदन्त अर्थ का लाभ होने से 'पदान्तात् षात्' ऐसा अर्थलाभ हो जाता, पुनः सूत्र में जो अन्तग्रहण किया, उस अन्तग्रहणसामर्थ्य से सूत्र में सप्तमीसमास का आश्रयण किया गया है। {षात् पदान्तात्}।

नशेः षान्तस्य ८.४.३६

सूत्रार्थ—'षान्त णश अदर्शने धा.पा.११६४ धातु के नकार को णत्व न हो'। जैसे—'प्रनष्टा'।

*** नशेरशः * नशेरश इति वक्तव्यम्। इहापि यथा स्यात्—प्रनङ्क्ष्यति परिनङ्क्ष्यति। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। इह पुनर्नशेः ष इतीयता सिद्धं, सोऽयमेवं सिद्धे सति यदन्तग्रहणं करोति तस्यैतत् प्रयोजनं—'षान्तभूतपूर्वस्यापि यथा स्यात्। {नशेः षान्तस्य}।**

अशन्त णश अदर्शने धा.पा.११६४ धातु के नकार को णत्व का निषेध कहना चाहिये, जिससे 'प्रनङ्क्ष्यति परिनङ्क्ष्यति' में भी णत्व का निषेध हो सके। षत्व होने से पूर्व 'मस्जिनशोर्झलि' ७.१.६० से नुम् का आगम होने पर 'प्र न न् श् स्यति', 'परि न न् श् स्यति' इस स्थिति में 'व्रश्चभ्रस्ज-सृजमृजयजराजभ्राजच्छशां षः' ८.२.३६ से षत्व होकर 'षढोः कः सि' ८.२.४१ के द्वारा षकार को कत्व होकर 'प्रनङ्क्ष्यति परिनङ्क्ष्यति' यह रूप है। तो क्या 'नशेरशः' यह वचन पढना चाहिये? जी, इसकी आवश्यकता नहीं है। आचार्य को 'नशेः षः' इतना ही सूत्र पढना चाहिये था। यहाँ 'षः' यह पद 'नशेः' का विशेषण होता। विशेषण होने से ही तदन्त अर्थ का लाभ हो जाता; पुनः इस तरह सिद्ध होने पर भी आचार्य ने जो अन्तग्रहण किया है, उस अन्तग्रहण का प्रयोजन यह है कि 'जो सम्प्रति षान्त है, तथा जो भूतपूर्व षान्त है, उन सभी को णत्वनिषेध हो'। 'षढोः कः सि' ८.२.४१ से कत्व आदेश

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हो जाने पर इदानीं षान्त नहीं है, परन्तु भूतपूर्व षान्त को लेकर णत्व का निषेध हो जायेगा। {नशेः षान्तस्य}।

पदव्यवायेऽपि ८.४.३८

सूत्रार्थ—'पद का व्यवधान होने पर भी पूर्वपदस्थ निमित्त से पर में उत्तरपदस्थ नकार को णत्व का निषेध हो'। जैसे—'माषकुम्भवापेन, चतुरङ्गयोगेन'।

* पदव्यवायेऽतद्धिते * **पदव्यवायेऽतद्धित इति वक्तव्यम्। इह मा भूद्—आर्द्रगोमयेण शुष्कगोमयेण। तत्तर्हि वक्तव्यम्? न वक्तव्यम्। नैवं विज्ञायते—'पदेन व्यवाये पदव्यवायः, पदव्यवाये' इति। कथं तर्हि? पदे व्यवायः पदव्यवायः, पदव्यवाय इति।** {पदव्यवायेऽपि}।

तद्धितभिन्न प्रत्यय पर में रहते जो पद, उसी का व्यवधान होने पर 'पदव्यवायेऽपि' निषेध प्रवृत्त होगा, तद्धितप्रत्यय पर में रहते पद का व्यवधान होने पर नहीं। इससे 'आर्द्रगोमयेण, शुष्कगोमयेण' में तद्धितपरक पदव्यवाय होने पर णत्व हो गया। तो क्या 'पदव्यवायेऽतद्धिते' यह वचन कहना पडेगा? नहीं, इसे कहने की आवश्यकता नहीं है। 'पदव्यवाये' यहाँ पर 'पदेन व्यवायः पदव्यवायः, पदव्यवायेन' ऐसा अर्थ नहीं समझा जायेगा, अपितु 'पदे व्यवायः पदव्यवायः, पदव्यवाये' ऐसा अर्थ समझा जायेगा। 'पदेन व्यवायः पदव्यवायः, पदव्यवाये' ऐसा कहने से 'रम्यवीणा' इत्यादि स्थलों में जहाँ पदपरकत्वव्यवधानशून्यत्व है, वहाँ 'प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु च' ८.४.११ से णत्व होता है। **{पदव्यवायेऽपि}**।

क्षुभ्नादिषु च ८.४.३९

सूत्रार्थ—'क्षुभ्नादिगणपठित शब्दों का णत्वप्रतिषेध हो'।

* अविहितलक्षणो णत्वप्रतिषेधः क्षुभ्नादिषु * **अविहितलक्षणो णत्वप्रतिषेधः क्षुभ्नादिषु द्रष्टव्यः।** {क्षुभ्नादिषु च}।

क्षुभ्नादिगण में जिन शब्दों का णत्वप्रतिषेध किया गया है, उन शब्दों का णत्वप्रतिषेध अन्य शास्त्र से विहित नहीं है। 'अविहितः=अकृतः, शास्त्रेण= लक्षणेन णत्वप्रतिषेधो यस्यासौ अविहितलक्षणः णत्वप्रतिषेधः'। वस्तुतः 'न भाभूपूकमिगमिप्यायीवेपाम्' ८.४.३४ आदि णत्वनिषेधक सभी सूत्र 'क्षुभ्नादिषु च' सूत्र के ही प्रपञ्च हैं। {क्षुभ्नादिषु च}।

स्तोः श्चुना श्चुः ८.४.40

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूत्रार्थ—'शकार और चवर्ग के योग में सकार और तवर्ग को श्चुत्व हो'। जैसे—'रामश्चिनोति। सच्चित्'।

किमर्थं तृतीयानिर्देशः क्रियते न श्चावित्येवोच्येत? आनन्तर्यमात्रे श्चुत्वं यथा स्याद्—यज्ञः राज्ञः याच्ञा। अथ सङ्ख्यातानुदेशः कस्मान्न भवति? आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति—'सङ्ख्यातानुदेशो ने'ति यदयं शात्प्रतिषेधं शास्ति।

सूत्र में 'श्चुना' यह तृतीयानिर्देश क्यों करते हैं, 'स्तोः श्चौ श्चुः' ऐसा ही सूत्र क्यों नहीं कहते हैं? **आनन्तर्यमात्र**=व्यवधानरहितमात्र में श्चुत्व हो सके, इसके लिए 'श्चुना' यह तृतीयानिर्देश है। जैसे—'यज्+नः=यज्ञः, राज्+नः=राज्ञः, याच्+ना=याच्ञा'। 'श्चौ' ऐसा कहने पर निमित्तवचन पर में तथा कार्यी पूर्व में रहेगा। परन्तु 'श्चुना' इस तृतीयानिर्देश से कार्यी और निमित्त का आनन्तर्यमात्र में श्चुत्व होता है। इस सूत्र में 'यथासंख्यमनुदेशः समानाम्' १.३.१० यह नियम नहीं लगता है। इसका प्रमाण 'शात्' ८.४.४४ सूत्र से 'श' से पर में तवर्ग का श्चुत्वनिषेध है। अन्यथा संख्यातानुदेश होने पर 'श' से पर में तवर्ग को श्चुत्व प्राप्त नहीं हो सकेगा, पुनः निषेध व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा-'यहाँ यथासंख्य नहीं होता है'। {**स्तोः श्चुना श्चुः**}।

ष्टुना ष्टुः ८.४.४१

सूत्रार्थ—'षकार और टवर्ग के संयोग में सकार और तवर्ग को ष्टुत्व हो'। जैसे—'रामष्टीकते। तट्टीका।

किमर्थं तृतीयानिर्देशः क्रियते न ष्टावित्येवोच्येत? आनन्तर्यमात्रे ष्टुत्वं यथा स्यात्—पेष्टा लेढा। अथ सङ्ख्यातानुदेशः कस्मान्न भवति? आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति—'नेह सङ्ख्यातानुदेशो भवती'ति, यदयं 'तोः षी'ति प्रतिषेधं शास्ति।{ष्टुना ष्टुः}।

सूत्र में 'ष्टुना' यह तृतीयानिर्देश क्यों करते हैं, 'ष्टौ ष्टुः' ऐसा ही सूत्र क्यों नहीं कहते हैं? अर्थ होगा—'षकार और टवर्ग पर में रहते सकार और तवर्ग को षकार और टवर्ग आदेश हो'। इस तरह भी लक्ष्य सिद्ध हो जायेंगे। जी, 'ष्टौ' ऐसा कहने पर कार्यी और निमित्त का पूर्वापरीभाव व्यवस्थित हो जाता है, जब कि प्रकृत में **आनन्तर्यमात्र**=व्यवधानरहितमात्र में ष्टुत्व हो सके, इसके लिए 'ष्टुना' यह तृतीयानिर्देश है। जैसे—'पेष्+ता=पेष्टा, लेढ्+ढा=लेढा'। 'ष्टौ' ऐसा कहने पर निमित्तवचन पर में तथा कार्यी पूर्व में रहेगा। परन्तु

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'ष्टुना' इस तृतीयानिर्देश से कार्यी और निमित्त का आनन्तर्यमात्र में ष्टुत्व होता है। इस सूत्र में 'यथासंख्यमनुदेशः समानाम्' १.३.१० यह नियम नहीं लगता है। इसका प्रमाण 'तोः षि' ८.४.४३ सूत्र है। आचार्य ने ष पर में रहते तवर्ग को ष्टुत्वनिषेध करने के लिए 'तोः षि' ८.४.४३ सूत्र पढा है। यदि संख्यातानुदेश मानेंगे तो यहाँ प्राप्ति नहीं होनी चाहिये, पुनः निषेध व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा—'यहाँ यथासंख्य नहीं होता है'। {ष्टुना ष्टुः}।

न पदान्ताट्टोरनाम् ८.४.४२

सूत्र में 'अनाम्' यह लुप्तषष्ठीक पद है।

सूत्रार्थ—'पदान्त टवर्ग से पर में सकार और तवर्ग को ष्टुत्व न हो, नाम् शब्द को छोड कर'। जैसे 'षट् सन्तः। षट् ते।

अनामिति किमर्थम्? षण्णां भवति कश्यपः। अत्यल्पमिदम् उच्यते—'अना'मिति * अनामनवतिनगरीणां चेति वक्तव्यम् * **षण्णाम्। षण्णवतिः। षण्णगर्यः।** {न पदान्ताट्टोरनाम्}।

सूत्र में 'अनाम्' यह निषेधवचन क्यों पढते हैं? 'षण्णां भवति कश्यपः' में 'षष्+नाम्' में ष्टुत्व का निषेध न हो, इसके लिए 'अनाम्' यह निषेधवचन है। 'अनाम्' यह अल्प निषेधवचन पढा है। वहाँ नाम्, नवति और नगरी, इन तीनों के नकार को ष्टुत्व इष्ट है, अतः तीनों के निषेध का निषेध कहना चाहिये, जिससे विधि हो सके। इससे—'षण्णाम्। षण्णवतिः। षण्णगर्यः' में तीनों को ष्टुत्व हो गया। {न दपान्ताट्टो-}।

यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा ८.४.४५

सूत्रार्थ—'पदान्त यर् को अनुनासिक पर रहते विकल्प से अनुनासिक हो'। जैसे—'एतन्मुरारिः, एतद्मुरारिः'।

* यरोऽनुनासिके प्रत्यये भाषायां नित्यवचनम् * **यरोऽनुनासिके प्रत्यये भाषायां नित्यमिति च वक्तव्यम्। वाङ्मयम्। त्वङ्मयमिति।**

लोक में प्रत्ययघटक अनुनासिक से पूर्व में विद्यमान यर् को नित्य अनुनासिक कहना चाहिये। जैसे—'वाङ्मयम्। त्वङ्मयम्'। {यरोऽनुनासिके-}।

अनचि च ८.४.४७

सूत्रार्थ—'अच् से पर में यर् को द्वित्व हो, पर में अच् रहते न हो'।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

*** द्विर्वचने यणो मयः * द्विर्वचने यणो मय इति वक्तव्यम्। किमुदाहरणम्? यदि यण इति पञ्चमी मय इति षष्ठी उल्क्का वल्म्मीकमित्युदाहरणम्। अथ मय इति पञ्चमी यण इति षष्ठी दध्य्यत्र मध्व्वत्रेत्युदाहरणम्?**

द्विर्वचन की विषयता में 'यणः मयः' को भी द्वित्व कहना चाहिये। यदि 'यणः' को पञ्चमी तथा 'मयः' को षष्ठी मानेंगे तो यण् से पर में मय् को द्वित्व हो, यह अर्थ होगा। इसका उदाहरण है—'उल्क्का, वल्म्मीकम्'। यदि 'मयः' को पञ्चमी तथा 'यणः' को षष्ठी मानेंगे तो मय् से पर में यण् को द्वित्व हो, यह अर्थ होगा। इसका उदाहरण है—'दध्य्यत्र मध्व्वत्र'।

*** शरः खयः * शरः खय इति वक्तव्यम्। किमुदाहरणम्? यदि 'शर' इति पञ्चमी 'खय' इति षष्ठी स्थ्थाली स्थ्थाते'त्युदाहरणम्। अथ 'खय' इति पञ्चमी 'शर' इति षष्ठी वत्स्सरः क्ष्षीरम् अफ्स्सरा इत्युदाहरणम्।**

'शरः खयः' को भी द्वित्व कहना चाहिये। यदि 'शरः' को पञ्चमी निमित्तवचन तथा 'खयः' को षष्ठी उद्देश्यवचन मानेंगे तो शर् से पर में खय् को द्वित्व हो, यह अर्थ होगा। इसका उदाहरण है—'स्थ्थाली स्थ्थाता'। परन्तु यदि 'खयः' को निमित्तवचन पञ्चमी मानेंगे तथा 'शरः' को विधेयवचन षष्ठी मानेंगे तो 'खय् से पर में शर् को द्वित्व हो', यह अर्थ होगा। इसका उदाहरण है—'वत्स्सरः क्ष्षीरम् अफ्स्सराः'।

*** अवसाने च * अवसाने च द्वे भवत इति वक्तव्यम्। वाक्क् वाक्। त्वक्क् त्वक्। स्रुक्क् स्रुक्। तत्तर्हि वक्तव्यम्। न वक्तव्यम्। नायं प्रसज्यप्रतिषेधः—'अचि ने'ति। किं तर्हि? पर्युदासोऽयं 'यदन्त्यादच' इति।**

अवसान में भी द्वित्व कहना चाहिये। जैसे—'वाक्क्, दाक्। त्वक्क् त्वक्। स्रुक्क् स्रुक्'। क्या 'अवसाने च' यह वार्तिक पढना चाहिये? नहीं, इसकी आवश्यकता नहीं है। 'अनचि च' में नञ् पर्युदासार्थक प्रसज्यप्रतिषेध नहीं। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि यहाँ मूलपाठ लेखक के प्रमाद से है। वस्तुतः 'नायं पर्युदासः, प्रसज्यप्रतिषेधोऽयम्—'अचि च'। 'यदन्त्यादचः'। ऐसा ही पाठ होना चाहिये, अतः यहाँ निषेधार्थक नञ् है, सादृश्यार्थक नहीं। यद्यपि निषेधार्थक नञ् मानने में यहाँ वाक्यभेद, क्रियापदाध्याहार, असमर्थसमास

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और आचार्य को अप्रामाण्यापत्ति, ये चार दोष होंगे; परन्तु लक्ष्यानुरोध से वे सभी यहाँ सोढव्य हैं। अन्यथा यदि यहाँ पर पर्युदासार्थक नञ् इष्ट होता तो अज्भिन्न अच्सदृश पारिशेष्यात् हल् ही लिया जाता, तब तो लाघवानुरोध से आचार्य 'हलि च' यही सूत्र पढ देते, अतः गुरुभूत न्यास व्यर्थ पड कर ज्ञापन करेगा—'प्रकृत में प्रसज्यार्थक नञ् ही लिया जाता है'। प्रसज्यार्थक मानने में ही 'यदन्यदचः' यह भाष्य गतार्थ होता है। {अनचि च}।

नादिन्याक्रोशे पुत्रस्य ८.४.४८

सूत्रार्थ—'आक्रोश गम्य होने पर आदिनी शब्द पर में रहते पुत्र शब्द को द्वित्व हो'। जैसे—'पुत्त्रादिनि! त्वमसि पापे!'।

* नादिन्याक्रोशे पुत्रस्येति तत्परे च * **नादिन्याक्रोशे पुत्रस्येति 'तत्परे चे'ति वक्तव्यम्। पुत्त्रपुत्रादिनि!** * वा हतजग्धपरे च * **वा हतजग्धपरे इति वक्तव्यम्। पुत्रहती पुत्त्रहती। पुत्रजग्धी पुत्त्रजग्धी** * चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेः * **चयो द्वितीया भवन्ति शरि परतः पौष्करसादेराचार्यस्य मतेन। वथ्सः। ख्षीरम्। अफ्सराः।** {नादिन्याक्रोशे पुत्रस्य}।

'नादिन्याक्रोशे पुत्रस्य' की विषयता में 'तत्परे' ऐसा कहना चाहिये। अर्थात् आदिनी शब्दपरक पुत्रशब्द पर में रहते भी पुत्र शब्द को द्वित्व कहना चाहिये। जैसे—'पुत्त्रपुत्रादिनि! त्वमसि पापे!'।

हत और जग्ध शब्द में पर में रहते पुत्र शब्द को आक्रोश गम्य होने पर विकल्प से द्वित्व कहना चाहिये। जैसे—'पुत्त्रहती पुत्रहती'। 'पुत्त्रजग्धी पुत्रजग्धी'। पुष्करसादि आचार्य के मत में शर् पर में रहते चय् को द्वितीय वर्ण आदेश कहना चाहिये। जैसे—'वथ्सः, वत्सः'। 'ख्षीरम्, क्षीरम्'। 'अफ्सराः, अप्सराः'। {नादिन्याक्रोशे पुत्रस्य}।

उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य ८.४.६१

सूत्रार्थ—'उद् से पर में विद्यमान स्था तथा स्तम्भ को पूर्वसवर्ण हो'। जैसे—'उत्थानम्, उत्तम्भनम्'।

* उदः पूर्वत्वे स्कन्देश्छन्दस्युपसङ्ख्यानम् * **उदः पूर्वत्वे स्कन्देश्छन्दस्युपसङ्ख्यानं कर्त्तव्यम्। अघ्न्ये दूरमुत्कन्द** * रोगे च * **रोगे चेति वक्तव्यम्। उत्कन्दको रोगः।**

वेद में उद् से पर में स्कन्द को पूर्वसवर्ण कहना चाहिये। जैसे—'अघ्न्ये

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दूरमुत्कन्द'। यहाँ 'उद्+स्कन्दे' ऐसी स्थिति में पूर्वसवर्ण होकर 'उत्कन्द' ऐसा रूप है। रोग वाच्य होने पर 'उद्' से पर में 'स्कन्द' को पूर्वसवर्ण कहना चाहिये। 'उद्+स्कन्दकः उत्कन्दको रोगः'। {उदः स्थास्तम्भोः-}।

शश्छोऽटि ८.४.६३

सूत्रार्थ—'पदान्त झय् से पर में विद्यमान श् को अट् पर में रहते विकल्प से छत्व हो'। जैसे—'तच्छिवः। 'तद्+शिवः' इस दशा में श्चुत्व, चर्त्व, छत्व हो कर 'तच्छिवः' रूप है।

* छत्वममि तच्छ्लोकेन तच्छ्मश्रुणेति प्रयोजनम् * **छत्वममीति वक्तव्यम्। किं प्रयोजनम्? तच्छ्लोकेन तच्छ्मश्रुणेति।**

पदान्त झय् को अम् पर रहते विकल्प से छत्व कहना चाहिये। इसका प्रयोजन है—'तच्छोकेन, तच्छ्मश्रुणा'। में छत्वसिद्धि। अन्यथा अट्परक नहीं होने से यहाँ छत्व प्राप्त नहीं था, अतः भाष्यकार ने अम्ग्रहण किया है। इसका आशय है कि 'शश्छोऽटि' के स्थान पर 'शश्छोऽमि' ऐसा सूत्र पढना चाहिये था। {शश्छोऽटि}।

अभ्यासे चर्च ८.४.५४

सूत्रार्थ—'अभ्यास में झल् के स्थान पर चर् और जश् आदेश हो'।

प्रकृतिचरां प्रकृतिचरो भवन्ति। चिचीषति। प्रकृतिजशां प्रकृतिजशश्च भवन्ति। जिजनिषति। बुबुधे। ददौ। {अभ्यासे चर्च}।

यहाँ आन्तरतम्य होने से झश् को जश् तथा खय् को चर् आदेश होगा। उस में भी प्रकृति जश् को प्रकृति जश् तथा प्रकृति चर् को प्रकृति चर् आदेश होगा। प्रकृति चर् को प्रकृति चर् का उदाहरण है—'चिचीषति'। 'चेतुमिच्छति' इस विग्रह में धातु से सन् होने पर धातु को द्वित्व हो कर चर् को चर् आदेश है। प्रकृति जश् को प्रकृति जश् का उदाहरण है—'जिजनिषति'। 'जनितुमिच्छति' इस विग्रह में धातु से सन् होने पर धातु को द्वित्व हो कर जश् को जश् आदेश है। इसी तरह 'बुबुधे, ददौ' में भी प्रकृति जश् को प्रकृति जश् आदेश है। {अभ्यासे चर्च}।

झरो झरि सवर्णे ८.४.६५

सूत्रार्थ—'हल् से पर में झर् का लोप हो सवर्ण झर् पर में रहते'।

सवर्णग्रहणं किमर्थम्? * झरो झरि सवर्णग्रहणं समसङ्ख्यप्रतिषेधार्थम् *

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

झरो झरि सवर्णग्रहणं क्रियते। किं प्रयोजनम्? 'समसङ्ख्यप्रतिषेधार्थम्'। सङ्ख्यातानुदेशो मा भूदिति। किं च स्यात्? इह न स्यात्—शिण्ढि पिण्ढि। {झरो झरि}।

सूत्र में सवर्णग्रहण किस लिए किया गया है? 'झरो झरि सवर्णे' सूत्र में सवर्णग्रहण किया गया है। इसका क्या प्रयोजन है? इसका प्रयोजन यह है कि 'झरो झरि सवर्णे' सूत्र में संख्यातानुदेश न हो। इसका फल है—'शिण्ढि पिण्ढि' में ढकार पर में रहते डकार का लोप होता है। यदि समसंख्यक विधि मानते तो यहाँ लोप नहीं होता। यहाँ लोप हो, इसके लिए सूत्र में सवर्णग्रहण किया गया है। {**झरो झरि सवर्णे**}।

अ अ इति ८.४.६८

पूर्व 'अ' विवृतप्रयत्नवान् उद्देश्यवचन है तथा पर 'अ' संवृतप्रयत्नवान् विधेयवचन है। यह सूत्र सम्पूर्ण अष्टाध्यायी के प्रति असिद्ध है। प्रक्रियावस्था में ह्रस्व 'अ' विवृतप्रयत्नवान् होता है तथा प्रयोगावस्था में संवृतप्रयत्नवान् होता है।

किमर्थमिदमुच्यते? अकारोऽयमक्षरसमाम्नाये विवृत उपदिष्टस्तस्य संवृतताप्रत्यापत्तिः क्रियते। किं पुनः कारणं विवृत उपदिश्यते?

भाष्यकार पूर्वपक्ष उठाते हैं—'अ अ' सूत्र का आरम्भ क्यों किया गया है? उत्तर देते हैं—वह इसलिए कि सवर्णसमाम्नाय में अकार विवृत उपदिष्ट है। उसको सम्प्रति संवृत बताया जा रहा है। क्या कारण है कि सवर्णसमाम्नाय में अकार विवृत उपदिष्ट है? इसका उत्तर कारिकामुखेन देते हैं—

*** आदेशार्थं सवर्णार्थमकारो विवृतः स्मृतः।**
आकारस्य तथा ह्रस्वस्तदर्थं पाणिनेर अ।। *

आदेशार्थं तावत्—वृक्षाभ्यां देवदत्ता३। आन्तर्यतो विवृतस्य विवृतौ दीर्घप्लुतौ यथा स्याताम्। सवर्णार्थं च—अकारः सवर्णग्रहणेनाऽऽकारमपि यथा गृह्णीयात्। आकारस्य तथा ह्रस्वः। तथा च अतिखट्वः अतिमाल इत्यत्र आकारस्य ह्रस्व उच्यमानो विवृतः प्राप्नोति, संवृतः स्यादित्येवमर्था प्रत्यापत्तिः।

आदेश के लिए तथा सवर्णग्रहण के लिए अकार विवृत उपदिष्ट है। एवम् आकार को ह्रस्व संवृत हो, इसके लिए भी विवृतोपदेश है। कारिका में जो कहा है, आगे उसकी व्याख्या स्वयं भाष्यकार करते हैं—

आदेश के लिए 'वृक्षाभ्यां देवदत्ता३'। यहाँ 'वृक्षाभ्याम्' में 'सुपि च' ७.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

३.१०२ सूत्र से ह्रस्व को दीर्घ आदेश होता है, एवम् 'देवदत्ता३' में 'दूराद्धूते च' ८.२.८४ से ह्रस्व को प्लुत आदेश होता है। उभयत्र प्रक्रिया दशा में ह्रस्व 'अ' विवृत है, उसके स्थान पर आदेश दीर्घ और प्लुत भी विवृत ही हों, संवृत न हों, इसके लिए आचार्य ने 'अ अ' सूत्र का आरम्भ किया है। यहाँ यह ध्येय है कि प्रत्याहाराह्निक 'अइउण्' मा.सू.१ में भाष्यकार ने कहा है— 'नैव लोके दीर्घप्लुतौ संवृतौ स्तः'। कौ तर्हि? विवृतौ। यौ स्तस्तौ भविष्यतः'। कहा है। ऐसा कह कर भाष्यकार ने इस प्रयोजन का प्रत्याख्यान कर दिया है, परन्तु उस प्रत्याख्यान का आदर नहीं करते हुये भाष्यकार यहाँ प्रयोजन दे रहे हैं।

सवर्ण के लिए—सवर्ण के लिए भी अकार को विवृत उपदेश करना चाहिये जिससे अकार सवर्णग्रहण से आकार का भी ग्रहण करा सके। एवं विवृत आकार को ह्रस्व भी विवृत ही प्राप्त होगा, जैसे—'मालामतिक्रान्तोऽतिमालः, खट्वामतिक्रान्तोऽतिखट्वः' में दीर्घ विवृत के स्थान पर जायमान ह्रस्व विवृत न हो कर संवृत हो, इसके लिए विवृतोपदेश करना चाहिये। यद्यपि भाष्यकार ने 'अइउण्' मा.सू.१ पर कहा है—'नैव लोके दीर्घप्लुतौ संवृतौ स्तः'। कौ तर्हि? विवृतौ। यौ स्तस्तौ भविष्यतः'। ऐसा कह कर भाष्यकार ने इस प्रयोजन का प्रत्याख्यान कर दिया है, परन्तु उस प्रत्याख्यान का आदर नहीं करते हुये भाष्यकार यहाँ प्रयोजन दे रहे हैं। यह प्रयोजन है। इसके लिए अकार को विवृत उपदेश किया गया है।

अस्ति प्रयोजनमेतत्? किं तर्हीति? * अकारस्य प्रत्यापत्तौ दीर्घप्रतिषेधः * **अकारस्य प्रत्यापत्तौ दीर्घस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः। खट्वा माला। नैष दोषः। यथैव प्रकृतितः सवर्णग्रहणमेवमादेशतोऽपि भवितव्यं, तत्रान्तर्यतो ह्रस्वस्य ह्रस्वो दीर्घस्य दीर्घो भविष्यति।**

तो क्या अकार को विवृतोपदेश का यही प्रयोजन लगता है? तो क्या आपका यह प्रयोजन नहीं लगता है? अकार को विवृतोपदेश में दीर्घ का निषेध कहना चाहिये। यहाँ वार्तिक में दीर्घग्रहण उपलक्षणविधया प्लुत का भी बोध करायेगा, अतः दीर्घ और प्लुत, दोनों का निषेध कहना चाहिये। यहाँ पर कोई आचार्य 'अकारस्य प्रत्यापत्तौ दीर्घप्लुतप्रतिषेधः' ऐसा भी पाठ करते हैं। यहाँ पर स्थानी अकार विवृत अण् है। अण् सवर्णो का ग्रहण कराता है, अतः अकार दीर्घ 'आ' तथा प्लुत 'आ३' का भी ग्रहण करायेगा, जिससे दीर्घ 'आ' तथा प्लुत 'आ३' के स्थान पर जायमान ह्रस्वादेश संवृत अकार प्राप्त है, जिसका प्रतिषेध कहना चाहिये। जैसे—'खट्वा माला'। खट्व आकाङ्क्षायाम् धातु से 'अ' प्रत्यय तथा स्त्रीत्व की विवक्षा में टाप् प्रत्यय होकर सवर्णदीर्घ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एकादेश है। इसी तरह 'माला+टाप्' भी है। यहाँ उभयत्र स्थानी अकार विवृत होने से अण् है, अतः सवर्णो का ग्रहण करायेगा, जिससे एकादेश दीर्घ को भी संवृत आकार प्राप्त होगा, जिसका प्रतिषेध कहा जा रहा है। जी, यह कोई दोष नही है। जैसे प्रकृति=स्थानी सवर्णो का ग्रहण कराती है, वैसे आदेश भी सवर्णो का ग्रहण करायेगा। आन्तरतम्य होने से ह्रस्व को ह्रस्व तथा दीर्घ को दीर्घ आदेश होगा। अब इस पक्ष का खण्डन करते हैं, तथा सिद्धान्त स्थापित करते हैं—

* आदेशस्य चानण्त्वान्न सवर्णग्रहणम् * **आदेशस्य चानण्त्वात् सवर्णानां ग्रहणं न प्राप्नोति। केषाम्? उदात्तानुदात्तस्वरितानुनासिकानाम्** * सिद्धं तु तपरनिर्देशात् * **सिद्धमेतत्। कथम्? 'तपरनिर्देशात्'। तपरनिर्देशः कर्तव्यः—'अद' इति।**

आदेश अण् ग्राहक नहीं होता है। उद्देश्य अण् ही सवर्णो का ग्रहण कराता है। 'अण्णुदित् सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः' १.१.६९ सूत्र में अविधीयमान अण् से सवर्णो का ग्रहण बताया गया है। जहाँ पर आदेश दीर्घ और प्लुत हैं, वह विधीयमान भी है तथा अनण् भी। अनण् इसलिए है कि वर्णसमाम्नाय में पठित नहीं है, अतः सवर्णो का ग्रहण नहीं करायेगा। इस तरह दीर्घ और प्लुत को संवृतताप्रत्यापत्ति नहीं है, जिसके लिए निषेधवचन पढना पडेगा। एवम् अनण् होने से उदात्त अनुदात्त, स्वरित और अनुनासिक भी भाव्यमान होने से सवर्णो का ग्रहण नहीं करा पायेंगे। इस तरह जिस गुण से युक्त हो कर संवृत उच्चरित है, ह्रस्व, दीर्घ प्लुत और अनुनासिक का भी तद्गुण-प्रत्यापत्ति होने से अनिष्टप्रसङ्ग हो गया, जब कि उदात्तादिगुणयुक्त स्थानी के स्थान पर उदात्तादिगुणयुक्त आदेश का ही ज्ञान इष्ट है, परन्तु सवर्णग्रहण न होने से वह इष्टसिद्धि नहीं हो पा रही है। इस इष्टसिद्धि के लिए अगला वचन कहते हैं—**सिद्धन्त्विति**। हम यहाँ 'अ अ' इस सूत्र के स्थान पर 'अत् अ' ऐसा तपरनिर्देश करेंगे, जिससे 'तः परो यस्मात् सोऽयं तपरः, तात् परस्तपरः' ऐसा द्विविध समास माना जाता है। इससे एकमात्रिक 'अ' के स्थान पर जायमान एकमात्रिक 'अ' ही संवृत होगा, दीर्घ अथवा प्लुत के स्थान पर जायमान ह्रस्व आदेश संवृत नहीं हो सकेगा।

अपर आह—* अकारस्य प्रत्यापत्तौ दीर्घप्रतिषेधः * **अकारस्य प्रत्यापत्तौ दीर्घस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः। खट्वा माला। नैष दोषः। दीर्घोच्चारणसामर्थ्यान्न भविष्यति। इदं तर्हि—वृक्षाभ्यां प्लक्षाभ्याम्। अत्रापि दीर्घवचनसामर्थ्यान्न भविष्यति। इदं तर्हि—अपि काकः श्येनायते। ननु चाऽत्राऽपि दीर्घवचन-**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सामर्थ्यादेव तन्न भविष्यति। अस्त्यन्यद् दीर्घवचने प्रयोजनम्। किम्? दधीयति मधूयति।

दूसरे कहते हैं—अकार के स्थान में जायमान दीर्घ को संवृत का निषेध कहना चाहिये। विधेय संवृत 'अ' से सवर्ण का ग्रहण होनें से दीर्घ तथा उपलक्षणविधया प्लुत का भी ग्रहण होगा, उसको भी संवृतताप्रत्यापत्ति होगी, जिस का निषेध कहना चाहिये। जैसे—'खट्वा माला'। जी, यह कोई दोष नहीं है। दीर्घोच्चारण तथा प्लुतोच्चारणसामर्थ्य से दीर्घादि को संवृतताप्रत्यापत्ति नहीं होगी। अच्छा तो 'वृक्षाभ्याम् प्लक्षाभ्याम्' में दीर्घ को संवृतताप्रत्यापत्ति होगी। यहाँ भी 'सुपि च' ७.३.१०२ में दीर्घवचनसामर्थ्य से संवृतताप्रत्यापत्ति नहीं होगी। 'श्येन इवाचरति काकः इति अपि काकः श्येनायते' में 'कर्तुः क्यङ् सलोपश्च' ३.१.११ से जहाँ क्यङ् प्रत्यय होकर दीर्घ है, वहाँ दीर्घ को संवृतताप्रत्यापत्ति होगी। जी, वहाँ भी दीर्घवचनसामर्थ्य से ही संवृतताप्रत्यापत्ति नहीं होगी। जी, यहाँ दीर्घग्रहण का अन्य प्रयोजन है—'दधीयति मधूयति'। यहाँ ह्रस्व 'इ' और 'उ' को दीर्घविधान में वचन चरितार्थ है, अतः दीर्घवचन-सामर्थ्य से 'श्येनायते' में संवृतताप्रत्यापत्ति नहीं हटा सकते हैं। इस तरह 'श्येनायते' में आदेश दीर्घ को संवृतताप्रत्यापत्ति है, जिसको हटाने के लिए आगे वार्तिक का आरम्भ करते हैं—

* आदेशस्य चानण्त्वात् सवर्णाग्रहणम् * **आदेशस्य चानण्त्वात् सवर्णानां ग्रहणं न प्राप्नोति। केषाम्? उदात्तानुदात्तस्वरितानुनासिकानाम्** * सिद्धं तु तपरनिर्देशात् * **सिद्धमेतत्। कथम्? 'तपरनिर्देशात्'। तपरनिर्देशः कर्तव्यः। 'अद'दिति** * एकशेषनिर्देशाद्वा स्वरानुनासिकभिन्नानां भगवतः पाणिनेः सिद्धम् * **एकशेषनिर्देशाद्वा स्वरभिन्नानां भगवतः पाणिनेराचार्यस्य सिद्धम्। 'एकशेषनिर्देशोऽयम्'—अ अ अ इति।**

इति श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिविरचिते व्याकरणमहाभाष्ये
अष्टमाध्यायस्य चतुर्थपादे प्रथममाह्निकम्

●

आदेशस्येति। 'अ अ' इस सूत्र में विधेय 'अ' संवृत अनण् है। अण् अपने सवर्णो का ग्रहण कराता है। अण् नहीं होने से विधेय संवृत अपने सवर्णो का ग्रहण नहीं करा सकेगा, जिससे 'श्येनायते' में संवृत प्राप्त नहीं है। एवम् उदात्त, अनुदात्त स्वरित और स्वरित भी ग्रहण नहीं करा सकेगा। अब यहाँ पर ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत और अनुनासिक का ग्रहण कराने के लिए दूसरे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वार्तिक का अवतरण करते हैं—हम यहाँ पर तपरनिर्देश करेंगे 'अत् अत्' ऐसा। अकार यद्गुणविशिष्ट होगा, तद्गुण का ग्रहण होगा।

जिनके मत में 'अत् अ' ऐसा सूत्र है, उनके मत में 'तात् परः तपरः' ऐसा मान कर विधेय 'अ' से भी गुणान्तर तत्काल का ग्रहण नहीं करा रहा है, परन्तु जो 'अत् अत्' ऐसा सूत्र पढ रहे हैं, वे 'तात् परः तपरः' ऐसा न मानते हुये विधेय आदेश से गुणान्तर तत्काल का भी ग्रहण न हो, उसके लिए 'अत् अत्' ऐसा उभयत्र तपरनिर्देश किया है। अथवा 'अ अ अ'='अ' ऐसा एकशेषनिर्देश है। यहाँ उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित एवं प्रत्येक के अनुनासिक, अननुनासिकभेद से द्विधा होने से 'अ' यह उद्देश्यकोटि में छः मात्रा तथा विधेयकोटि में भी छः मात्रा का निर्देश है। इस तरह एकशेष के द्वारा छः मात्रा स्थानी का ग्रहण होने से भिन्न काल दीर्घ और प्लुत का ग्रहण नहीं होगा। 'यथासंख्यमनुदेशः समानाम्' १.३.१० सूत्र से स्थानी और आदेश के यथासंख्य होने से छः विवृत के स्थान पर छः आदेश प्राप्त होते हैं, इस तरह सम्पूर्ण इष्ट की सिद्धि हो जाती है। 'एकशेषनिर्देशाद्वा स्वरानुनासिकभिन्नानां भगवतः पाणिनेः सिद्धम्' इस वार्तिक में कहीं पर 'स्वरानुनासिकभिन्नानाम्' के स्थान पर 'स्वरभिन्नानाम्' मात्र इतना ही शब्द है।

'एकशेषनिर्देशाद्वा स्वरानुनासिकभिन्नानां भगवतः पाणिनेः सिद्धम्' इस वार्तिक में 'सिद्ध' शब्द से वार्तिककारीय मङ्गल, 'भगवतः पाणिनेः सिद्धम्' ऐसा कहने से भाष्यकारीय मङ्गल तथा 'अ अ' का अन्त में पाठ करने से 'अक्षराणामकारोऽस्मि' इस गीतावचन से सूत्रकारीय मङ्गल है।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।
हरिः ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

यह ज्योत्स्नाकार का मङ्गल है।

श्रीमद्भगवत्पतञ्जलिमुनिविरचित व्याकरणमहाभाष्य
अष्टम अध्याय चतुर्थ पाद प्रथम आह्निक पर
डॉ. हरिनारायण तिवारी द्वारा रचित
'ज्योत्स्ना' हिन्दी टीका पूर्ण हुई

चतुर्थ पाद भी पूर्ण हुआ

अष्टम अध्याय भी पूर्ण हुआ

●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

NEPAL SANSKRIT UNIVERSITY
पुस्तकालय

Acc. 39808/31406

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषयानुकूल ग्रन्थरत्नानि

- **(बृहत्) अनुवाद रत्नाकर** । डॉ० रमाकान्त त्रिपाठी
- **अष्टाध्यायी** । 'चन्द्रलेखा' हिन्दी व्याख्या एवं अनेकोपयोगी विषययुक्त । पं० ईश्वरचन्द्रशर्मा । १-२ भाग
- **अष्टाध्यायी** । 'शान्ति' संस्कृत-हिन्दी टीका सहित । डॉ० नरेश झा
- **काशिका** । विस्तृत हिन्दी व्याख्या सहित । पं० ईश्वरचन्द्र शर्मा
- **कृत्प्रत्ययविश्लेषण** । कृत्प्रत्ययों का व्यापक तथा विशद् विश्लेषण । डॉ० गोपबन्धु मिश्र
- **परमलघुमञ्जूषा** । संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित । पं० वंशीधर मिश्र
- **परिभाषेन्दुशेखर** । तात्याशास्त्रीकृत 'भूति' टीका सहित
- **परिभाषेन्दुशेखर** । 'सुबोधिनी' हिन्दी व्याख्या सहित । आचार्य विश्वनाथ मिश्र
- **पाणिनीयशिक्षा** । 'वेदाङ्गशिक्षाविमर्श' संस्कृत एवं 'नारायणी' हिन्दी व्याख्या एवं परिशिष्ट सहित
- **प्रबन्धरत्नाकर** । (शास्त्री, आचार्य, बी.ए., एम.ए. आदि परीक्षोपयोगि शताधिक निबन्धों का संग्रह) । डॉ० रमेश चन्द्र शुक्ल
- **प्रौढमनोरमा** । (कारकादव्ययीभावान्तोभाग) सशब्दरत्न बालप्रकाशिका संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित । डॉ० रमाकान्तपाण्डेय
- **प्रौढमनोरमा** (पञ्चसन्ध्यन्त) । 'शब्दरत्न', 'भैरवी' एवं हिन्दीव्याख्या सहित । डॉ० रमाकान्त पाण्डेय
- **बृहद्धातुशब्दरूपसंग्रह** । डॉ० रामकिशोरशर्मा
- **बृहद्धातुसुकुमाकर** । (सिद्धान्तकौमुदी के सभी धातु-रूपों का संग्रह) । पं० हरेकान्तमिश्र
- **बृहच्छब्दकुसुमाकर** । (शब्दरूपों का संग्रह) । पं० हरेकान्त मिश्र
- **मुग्धबोधव्याकरण** । बोपदेवविरचित । श्रीदुर्गादासतर्कवागीश, श्रीरामतर्कवागीशकृत टीका सहित । सम्पा. पं० जीवानन्दविद्यासागर
- **लघुशब्देन्दुशेखर** । 'भैरवी', 'चन्द्रकला' एवं 'बैकुण्ठी' हिन्दी टीका सहित । बैकुण्ठनाथ शास्त्री
- **लघुसिद्धान्तकौमुदी** । विवेचनात्मक 'माहेश्वरी' हिन्दी व्याख्या सहित । डॉ० महेशसिंहकुशवाहा । १-२ भाग

चौखम्बा विद्याभवन
वाराणसी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu